□ हिन्दी भाषा और साहित्य में
□ ग्वालियर क्षेत्र का योगदान

तोमर युगीन ग्वालियर

(संस्कृति, भाषा-साहित्य १५-१६ वी शता॰ ई॰)

१

लेखक :

□ डा0 राधेश्याम द्विवेदी

एम. ए, पी-एच. डी



कैलाश
पुस्तक ग्वालियर □ भोपाल
स द न



• प्रकाशक :

कैलाश प्रसाद अग्रवाल

कैलाश पुस्तक सदन

पाटनकर बाजार, ग्वालियर-१

शाखा :

हमीदिया मार्ग, भोपाल-१

मूल्य :

साधारण संस्करण रु० २५-००

पुस्तकालय संस्करण रु० ३०-००

आवरण :

रिफॉर्म्स स्टूडियो, दिल्ली

मुद्रक :

जागृति प्रेस,

लोहिया बाजार, ग्वालियर-१

विषय सूची





प्रस्तावना

लेखक

तोमरयुगीन ग्वालियर, १५—१६ वी शता० ई० मे, हिन्दी भाषा-साहित्य एव सस्कृति का, मध्यदेश का, बहुत बडा सास्कृतिक केन्द्र रहा। इस युग के गोपाचल गढ के अधिपतियों ने एक ओर मातृभूमि की रक्षा के निमित्त, राष्ट्रीय चेतना की ज्वाला, प्रचण्ड रूप से प्रज्ज्वलित रखने के लिए, तत्कालीन विदेशी आक्रामक सत्ता मे लोहा लेते रहने का, प्राणपन से सफल प्रयत्न किया। दूसरी ओर, मा भारती के मदिर मे, साहित्य, सगीत और कला के सुरभित सुमन अर्पित किये तथा विद्वानो को आश्रय, सम्मान, प्रोत्साहन देकर, युग प्रेरक, सत् आधारित, शौर्य और सौन्दर्य के समन्वित काव्य-कुसुम भेंट कराए। आर्य भाषा हिन्दी को किए गए इस क्षेत्र के अकिंचन योगदान को तत्कालीन, साहित्य-मनीषियो ने 'ग्वालियरी, ग्वालेरी, भाषा नाम से अभिहित कर, सास्कृतिक स्थल विशेष के सुकृत रूप मे, समादृत किया था। गोपाचल गढ के तोमर अधिपतियो मे, तलवार और कलम, शस्त्र और शास्त्र की समन्वित, ऐसी भव्य-साधना पाकर, मानव का हृदय और बुद्धि समरसता जनित आह्लाद मे तल्लीन हो जाती है।

महाभारत काल में यही 'कुन्ति' प्रदेश था जिसे मध्ययुगीन कवियो ने कुन्तलपुरी, कौंतिलपुर, कुनवाल [कुतवार कोनवार, कुटवार] कहा। यह क्षेत्र, नारायण गोपाला

कहलाता था. ग्वालियर की पहाड़ी को गोपालकगिरि या गोपाचल कहते थे और इस प्रदेश मे ग्वालियर, दतिया का इलाका सम्मिलित था।[१] नाग राजधानी प्राचीन कान्तिपुरी थी। 'कुतवाल', को कन्तिपुरी श्री विलसन तथा कनिंघम ने माना है।[२]

यह कान्तिपुरी, कुन्तलपुर या पुरी, कुतवाल [कुतवार], पद्मावली और सुहानिया आज के मुरैना जिले ग्वा० सभाग के गांव पहिले एक नगर थे जो नाग साम्राज्य मे मथुरा और पद्मावती : [वर्तमान पवाया जिला गिर्द, ग्वालियर] से सम्बन्धित थे।[३]

ग्वालियर को गोपाचल के अतिरिक्त गोपाद्रि, गोवर्गिरि, गोवर्धगिरि, ग्वालपा गिरि, गोपालपुर आदि नामो से, मध्ययुगीन रचनाकारो ने पुकारा है। खड्गराय के गोपालचल आख्यान मे विदित होता है कि कुतलपुरी [कुतवार=सुहानिया] सोलह कोस के विस्तार मे फैली थी। कच्छपघातो के ग्वालियर गढ स्थित सहस्रबाहु [सास-बहू] के मदिर में सम्वत् ११५० वि० के शिलालेख से कछवाहो का वंश वृक्ष ज्ञात हो जाता है, साथ ही इसी सम्वत् के पद्मनाभ-विष्णु मदिर, ग्वालियर दुर्ग के शिलालेख से सुहानिया [सिहपानिय] में कछवाहा रानी "ककलदे" [ककन दे] का शिवमदिर बनवाने का पता चल जाता है। ग्वालियर दुर्ग मे विष्णु मदिर, महीपाल कछवाहे ने निर्माण कराया था। खड्गराय ने ग्वालियर दुर्ग पर, "ग्वालिपा" नामक सत को अवस्थित होना बताया है जो नाथ सम्प्रदाय से सम्बधित होना विदित होता है। *गोपाचल आख्यान में, "सहजनाथ" का उल्लेख है।*

कछवाहो की एक शाखा नरवरगढ मे थी। सवत् ११७७ के ताम्र-पत्र से यह प्रकट होता है।[४] चाहड़ ने नलगिरि (नरवर) जीत लिया था। वहां नरवर्म देव, गोपालदेव की विद्यमानता ग्वालियर राज्य के अभिलेखों मे वर्णित सिक्कों, शिलालेखो से स्पष्ट हो जाती है। बगना ग्राम (नरवर) में चदेले राजा वीरवर्मन के-गोपाल देव नरवर पर किए गए-आक्रमण और गोपालदेव की विजय के स्मारक स्तम्भ हैं (अभि-लेख क्रमांक १५६)। विक्रम संवत् १३४५ के एक अभिलेख मे गणपतिदेव का चदेरी (कीत्तिदुर्ग) जीतना लिखा हुआ है। चाहड यज्वपाल थे।

---

१ डा० वासुदेवशरण का लेख=दतिया की यात्रा, कल्पना, हैदराबाद, अगस्त १९५१, पृष्ठ २१। छिताई चरित, स० हरिहरनिवास द्विवेदी, पृष्ठ ८७, २२५ कोतलपुर, (खड्गराय का गोपाचल आख्यान (रचना० १७६६ ई०) सोनपाल वंश वर्णन में कुन्तलपुरी।

२. आर्को० सर्वे रि० भाग २, पृष्ठ ३०८. ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपुल=अल्तेकर, पृ० ३६। ग्वा० पुरा० रि० सवत् १९९७, पृष्ठ २२।

३. आर्को० सर्वे रि० सन् १९१५—१६. पृ० १०१।

४. ग्वालियर राज्य के अभिलेख-सं० हरिहरनिवास द्विवेदी, अभिलेख क्रमांक ५५, ५६, ६१, ६२, पृष्ठ १३, २७।

कछवाहो के पश्चात् इस प्रदेश का शासन परिहारो के हाथ आया। अनुमानतः, यह परिहार राजे, कन्नोज के राठौर राजाओ की अधीनता स्वीकार करते थे।[५]

इधर कालिन्जर, महोबा, खजुराहो मे, चन्देल राज्य सभा [परमर्दि देव] के राज कवि जगनिक के शौर्य गीत और सूर्यवंशी कछवाहे अन्तिम शासक तेजकरण [तेजपाल, तेगपाल] जिसे दूल्हा या ढोला राजा भी कहा गया है—के, देवसा के रणमल की राजकुमारी मारवणी के, प्रेम गीत, लोक-काव्य के रूप मे मुखरित हो रहे थे। सूर्यवंशी कछवाहो का राज्य आमेर [वर्तमान जयपुर राज्य] मे था। यह प्रारम्भ में मेवाड के प्रभुत्व में रहा।[६] यशोवर्मन के पुत्र धंग देव ने कालिन्जर मे दुर्ग रक्षित शिविर बनाया था। यही दुर्ग, चन्देलो की सैनिक राजधानी बन गया। ग्वालियर—महमूद गजनी के आक्रमण के समय चन्देल राज्य के अधीन होने से, चन्देल शक्ति को ठोस बनाने मे, महत्त्व का सिद्ध हुआ। मुस्लिम इतिहासकार-निजामुद्दीन ने महमूद गजनी का, नन्द [गण्ड] के साम्राज्य पर आक्रमण करना बताया है। इसके प्रबल प्रतिकार में कालिन्जर के साथ ग्वालियर, कन्नौज, अजमेर, उज्जैन के नरेश थे।[७]

कुतुबुद्दीन ऐबक ने १२०२-३ ई० मे बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया और मुस्लिम इतिहासकारो के अनुसार परमर्दि देव को हराकर महोबा, खजुराहो, कालिन्जर पर अधिकार कर लिया था। शम्मउद्दीन इल्तुतमिश (अल्तमश) ने आक्रमण किया किन्तु १२११-३६ ई० के अल्तमश-राज्य में ग्वालियर, अजमेर और दोआब ने तुर्की साम्राज्य के जुए से अपनी गर्दन निकाल ली थी। मलयवर्मन प्रतिहार ने प्रबल प्रतिरोध कर तुर्कों को पीछे हटने को बाध्य किया था और ग्वालियर, नरवर तथा झासी को अधिकृत कर लिया था।[८] सारङ्गदेव (सारंगदेव १२११ ई०, परिहार) के समय, खडग राय के गोपाचल आख्यान के अनुसार-"सुलतान समसदी" (सुलतान शम्सउद्दीन इल्तुतमिश) का आक्रमण होना तथा जौहरा ताल से परिहार कुल की ७० राजपूतानियों द्वारा ग्वालियर मे जौहर करके चिता की बलिवेदी पर समर्पित हो जाने का उल्लेख मिलता है।

---

५. आर्कों० सर्वे ऑफ इण्डिया, रिपोर्ट भाग २, पृष्ठ ३७६।

६. दिल्ली सल्तनत-डा० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २६०।

७. इण्डियन एंटीक्वेरी, भाग १६, पृष्ठ २०३, पंक्ति ७। एपीग्राफिया इण्डिका, भाग १, पृष्ठ १४७, पंक्ति ३२, ३३,। चन्देल और उनका राजत्व काल—केशवचन्द्र मिश्र, पृष्ठ ७८, ८६।

८. दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १००, १०६, ११०, १११, ११३, का फुटनोट, पंचम संस्करण (१६६५)
खड्गराय का गोपाचल आख्यान, विद्या मन्दिर, मुरार, ग्वालियर में पाण्डुलिपि के रूप में अध्ययन हेतु सुरक्षित है।

"इल्तुतमिश" ने १२३१ ई० में ग्वालियर अधीन कर लिया। "बलबन" ने १२४७ में कालिन्जर को रोंदा और इतिहासकार एच०सी० राय (H. C. Roy) के अनुसार चंदेलवंश के त्रैलोक्यवर्मन को पराजित कर दिया था। १२५१ ई० में ग्वालियर फिर आक्रमण का शिकार हुआ [६]।

गोपाचल, जैन-धर्म के भट्टारकों की गद्दी के क्षेत्र में भी रहा। गोपाचल के साथ नरवर भी जैन-इतिहास को सजोए रहा। गोपाचल-दुर्ग का उरवाही द्वार, जहां जैन प्रतिमाओं को प्रसिद्ध है, वहां, नरवर के तलघर से निकली हुई लगभग १४५ जैन प्रतिमाएँ भी इसका प्रबल प्रमाण हैं कि नरवर जैन-धर्म का गढ़ रहा है। नरवर के दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर के तलघर की एक दीवाल में मिले बीजक से पता चला कि माह वदी ५ सं० १२४६ को गजरथ की प्रतिष्ठा हुई थी और यहां ७०० घर जैनियों के थे। उस बीजक में नरवरगढ़ राज, मूल संघ, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ, कुन्द कुन्दान्वय, गोपाचल पट्ट, श्री विश्वभूषण देव जैन आचार्य का उल्लेख है। उपर्युक्त बीजक (६-अ) में श्री कुन्दन लाल जैन की इस स्थापना से सहमत नहीं हूं कि बलात्कार गण की अटेर शाखा के भट्टारक जगद्भूषण के शिष्य, भट्टारक 'विश्वभूषण" हो सकते हैं (६-ब)। इस नरवर स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में उपलब्ध बीजक एवं ताम्रपत्र लेख में पन्द्रहवीं शताब्दी के तोमर युगीन इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है और उस प्रकाश की परिधि में मुस्लिम इतिहासकार-"यह्या बिन अहमद" के कथनों पर पुनर्विचार को बाध्य होना पड़ता है।

जैन मत के भट्टारक नरवर और ग्वालियर में थे। उसमें पद्मावती पुरवाल वैश्य रइधू जैन महाकवि, जैसे भी, भट्टारकों के शिष्य थे। साथ ही नरवरगढ़ के जैसवाल वंशी, तोमर नरेश के, प्रधानामात्य थे। इस प्रकार ग्वालियर उस समय सांस्कृतिक संगम-स्थल बना हुआ था। हरियाणा के तोमरों ने ढिल्लिकापुरी बसाई थी और १२ वीं शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध तक राज्य किया था। "कुरजांगल" प्रदेश से तोमरों के साथ ही कुछ हरियाणिया विप्र, मिश्र परिवार आए जो संस्कृत-भाषा के पंडित घरानों के थे जिन्होंने यहां ग्वालियर, ओरछा, मालवा, मेवाड़ में पहुँचकर जनभाषा को अपनाया। इनमें केशवदास मिश्र महाकवि के पूर्वज भी थे और विष्णु-

६ दिल्ली सल्तनत, पृ० १०५, ११२, १२१, डायनेस्टिक हिस्ट्री, जिल्द २, पृ० ७२०—३०।

६-अ जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र नरवरगढ़—श्री कुन्दनलाल जैन का लेख (महावीर जयन्ती स्मारिका १९७२, खण्ड २ पृष्ठ ४१, ६८, गुन्नी मार्ग, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२।

६ ब, भट्टारक सम्प्रदाय-V. P. Johrapurkar, स. २०१४ वि० पृष्ठ १२८-१३४, लेखांक ३१४-३१५, जगद् भूषण-१६२६ ई० तथा विश्वभूषण १६६५-६७ ई० के हैं।

दत्त, नारायण, दामोदर मिश्र का परिवार भी था जिसका वर्णन कविप्रिया तथा हृदयराम मिश्र के रस रत्नाकर मे है।[१०]

मध्यदेश की भाषा परम्परा छान्दस या वैदिक भाषा से प्रारम्भ होकर शौरसेनी अपभ्रंश तक प्रायः अविच्छिन्न रूप में प्राप्त होती है। मध्यदेश के सांस्कृतिक केन्द्र ग्वालियर मे संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी-अरबी और नाना प्रदेशों के देशज शब्दों के भाषा भाषियों, शिल्पियों का सम्पर्क था। यही कारण है कि तोमर युग मे पट्भाषा प्रवृत्ति की, "ग्वालियरी" सर्वमान्य आर्य-भाषा हिन्दी का रूप-परिनिष्ठित काव्य भाषा का-सजा और सँवरा। तोमर युग मे, यह रूप, वीरमदेव तोमर, डूगरेन्द्रसिंह तोमर और कीर्तिसिंह तोमर एवं मानसिंह तोमर के शासन काल मे ग्वालियर के हिन्दी के पौराणिक कथाकार, लौकिक आख्यानकार, विष्णुपद एवं ध्रुपद शैली के पद रचनाकार संगीतज्ञ कवियों को उस रचना-समष्टि में निखरा जिससे आगे चलकर, सूर, तुलसी, जायसी, केशव, बिहारी आदि तोमरयुगीन कवियों के दाय को अपने युगप्रतिनिधि काव्यों मे विशदता प्रदान कर सके। यही लक्ष्य कराना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यद्यपि राजनीतिक इतिहास को आधार बनाया गया है किन्तु राजनीतिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास को उजागर करने के सहायक रूप मे देखा गया है। इस क्रम मे एकाध-अपवाद स्वरूप, तोमर राजा, राज्य काल के क्रम मे रह गया है जिसका सास्कृतिक दाय कुछ नही था और लगभग एकाध साल जिसने राज्य किया उसे उद्धरणदेव तोमर के नाम से पुकार सकते हैं। इसके छूटने का भी कारण है, वह यह कि मुस्लिम इतिहासकार जनाब "यहया बिन अहमद अबुदुल्लाह सिहरिन्दी" ने अपना इतिहास ग्रंथ 'तारीखे मुबारिकशाही' मुईजुद्दीन अब्दुल फतह मुबारिकशाह बिन साम (१४२१ ई०-३३ ई०) को अर्पित किया है, तारीखे मुबारिकशाही, का प्रकाशन कलकत्ता से १९३१ में हुआ-इसके पृष्ठ १७१ पर मल्लू इकबालखां के १४०२ ई० के आक्रमण के समय ग्वालियर मे "बरसिंह" (वीरसिंह देव तोमर) के पुत्र वीरमदेव तोमर गद्दी पर होने का उल्लेख है। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद की तबकाते अकबरी, भाग १, पृष्ठ २५६, (कलकत्ता से प्रकाशित सन् १९११ ई०) में भी इसी की पुष्टि है। बदायूनी ने वीरसिंह को 'हरसिंह' और फिरिश्ता ने 'नरसिंह' लिखा है।[११]

---

१०. कविप्रिया केशवदास, द्वितीय प्रभाव, छन्द २-१७। अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर (राजकीय) ग्रन्थ संख्या [illegible] पुस्तकाकार, पत्र ७२, रस रत्नाकर। राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग, पृष्ठ २७-२९ एपीग्राफिया इन्डिका व्हॉल्यूम १, पृष्ठ ९१ ९५, साप्ता० हिन्दुस्तान २१ अगस्त १९६६, पृ० ३२, ३३, हरियाणा के तोमर।

११. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १, (१९५८ संस्करण, अलीगढ़) अनु० डा० रिजवी, पृष्ठ ६, ५७-५८।

दूसरा कारण, यह कि उद्धरणदेव नाम के मुहम्मदशाह तुगलक के आक्रमण के समय जिसमें ग्वालियर, इटावा, मतगांव आदि के राजपूत संयुक्त रूप से प्रतिरोध करते हुए कन्नौज तक सामना कर रहे थे,—कन्नौज में १३९३ ई० में वध कर दिए गए थे। इन्हें नाम साम्य तथा काल साम्य के कारण 'तोमर' ही लेखक ने समझकर उनके राज्य काल का क्रम नहीं दिया था। शोध-ग्रंथ के प्रकाशन के बीच में श्री कुन्दनलाल जैन का लेख 'जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र नरवरगढ़, दिल्ली' से मेरे नाम प्रेषित, दृष्टिगोचर हुआ।[१२]

श्री कुन्दनलाल जैन के नरवरगढ़ के लेख में दिगम्बर जैन बड़े मंदिर नरवर में स्थित १४७५ संवत् विक्रमी के ताम्रयन्त्र का उल्लेख मिला जिससे वीरमदेव तोमर [१४०२ ई० से प्रारम्भ राज्यकाल के] प्रधानामात्य जैसवाल वंशी साहु कुशराज जैन, नरवरगढ़ के निवासी होना स्पष्ट हुआ और कुशराज के आग्रह पर तत्कालीन पद्मनाभ कायस्थ ने भट्टारक गुणकीर्ति के उपदेश से 'यशोधरचरित, (दयासुन्दर विधान) संस्कृत काव्य-रचना की। उस काव्य की विस्तृत प्रशस्ति में वीरसिंह, को विमल यशस्वी तोमर नृप बताते हुए—"तस्मादुद्धरण भूपतिर्जनितः (२) कहा है। आगे-"तत्पुत्रो वीरमेन्द्रः सकल वसुमतीपाल चूडामणिर्यः" लिखा है (४)। इसका तात्पर्य हुआ कि वीरसिंह के [पुत्र वीरमदेव "यह्या मुस्लिम इतिहासकार" के अनुसार न होकर] उद्धरणदेव तोमर पुत्र थे और उद्धरणदेव तोमर के पुत्र वीरमदेव तोमर १४०२ ई० में आसीन थे।[१३]

अब प्रश्न यह रह जाता था कि उद्धरणदेव कन्नौज में वध होने वाला व्यक्ति कौन था ? यदि तोमर नहीं था तो उसका राज्य काल क्या मानना चाहिए और वीरसिंह देव तोमर द्वारा ग्वालियर —गढ़ पर राज्य स्थापना काल कौनसा मानना चाहिए ? इस सम्बन्ध में ग्वालियर प्रवास में आदरणीय मामाजी, आचार्य प० हरिहर निवास द्विवेदी—मध्ययुगीन, आख्यान, काव्य, पुरातत्व, इतिहास के विद्वान अन्वेषक-से मार्गदर्शन चाहा, उन्होंने कृपावन्त होकर, इस प्रस्तावना काल में, अपने द्वारा लिखित, "तोमरवंश के इतिहास" का उद्धरण देते हुए, इस सन्दर्भ में, राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश डाला और कतिपय ऐसे तथ्यों का उल्लेख किया जो इस शोधग्रंथ की सीमा तक, जिज्ञासु तोमर युग के पाठकों को सूचना देने के अभिप्राय से उल्लेख्य हैं। आचार्य हरिहरनिवास द्विवेदी के अनुसार[१४] सन् १३९४ ई० के होली के त्यौहार के दो चार दिन पश्चात् ही वीरसिंह देव तोमर का

१२. महावीर जयन्ती स्मारिका ७२, खण्ड २, पृष्ठ ४१-४८, दिल्ली। तुगलक कालीन भारत भाग २ पृष्ठ २१३, २१४, ३११।
१३. वही पृष्ठ ४२, ४३ (३ जून १९७२ का श्री कुन्दनलाल जैन के हस्ताक्षरित प्रेषित)।
१४. तोमर वंश का इतिहास-आचार्य हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्यामंदिर, मुरार, ग्वालियर, प्रकाशनाधीन।

का गोपाचलगढ़ पर अधिकार हो गया था। ४ जून १३९४ ई० के पूर्व नसीरुद्दीन महमूद शाह तुगलक को पराजित कर बीरसिंहदेव तोमर गोपाचलगढ के स्वतन्त्र राजा बन चुके थे। दिल्ली सल्तनत में डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार [१५] फीरोज तुगलक की मृत्यु १३८८ मे होने के बाद उसके पोते फतेहखा का पुत्र गियासुद्दीन, तुगलक द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा और अमीरो ने जफरखाँ के पुत्र अबूबक्र को १९ फरवरी १३८९ मे उसकी जगह दिलादी। शाहजादा मुहम्मद तुगलक ने संघर्ष करके १३९० ई० में अबूबक्र को सिहासनच्युत कर दिया किन्तु वह स्वयं जनवरी १३९४ मे मृत्यु को प्राप्त हो गया। मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारी का नाम हुमायूं लिया गया है और कन्टेम्पोरेरी मुस्लिम किंगडम तथा तारीखे मुहम्मदी मे [१६] अलाउद्दीन सिकन्दरशाह तुगलक का नाम लिया गया है। इसी काल मे वीरसिंह देव तोमर ग्वालियर गढ़ की जागीर के रूप मे शाह के अगरक्षक होने के नाते पुरस्कार पा सके थे, किन्तु ८ मार्च १३९५ के बाद, मुहम्मद तुगलक का सबसे छोटा पुत्र नासिरुद्दीन महमूद तुगलक आसीन होना डॉ० आशीर्वादीलाल कहते हैं। साथ ही, यह स्वीकार करते हैं कि, "फीरोज की मृत्यु के बाद तुगलक वंश के सभी शासक नितान्त अयोग्य निकले, अमीरो की कठपुतली बने और दावेदारो मे संघर्ष छिड़ गया। दिल्ली सल्तनत छिन्न-भिन्न होने लगी। मुसलमान तथा हिन्दू सामन्तो ने हर जगह दिल्ली के प्रभुत्व से अपने को मुक्त कर लिया।" अतएव, ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद का पुत्र नासिरुद्दीन महमूद, अलाउद्दीन सिकन्दर शाह तुगलक (हुमायूं ?) की मृत्यु के बाद ग्वालियर के बीरसिंह तोमर की सत्ता के प्रतिरोध को आए किन्तु असफल रहे और बीरसिंह देव तोमर, ग्वालियर गढ पर, तोमर राज्य की स्थापना करने मे, नासिरुद्दीन महमूद तुगलक के काल मे सफल हुए और बीरसिंह देव के उत्तराधिकारी उद्धरणदेव तोमर, सभवत: १४००-१ ई० तक रहे, बाद मे बीरमदेवतोमर१४०२-१९ ई० के बीच शासक रहे ?[१६] अगणपति देव १४१९-२५ ई०, डूगरेन्द्रसिंह १४२५-५६ ई०, कीर्तिसिंह तोमर १४५६-७९ ई० तक और कल्याणसिंह या कल्याणमल तोमर १४७९-८६ ई० तथा मानसिंह तोमर १६८६-१५१६ ई० तक ग्वालियर गढ पर अधिपति रहे। इसी रूप मे राजनीतिक इतिहास को प्रस्तुत शोध ग्रंथ मे समझा जाना चाहिए। तारीखे मुबारिकशाही (१५२-१५४) तथा तबकाते अकबरी (२४८) मे बरसिंह (बीरसिंह तोमर) के साथ अधरन (उद्धरण) कौन था ? यह समस्या है।

---

१५. दिल्ली सल्तनत—पृष्ठ २४१, २४२, २४३।

१६. कन्टेमपोरेरी मुस्लिम किंगडम,—पृष्ठ ६, ७, १६, ५१,५७, ६४ तथा तारीखे मुहम्मदी(४१२-अ) तुगलक कालीन भारत-भाग २ अनु० रिजवी पृष्ठ २१४, २१२, २३७

१६. "Thirty decisive Battles of Raipur" By Thakur Narendrasingh, बीरसिंह से गणपति देव तक पांच पीढ़ी होना माना है। महावीर जयन्ती स्मारिका ७२, खण्ड २, पृष्ठ ४१ पर प्रधान सम्पादक ने बीरसिंह का सम्वत् ११७७ और डूगरसिंह का सम्वत् १५६१ बताया है ये तथ्य अग्राह्य हैं। भट्टारक सम्प्रदाय-लेखांक ५५७ डूगरसिंह—राज्य काल स. १४८६ में भविष्य दत्त पचमी कथा लिखी गई।

नरवर गढ में डूंगरेन्द्रसिंह तोमर की विजय के उपलक्ष में जैतखम्भ (विजय स्तम्भ) होना लेखक ने प्रतिपादित किया है किन्तु आचार्य हरिहरनिवास जी ने सन् १६३० ई० मे संग्रामसिंह द्वारा जय स्तम्भ की स्थापना बताई है। इस जयस्तम्भ की अपनी मान्यता को लेखक यथावत् रखने के पक्ष मे है कि डूंगरेन्द्रसिंह तोमर काल मे ही स्थापना हुई। कारण यह है कि किले नरवर का स्तम्भ जैतखम्भ के नाम से प्रसिद्ध है इसपर जो लेख उत्कीर्ण है वह सदियों की वर्षा, गर्मी के कारण विकृत और अपाठ्य है। यह सस्कृत छन्दो मे है। संग्रामसिंह केवल सूबेदार था उसने प्रशस्ति स्तम्भ लिखाया होगा, जय स्तम्भ नही। जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र नरवरगढ नामक लेख के लेखक श्री कुन्दनलाल जैन ने जयस्तम्भ का लेख स० १४९० वि० (१४३३ ई०) का शोध से ही माना है। अतएव विद्वान आचार्य के मत के प्रति पूर्णसम्मान रखता हुआ भी लेखक अपनी मान्यता पर स्थिर है।

आचार्य श्री हरिहरनिवास जी के तोमरवश के इतिहास से कुछ ऐसे तथ्य और तिथियाँ प्रस्तुत कर रहा हूं, जिन्हें तोमर वंश के इतिहास में रुचि रखने वाले व्यक्ति आचार्य श्री की महत्वपूर्ण देन मानेंगे।[१७]

अ—सन् ७३६ ई० मे तोमरों ने दिल्ली राज्य की स्थापना की थी। इस राज्य की स्थापना करने वाला तोमर राजा बिल्हण देव (अनगपाल प्रथम) चम्बल क्षेत्र के 'ऐसाह' से ही दिल्ली पहुँचा था। जहाँ उसने समीपस्थ अनगपुर मे अपनी राजधानी बनाई थी।

आ—अनगपाल द्वितीय (१०५१=८१ ई०) उत्तर भारत का बड़ा सम्राट था उसने ही दिल्ली का लाल कोट बनवाया था और वहाँ लोह स्तम्भ की स्थापना की थी।

इ—सन् ११५० मे विजयपालदेव तोमर ने मथुरा में केशवदेव का विशाल मंदिर का निर्माण कराया था जिसे सिकन्दर लोदी ने ध्वस्त कर दिया था।

ई—सन् ११९१ में चाहडपाल देव तोमर ने शहाबुद्दीन गोरी को युद्धक्षेत्र मे अच्छी शिकस्त दी और कीर्ति स्तम्भ निर्माण कराना प्रारम्भ हो गया था, निर्माण पूरा होने के पहिले ११९२ ई० मे तराइन के युद्ध क्षेत्र मे शहाबुद्दीन गोरी के साथ युद्ध करते

---

१७. आचार्य हरिहर निवास—तोमर वंश का इतिहास, प्रकाशनाधीन। देखिए पिछला

१२-उद्धरण। जैन-ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह भाग २ परमानन्द जैन, पृष्ठ १०८ १०९। तवकाते अकबरी (३२१)

हुए चाहडदेव तोमर, वीरगति को प्राप्त हुए। इसी कीर्तिस्तम्भ को "कुतुबमीनार," कहा जाता है।

उ—३ मार्च ११९२ मंगलवार को राजकुमार तेजपाल सम्राट बना, १७ मार्च मंगलवार ११९२ ई० को शहाबुद्दीन गौरी के हाथों पराजित हुआ। तेजपाल तोमर ने दिल्ली प्राप्त करने का पुनः प्रयास किया कि (गौरी का नायब) कुतुबुद्दीन ऐबक ने युद्धक्षेत्र में राजकुमार का शीश काटकर लाल कोट के तोमर महल के प्रांगण में टांग दिया। तेजपाल तोमर राजकुमार के इस अद्भुत पराक्रम के कारण ही यह अनुश्रुति आज भी जनवाणी में ध्वनित होती है कि—"फिर-फिर दिल्ली औरो की, तौर गए तो औरो की।"

ऊ—तेजपाल का राजकुमार अचलब्रह्म दिल्ली राज्य प्राप्ति से निराश होकर पुन. 'ऐसाह' की अपनी प्राचीन तोमर गद्दी का राजा बन गया। उन्ही का वंशज वीरसिंह देव तोमर मार्च १३९४ ई० में ग्वालियर गढ पर तोमर राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

ए—सन् १५२३ ई० मे ग्वालियर के अन्तिम तोमर राजा विक्रमादित्य को इब्राहीम लोदी से ग्वालियर गढ के युद्ध मे पराजित होना पड़ा और उस दिन के पश्चात् फिर ग्वालियर पर स्वतन्त्र हिन्दू राजा का राज्य न हो सका। यही विक्रमादित्य तोमर १५२६ ई० मे पानीपत के युद्ध मे (चुगताई तुर्क) मुगल बाबर [illegible] लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

ऐ—तोमर वंश के इतिहास मे १८ जून १५७६ ई० एक ऐसी तिथि है जो भारतीय इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखी जाने योग्य है। इस दिन भारतीय स्वतन्त्रता के महान् आराधक प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के प्राणो की रक्षा करते हुए विक्रमादित्य तोमर का राजकुमार रामसिंह तोमर अपने तीनो पुत्र शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह के साथ हल्दी घाटी के युद्ध मे अपूर्व शौर्य का परिचय देते हुए अपने रक्त की एक-एक बूंद से भरे हुए-बलिदानी, शोणित-सरोवर में चिर समाधि ले बैठा। राणा प्रताप को भारतीय स्वतन्त्रता के प्रतीक मानकर प्रत्येक तोमर सामन्त और सैनिक ने उनकी रक्षा हेतु अपने प्राणो की बलि दे दी थी। इस प्रकार ७३६ ई० से प्रारम्भ हुई तोमरो की यशोगाथा १८ जून १५७६ ई० में हल्दी घाटी मे अपना दिव्य प्रकाश फैलाती हुई समाहित हो गई।

टिप्पणी—अनुश्रुति के अनुसार दिल्ली के अकावर तोमर राजो ने 'ऐसाह' में बड़े भाई और 'सिहानिया' मे छोटे भाई ने राजधानी बनाई थी, जौंहा, कुथियाना और ऐसाह ये मुख्य स्थल थे। ग्वालियर में घुमाराम की टेकरी के पास तोमर बाबा का स्थान है। तोमरो की राज्य—ध्वजा में चील का चिह्न रहता था। ध्वजा केसरिया थी।

सत्, शौर्य और साधुता की ज्योति से ज्योतित ग्वालियर, चित्तौड़ और मालवा एक हृदय होकर अमानवीय और बर्बर अत्याचारों का प्रतिरोध कर रहे थे। तत्कालीन [चुगताई तुर्क ?] मुगल, आमेर की गद्दी के वंशज—नरवरगढ़ के शासकों को, ग्वालियर के तोमरों और ओरछा के बुन्देलों के विरुद्ध फोड़कर अपनी ओर मिलाए थे। मुगल अभियान में नरवरगढ़ के शासक, तोमर और बुन्देलों के विरुद्ध सहयोग करते थे। ओरछा के शासकों में गृहकलह कराकर अकबर ने रामशाह बुन्देला को वीरसिंह बुन्देला के विरुद्ध—अपनी ओर मिला लिया था।

इस पृष्ठभूमि में ग्वालियर का जौनपुर के शर्कियों से सम्पर्क के कारण ग्वालियरी साहित्य में एक विशिष्ट प्रकार का निखार आगया था। इन्हीं सांस्कृतिक साधनों के कारण ग्वालियर एक ऐसा भाषा रूप दे सका जो समस्त भारत की टकसाली हिन्दी के रूप में ग्राह्य हुआ। इसी कारण उसका संगीत समस्त भारत में सर्वश्रेष्ठ माना गया। चित्रकला के क्षेत्र में वह अपभ्रंश चित्र शैली का आवरण तोड़कर प्रशस्त मध्ययुगीन चित्र शैली का सूत्रपात कर सका और भारतीय स्थापत्य में अद्भुत प्रतिमान स्थापित कर सका।

वीरसिंह देव तोमर के काल से ही दक्षिण से विद्वान संगीतज्ञ आने लगे थे। इस युग में विष्णुदास, ग्वालियर के कवि ने महाभारत भाषा तथा वाल्मीकि रामायण आदि का आधार लेकर [तुलसी के पूर्व] रामायण भाषा काव्य एवं विष्णुपदों की रचना कर डाली थी। मेघनाथ ने गीता-भाषा-काव्य की रचना की। लौकिक आख्यान काव्य धारा में, असूफी ढंग से, शुद्ध भारतीय-पद्धति पर छिताई चरित की रचना करने वाला हिन्दी का, सम्भवतः, प्रथम कवि नारायणदास ही है जिसने रामचरित मानस के प्रणयन का मार्ग प्रशस्त किया। विष्णुदास, पौराणिक आख्यान काव्य धारा को रचना का आधार बनाकर भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से रचना करने वाले पहिले, उपलब्ध कवि हैं। लखनसेनी का हरि विराट पर्व १४२४ ई० का विष्णुदास कृत महाभारत, रामायण भाषा १४३५—१४४२ ई० के पूर्व का था, किन्तु अप्राप्य है। चतुर्भुजदास निगम ने मधुमालती में असूफी ढंग से मूल कथा के साथ अन्तर्कथाओं का विधान करके शृंगार रस का आलोडन किया। छिताई चरित में "नीति सम्मत काम", की अवतारणा की गई। लखनसेन पद्मावती रास में शृंगार और कौतूहल को स्थान मिला। मैनासत में राजमती के विरह के तेज को मैना के सत के रूप में प्रश्रय मिला। ये सब आधार तुलसी के विशद काव्य की समष्टि के लिए विविध अंगों के रूप में तोमर युग हिन्दी जगत् को प्रस्तुत कर चुका था।

संगीत में-ध्रुपद-ग्वालियरी-गायकी के माध्यम से, पदरचना का विपुल भण्डार भरा गया। ग्वालियरी-गायिकी अपनाने हेतु समस्त देश के संगीतज्ञ—नायक, ग्वालियर

मे आए थे। बैजू बावरा सम्भवतः गुजरात से आकर चन्देरी ठहरता हुआ ग्वालियर आ पहुँचा था। चन्देरी मे वह "कला"-नाम्नी आराध्या के सम्पर्क मे बावरा हो गया था। सूरदास, गोविन्दस्वामी और तानसेन, ग्वालियर की संस्कृति की ही उपज थे। यही माधुरी अष्टछाप और वल्लभ मत मे पहुँची-बख्शू, महमूद कर्ण–मगोन नायक–यहा थे। मधुकरशाह-बुन्देला, प्रवीणराय, हरीराम व्यास ओरछा, तानसेन, आसकरण, आदि के पद, सूर की पद रचना के पूर्वाधार के रूपमे प्राप्त थे।

हिन्दी का पोषण संस्कृत, पालि और अपभ्रंश के समन्वय मे हुआ है। उसकी अभिव्यंजना शक्ति मे, तुर्कों के माध्यम से प्राप्त फारसी साहित्य से भी प्रखरता आई थी। तत्कालीन ग्वालियर को यह सुयोग प्राप्त हुआ था कि पिछले खेवे के जैन अपभ्रंश कवियो ने अपनी समस्त प्रशस्त रचनाएँ यहा लिखी और लगभग लुप्त प्राय जैन अपभ्रंश साहित्य का यहा पुनरुद्धार किया। यह स्मरणीय है कि रइधू अपभ्रंश का अंतिम प्रतिष्ठित कवि है। रइधू को राज्याश्रय भले ही प्राप्त न हो वह डूगरेन्द्रसिंह और कीर्त्तिसिंह तोमर राज्य काल मे अनेक ग्रथो की सृष्टि कर सका था। नयचन्द्र सूरि का संस्कृत मे हम्मीर महाकाव्य वीरम देव-राज्य में रचा गया था। पद्मनाभ, नयचन्द्र सूरि, रइधू, यशःकीर्त्ति, गुणकीर्त्ति आदि विद्वानो के माध्यम से ग्वालियर की पश्चिम भारत की जैन विद्वत्ता और मृदुल कवित्व कीपरम्पराएँ उपलब्ध हुई थी।

इस प्रकार ग्वालियर मे पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी ई० मे एक विशाल सांस्कृतिक क्रान्ति हुई जिसमे हिन्दी भाषा-साहित्य के ग्वालियरी-योगदान की धारा, हिन्दी के महासागर मे विलीन होकर अपनी उत्ताल तरगो से हिन्दी महोदधि को तरंगायित कर उठी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे अप्रकाशित पाण्डुलिपियो के अध्ययन के लिए आचार्य द्विवेदी हरिहर निवास–ग्रन्थागार, विद्यामंदिर, मुरार, ग्वालियर, सुविधापूर्वक उपलब्ध रहा। लेखक समय-समय पर, व्यस्त क्षणो मे आचार्य द्विवेदी का वात्सल्य पूर्ण स्नेहासिक्त मार्गदर्शन पा सका। प० वनमाली द्विवेदी ने फोटो लिपि हस्तलिखित प्रति की दी। स्व० प० विजयगोविन्दजी ने ग्रहा वन मे शोध प्रबन्ध को देखा था। विद्वान निर्देशक डॉ० महेन्द्र भटनागर ने लेखक को अत्यन्त सहयोग देकर अनुग्रहीत किया।

आदरणीय विद्वान डा० शिवमगलसिंह सुमन, उज्जैन, डॉ० मुंशीराम शर्मा, कानपुर, डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ० पीतमसिंह तोमर, आगरा, डॉ० कस्तूर चन्द कासलीवाल जयपुर, डॉ० रामचरण महेन्द्र, कोटा (राज०),डॉ० राजकुमारी कौल, जयपुर से भी लेखक अनुग्रहीत हुआ।

इस ग्रन्थ के विद्वान परीक्षक डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं विद्वान परीक्षक डॉ० रामसिंह तोमर ने शोध प्रबन्ध को अनुमोदित करके ग्वालियर की सांस्कृतिक सेवा और हिन्दी भाषा-साहित्य के विकास क्रम के इतिहास की शृंखला को जोडने का स्तुत्य कार्य किया है साथ ही लेखक को गौरवान्वित किया है। संत श्री कैलाश गिरि जी, पीताम्बरा पीठाधिपति पूज्य स्वामी जी, पूज्या दिव्या मां के पोषण से नैतिक बल प्राप्त होता रहा और चमत्कारिक उपलब्धि होती गई। मेरे मित्र गौरी शंकर विग, मेरी पत्नी श्रीमती सोमकुमारी द्विवेदी मुझे प्रोत्साहन देने और साधु-सहयोग करने में सदा अग्रसर रहे। चिरं० माधवशरण ने ग्रन्थ सूची बनाने में सहायता की।

इन श्रद्धेयो को औपचारिक धन्यवाद देकर उनकी अनुकम्पा की गुरुता को कम नही कर सकता और न आत्मीयो के स्नेह को भुलाया जा सकता है।

जिन-जिन महानुभाव लेखको के ग्रन्थो का आधार शोध में लिया है उन सब के प्रति लेखक कृतज्ञता प्रकट करता है।

लेखक अपने ग्रंथ-प्रकाशक श्री रामप्रसाद जी अग्रवाल को धन्यवाद देता है, साथ ही मुद्रक श्री एल० एन० अग्रवाल एव श्री वर्मा जी को।

आशा है सहृदय विचारक मार्गदर्शन करेंगे जिसके प्रकाश में अगले सस्करण मे वर्तमान कलेवर का परिमार्जन और भी हो सकेगा।

केशव साहित्य कुटीर,
करेरा, शिवपुरी, (म० प्र०)
२७ नवम्बर १६७२ ई०
अर्द्ध-रात्रि,

राधेश्याम द्विवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०,



खण्ड १

अध्याय १

ग्वालियर क्षेत्र, उसकी सीमा और विस्तार

- ग्वालियर - मध्यदेश का केन्द्र
- बुन्देलखण्ड का अंग
- ग्वालियर, ओरछा, दतिया, नरवर, चन्देरी तथा सिरोंज।

मध्यदेश : सांस्कृतिक इकाई : की परिकल्पना—

हिन्दी भाषा कोटिश : भारतीयों की लोक-भाषा है, और उसका साहित्य लगभग एक सहस्राब्दि की अनेक पीढ़ियों की सतत-साधना का समन्वित पुण्य-फल है। वैसे तो हिन्दी-भाषा के रूपनिर्माण और उसके साहित्य की श्री-समृद्धि में समस्त भारत के लोक-गायकों, भक्तों और साहित्यकारों ने योगदान दिया है और उनके विकास के सम्यक् अध्ययन के लिए उन सब प्रयासों का अवगाहन आवश्यक है, तथापि आंचलिक और व्यक्तिगत प्रयासों के अध्ययन की भी आवश्यकता सर्वमान्य है।

विशाल गंगासागर में पुण्यतोया भागीरथी के दर्शन और उसमें अवगाहन अलौकिक आनन्ददायी है, फिर भी उसके निर्माण में जिन विभिन्न नदियों, नदी और नालों ने योगदान दिया है उनका अवगाहन भी कम उल्लास-दायक नहीं है। वर्तमान हिन्दी भाषा और साहित्य के वैभव और रूपनिर्माण में ग्वालियर क्षेत्र ने जो योगदान दिया है, उसका अध्ययन इसी कारण उपयोगी माना जा सकता है।

ग्वालियर-क्षेत्र कोई स्वतन्त्र, ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक-इकाई नहीं है वरन महान भारत राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के विकास में उसका अपना भी योगदान रहा है। यह योगदान कोई पृथक भाषा, संस्कृति या ऐतिहासिक इकाई के रूप में न होकर,

राष्ट्र-भाषा हिन्दी और भारत-राष्ट्र के एक अंग के रूप में हुआ है। ईस्वी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी भाषा और साहित्य ने जो पुष्ट स्वरूप प्राप्त किया उसमें इस क्षेत्र ने अपना कितना अवदान दिया, यही यहां विवेच्य है।

व्यक्तियों का ऐसा समुदाय जो सामान्य हित एवं 'स्वजाति भावना' में परस्पर सम्बद्ध हो—जिसका सामान्य संकल्प तथा सामान्य उद्देश्य हो—'समाज' की रचना करता है। 'समाज' से नगर बसते हैं और नगरों में 'क्षेत्र'। कुछ क्षेत्र मिलकर प्रदेशों का निर्माण करते हैं और प्रदेशों का समूह होता है। राष्ट्र ईस्वी पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के ग्वालियर- क्षेत्र का केन्द्र ग्वालियर-गढ़ रहा है जिसके आस पास की बस्ती ग्वालियर के नाम से प्रसिद्ध थी। स्वयं ग्वालियर उस प्रदेश का अंग था जिसे प्राचीन और मध्यकालीन ग्रन्थों में 'मध्यदेश' कहा गया है।

भारत-राष्ट्र का मध्यदेश एक इकाई के रूप में अत्यन्त प्राचीन काल में रहा है यद्यपि उसकी चतुःसीमा के विषय में भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न परिकल्पनाएं रही हैं।

आचार्य डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने 'मध्यदेश का विकास'[१] सम्बन्धी लेख में यह विचार प्रकट किये थे कि, 'विदेशी सत्ता के आधिपत्य के कारण मध्यदेश वालों ने 'मध्यदेश' शब्द ही भुला दिया'। इस मत की पुष्टि उन्होंने अपने 'हिन्दी भाषा के इतिहास'[२] में भी की है। इस भूले हुए 'मध्यदेश' के स्वरूप की परिकल्पना यहां अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करना आवश्यक है।

"ऐतरेय ब्राह्मण" के अनुसार मध्यदेश में कुरु, पांचाल वंश और उशीनरों के प्रदेश माने जाते थे। अतः पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूर्व में फर्रुखाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर प्रायः चम्बल नदी तक का आर्यावर्त-देश, ऐतरेय ब्राह्मण के समय में 'मध्यदेश' गिना जाता था।

'मनुस्मृति' में मध्यदेश एवं आर्यावर्त्त के बारे में उल्लेख मिलता है।[3]

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

---

१. ना० प्र० पत्रिका भाग ४, अंक १ तथा विचारधारा पृष्ठ १-१० मध्यदेश का विकास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

२. हिन्दी भाषा का इतिहास (१९५३ संस्करण) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, —पृष्ठ ४८

3 मनुस्मृति, अध्याय २, श्लोक २१ एवं श्लोक २६

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्यगिरि इन दोनों पर्वतों के मध्यस्थान में, विनशन देश के पूर्व में और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है उसको 'मध्यदेश' कहते हैं (सरस्वती नदी के अन्तर्धान-प्रदेश को 'विनशन' कहते हैं) यह पंजाब के सरहिन्द जिले का मरुस्थल है।

आ समुद्रात्तु वै पूर्वा दा समुद्रात्तुपश्चिमात् ।
तयोरेवान्तर गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधा ॥

पूर्व-पश्चिम में दोनों समुद्र और उत्तर-दक्षिण में हिमालय पहाड, इनके मध्यस्थान को पण्डितजन आर्यावर्त कहते है। चीनी यात्री फाहियान ने (स० ४५७) मताऊल (मथुरा) में दक्षिण के प्रदेश को मध्यदेश कहा है[1] और अलबेरूनी ने (स० १०८७) कन्नौज के चारों ओर के प्रदेश को मध्यदेश माना है।[2]

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने 'पुरानी हिन्दी' नामक लेख में कान्यकुब्ज (कन्नौज) के (ई० ९०० के लगभग) कवि 'राजशेखर' का उद्धरण दिया है। कवि राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमांसा' में मनुस्मृति के अनुसार ही मध्यदेश की सीमाएं बताई हैं। श्री राजशेखर ने लिखा है—[3]

"गौड (बंगाल) आदि संस्कृत में स्थित है। लाट देशीयों की रुचि प्राकृत में परिचित है। मरु भूमि, टक्क (टाक, दक्षिण पश्चिमी पंजाब) और भादानक के वासी अपभ्रंश का प्रयोग करते हैं अवन्ति (उज्जैन), पारियात्र (बेतवा और चम्बल का निकास) और दशपुर (मन्दसौर) के निवासी भूतभाषा की सेवा करते हैं। जो कवि 'मध्यदेश' (कन्नौज, अन्तर्वेद, पांचाल आदि) में रहता है वह सर्वभाषाओं में स्थित है।"

मार्कण्डेय पुराण में 'मध्यदेश' का स्तवन इस प्रकार किया गया है[4]—

मत्स्या दवकूटा' कुल्याश्च कुन्तला काशि कोशला
अथर्वा 'दशार्ण' लिंगाश्च मलकाश्च वृकै सह ।

---

१ 'फाहियान' (दे० पृ० भा० पृ० ३०)

२. 'अलबेरूनी का भारत' भाग १, पृष्ठ १९८

३ श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी-'पुरानी हिन्दी' (ना० प्र० प० स० १९७८ पृष्ठ १०) मध्यदेशीय भाषा स० २०१२, पृष्ठ १२ पर उद्धृत।

४ मार्कण्डेय पुराण (५७।३२-३५) 'मध्यदेश का स्तवन' मध्यभारत का इतिहास सं० २०१५ प्रथम संस्करण पृष्ठ १ में उद्धृत—लेखक द्विवेदी।

मध्यदेश्या जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥
सह्यस्यचोत्तरेयास्तु यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपिकृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥
गोवर्द्धनं पुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः ॥

मध्यदेश के मत्स्य, कुदकूट, कुल्य, कुन्तल, काशि, कौशल, अथवा, अर्कलिंग, मलक और वृक, ये जनपद प्रायिक रूप से विख्यात हैं। यह मध्यदेश सह्य पर्वत के उत्तर में है जहां गोदावरी नदी प्रवाहित है। यह प्रदेश संपूर्ण पृथ्वी में सर्वोपरि मनोरम है और उसमें महात्मा भार्गव का गोवर्द्धन, नामक पुर रमणीय है। कवि धाहिल ने 'पउमसिरी चरिउ' में 'मज्झदेसु' का वर्णन करते हुए कहा है—'महिहि मग्गु न अवयरिउ'।[1]

विक्रमी बारहवीं शताब्दी में सोमदेव ने मध्यदेश में ही कथासरित्सागर लिखा था। उसमें विक्रमादित्य के सेनापति विक्रमशक्ति द्वारा की गयी दिग्विजय में दक्षिणापथ सौराष्ट्र, मध्यदेश, बंग और अंग सहित पूर्व देश के जीतने का उल्लेख है। उत्तर में केवल काश्मीर और कौबेरीकाष्ठा का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार कथासरित्सागर में वर्णित सोमदेव का आशय जिस मध्यदेश से था वह सौराष्ट्र के पूर्व में, बंग, अंग और पूर्व देश के पश्चिम में, दक्षिणापथ के उत्तर में, तथा काश्मीर के दक्षिण में था।

सन १३०४ ई० में मेरुतुंगाचार्य द्वारा रचित '*प्रबंधचिन्तामणि*' में भारत के अनेक प्रादेशिक विभागों के नाम आए हैं जिनमें *प्रसंगवश मध्यदेश* का नाम दो बार आया है,[2] इस ग्रंथ से मध्यदेश की सीमाएं ज्ञात नहीं होतीं; केवल इतना आभास मिलता है कि मध्यदेश के जादूगर उस समय गुर्जरराज की सभा में थे और वहां कुछ विशिष्ट विद्वान भी थे।

श्री बनारसीदास ने 'अर्द्ध-कथानक' (१६४२ ई०) की भाषा को स्पष्ट रूप से 'मध्यदेश की बोली' कहा है—

मध्यदेश की बोली बोलि
गरभित बात कहौं हिय खोलि।[3]

---

१. अपभ्रंश साहित्य—डॉ० हरिवंश कोछड़, पृष्ठ २००।

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी—प्रबंधचिन्तामणि, पृष्ठ ७१ तथा ८३

३. सं० नाथूराम प्रेमी : अर्द्धकथानक, पृष्ठ २

इस 'अर्द्ध-कथा' की भूमिका मे डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि "यद्यपि मध्यदेश की सीमाए बदलती रही हैं पर प्राय: सदैव ही खडी बोली और बृजभाषी प्रान्तो को मध्यदेश के अन्तर्गत माना जाता रहा है, और प्रकट है कि अर्द्ध-कथा की भाषा मे व्रजभाषा के साथ खडी बोली का किंचित सम्मिश्रण है, इसलिए लेखक का भाषा-विषयक कथन सर्वथा सगत जान पडता है। यही तक नही, कदाचित् इसमे हमे उस जन भाषा का प्रयोग मिलता है, जो उस समय आगरे मे व्यवहृत होती थी। आगरा दिल्ली के साथ ही उस समय मुगल शासको की राजधानी थी, इसलिए उस स्थान की बोली मे इस प्रकार का समिश्रण स्वाभाविक था।"[1] अर्द्धकथानककार लिखता है—[2]

दोहरा

या ही भरत सुखेत मैं मध्यदेश सुभ ठाउ।
बसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली-गाउ॥

श्री बनारसीदास आगरा, मेरठ एव अन्यत्र स्थानो पर रहे इस लेखक का आशय मध्यदेश के इन्ही प्रदेशो मे है।

मध्ययुग के ग्रन्थों मे विभिन्न भागो की बोलियों, रहन-सहन, रीति-रिवाजो, आचार-विचार एव व्यवहार की चर्चा के प्रसग मे भी मध्यदेश का वर्णन हुआ है। जैसे ई० ७७८ मे रचित "कुवलयमाला" मे—"तेरे मेरे आउत्ति जम्पिरे मध्यदेसेय" कहकर मध्यदेश मे "मेरे तेरे आउत्ति" बोली होने की जानकारी दी गई है।[3] इसी प्रकार 'अनगरग' (कामशास्त्र) पुस्तक[4] मे जो सन १४७९ ई० मे ग्वालियर के राजा कल्याणसिंह तोमर द्वारा प्रणीत कही जाती है उसमे सबसे प्रथम मध्यदेश की रमणियो का वर्णन किया गया है तथा उसके पश्चात मालव, गुर्जर, लाट, कर्नाटक आदि की स्त्रियो का। मध्यदेश की रमणियों को इस ग्रथ मे विचित्र वेषा, शुचि, कर्मदक्षा एव सुशीलिनी कहा है।

श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि 'कुवलयमाला' मे निर्दिष्ट मध्यदेश की भाषा मे हिन्दी भाषा का उद्गम हुआ ज्ञात होता है।[5] श्री नाहटाजी के मत की पुष्टि

---

१ अर्द्धकथानक—स० नाथूराम प्रेमी द्वितीय सस्करण १९५७, भूमिका पृष्ठ २३ पर उद्धृत। प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित 'अर्द्ध-कथा' की भूमिका, पृष्ठ १४-१२—डॉ० माताप्रसाद गुप्त।

२ वही, दोहरा (८) पृष्ठ २।

३ मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १४।

४ वही।

५ राजस्थान मे हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, द्वितीय भाग, पृष्ठ २।

श्री बनारसीदास जैन द्वारा रचित 'अर्द्धकथानक' के उस उल्लेख में होती है जिसमें 'मध्यदेश की बोली बोलकर हृदय की गर्भित बात प्रकट करना कहा गया है'। 'मध्यदेश की बोली' कदाचित अपने साथ उस मध्यदेशी या अपभ्रंश की परम्परा को लिए हुए थी जिसका उल्लेख कुवलयमाला में मिलता है। बीकानेर के संगीत शास्त्र के पंडित भावभट्ट ने लगभग सन् १६७४–१७०१ ई० में अपने ग्रंथ 'अनूप संगीत रत्नाकर' में ध्रुपद का लक्षण लिखते हुए कहा है—

"गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्।"

भावभट्ट के इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि उसके समय तक मध्यदेश तथा उसके संगीत, भाषा एवं साहित्य अपना निजत्व लिए हुए थे।

ईसवी सोलहवीं शताब्दी का 'मध्यदेश' सम्बन्धी उल्लेख महाकवि केशवदास का भी महत्वपूर्ण है—

आछे आछे असन, बसन, बसु वासु, पसु,
दान, सनमान, यान, बाहन बखानिये।
लोग भोग, योग, भाग, बाग, राग, रूपयुत,
भूषननि भूषित सुभाषा सुख जानिये।
सातो पुरी, तीरथ, सरित सब गंगादिक,
केशोदास पूरण पुराण गुन मानिये।
गोपाचल ऐसे गढ़ राजा रामसिंह जू से,
देशनि की मणि, महि मध्यदेश मानिये।[1]

केशवदास के कथनानुसार भारत-राष्ट्र में देशों की मणि के रूप में मध्यदेश की मान्यता है।

आधुनिक विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'अवध आदि' के लिये 'मध्यदेश' शब्द का प्रयोग किया है।[2] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आज के समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश को मध्यदेश माना है।[3]

श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने 'ऐतरेय ब्राह्मण' से फकीरुल्ला (१६६२ ई०) संफसा तक के उद्धरणों के आधार पर, बुन्देला राजाओं के प्रभाव क्षेत्र को मध्यदेश मानकर ग्वालियर को उसका सांस्कृतिक केन्द्र कहा है।[4]

---

१. मध्यदेशीय भाषा पृष्ठ १२ पर उद्धृत (कविप्रिया–केशवदास)
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : बुद्धचरित : पृष्ठ ४
३ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य : पृष्ठ १ हिन्दी भाषा की प्रस्तावना।
४. मध्यदेशीय भाषा, [illegible] १७–१६

अनेक शताब्दियों के इतिहास में मध्यदेश की एक ही सीमा नहीं मानी गई है। ये सीमाएं विशिष्ट लेखक के अपने दृष्टिकोण पर भी आधारित रहती हैं। उसकी दृष्टि में भारत का जितना क्षेत्र रहता है वह उसी के मध्य भाग को मध्यदेश कहता है।

विवेच्य शताब्दियों में हिन्दी भाषा और साहित्य में किये गये योगदान के विवेचन के प्रसंग में ईस्वी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दि तथा उनकी परवर्ती कुछ शताब्दियों को दृष्टि में रखकर ही मध्यदेश की परिकल्पना अपेक्षित है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि वह सांस्कृतिक प्रदेश जिसका केन्द्र उस समय गोपाचल गढ़ (ग्वालियर) था वही माना जाना चाहिये जिसे "बुन्देली" का क्षेत्र कहा जाता है तथा जिसे कविप्रिया में केशवदास ने परिभाषित किया है।

ग्वालियर-मध्यदेश का केन्द्र

भारत राष्ट्र के मध्यदेश की सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिकल्पना की जाने के पश्चात् ग्वालियर का मध्यदेश के केन्द्र के रूप में विचार किया जाना उचित होगा।

चूंकि बोलियों को नवीन रूप जनपदों में प्राप्त होता है और जनपद में सांस्कृतिक केन्द्र की बोली, साहित्य का माध्यम बनने लगती है वह भाषा का रूप धारण कर लेती है। हिन्दी ने अपभ्रंश का साथ छोड़ संस्कृत परक रूप मध्यदेश में ही ग्रहण किया यह उसके विकास की महत्वपूर्ण दिशा थी।

चौदहवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्व हिन्दी के नवीन रूप ग्रहण में कन्नौज, महोबा, दिल्ली, अजमेर, जयपुर, ओड़छा, नरवर आदि के साथ 'ग्वालियर' का विशेष योग रहा। हिन्दी को काव्य भाषा का रूप लोक-साहित्य, राज-सभाओं एवं धार्मिक स्थानों में मिला है इन्हीं स्थानों में संगीत में प्रस्तुत गेय पदों के माध्यम से भाषा का रूप संवारा गया जिसके कारण हिन्दी भाषा का विकास होने में योग मिला। मध्यदेश में यह भाषा निर्माण कार्य का केन्द्र कहां था तथा किस स्थल के भाषा प्रयोग मान्य समझे गए, इसके अन्वेषण कार्य के लिये उपयोगी मध्यकालीन साहित्य के बहुत बड़े भाग के नष्ट हो जाने तथा अवशिष्ट के बहुत कम मात्रा में प्रकाशित एवं सुसम्पादित होने के कारण बहुत कठिनाई होती है तथापि जो उल्लेख उपलब्ध हैं उनसे भी वस्तुस्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है—

हर्ष के साम्राज्य के विघटन के पश्चात अनेक शक्तियां मध्यदेश में उदय अस्त होती रहीं। उन राज-शक्तियों में महोबा[१]-कालिंजर[२] के चन्देल विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं।

१ (एपीग्राफिआ इंडिका व्हाल्यूम (१) पृष्ठ २१८) एवम् कनिंघम्स एनशियन्ट ज्याग्रफी आफ इंडिया पृष्ठ ४८१।

२ अनवेरनीज इंडिया व्हा० १ पृष्ठ २०२।

जो देश चन्देलों के अधिकार में रहा वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण में था। उत्तर में वह यमुना नदी तक और दक्षिण में केन नदी के उद्गम स्थान तक फैला था। केन नदी इस देश के मध्य में बहती है। महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में और कालन्जर तथा अजयगढ इसके पूर्व में है इस प्रदेश में आजकल के बांदा और हमीरपुर जिले तथा चरखारी, छतरपुर (छत्रपुर) बिजावर, जैतपुर, अजयगढ और पन्ना (भूतपूर्व रियासतें) हैं। चन्देल राजाओं ने अपनी उन्नति के दिनों में इस प्रान्त की सीमा पश्चिम में बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी।[1] खजुराहो में प्राप्त शिलालेख के अनुसार "जिझौति" की सीमा राजा धंग के शासनकाल में चेदि देश तक ही बताई गई है।[2] 'चेदि' समूचे बुन्देलखण्ड का नाम श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने मध्यकाल में अभिहित होना निर्धारित किया है।[3]

यशोवर्मन चन्देल (६२५ ई०) प्रतापशाली राजा हुआ जिसने प्रतिहारों के राजा देवपाल को बाध्य कर विष्णु की मूर्ति खजुराहो के मन्दिर के लिये उपहारस्वरूप प्राप्त की तथा चेदि, मालवा तथा महाकौशल के राज्यों को जीतकर साम्राज्य विस्तार किया। इसी का पुत्र धंग राजा हुआ जिसकी राज्य सीमा में मध्यदेश का लगभग सभी भूभाग आ गया था उसका राज्य विस्तार बनारस तक विस्तृत था उसने ग्वालियर पर भी अपना आधिपत्य किया।[4] धंग के राज्यकाल का एक शिलालेख सन ९५३ ई० का प्राप्त हुआ है उसमें ग्वालियर को 'विस्मय-निलय' कहा गया है।[5]

आ कालन्जरमा च मालव नदी तीरस्थितात् भास्वत.।
कालिन्दी सरितस्तटादित इताप्याचेदि देशावधे ।
(आ तस्मा दपि ?) विस्मयेक निल (या) द् गोपाभिधानाद गिरेर्य.
शास्ति क्षि (ति) मायतोजित भुजव्यापार लीलाजि (ताम) ४५।
सवत्सर दश शतेषु एकादशाधिकेषु संवत १०११ उत्कीर्णा चेयरू (पका) र...
(खजुराहो इन्स्क्रिपशन्स न० (११)

चन्देल वंश के शासन परमाल (परमार्दि देव) ११६५ ई० के राजकवि जगनिक (जगनायक) ने अपने आल्ह खंड में ग्वालियर का उल्लेख उसकी बैठक की विशेषता

१. गोरेलाल तिवारी-बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४१,४२
२. खजुराहो इन्स्क्रिपशन्स न० ११ (एपीग्राफिका इंडिका व्हाल्यूम न० १, पृ० १२६) बुन्देलखंड की प्राचीनता-पृष्ठ २६ पर उद्धृत।
३. भारत भूमि और उसके निवासी-जयचन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ २०६
४. भारत का इतिहास (प्राचीन काल १९६० तृतीय संस्करण) प्रो० दयाप्रकाश, पृष्ठ २८८
५. ग्वालियर राज्य के अभिलेख, पृष्ठ २८

प्रदर्शित करते हुए किया है। राजकवि जगनिक की दृष्टि से चन्देलों के राज्य में एक ओर जहां कालिंजर का किला महत्वपूर्ण था वहां 'ग्वालियर' की बैठक भी कम महत्वपूर्ण न थी, इन्हीं दो की कोई मांग कर सकता था। और आक्रामकों की कुदृष्टि इन पर रही थी।[1] जगनिक ने आल्हखण्ड में लिखा—

किला कालिन्जर को मांगत है
बैठक मांगे ग्वालियर क्यार।

'बीसलदेव रासो' (११५५ ई०) में 'गढ़ ग्वालियर' की चतुराई का वर्णन कराया गया है—

पूरब देसनउ बखनउ लोक
पान फूलानणाउ नव लहइ भोग
कण मचईं कुकम भपइ
अति चतुराई गढ़र ग्वालेर
कामणी जैसलमेर की
स्वामी पुरुष भला गढ़ अजमेरि[2]

दक्षिण के प्रसिद्ध कवि मुल्ला वजही ने (सन १६०० ई०) अपने गद्यकाव्य 'सबरस' में उत्तर भारत के ग्वालियर को स्मरण किया है।[3]

—"तमाम मुसहिफ का माना अलहम्दलिल्ला में है मुस्तकीम और तमाम अलहम्दलिल्ला का माना बिस्मिल्लाह में है और तमाम बिस्मिल्लाह का माना बिस्मिल्लाह के नुक्ते में रक्खा है करीम, समजदेक खातिर लिया अनाले हदीस बी य आया है अल इल्म नुक्ते व कसरहा जुहाल याने इल्म एक नुक्ता है, जाहिला ने उसे वदं, जहालत को इस हद लेकिन लिया है होर फारसी के दानिशमन्दा जिनो समजते हैं बाता के वन्दा उनों बू भाया है, उनों में बी यू आया हैं,

आजा के कमस्त, इक हर्फबसस्त। होर ग्वालियर के चातरा, गुन के
गुरा उनां बी बात को खोते हैं के एक ही अच्छर पढ़े सो पण्डित होय।"

श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'सबरस' की दूसरी प्रति से कुछ दोहे 'ग्वालियर और हिन्दी कविता' नामक लेख में उद्धृत किये हैं[4] उनके अनुसार एक स्थान पर 'वजही' ने लिखा है—

---

१. दिल्ली सल्तनत-डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पंचम संस्करण १९६५ (पृष्ठ ९८, १००)
२ तारकनाथ अग्रवाल-बीसलदेव रासो (१९६२) पाठ पृष्ठ ३६
३ श्रीराम शर्मा-दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृष्ठ ४०३
४. राहुल सांकृत्यायन-ग्वालियर और हिन्दी कविता : भारती, अगस्त १९५१ पृष्ठ १६७ (मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ २४ पर उद्धृत)

होर ग्वालेर के चातुरा गुन के गुरा .....यो बोले हैं:—

पोथी यो सो खोटी भई, पण्डित भया न कोय।
एकै अक्षर प्रेम का, पढे सु पण्डित होय॥

दूसरे स्थान पर 'वजही' ने कहा है—

होर ग्वालेर के सुजान, यों बोलते हैं जान ...
दोहरा
धरती म्याने बीज धर, बीज बिसर कर बोय।
माली सीचे सिर घडा, रुत आए फल होय॥

तीसरे स्थान पर 'वजही' लिखता है—

जहा लगन ग्वालेर के हैं गुनी, उनो ते की यो बात गई है सुनीः—

जिनको दरसन इत्त हैं, तिनको दरसन उत्त।
जिनको दरसन इत नहीं, तिनको इत्त न उत्त॥

वजही ने "ग्वालियर के चातुरा गुन के गुरा" का स्मरण सुजान तथा गुणी के रूप मे किया है और उनके दोहो को प्रमाण रूप में दिया है। यह स्तवन उस सास्कृतिक वैभव का है जिसके रूप मे पूर्व-मध्यकालीन मध्यदेश ने भारत की श्रेष्ठतम परम्पराओं का रूप निर्माण कर चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी के ग्वालियर को आगे बढाने के लिये दे दिया था।

फकीरुल्ला सैफखा ने 'रागदर्पण' (१६६६ ई०) में 'मान कुतूहल' के फारसी अनुवाद मे ग्वालियर को मध्यदेश रूप सुदेश कहा है[१]—

राजा मानसिंह तोमर ने 'मान कुतूहल' की रचना हिन्दी भाषा में ही की थी। फकीरुल्ला लिखता है कि मानसिंह तोमर द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद के पद देशी भाषा मे लिखे जाते थे। यह इन पदो की देशी भाषा के क्षेत्र को 'सुदेश' कहता है। इस 'सुदेश' की सीमाओं का वर्णन करते हुए वह लिखता है—"सुदेश से मतलब है ग्वालियर से, जो आगरा के राज्य का केन्द्र है और जिसके उत्तर मे मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण मे ऊज (?) तक तथा पश्चिम मे बारा तक है। भारतवर्ष मे इस बीच की भाषा सबसे अच्छी है। यह खड भारत मे उसी प्रकार है जिस प्रकार ईरान मे 'शीराज'।"

'शीराज' हाफिज और शेखसादी की जन्म-स्थली है। फकीरुल्ला कट्टर इस्लामी था, साथ ही असहिष्णु भी। किन्तु उसके द्वारा जो वर्णन मध्यदेश में स्थित 'सुदेश'—'ग्वालियर' का किया गया है वह तत्कालीन महत्वपूर्ण तथ्य की प्रतीति कराता है।

---

१. मानसिंह और मान कुतूहल (पृष्ठ ६१)

मध्यदेश का सांस्कृतिक केन्द्र 'ग्वालियर' को स्पष्ट करने के आशय में अब यहां ऐसे अनेक कवियों, टीकाकारों तथा लेखकों के मत उद्धृत किये जाते हैं जिन्होंने ग्वालियर क्षेत्र विशेष के नाम से भाषा को 'ग्वालियरी'–'ग्वालेरी' नामों से अभिहित किया। यहां यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारा आग्रह यह कदापि नहीं है कि उद्धृत कथनों के आधार पर इसे 'ग्वालेरी-भाषा' समझा जाय वरन अभिप्राय केवल इतना है कि 'ग्वालियर' को मध्यदेश के सांस्कृतिक सेवाओं का केन्द्र समझने में बल मिले, क्योंकि जब 'ग्वालेरी-भाषा' के नाम से उद्धरण मिलते हैं तब स्थान विशेष का सांस्कृतिक केन्द्र होना अनिवार्य सा हो जाता है। इतना ही इस अध्याय में अभीष्ट भी है।

शाहजहांकालीन नवाब फतहपुर (जयपुर) के नयामतखां जो 'जान' कवि के नाम से विख्यात हुए उन्होंने अपनी रचना 'कनकावती' (१६१८ ई०) में लिखा है[1]—

"भाषा आनी जो मुख आई।
ग्वारेरी हू मनसा धाई॥"

कवि कहता है कि भाषा वही ठीक है जो मुख से सहज रूप में उच्चरित हो किन्तु 'ग्वारेरी' (ग्वालेरी-ग्वालियरी) की ओर भी मनसा दौड़ती है अर्थात् उसके प्रयोग की इच्छा बलवती होती है।

डा० शिवगोपाल मिश्र ने 'भारती'[2] में एक पन्ना (पृष्ठ) प्रकाशित कराया था जो उन्हें महत्वपूर्ण खोज में उपलब्ध हुआ था। उस लेख में उद्धृत 'व्याकरण' ग्वालियरी-भाषा' का बताया जाता है वह पृष्ठ 'साधन कृत मैनासत' में फोटो प्रतिलिपि के रूप में प्रकाशित हुआ है।[3]

व्याकरण इस प्रकार है —

श्री राम। देव नाग बहु बहु बहू जावनी होई। भाषा नाना देश की ग्वालियरी मधि जोइ। सयकृत यथा। वदन "रोचन" वचन। प्राकृत यथा। अवव। षवर। सक्क। जामिनी। जावनी। गुलाब। चसमा। कविलु बुवा। देसी यथा। मीरें। भलें। दोहा। कुचुट्ठ वरग के पाच्छा सशलु विसरग टारि। व्यंजन अठाइस दस स्वर संजोग अनुस्वार।२ ड ञ ण ख श ऋ ऌ ए आठ वर्ण भाषा में नाहीं। केई डेढ़ मात्रा हू लिषत है। एक मात्रा यथा। वेलि। कोक। द्वै मात्रा यथा। छैया। भैया। सौरभ। डेढ़ मात्रा यथा। नैन। और। अनुस्वार को छंदो भंग को भका सो सानुनासिक पढ़े।

1. भारती, अक्टूबर १९५६ पृष्ठ ६६८, जान 'कनकावती' एव ना० प्र० पत्रिका सं० २००८, पृष्ठ १६ (जानकवि)
2. भारती, अगस्त १९५६ पृष्ठ ५०६
3. साधन कृत 'मैनासत' पृष्ठ २४–२६ : फोटो प्रस्तुत प्रबन्ध में भी दिया गया है।

तावो निमानी। उम्रर्द्ध चद्र। यथा। आनद। आनद। आधिक्यं। बहु वर्णादि कं को 'धिकाई स्तुति। अस्तुति। मोहन। मोहन। हास। हांस। बहु वर्णादिक बट (पढ़ने मे नहीं आता)। अरु है अवव। सकोच। मकोच। विकारः। बहु ह्रस्व को दीर्घ होइ दीठी गया। गग। रस। रगा। हरि। हरी। मही। महि। जबू द्वीप। जबू दीप। गुरु। गुरु। कोऊ स्वर को कोऊ स्वर होइ। तनु। तन। नह। नुह। पृथवी। पुहमी। द्वि। द्वै। एक। इक। क्या सु छत्तिः। सस्कृत मे वा प्राकृत मे ककार ते अनन्तर मकार ककार होई। नी क्रम मो ने एमो होइ। नयन। नैन। मयना। मैन। पवन। पौन। (पढ़ने मे स्पष्ट नहीं आता) सवर्ण दुहरे मे एक को लोप। आदि स्वर को दीर्घ। धर्म्म। धाम वः रति। राति। सर्प्प। सापा। दिक्खा। छीक। दिट्ठि। दीठि। उच्च। ऊच। आदेश। कोई स्वर को वा व्यजन को व्यजन आदेस होइ। वृथा। वृथा। कृपा क्रपा। ख पः। नग। नप। मुख। मुप। दुर। निगड। निगर। घोड़ा। घोरा। क्ष। क्न। गण। गन। वम। वेप। भेप। मव। अकार मों अनन्तर मकार को वकार होइ। पहिलो को सानुनासिक। रमण। रवन। गमन। गवन। इ वहाः वन्य। पाय। पाइ उपाय। उपाव। प्रवाह। परवाह। परवाय। लर। आलस्या। आरम। वर्व। वचन। बचन। वदन। वदन। ववचि मर्ध्येपि। यौवन। जोवन। छयो। क्षस्या क्षीन। छीन। पीन। अन्यथा वा। गुबाह। उगाह। आई। स्त्री। स्त्रीलिंग वाची अकारन्त को इकारान्त होइ। चतुर। पुप्प। चतुरि। स्त्री। प्रा नागर। नागरि। उ क्रिया या मैं सो प्रम। क्रिया विधे एक वचन छ ने अकार को . ...

श्री अगरचंद नाहटा के सग्रह मे 'हितोपदेश' के एक गद्यानुवाद की तीन प्रतियां हैं उनके कुछ पृष्ठों की प्रतिलिपि कराकर नाहटाजी ने 'मध्यदेसीया-भाषा' मे प्रकाशनार्थ भेजी जो (परिशिष्ट-४) अज्ञात गद्य लेखक (सन् १५०० ई० लगभग) के रूप में उक्त पुस्तक मे छपी है।[1] इस ग्रन्थ मे उसके रचयिता का नाम अथवा उसका रचना स्थान भी नहीं दिया गया है। इसकी एक प्रति के अंत मे लिखा हुआ है—

"इति श्री हितोपदेश ग्रन्थ ग्वालेरी भाषा लवध
प्रणासेन नाम पचमो आख्यान हितोपदेश सपूर्ण।"

इस ग्रन्थ के गद्यानुवाद की भाषा का नमूना इस प्रकार है—

हितोपदेश

दोहा — श्री महादेव प्रताप तें सकल कार्य की सिद्ध
चन्द्र सीस गगा वहन, आनन लोक प्रसिद्ध।

---

१ मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ३२, परिशिष्ट ४, अज्ञात गद्य लेखक १५०० ई० एवम् 'ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ' —श्री अगरचन्द नाहटा
भारती, मार्च १९५२ (पृष्ठ २०८)।

वार्ता— श्री महादेव जी के प्रसाद तें । साधु पुरुष है । तिनकौं सकल काम की सिद्धि होउ । कैसे है श्री महादेव जू । जिनके माथे चन्द्रमा की कला है । सो गंगाजी के फैन कीसी लगे है रेखा । अरु यह हितोपदेस सुनें तें पुरुष ससकृत बचन मे प्रवीन होय । नीति विद्या क जाने जे पंडित होय सो आपकू अजर अमर जानें । अरु विद्या अर्थ धर्म को सचौ करे । अरु सर्व द्रव्य मे विद्या उत्तम धन है जाको कोऊ ले न सके । अरु जाको मोल नाही । कबहू जाको खय नाही । जाने विद्या नचि मनुष्य को भी बडे राजा ताई पहुंचावैं । आगें तौ वाको भाग फलें । जैसे नदी नाले कौं समुद्र लगि पहुचावे । अरु सास्त्र विद्या सीखें तावौ मनुष्य मे प्रतिष्टा जस होय ।

+ + + सास्त्र विद्या बालक अवस्था मे अभ्यास घणो कराइयें । + + +

महाराजा गजसिंह के पद-सग्रह (बीकानेर) मे 'ग्वालियरी' की सूचना मिलती है[1] । "अष्टभाषा मे ग्वालेरी"[2] नामक लेख मे श्री अगरचन्द नाहटा ने महत्वपूर्ण सूचनाए दी हैं । प्रस्तुत लेख मे 'दृष्टिकोण' नामक पत्र मे राहुल सांकृत्यायन के वर्णित विचारो का इस प्रकार उद्धरण दिया गया है—

"अपभ्रंश के बाद ही आजकल की भाषाए आ जाती हैं । 'कान्यकुब्ज इस दिष्ट अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी ब्रजभाषा है, जिसे वल्लभाचार्य और उनके अष्टछाप के कवियों के तथा कृष्णभक्ति के प्रभाव बढने से पहले ग्वालेरी भाषा कहा जाता था । आज तो कितने पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि १६वी शताब्दी से पहिले इस भाषा को ब्रज के नही ग्वालेरी भाषा के नाम से जानते थे । वस्तुत. ग्वालियर कुछ समय के लिए उत्तरी हिन्दू भारत का एक राजनीतिक एव सांस्कृतिक केन्द्र हो गया था, जिसके कारण भाषा को यह सज्ञा मिली । उससे पहले ब्रजभाषा का क्षेत्र शौरसेनी अपभ्रंश और उससे पहिले शौरसेनी प्राकृत का क्षेत्र था । आज देखने मे मालूम होता है कि मामूली भेद छोडकर रुहेलखण्ड कमिश्नरी, आगरा कमिश्नरी भरतपुर धौलपुर के जिले और बुन्देली भाषा से क्षेत्र जो कि मध्यप्रदेश का सबसे बडा भाग होगा, एक ही भाषा बोलते हैं, जिसकी उपभाषाए रुहेली या उत्तर पचाली, कन्नौजी, बुन्देली आदि है ।"

दूसरी सूचना श्री नाहटाजी ने प्रस्तुत लेख मे 'ग्वालेरी भाषा' के उल्लेखों के बारे मे दी है । "श्री नाहटा" ने राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुर मे मुनि जिन विजयजी द्वारा किये गए हस्तलिखित ग्रन्थों के सग्रह मे से कुछ हिन्दी ग्रथो का स्वय निरीक्षण किया जिसमे उन्हे "ग्वालेरी भाषा" का उल्लेख देखने को मिला और श्री

१ भारती, नवम्बर १६५६ पृष्ठ ७७८ (गजसिंह-पद सग्रह)

२ भारती, दिसम्बर १६५७ पृष्ठ ७०८-७११
'अष्टभाषा मे ग्वालेरी' —श्री अगरचन्द नाहटा

नाहटा लेख लिखते समय उक्त निरीक्षण नोट न होने से उसका उद्धरण न दे सके, किन्तु जो उल्लेख उनकी नोट-बुक में उस समय से उनके आधार पर उन्होंने 'बिहारी सतसई" की कृष्ण कवि रचित कवितबद्ध टीका से कुछ उद्धरण इस प्रकार दिये हैं—

देश भाँति से होत सब, भाषा बहुत प्रकार।
बरणत हैं तिन सबन में, ग्वारीयरी रस सार॥
बृजभाषा भाषत सकल सुरबानी सम तूलि।
ताहि बखानत सकल कवि, जानि महारस मूलि॥
+ + + +
बृजभाषा बरणी कवितु, बहु विधि बुद्धि विलास।

श्री नाहटाजी का कथन है कि यह उल्लेख १८वीं शताब्दी का है। इसी प्रकार बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी में महाराजा सर्जसिंह के पदों की एक संग्रह प्रति है उनमें कुछ पद पंजाबी और राजस्थानी के हैं। हिन्दी भाषा के जो पद हैं उनके प्रारंभ में उनकी भाषा का निर्देश करते हुए 'ग्वालेरी' की संज्ञा दी है।

श्री नाहटाजी ने आगे लिखा है—"उस दिन अपने संग्रह के फुटकर पत्रों को देखते हुए पहले छाटकर रखी हुई एक महत्वपूर्ण रचना हाथ लगी जिसका नाम "अष्टभाषा" है। वह एक ही लम्बे पत्र पर लिखी हुई है। दो चार जगह पन्ने के मुड़ने से कुछ अक्षर अस्पष्ट हो गए हैं। यह 'पत्र' १८वीं शता० के प्रारंभ का लिखा हुआ प्रतीत होता है। "अष्टभाषा" के रचयिता कवि "ठाकर" १७वीं शता० में हुए हैं जिन्होंने गुजराती 'ग्वालेरी' मराठी, कर्नाटी, दक्षिणी, सिंधवणी, पारसी, तिलंगी, स्त्रियों के मुख से एक एक पद्य अपनी भाषा में कहलाया है।"

प्रस्तुत सन्दर्भ में ठाकर कवि रचित 'अष्टयाम' की पद-भाषा का नमूना श्री नाहटा द्वारा उद्धृत किया जाता है—

अष्ट भाषा

श्री सूर्याय नमः॥

गुजरि मरहट्टी ग्वालेरी, कर्णाटी दखिण सिंधु केरी।
तवुं सुगुण पारसी तिलंगी, सुणि कीरति अभिराम सुरंगी॥१॥
गुजराती कन्या मेलि करंती, सांभलि सही अर वात सभी।
अलवेसर वर अभिराम अनोपम, वसी वात नो न थी कमी॥
मा बाप अम्हारो भलतूं जोई, वाछीतु वीवाह करि।
भल थाइ भीम वहावि मामु, वही जान लेई आवि वरि॥१॥ गुजराती
+ + + +

लब्भइ गुज्जरि सलन, मान मगइ मरहट्ठी।
ग्वालेरी गयगत्ती होइ कर्णा टि हेन्ट्ठा।
दक्खिणी दासि दाखवइ, सिघवणि करि सिंगार।
पारसी मन प्रघन, भणइ गुण तिलगी भार॥
एहुडी नारि अभिराम इम वाद करेवा मुखि चवइ।
शर की सुवस सुरताण सम, 'कवि शकर तेह दुकवइ' ॥१॥

अष्ट भाषा संपूर्णाः॥

दुहजा दुवकड दाखि, अभिरामी अभिराम तुं।
महि जग देवइ साखि, भारे नारुं भीम उत ॥१॥

(पत्र १ अभय जैन ग्रंथालय)

उपरोक्त उद्धरण में अन्य देश की स्त्रियों से कहलाये जाने वाले पद विस्तार-भय से छोड़ दिए गए हैं। किन्तु इस उद्धरण से इतना पता चलता है कि शंकर कवि की जानकारी में ग्वालियर क्षेत्र की एक सांस्कृतिक विशेषता थी जिसके प्रति उसने ग्वालियर क्षेत्र की 'ग्वालेरी' स्त्री से अपने विचार व्यक्त कराए।

[1]महीपति बुआ ने अपने ग्रन्थ 'भक्त-विजय' (सं० १६८४) में इस प्रकार सूचना दी है—

—"नाभाजी विरचि अवतार, तेणे सत चरित्र ग्रन्थ थोर, ग्वाल्हेरी भाषेंत लिहिला असे,"

महीपति बुआ ने यह भी लिखा है—

'कबीर बोलिले हिन्दुस्थानी, देश भाषा आपुली'

'बुआ' ने नाभाजी की भक्तमाल का आधार लेकर ही 'भक्त-विजय' ग्रन्थ लिखा। 'भक्त-विजय' ग्रन्थ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, से ३५,४० वर्ष पूर्व छपा है।

इन उल्लेखों से तात्पर्य केवल इतना है कि ग्वालियर क्षेत्र की सांस्कृतिक स्थल के रूप में भारत-राष्ट्र के हिन्दी लेखियों में मान्यता थी।

ग्वालियर का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास

नागों की साम्राज्य सीमा के विषय में श्री कनिंघम[2] ने लिखा है कि नागों की राज-सत्ता के क्षेत्र में वर्तमान भरतपुर, धौलपुर, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड और कुछ क्षेत्र मालवा (अवन्ति भेलसा) सागर थे। इस प्रकार जमुना तथा नर्मदा, चम्बल और वेन

१. भारती, जून १९३६ पृष्ठ ३४५ महीपति बुआ 'भक्त विजय' डॉ० विनयमोहन शर्मा।
२. आर्कोलाजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट भाग २ पृष्ठ ३०८-३०६ (कनिंघम)

नदियो का क्षेत्र वे उपभोग कर रहे थे। श्री अल्तेकर[1] ने पद्मावती और मथुरा के नागो के राज्य के विषय मे लिखा है कि इनके राज्य क्षेत्र मे मथुरा, धौलपुर, आगरा, ग्वालियर, कानपुर, झासी तथा बादा के क्षेत्र थे। नाग राजधानी प्राचीन कान्तिपुरी थी। 'कुतवाल' को श्री विलसन तथा कनिंघम ने कान्तिपुरी ही माना है।[2] श्री जायसवाल ने 'कन्तित' की प्राचीन नाग राजधानी (कान्तिपुरी) से अभिन्नता स्थापित की है। श्री मो० ब० गर्दे भूतपूर्व डायरेक्टर ग्वा० पुरातत्व विभाग ने श्री कनिंघम के मत को पुष्ट किया है। डॉ० वासुदेव शरण के अनुसार यही 'कुन्ति' (कोतवार) प्रदेश था जिसमे ग्वालियर, दतिया का इलाका सम्मिलित था। इस प्रदेश को नारायण गोपाचल तथा ग्वालियर की पहाड़ी को गोपालक गिरि या गोपाचल कहते थे।[3]

जनश्रुति है कि किसी समय पढ़ावली, कुतवाल, और सुहानिया बारह कोस के विस्तार मे फैले हुए एक ही नगर के भाग थे तथा कुतवाल बहुत प्राचीन स्थल है। कान्तिपुरी का अगला नाम कुतलपुरी हुआ।[4]

इस प्रकार इन नागो का प्रभाव-क्षेत्र यद्यपि बहुत विस्तृत था। मध्यप्रान्त के वनाक्रान्त भू-खण्डो से लेकर गगा-जमुना का दोआब तक उसमे सम्मिलित था। परन्तु इन नागो का समय ग्वालियर प्रदेश के लिये अनेक कारणो से महत्व का है। ग्वालियर राज्य के उत्तरी प्रान्त के गिर्द एव शिवपुरी जिलो मे इनका राज्य था, जहा नरवर पवाया, कुतवाल आदि स्थलो पर इनका प्रभाव था और उधर दक्षिण मे मालवा (धार) तक इनका राज्य था। श्री जायसवाल कृत अन्धकारयुगीन भारत मे उद्धृत 'भावशतक' मे भवनाग को 'धाराधीश' लिखा है।[5]

मथुरा मे वीरसेन नाग ने अपने राज्य को स्थापित कर पदमावती तक फिर फैला दिया।[6] 'कान्तिपुरी' ग्वालियर राज्य का कोतवाल है और 'पवाया' ही प्राचीन पदमावती है।[7]

---

१. ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपुल, पृष्ठ ३॥ (श्री अल्तेकर)
२ (अ) आ० स० रि० भाग २ पृष्ठ ३०८
 (ब) ग्वा० पुरातत्व रिपोर्ट सवत् १९९७ पृष्ठ २२
 (स) अन्धकार युगीन भारत, पृष्ठ ५९-९६ श्री जायसवाल।
३. दतिया की यात्रा—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, कल्पना (मासिक) हैदराबाद अगस्त १९५१, पृष्ठ २१.
४. वही, भाग २ पृष्ठ ३९८
५. जायसवाल कृत अन्धकार युगीन भारत 'पृष्ठ ८१ पर उद्धृत' 'भावशतक'।
६. ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपुल (डॉ० अल्तेकर) पृष्ठ ३७
७. आर्कोलाजीकल सर्वे इण्डिया वार्षिक रिपोर्ट १९१५-१६ पृष्ठ १०१

पवाया (इस प्रदेश) के नाग राजा गणपति को गुप्तवंश के दिग्विजयी समुद्रगुप्त ने हराकर अपना राज्य स्थापित किया।[1]

बुद्धगुप्त के पश्चात तोरमाण हूण ने आक्रमण किया और उसके पुत्र मिहिरकुल (हूण) का शासन ग्वालियर गढ तक था ऐसा 'मात्रिचेट' के शिलालेख से विदित होता है।[2]

हर्षवर्धन की मृत्यु (६४० ई०) के पश्चात मौखरी वंश के यशोवर्मन के साम्राज्य में यह प्रदेश आया जो 'मालती माधव' के लेखक भवभूति का आश्रयदाता था।[3] भवभूति ने मालती माधव में पद्मावती की स्थिति बताई है।[4] पद्मावती की भौगोलिक स्थिति में, "कापालिको का केन्द्र 'श्री पर्वत' और सौदामिनी के कथन में सिन्धु और पारा नदियों के बीच पद्मावती नगरी शोभित है। सिन्धु नदी का जल प्रपात तथा आसपास चम्पक, चन्दन, पाटल आदि वृक्ष सुशोभित हैं। आगे थोड़ी दूर मधुमती (महुअर नदी) और सिन्धु नदी का संगम हो रहा है।" सिन्ध–मधुमती के संगम पर आज भी शिवमन्दिर वर्तमान पवाया में विद्यमान है।

मौखरी वंश के पश्चात प्रतिहार वंश के मिहिरभोज ने अपना साम्राज्य स्थापित किया जिसमे ग्वालियर का यह प्रदेश भी सम्मिलित था। प्रतिहारों के चार अभिलेख[5] ग्वालियर गढ एवं सागर ताल मे मिले हैं इनमें दो विक्रमी संवत ९३२, ९३३ के है। विक्रमी संवत ९३७ के एक अभिलेख [6] (ग्वालियर गढ) से ज्ञात होता है कि ग्वालियर का प्रदेश उनके नियोजित पदाधिकारियों द्वारा शासित होता था। अल्ल नामक श्रीगोपगिरि के कोट्टपाल (किले के संरक्षक) टट्टक नामक बलाधिकृत (सेनापति) तथा नगर के शासको (स्थानाधिकृति) की परिषद् (वार) के सदस्यों (वव्वियाक एवं इच्छुवनाक नामक दो श्रेष्ठिन् और सांव्वियाक नामक प्रधान सार्थवाह) का उल्लेख है। कोट्टपाल अल्ल ने ग्वालियर गढ की एक शिला को छैनी द्वारा कटवाकर विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया था। प्रतिहार रामदेव के समय में विशाल का मन्दिर बनवाया था। और भोजदेव ने ग्वालियर गढ के आसपास कहीं नरकद्विप (विष्णु) के अन्तःपुर का निर्माण कराया था। महाराज आदिवराह (भोजदेव प्रतिहार) ने अल्ल

१. ग्वालियर राज्य के अभिलेख २००४ सं०, पृष्ठ २२
२. वही पृष्ठ २३
३ *एन्शियन्ट इण्डियन हिस्ट्री (मजूमदार)—पृष्ठ २२०*
४ मालतीमाधव–महाकवि भवभूति व्याख्याकार शेषराज शास्त्री,—पृष्ठ ३७८ नवमांक १ एवं त्रिपुरी (सं० २०१०)—पृष्ठ ४५
५. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक ८,९,६१८ ६२६
६ वही, क्रमांक ६३०

को गोपाद्रि (ग्वालियर गढ) का कोट्टपाल नियुक्त किया था। प्रतिहार वंश के इतिहास में इन अभिलेखों का बहुत महत्व है। भोज प्रतिहार का पुत्र महेन्द्रपाल राजशेखर कवि का आश्रयदाता था।[१] सं० ९१० के लगभग महीपाल प्रतिहार ने ग्वालियर पर अधिकार रक्खा। देवपाल प्रतिहार कन्नौज की गद्दी पर बैठा किन्तु उसे जेजाकभुक्ति (जिझौति) के यशोवर्मन चन्देल राजाओं (९२५-९५० ई०) के सामने झुकना पड़ा और विष्णु प्रतिमा को खजुराहो के चन्देल मन्दिर में स्थापित करने को देना पड़ा।[२] विजयपाल प्रतिहार के राज्य में कच्छपघात वज्रदामन ने प्रतिहारों से सन् ९५० ई० के आसपास ग्वालियर गढ छीन लिया।[३]

चन्देरी पर इस काल में प्रतिहार वंश की एक शाखा राज्य कर रही थी। इस प्रतिहार वंश में लगभग तेरह राजा हुए। इनके वंश- वृक्ष देने वाले शिलालेख चन्देरी एवं कदवाहा[४] में मिले हैं। इनमें सातवां कीर्तिपाल प्रतिहार ने कीर्ति-दुर्ग(वर्तमान चन्देरी गढ) कीर्तिनारायण मन्दिर तथा कीर्तिसागर का निर्माण किया। चन्देरी पर तेरहवीं शताब्दी ई० के अन्त तक प्रतिहार राजा चन्देरी, कदवाहा, रन्नौद के आस-पास राज्य करते रहे। ईसा की नवमी शताब्दी के लगभग मध्यप्रदेश में एक अत्यन्त प्रभावशाली शैव साधुओं का सम्प्रदाय विद्यमान था, नमथा प्रतिहार, चेदिराज आदि राज-प्रदेशों पर पूर्ण प्रभाव था। इन साधुओं की वंशावली ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक ६२७, ६२८ तथा ७०२ रन्नौद एवं कदवाहा में प्राप्त शिलालेखों में दी गई है।

प्रतिहार राजाओं में हरिराज धर्मशिव (कदवाहा रन्नौद मठ के अधिपति) के शिष्य थे। भीमदेव प्रतिहार मधुमतेयशाखा के ईश्वरशिव के समकालीन थे। मधुमतेय शाखा का बिलहरी (पुष्पावती नगरी) मठ मधुमती (महुअर) नदी के किनारे पर अवस्थित हुआ।[५]

सन् ९५०ई० के लगभग वज्रदामन कच्छपघात ने प्रतिहारों से ग्वालियर गढ़ जीत लिया।[६] कच्छपघातों का राज्य ग्वालियर गढ़ पर ९५० से ११२८ ई० के लगभग

---

१ गायकवाड ओरियन्टल सीरीज में छपी काव्य मीमांसा—पृष्ठ १३ (ग्वालियर राज्य के अभिलेख—पृष्ठ २६ पर उद्धृत)

२ भारत का इतिहास (प्राचीन काल) प्रो० दयाप्रकाश, तृतीय संस्करण १९६० (राजहंस प्रकाशन मन्दिर, मेरठ)

३ ग्वालियर राज्य के अभिलेख—पृष्ठ २७

४. वही, अभिलेख क्रमांक ६६३ चन्देरी, (६३० कदवाहा)

५. ग्वालियर राज्य के अभिलेख—पृष्ठ ८२, ८५, ३४ तथा भारतीय प्रेमाख्यान काव्य-डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव—पृष्ठ २२२-२२५

६. वही, अभिलेख सास-बहू का मन्दिर, ग्वालियर—क्रमांक २५-२६ तथा ६१

तक रहा जबकि उनके अन्तिम राजा तेजकरण कच्छपघात से परमादिदेव (परमाल) परिहार ने ग्वालियर का राज्य ले लिया ।

कच्छवाहो के इस राज्य मे उत्तर मे सुहानिया पढावली तथा दक्षिण मे नरवर तथा सुरवाया तक का प्रदेश था । इन राजाओं के समय मे स्थापत्य एवं मूर्तिकला ने विशेष प्रसार पाया । ग्वालियर गढ के सास-बहू के मन्दिर, सुहानिया का ककनमठ[1], पढावली के मन्दिर तथा सुरवाया के मन्दिर इन्ही के बनाये हुए है । इनके ये निर्माण इस काल की कला के प्रतिनिधि हैं ।

कच्छपघातो की एक शाखा नलपुर (नरवर) मे राज्य कर रही थी ऐसा विक्रम संवत ११७७ के ताम्रपत्र से प्रकट है ।[2]

गोपालदेव पर चन्देल राजा वीरवर्मन ने नरवर के पास ही बगला नामक ग्राम मे आक्रमण किया जिसमे गोपालदेव विजयी हुआ । बगला (नरवर) ग्राम मे अनेक स्मारक स्तम्भ खडे हैं, इनमे से एक पर लिखा है —

ऊ । सिद्धि ॥ सवत् १३३८
चैत्र सुदि ७ शुके वालुका
सरित्तीरे युद्ध सह वीर
वम्मण । आदि

तथा एक अन्य लेख मे लिखा है—

वालुका सरितस्तीरे
सर (प्रा) मे वीरवर्म्मणि । मु
मु (यु) धे तुरगारूढो निहत्य मु
भटान्बहून ॥२॥ सवत् १३३८
चैत्र सुदि ७ शुक्रवारे । श्री नलपुरे
श्री महाराज गोपालदेव
कार्ये चंदिल्ल महाराज श्री
वीरवर्म्मा संग्राम व्यक्ति करे । आदि ।

संवत् १३४८ तक के अभिलेख गोपालदेव के हैं ।[3] गणपतिदेव उत्तराधिकारी का उल्लेख सवत् वि० १३५० के अभिलेख मे है ।[4] इस गणपति ने कीर्ति दुर्ग (चन्देरो) को

१. वही, सुहानिया अभिलेख क्रमाक २० (विक्रम संवत १०३४)
२. वही, क्रमाक ६२,—पृष्ठ १३
३. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमाक १२६
४. वही, क्रमाक १६३

ऐसा नरवर के वि० सवत् १३५५ के एक अभिलेख[1] में उल्लेख है। फिर ये चाहड का वंश सुलतानों द्वारा पराजित हो गया और तैमूरलंग के आक्रमण (१३९८ ई०) तक ग्वालियर–नरवर गढ़ मुसलमानों के अधिकार मे रहा।

फीरोज तुगलक के राज्यकाल में १३७७ ई० मे इटावे में राय सुमेर या सुमेर चौहान तथा उद्धरणदेव तोमर की संयुक्त सेना से भिडन्त हुई और सन्धि हुई। मुहम्मद शाह तुगलक (१३९१ ई०) के शासन मे सुमेर चौहान, वीरसिंह तोमर (ग्वालियर) भवगाव के वीरभानु ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।[2] १३९३ ई० मे कन्नोज के किले मे उद्धरणदेव तोमर का वध कर दिया गया, वीरसिंह तोमर दिल्ली ले जाये गये वहां २० जनवरी १३९४ ई० को मुहम्मद शाह तुगलक की मृत्यु होने पर सुलतान अलाउद्दीन सिकन्दर शाह के अंगरक्षक के रूप में ग्वालियर गढ की जागीर वीरसिंह तोमर पुरस्कार मे पा सके और सुलतान मुहम्मद नासिरुद्दीन के काल में ग्वालियर गढ पर पताका स्वतन्त्र रूप मे फहरा सके।

वीरमदेव तोमर के राज्यकाल मे आचार्य जैन विद्वान श्री नयचन्द्र सूरि ने संस्कृत में 'रम्भा मंजरी" एवं "हम्मीर महाकाव्य" (१४०२ ई०) लिखा तथा पद्मनाभ कायस्थ ने मन्त्री कुशराज जैन की प्रेरणा पर "यशोधर चरित" लिखा। पद्मनाभ ने भट्टारक गुणकीर्ति से उपदेश ग्रहण किया था। भट्टारक गुणकीर्ति के दो अपभ्रंश-ग्रन्थ मिलते हैं एक 'हरिवंशपुराणु" और दूसरा "चंदप्पहचरिउ।" जैन सिद्धान्त भवन आरा मे "ज्ञानार्णव" की एक प्रति है जिसमे गुणकीर्ति और यशःकीर्ति के बाद उनके शिष्य मलयकीर्ति और प्रशिष्य गुणभद्र भट्टारक के भी नाम हैं।[3]

वीरमदेव के काल का अभिलेख भी[4] विक्रमाब्द १४६७ (१४१० ई०) का प्राप्त हुआ है जिसमे महाराज "वीरम" का उल्लेख है इससे वीरमदेव के राज्यकाल का बोध होता है।

गणपतिदेव तोमर (१४१९-१४२५ ई०) ने ताज उल मुल्क को ग्वालियर मे पराजित किया और सुलतान हुसंगशाह (मालवा) का लगभग एक माह तक प्रतिरोध किया।[5] समकालीन अथवा परवर्ती मुस्लिम इतिहास लेखक "यहया", निजामुद्दीन अथवा

---

१. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक १७४

२ दिल्ली सल्तनत डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २४७ एवम् कन्टेम्पोरेरी मुस्लिम क्रिनिकल्स (५) पृष्ठ ६, ७, १६, ५५, ५७, ६४ तारीखे मुहम्मदी (६) पृष्ठ २८, ४४।

३. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक २४०, पृष्ठ ३५ तथा ज. ए. सो. बंगाल भाग ३१ पृष्ठ ४२२ तथा चित्र।

४. बुन्देलखंड का इतिहास—गोरेलाल (१९१० ई.) पृष्ठ ८२

५ कन्टेम्पोरेरी मुस्लिम क्रिनिकल्स, पृष्ठ २०, २१, २३, २८, ६७, ७१ तथा तबकाते अकबरी (६) पृष्ठ ५७-५८।

अन्य लेखकों ने इतिहास ग्रन्थों में गणपतिदेव के नाम का उल्लेख नहीं किया। फारसी के इतिहास लेखक इस काल के राजा के नाम का उल्लेख न करते हुए "ग्वालियर के राय" का उल्लेख करते हैं। परन्तु खड्गराय के गोपाचल आख्यान (ग्वालियर नामा) में तथा जम्बू स्वामी मन्दिर, चौरासी-मथुरा की मूल नामक प्रतिमा पर इस उल्लेख में—"गोपाचल दुर्गे तोमरवंशे राजा श्री गणपति देवस्तत्पुत्रो महाराजाधिराज डूगरसिंह राज्ये" केवल इतना आभास होता है कि डूगरेन्द्रसिंह गणपतिदेव के पुत्र थे। गणपतिदेव के राज्यकाल में कोई नवीन मन्त्री अथवा विद्वद्समाज की जानकारी नहीं मिलती, *खिजरखां सैयद ने दौलतखां लोधी को ४ जून १४१६ ई० में कैद करके १४२१ ई० में कोटले पर चढ़ाई की और वह ग्वालियर की ओर आकर राजा गणपतिदेव से कर वसूल कर दिल्ली चला गया।*[1] इस ऐतहासिक घटना से भी गणपतिदेव के राज्यकाल का पता चल जाता है।

महाकवि केशवदास ने 'कविप्रिया' में जिन "त्रिविक्रम मिश्र"[2] का गोपाचल गढ़ के दुर्गपति द्वारा सम्मानित होने का उल्लेख किया है उनका गणपतिदेव तोमर के समय में आने का ही अनुमान होता है। क्योंकि शिरोमणि मिश्र का मानसिंह तोमर से सम्मानित होने का स्पष्ट उल्लेख है इस बीच भाव शर्मा और रह जाते हैं जिनकी औसत आयु कम से कम ६० वर्ष ही मानी जाय तो भी डूगरेन्द्रसिंह-कीर्तिसिंह का राज्यकाल क्रमश (१४२५-१४५४) तथा (१४५४-१४७९) लगभग ५४ वर्ष का निकल जाता है और १४२५ ई० के पूर्व त्रिविक्रम मिश्र का सम्मान गणपतिदेव तोमर के राज्यकाल में होने का अनुमान होता है।

डूंगरेन्द्रसिंह तोमर

गणपतिदेव के पुत्र ने (१४२५-१४५४ ई०) तक गोपाचल गढ़ का राज्य सम्हाला। इनके राज्यकाल के सन १४४०, १४५३ के दो अभिलेख तथा १४५७, १४५८ ई० के अभिलेख मिलते हैं।[3] इन अभिलेखों में जैन-मूर्तियों एव मन्दिर आदि के निर्माण का पता चलता है। डूगरेन्द्रसिंह का नाम इन अभिलेखों और इतिहासों में डूगरसिंह, डूगरशाह, डुगरशाह आदि अनेकों रूपों में मिलता है। इनकी पटरानी चन्दादेवी थी।

काश्मीर के सुलतानों में जैनुलआब्दीन (१४२०-१४७० ई०) को संगीत से अधिक रुचि रही। 'डूगरसेन' ने संगीत से सम्बन्धित २, ३ उत्तम ग्रन्थ उनकी सेवा में भेजे।

---

१ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (१६६०)—गोरेलाल, पृष्ठ ८२

२ कविप्रिया द्वितीय प्रभाव छंद २-१७, 'मानसिंह मानकुतूहल'-पृष्ठ १२८-१२६ (सं० २०१०)

३ ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक २२५, २७६, २७७, २८०, २८१ एवं ३०७।

डूंगरसेन का पुत्र 'कीर्तसिंह' (कीर्तिसिंह) भी पिता की भांति उनसे मैत्री एवं निष्ठा रखता रहा।[1]

डूगरेन्द्रसिंह के काल मे कालपी के मुबारकखां से युद्ध हुआ एवं संधि हुई।[2]

डूगरेन्द्रसिंह तोमर का नरवर के कछवाहे राज्य पर भी आक्रमण हुआ तथा मालवा के सुलतान से युद्ध हुआ।[3] डूगरेन्द्रसिंह की नरवर-विजय का प्रतीक "जय-स्तम्भ" इसकी पुष्टि करता है।[4]

डूंगरेन्द्रसिंह के राज्यकाल में महाकवि श्री विष्णुदास हुए। जिनका जन्म संवत १४७० विक्रम (१४१३ ई०), जन्म स्थान ग्वालियर तथा कविता काल १४६५ वि० (१४३८ ई०) होने का उल्लेख मिलता है।[5]

ग्वालियर राज्य का अभिलेख क्रमांक २५५ सम्वत १४६७ विक्रम जैनमूर्ति सम्बन्धी लेख है जो महाराजाधिराज राजा श्री डूगरेन्द्रदेव (तोमर) के राज्यकाल मे गोपाचल दुर्ग के उल्लेखयुक्त है। आदिनाथ की मूर्ति निर्माण का उल्लेख अभिलेख क्रमांक २५६ मे है। अभिलेख क्रमांक २५७ मे ग्वालियर दुर्ग (गिर्द) उरवाही द्वार की ओर जैन मूर्ति पर लेख है पंक्ति २३, लिपि नागरी, भाषा संस्कृत है जिसमे देवसेन, यशकीर्ति, जयकीर्ति आदि जैन आचार्यों के नामों के उल्लेख १४९७ विक्रम मे हैं। क्रमांक २७७ के अभिलेख मे भी डूगरेन्द्रदेव के शासन काल मे कर्मसिंह द्वारा चन्द्र प्रभु की मूर्ति की प्रतिष्ठा का विवरण एवं कुछ भट्टारकों के नामो का उल्लेख है।[6]

जैन महाकवि 'रइधू' भी इनके राज्यकाल मे हुए जिन्होंने अपने ग्रन्थों-'पार्श्व पुराण, पद्मचरित तथा 'सम्मत्तगुणनिधान' मे तत्कालीन ग्वालियर के सांस्कृतिक वैभव की झांकी प्रस्तुत की है जिस पर आगे अध्याय मे विचार किया जायगा।[7]

कीर्तिसिंह देव (तोमर) (१४५४-१४७९ ई०) के शासनकाल का अनेक शिलालेखों मे उल्लेख है[8] इन्हें डूगरेन्द्र देव तोमर का पुत्र बताया गया है। शान्तिनाथ, युगाधि-

---

१. दिल्ली सल्तनत (१९५५)–डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २८६, उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग २, पृष्ठ २१९, मुगलकालीन भारत १९६२, पंचम संस्करण–डा० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ ८

२. तारीखे मुहम्मदी (६), पृष्ठ ४२

३. तबकाते अकबरी (६) पृष्ठ ७२-७३

४. आर्को० सर्वे ऑफ इंडिया व्हाल्यूम २. (१८७१)–कनिंघम, पृष्ठ ३१०, ३२४

५. बुन्देल–वैभव (गौरीशंकर द्विवेदी) १९९० वि० पृष्ठ २४८

६. ग्वा० पुरा० रिपोर्ट संवत १९८४ संख्या २१। एन्शिएन्ट इंडिया भाग ५ की कीलहार्न की सूची संख्या २६४, जनरल एशियाटिक सो० बंगाल, भाग ३१ पृष्ठ ४२३ (ग्वा० राज्य के अभिलेख, पृष्ठ ३९ पर उद्धृत)।

७. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन (डॉ० नेमिचन्द शास्त्री) भाग २, पृष्ठ २१९

८. ग्वा० राज्य के अभिलेख क्रमांक २८८, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१५। पृष्ठ ४०-४३

नाथ एवं पार्श्वनाथ की जैन प्रतिमाओं का प्रतिष्ठा होने तथा अनेक जैन आचार्यों का उल्लेख है। सघाधिपति हेमराज, अधिकारी गुणभद्रदेव, कुशलराज के नामों का इन अभिलेखों से पता चलता है। ग्राम पढावली (मुरैना), बरई, पनिहार (गिर्द-ग्वालियर) में कीर्तिसिंह देव के शिलालेख मिले हैं।

कीर्तिसिंह देव तोमर (१४५४-१४७९ ई०) के राज्य काल में गोपाचल दुर्ग में 'ज्ञानार्णव' की रचना स० १५२१ आषाढ़ सुदी ६ सोमवार को हुई थी इसमें गुणकीर्ति और यशःकीर्ति (जसकित्ति) *भट्टारकों के नाम दिए गए हैं।*[1] 'रइधू' ने *सम्यक्त्व* कौमुदी की रचना की।

कल्याणसिंह (तोमर) को कल्याणमल्ल भी कहा गया है। ई० १४७९ से १४८६ ई० तक इनका *गोपाचल* दुर्ग पर शासन रहा। हुसेनशाह शर्की जौनपुर के शासक से इनकी मैत्री रही[2] तथा सभवत. इन्हे करणसिंह राय का पुत्र माना गया है। इनके राज्यकाल का कोई शिलालेख प्राप्त नही होता। राज्यकाल में शान्ति रहने के कारण इनका *समय विलास-वैभव मे बीता और वे कामशास्त्र की अनूठी पुस्तक 'अनगरंग'* की रचना स्वय कर सके अथवा अपने निर्देशन मे करा सके। डॉ० विजयपालसिंह ने अपने 'शोधप्रबन्ध' केशव और उनका साहित्य में कल्याणमल्ल के 'अनगरग' के आधार पर नायिका भेद के अन्तर्गत केशवदास द्वारा जाति के आधार पर पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी एव हस्तिनी नामक जो चार भेद किए गये हैं उनका तुलनीय उल्लेख किया है।[3] जौनपुर के शर्की वश की मैत्री के कारण उसकी सगीत तथा ललित कला विषयक प्राचीन परम्परा का आदर्श भी कल्याणसिंह तोमर के सामने मौजूद था। इब्राहीमशाह शर्की (१४०२ ई०-१४३६ ई०) के समय में जौनपुर 'भारत के शीराज' के नाम से विख्यात हुआ। हुसेनशाह का १५०० ई० मे अवसान होने तक इस वश ने ८५ वर्ष शासन किया इनके राज्यकाल मे सास्कृतिक कार्यों को प्रोत्साहन मिला। इधर काश्मीर के शासक जैनुलआबदीन (१४२०-१४७० ई०) को ग्वालियर के डूंगरेन्द्रसिंह तोमर (१४२५-१४५४ ई०) ने सगीत से सम्बन्धित उत्तम ग्रन्थ भेजकर सास्कृतिक सम्बन्ध

---

१. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ४०३ (द्वितीय सस्करण १९५६)

२. कण्टेम्पोरेरी मुस्लिम किंगडम (५), पृष्ठ २०७

३. केशवदास और उनका साहित्य-डॉ० विजयपालसिंह, पृष्ठ १४७ पर 'अनगरग' पृ० स० ४।१७ तथा रसिक प्रिया तीसरा प्रभाव, छन्द ११, १२, १३ का तुलनीय उल्लेख। तथा इसी पुस्तक के पृष्ठ १५५ पर 'अनगरंग' श्लोक १३, १४ पृष्ठ ४ से तुलनीय रसिकप्रिया, तृतीय प्रभाव छन्द ५, ६ का उल्लेख एव अनगरग छन्द ५३ 'दूती वर्णन' का उल्लेख। 'मध्यदेशीय भाषा पृ० १४२- भारती अक्टूबर १९५५ पृ० ३६२-भा० रा० भालेराव (लेख)

४. दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २७७, २७८

प्रकाशित किए थे। ऐसी स्थिति में तोमरवंशी राजा कल्याणसिंह अथवा कल्याणमल्ल की लिखी हुई 'अनंगरंग' पुस्तक जिसमें प्रादेशिक विभागों की रमणियों का वर्णन किया गया है एवं जिसमें मध्यदेश की रमणी को विचित्र वेषा, शुचि कर्मदक्षा एवं सुशीलिनी कहा गया है से मध्यदेश के सांस्कृतिक इकाई के रूप मे कल्पना स्पष्ट होती है।[1]

श्री कल्याणसिंह तोमर के शासन मे "दामोदर कवि" ने 'विल्हण चरित' की भी रचना की जिसका आगे के अध्यायों मे विचार प्रस्तुत किया गया है।

मानसिंह तोमर (१४८६-१५१६ ई०)

गोपाचल गढ (ग्वालियर दुर्ग) के अधिपति मानसिंह तोमर का राज्यकाल सांस्कृतिक उन्नति की चरम सीमा का काल है। इनके राज्यकाल के ग्वालियर राज्य के अभिलेख[2] मे 'मल्लसिंह देव' का उल्लेख है जिसका आशय मानसिंह तोमर से ही है। इस अभिलेख की भाषा विकृत संस्कृत है और यह सम्वत विक्रम १५५२ (सन १४९५ ई०) का है। इनके अन्य उल्लेख भी प्राप्त हैं।[3]

मानसिंह देव के राज्याश्रित अनेक विद्वानो ने साहित्य-सृजन किया जिनमे मानिक कवि, मेघनाथ, देवचन्द, कल्याणकर माथुर चतुर्वेदी (मथुरा) आदि प्रमुख हैं। माथुर परिवार के चतुर्वेदी को मानसिंह देव मथुरा से लाये थे इसका उल्लेख 'वैष्णव प्रपत्ति वैभव' (१७६३ ई०) मे गोविन्ददास चतुर्वेदी द्वारा रचित ग्रन्थ मे मिलता है।[4] 'वैष्णव प्रपत्ति वैभव' मे इस प्रकार वर्णन हुआ है—

> अनाचार आचार युत, साधु असाधहु होई।
> अज्ञानी ज्ञानी सुमुनि, मम तनु माथुर जोई॥
> यह लखि लाए मान नृप मथुरा तें कर प्रीति।
> दियो वानु गिरि उपरि लखि, वेद सुमृत कृपि नीति॥
> वर्षा ऋतु झरना विविध नृत्यत मत्त मयूर।
> विगत पंक रह भूमि जह, स्वच्छ शिला बहु पूर॥

---

१. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १४
२. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक ३४१, पृष्ठ ४६ पर उद्धृत
(देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर द्वारा निर्मित उत्तर भारत के अभिलेखों की सूची की संख्या। यह सूची एपीग्रेफिया इण्डिया के भाग १९, २०, २१, २२ तथा २३ के साथ प्रकाशित हुई)
३. भाण्डारकर सूची संख्या ८६१, पूर्णचन्द्र नाहर जैन-अभिलेख भाग २, सं० १४२१ ज्येष्ठ सुदी ९ सोमवार।
४. वैष्णव प्रपत्ति वैभव—मूल हस्तलिखित ग्रन्थ श्री नारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' इसी विद्वान परिवार के वंशज के पास है—मध्यदेशीय भाषा—पृष्ठ १४८-१४९ पर उद्धृत एवं मानसिंह मानकुतूहल पृष्ठ १६२ सं० २०१० प्रथम संस्करण पर उद्धृत)।

राजत वापी कूप बहु उपवन शुभ आराम ।
मन्दिर सुन्दर नृप सदृश, षटऋतु के विश्राम ॥
श्री "कल्याणकर" पुत्र मुनि श्रीमन कठ मुनेश ।
तिन सुत गोवर्धन विदित, मुनि कुल मनि विप्रेश ॥१४॥
विजयराम सुत 'खडगमनि, उत्तम नाम प्रकाश ।
तिन्ह सुत नाम प्रसिद्ध श्री वैष्णव गोविन्ददास ॥१५॥

× × × ×

प्रकृति पुरुष दोउ पर अमर, कही विष्णु की देह ।
जाते वैष्णव धर्म बिनु, नही अन्य नर एह ॥१७॥
रुभ्र मिथुन वसुचन्द्र शुभ शुक्ल सप्तमी लेप ।
श्रावण रवि पूरण भई, गत नक्षत्र विशेष ॥१८॥
तुर्य तुर्य वसुचन्द्र कवि, कुम्भकर्ण सम पक्ष ।
अनुराधा तिथि सप्तमी, जन्मनाथ मुनि स्वक्ष ॥१६॥

गोविन्ददास लेखक और 'कल्याणकर' के बीच मे चार पीढियाँ इस उद्धरण मे हैं ।

मानसिंह के राज्यकाल मे मिश्रई खेमल (खेमचन्द-क्षेमचन्द्र), रामदास तथा भानुसिंह (कीर्तिसिंह देव के पुत्र) भी साहित्य-सृजन के प्रेरक के रूप मे मिलते हैं ।

मानसिंह के समय मे इनकी गुर्जर पटरानी 'मृगनयनी' के आवास हेतु बने 'गूजरी महल' और 'मान-मन्दिर' की स्थापत्य-कला ने 'बाबर' को भी आकर्षित किया था, उसने स्वयं 'मान मन्दिर' राजा मानसिंह के भव्य निर्माण को अपनी आखों मे देखा था ।[1]

संगीत के लिये तो मानसिंह का काल इतिहास प्रसिद्ध है । प्रसिद्ध इतिहासकार श्री स्मिथ ने लिखा है कि तानसेन, सूरदास के घनिष्ठ मित्र थे और अपनी अधिकांश शिक्षा उन्होंने राजा मानसिंह द्वारा संस्थापित ग्वालियर के संगीत-विद्यालय मे प्राप्त की थी ।[2] और इसी कारण 'कमान मुलतान की—तान ग्वालियर की' इस कहावत की लोक मे प्रतिष्ठा हुई । 'मार्गी' के स्थान मे 'ध्रुपद' का आविष्कार हुआ ।

राजा मानसिंह तोमर ने संगीत का प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दी मे 'मानकुतूहल' की रचना की जिसका फारसी अनुवाद औरगजेब के सूबेदार फकीरुल्ला सैफखा ने 'राग दर्पण' मे किया है । यह 'रागदर्पण' १०७३ हिजरी सन (ई० १६६६ ?) मे रचा गया था ।[3]

१. मुगलकालीन भारत—बाबर (सैयिद अतहर अब्बास रिजवी) १९६० (बाबरनामा) पृष्ठ २३५, २३६
२. अकबर दि ग्रेट मुगल (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६०। ग्वाल्यम (१) (१९६२) तथा अकबरी दरबार के हिन्दी कवि-डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल (२००० सं०) पृष्ठ १११
३. 'मानसिंह और मानकुतूहल' (२०१० वि०, पृष्ठ ५७।५५-४७

राजा मानसिंह तोमर ने लोदी वंश से टक्कर ली। बहलोल लोदी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया। डॉ० आशीर्वादीलाल का कथन है कि ग्वालियर से लौटते समय बहलोल लोदी बीमार पड़ गया और १४८९ ई० में उसका देहान्त हो गया।[1]

सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७) ने भी १५०२ ई० से लेकर कई (१५०६ ई०) वर्ष तक लगातार मानसिंह (तोमर) पर हमले किये और आगरा राजधानी बनाकर सैनिक कार्यवाही के लिये आधार बनाया किन्तु ग्वालियर हस्तगत न कर सका।[2]

२१ नवम्बर १५१७ ई० में इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६) गद्दी पर बैठा इब्राहीम लोदी के भाई जलाल खाँ को तत्कालीन ग्वालियर राजवंश ने (१५०७ ई० में) अपने यहाँ शरण दी थी किन्तु वीर मानसिंह की, जिसने सिकन्दर लोदी का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया था, मृत्यु हो चुकी थी और उसका पुत्र विक्रमाजीत (तोमर) उत्तराधिकारी हुआ। इब्राहीम लोदी ने आजम हुमायूं शेरवानी से ग्वालियर दुर्ग का घेरा (१५१७ ई०) डलवाया। विक्रमाजीत दिल्ली सुल्तान का अधीनस्थ सामन्त हो गया।[3]

मेवाड़ के शासक राणा सांगा की पुत्री सलहदी तवर (तोमर) को ब्याही थी। सलहदी तँवर (सलाहुद्दीन) ग्वालियर के पास सूमजन (मोजना ?) गाँव में जन्मे थे। इनकी पटरानी दुर्गावती थी, इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम भूपतराय था।[4] ३ दिसम्बर १५१३ ई० में इन्हें भेलसा (विदिशा) का परगना जागीर में दिया गया था।[5] सलहदी तवर चन्देरी के मेदिनीराय राजपूत के साथियों में से थे जो सुलतान महमूदशाह खिलजी मालवा के शासक द्वारा वजीर बनाये गये थे। मेदिनीराय स्वयं शक्ति बढ़ाकर शासक बन बैठा और सलहदी तवर अपने साथी को जागीरदार बना दिया। मेदिनी राय ने चन्देरी आदि उत्तरी भाग दबाया और सलहदी तवर (तोमर) ने सारंगपुर से लेकर रायसेन तक का सारा प्रदेश दबा लिया और वहाँ का स्वतन्त्र शासक बन बैठा।[6]

१. दिल्ली सल्तनत-डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २६१ (१९६४).
२. वही पृष्ठ २६७
३. वही पृष्ठ २७०
४. बाबरनामा, बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग २, पृष्ठ ६१४ तथा मुगलकालीन भारत (बाबर नामा) १५२६-१५३० (बाबर) पृष्ठ २७८, २७६ (१९६० ई०)
५. मिरात ए सिकन्दरी का अंग्रेजी अनुवाद, फजलुल्ला लुत्फुल्ला फरीदी कृत पृष्ठ १०५, तोकेन मुहम्मडन डायनेस्टीज, गुजरात, एडवर्ड क्लाइव बेली द्वारा अनुवादित एवम् सम्पादित, पृ० २६५ फुट नोट फिरिश्ते चरित्र (१९६०) पृ० ४३० पर उद्धृत
६ तबकात-इ-अकबरी (ख्वाजा निजामुद्दीन कृत का अंग्रेजी अनुवाद भाग ३ पृ० ३८८-६०४, ६०८, ३०१-२

भेलसा, रायसेन और सारंगपुर के अधिपति सलहदी (शिलादित्य) तोमर की गणना मालवा के शक्तिशाली स्वाधीन शासकों में होने लगी थी। रायसेन राजधानी थी किन्तु सारंगपुर भी यदा-कदा निवास करता था उसके राज्याधिकारियों में कई एक जैन धर्मावलम्बी थे। जनता में उस समय जैन यति वाचनाचार्य जयवल्लभ (मालवी ऋषि) का विशेष प्रभाव था।[1]

इब्राहीम लोदी के काल में ग्वालियर गढ आत्मसात हो जाने पर ग्वालियर के तोमर वंशी राजा विक्रमाजीत (विक्रमादित्य) केवल सामन्त रह गए थे। वे भी पानीपत के युद्ध में २१ अप्रैल १५२६ ई० को राणा सांगा के निर्देशन में युद्ध करते वीर गति पा गए। आगे रामसिंह तोमर अपने पुत्रों के साथ 'हल्दीघाटी' के संग्राम में राणा प्रताप की सहायक सेना के रूप में 'अकबर' के साथ युद्ध करते हुए खेत रहे। राजकुमार 'श्यामसिंह' शेष बचा था जिसकी स्मृति में केशवदास महाकवि ने 'जहांगीर जस चन्द्रिका'' में प्रशस्ति में इस प्रकार लिखा[2]—

तूवंर तमाम को तिलक मानसिंह जू कौ,
कुल को कलश बड़ो पाण्डव प्रबल को।
जूझ मे जूम परे मूछती ज्यों देवन कौ,
किधौ हलधर के धरन हलाल को।
जालिम जुझार जहांगीर ज कौ सावत,
बहादुर है केशोराइ स्वामी हिन्दू दल को।
राजन की मण्डली को रजन विराजमान,
जानियत 'श्यामसिंह' सिंह गोपाचल को।
—केशवदास, जहांगीर जस चन्द्रिका।

गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर गढ़) के निर्माण की अनुश्रुति बुन्देलखण्ड के संक्षिप्त इतिहास[3] में वर्णित है। कछवाहे लोग अपनी उत्पत्ति अयोध्या के महाराज रामचन्द्र के पुत्र 'कुश' से बतलाते हैं।[4] इसी वंश के सूरजसेन नामक राजा का राज्य कुन्तलपुरी (कुटवार) नामक ग्राम के आसपास था। इस राजा ने संवत ३३२ में ग्वालियर का

१. (अ) तबकाते अकबरी (निजामुद्दीन) अंग्रेजी अनुवाद, भाग ३ पृ० ३१८-७ तारीख-इ-फरिश्ता फरिश्ता कृत (लखनऊ संस्करण) ४, पृ० २१०, ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ३५६-७

(ब) छिताई चरित्र-परिशिष्ट ५ (१९६०) ले० डॉ० रघुवीरसिंह पृष्ठ ४१२ पर उद्धृत
.. बाबरनामा (बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग-२) पृष्ठ ५६२, ५७१, ५६४, ५६७-६८

२ छिताई चरित्र की भूमिका पृष्ठ १३ पर उद्धृत।

३. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (१९६०) गोरेलाल तिवारी, पृष्ठ २८, २६

४. दिल्ली सल्तनत (१९६५ पंचम संस्करण) डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २६०

पुराना किला बनवाया। सूरजसेन कोढ़ी था। इसका कोढ़ ग्वालियर के निकट एक सिद्ध ने अच्छा कर दिया था। इसी सिद्ध के कहने से सूरजसेन ने ग्वालियर का पुराना किला बनवाया और इसी सिद्ध के आदेशानुसार अपना नाम 'सूरजपाल' रख लिया। फिर सूरजपाल के वंशजों ने अपने नाम के आगे 'पाल' शब्द लगाया। सूरजपाल के पश्चात इस वंश का चौरासीवां राजा तेजकर्ण नाम का था। इसके समय में कछवाहों का राज्य कन्नौज के राजा मिहिरभोज पड़िहार के अधीन हो गया।

कछवाहों का सम्बन्ध प्राचीन काल से 'नरवर' से रहा है। हमीरपुर, झांसी, जालौन आदि जिलों के भाई उसे अपने पूर्वजों का निवास स्थान मानते आये हैं।[1] नरवर के साथ ग्वालियर पर भी कछवाहों का बहुत समय तक अधिकार रहा।

उपर्युक्त कुन्तलपुरी (कुटवार) के राजा सूरजसेन के नाम से 'सूरजकुण्ड' अभी भी ग्वालियर गढ़ में विख्यात है। खड्गराय के गोपाचल आख्यान (ग्वालियर नामा) में 'सूरजसेन' का कोढ़ दूर करने वाले 'मुनि' का नाम 'ग्वालिया' दिया हुआ है। वर्णित 'ग्वालिया' साधु गोरखपंथी साधु होना प्रतीत होता है। गोपाचल आख्यान (ग्वालियर नामा) में वर्णित 'सहजनाथ' का विष्णुदास कवि को आशीर्वाद प्राप्त था जिसका यथास्थान विवेचन हुआ है।

श्लोक

गोपाचल महादुर्गे, ग्वालिया यत्र तिष्ठते
रिद्धि सिद्धि प्रदातारो, ये नमति दिने दिने।
नन्दीगन में सुन्यो सुन्यो भृंगीगन भारी
"सहजनाथ" में सुन्यो, सुन्यो जोगेंदु विचारी
नागनाथ सिवनाथ नाथ सुन्दर मति लीनो
चौन्हीया काल नाथ दा. कृष्णो दरसन दीनो
कवि स्वर्ग ब्रह्मानन्द मनै अलमिलानन्द गोरख निकट।
मुक्ति सिद्धि नव निधि की, सु 'ग्वालिया' कलि में प्रगट।

इसी संत 'ग्वालिया' के वास स्थान 'गिरि' को 'ग्वालिया गिरि' 'ग्वाल गिरि', 'गोप गिरि' 'गोवर्ग् गिरि' 'गोवर गिरि' 'गोपाचल' 'गोपाद्रि' कहा जाता रहा। नाथ सम्प्रदाय में भृंगनाथ, नागनाथ, सहजनाथ का सम्बन्ध इस उद्धरण से प्रकट होता है।

'ग्वालियर नामा'[2] में खड्गराय ने लिखा है कि सुनने को तो और भी गरुए (गरिमापूर्ण) गढ़ कानों से सुने हैं किन्तु वे उस ग्वालियर गढ़ की समानता नहीं कर

1. यू० पी० डिस्ट्रिक्ट गजेट व्हाल्यूम २२ तथा २४ सन १९०९ ई० इलियट्स् मेम्वायर्स आन दी रेसेज आफ एन. डब्लू. पी. ई. टी. सी. १८६९, पार्ट १ एथिनिकल को, पेज २४९
2. 'मध्यदेश में ग्वालियर अपना विशिष्ट स्थान रखता रहा है' (लेख) अगरचन्द नाहटा-भारती १९५५ मार्च, पृष्ठ २०८

सकते जिस पर राजा मान (मानसिंह तोमर) ने राज्य किया, वह मध्यलोक (पृथ्वी तल) पर सूर्य के समान उद्भासित है—

"सुने और गरए गढ़ मान, राज करे जो राजा मान
नहि ग्वालियर गढ़हि समान जैसे मघिलोक पर भान।"

इसी गोपाचल गढ़ की छाया में जैन मुनि 'ब्रह्म गुलाल' ने (१६१८ ई०) 'त्रेपन विधि' की रचना की है[1]—

'ब्रह्म गुलाल' विचारि बनाई, गढ़ गोपाचल थाने
छत्रपति बहुचक्र विराजे, साहि सलीम सुलताने।"

शाह सलीम (जहांगीर) मुगल काल में गढ़ गोपाचल स्थान पर 'ब्रह्मगुलाल' जैन मुनि ने अपनी रचना की थी।

ग्वालियर के महाकविराय सुन्दर के "सुन्दर शृंगार" (१६३१ ई०) की टीका कच्छ में कनक कुशल ने लिखी और गुजरात में इसे पढ़ाया जाता था।[2] सुन्दर शृंगार में कविराय सुन्दर ने स्वयं को ग्वालियर वासी विप्र होना बताया है। 'सुन्दर शृंगार' की निम्नलिखित पंक्तियां दतिया राजकीय पुस्तकालय के हस्तलिखित पुस्तक क्रमांक ४३६ में लेखक ने स्वयं देखकर लिखी हैं—

देवी पूत्र सरसुती पूजों हरि के पाई
नमस्कार कर जोर कें कहैं महाकवि राई ॥१॥
नगर आगरो बसत हैं जमुना तट सुभ थान
तहा पातसाही करें बैठो साहि जहान ॥२॥
विप्र गुआलियर नगर को वासी है कविराजु
जासौं साहि किया करी बडे गरीब नवाजु ॥११॥

(सं० १६४८) "सुन्दर शृंगार" में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवतु सौरह सै बरस बीते अडतालीस
कातिक सुद षष्टे गुरुऊ रचौ गिरथ कर विपरीत ॥१५॥
नवरस में शृंगार रसु सबतें नीको आय
तामे नीको नायका बरनत है कविराय ॥१६॥
सो पुन सुन्दर कवि कहै तीन भांति की नार
सुकया परक्या और सामानन्या परगट लेई विचार ॥१७॥

---

१ मध्यभारत सन्देश, ३१ दिसम्बर १६५५, लेख श्री नाहटा।

२ 'कच्छ में रचित एक हिन्दी ग्रन्थ'—'भारती' नवम्बर १६५६ पृष्ठ ७०८.

हृदयराम मिश्र ने 'रस रत्नाकर' में अपना वंश परिचय देते हुए अपने पूर्वजों को हरियाणा प्रदेश का विप्र बताया जहाँ कि तोमरों का आधिपत्य रहा था। विल्हण चरित्र के कवि दामोदर ने भी अपने परिचय में यही विप्र की छाप लगाई है और यह परम्परा विप्र लिखने की हरियाणा, ढिल्लिका नगर या कुरु जांगल प्रदेश में आये तोमरों के प्रशासक विप्रों ने डाली थी। उन्हीं तोमरों के वंशज ग्वालियर में शासक हुए। विप्र कवियों द्वारा यह यहाँ भी निबाही जाती रही। कविराय सुन्दर ग्वालियरवासी विप्र के पूर्वज कदाचित हरियाणा से ही आये प्रतीत होते हैं। इनके परिचय देने का ढंग लगभग एक ही है। हृदयराम मिश्र द्वारा तथा दामोदर द्वारा दिए गए वंश परिचय पर आगे विचार किया गया है।

'क्रिसन रुकमिणी री वेलि'-पृथ्वीराज राठौड़ कृत का रचनाकाल (१५८७ ई०) माना गया है।[1] कविवर समय सुन्दर के प्रशिष्य जयकीर्ति ने सन १६२६ ई० में इस काव्य की टीका लिखी है और अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों में किसी गोपाल की टीका का भी उल्लेख किया है।[2] गोपाल की इस टीका की भाषा को जयकीर्ति ने इस प्रकार कहा है—

ग्वालेरी भाषा सुपिल मद अरथ मितभाव

नाभादास के मूल ग्रन्थ भक्तमाल (१५८५ ई०) तथा प्रियादास की टीका (१७१० ई०) का मराठी अनुवाद 'भक्त-रत्नावली' नाम से किसी नाना बुआ केन्दूरकर ने पश्चिम खानदेश में स्थित अमलनेर में किया है[3]। इस हस्तलिखित ग्रन्थ में केन्दूरकर ने इस प्रकार की सूचना दी है—

"आता सद्गुरु कृपें करुन श्री नाभाजी कृत भक्तमाल अग्रदास कृपें करुन ग्वाल्हेरी भार्षेत मूल छप्पे नाभा स्वामी म्हणजे नारायणदास यांनीं गाइले आहेत। त्याचा वरद हस्त श्री प्रियादास चैतन्य यांजवर होऊन त्यांनी हिंदुस्थानी भार्षेत कवित्तें गाईली। तो अर्थ गूढ भोले भाले भक्त याचे समजण्यात भार्षेत येईना तेव्हा दयावंत भक्तवत्सल श्री रामानुज साम्प्रदायी श्री गोविन्दाचार्य संस्थान अमलनेर याजला करुण येऊन नाना बुआ नारायण साम्प्रदायी यास आज्ञा झाली की जगाचा उद्धार व्हावा असा भाव स्वरुप पिशाच्च लिपीत करुन सर्व जगाचा उद्धार करावा तेव्हा नाना बुआ है श्री नारायण कृपेनें पूर्ण च आहेत। त्याच्या कृपेनें हे भक्त मालिकेचे विस्तार पिशाच्च लिपीत सर्व जगास दक्षिणी भार्षेत समजावा म्हणून केला आहे।"

---

१. नरोत्तम शास्त्री-क्रिसन रुकमिणी री वेलि, पृष्ठ ७७

२. 'भारती' मार्च १९५५, पृष्ठ २०८ अगरचन्द नाहटा (लेख)

३. श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव के ग्वालियर स्थित संग्रह में 'भक्त रत्नावली' ग्रन्थ है। (मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ३३, ३४ से उद्धृत) सं० २०१२ वि०

इस ग्रन्थ की मूल लिपि पैशाची (मोडी) से उद्धार कर श्री भालेराव ने उपर्युक्त अंशो को मध्यदेसीय भाषा के लेखक को सुलभ कराया। इसमे नाभादास की भाषा को ग्वालियरी भाषा कहा है और प्रियादास की टीका की भाषा को हिन्दुस्तानी कहा गया है। ग्रन्थ के अन्त मे पुन नाभादासजी की भक्तमाल की भाषा को ग्वालियरी नाम से सम्बोधित किया गया है—

"मोरोबा अण्णा अमलनेरकर याचे शिष्य याजपासून प्रगट झाला। हे छप्पय ग्वाल्हेरी भाषेंत श्री नाभाजी ने केले आहेत। त्याज वर प्रियादास यानी टीका केली। है दक्षिणी लोको कविता हा प्रताप याचा आहे।" आदि

इन उद्धरणो से इस बात का पता चलता है कि लेखको एव टीकाकारो द्वारा 'भाषा' को "ग्वालियरी भाषा" नाम से अभिहित करने में उनकी दृष्टि मे ग्वालियर मध्यदेश का सास्कृतिक केन्द्र अवश्य रहा है।

श्री राहुल साकृत्यायन ने 'अकबर' मे अपने विचार प्रकट करते हुए कहा[1] "ब्रज मे पहिले इस भाषा मे की हुई कविता को 'ग्वालेरी भाषा' कहा जाता था। 'ग्वालेरी' आज बुन्देली कही जाती है। 'ग्वालेरी' के स्थान पर ब्रज का नाम कृष्ण भक्तो ने चलाना शुरू किया और वह चल भी गया, नाम से कुछ नहीं होता है। पूर्वी और पश्चिमी पजाबी मे काफी अन्तर है लेकिन उसके कारण पजाबी मे कोई समस्या नही होती। इसी तरह ब्रज कहिए, ग्वालेरी कहिए, बुन्देली कहिए या पचाली-सभी एक ही भाषा हैं। स्थानीय अन्तर को बहुत बढा चढाकर नही दिखाना चाहिए। अस्तु, अपभ्रंश काल मे भी तथाकथित ब्रज या ठीक से कहने मे मध्यदेसीया अपभ्रंश, प्रमुख स्थान रखती थी। बीच मे मुसलमानो के प्रताप के कारण दब जाने पर जब तुगलको के पतन के बाद ग्वालियर मे एक शक्तिशाली हिन्दू राजवश कायम हुआ तो छूटे सूत्र के छोर को उसने फिर पकडा। फिर, वहाँ अपनी भाषा के साहित्य को सरक्षण मिला। सगीतज्ञो और कलाकारो को आश्रय मिला और ग्वालियर कुछ दिनो के लिए एक बडा सास्कृतिक केन्द्र बन गया जिसके कारण ही अपभ्रंश के बाद वाली उसी मध्यदेश की कविता को 'ग्वालेरी' कहा जाने लगा और जिसे कृष्ण भक्तो ने जबरदस्ती ब्रज को चौरासी कोस मे सीमित करने की कोशिश की।'

श्री राहुलजी का जिस शक्तिशाली हिन्दू राजवश से आशय है, वह है पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी मे स्थापित तोमर राज्य। जिसे पूर्ववर्ती प्रतिहार, परमार, चन्देल, बुन्देल, कछवाहे तथा चौहान आदि राजपूतो की सास्कृतिक परम्पराएं मिली थी। साथ ही जैन साधुओं के सम्पर्क से उनके द्वारा किये गए सास्कृतिक विकास से भी उनका सम्बन्ध

1 'अकबर'—श्री राहुल साकृत्यायन (सस्करण १९५७, परिशिष्ट ३) (भाषा का नाम) पृष्ठ ३५०, किताब महल प्रकाशन, प्रयाग।

स्थापित हुआ। तोमरों का सम्बन्ध जौनपुर, दिल्ली तथा माण्डू के सुलतानों में भी सधि एव विग्रह का रहा। इस प्रकार इनके समय में ग्वालियर, साहित्य, संगीत एवं कलाओं का केन्द्र बन गया। जैनो की अपभ्रंश परम्परा तोमरों के राज्य में पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक चलती रही। अपभ्रंश का समृद्ध दोहा साहित्य तथा स्वयभू, पुष्पदन्त जैसे महाकवियो की रचनाओ से ग्वालियर गौरवान्वित हुआ। अनेक शैव और वैष्णव पडितो ने सस्कृत-साहित्य का सृजन किया। सुलतानो के सम्पर्क ने उनके साहित्य को विशाल दृष्टि दी एव सगीत को पुष्टि दी। भाषा के निर्माण का कार्य जो समस्त मध्यदेश मे विभिन्न रूपो मे प्रारम्भ हुआ था उसका रूप 'तोमर सभा' मे सवर सका। विक्रमादित्य तोमर के राज्यकाल समाप्ति के पूर्व तक ग्वालियर इतनी सास्कृतिक ख्याति अर्जित कर चुका था कि दिल्ली जैसलमेर एव दक्षिण मे अठारहवी शताब्दी के अन्त तक उसकी प्रतिध्वनि दूर तक सुनाई देती रही।

ग्वालियर के अतिम तोमर राजा विक्रमादित्य पराजित होने के पश्चात तोमर-सभा के पडित कवि और गायक अनेक दिशाओ मे नवीन आश्रयों की खोज में चले गये।[1] जो धार्मिक वृत्ति के थे उन्हे मथुरा-वृन्दावन मे नवोदित कृष्णभक्ति सम्प्रदायो मे प्रश्रय मिला। तानसेन और बख्शू जैसे गायक अन्य राजसभाओं मे चले गये और अधिकांश पण्डित तथा कवियों को प्रश्रय मिला ओरछा के प्रतापी बुन्देला राजाओं की राजसभा मे। ग्वालियर से हटकर सास्कृतिक राजधानी ओरछा में आ बसी जो बुन्देलखण्ड की वास्तविक राजनीतिक राजधानी भी थी।[2]

राजा रुद्रप्रतापसिंह बुन्देला ने कृष्णदत्त मिश्र को पुराणवृत्ति दी। मधुकरशाह बुन्देला ने काशीनाथ मिश्र को पुराणवृत्ति दी और स्वयं साहित्य की रचना की।[3] इन्द्रजीतसिंह बुन्देला कार्यवाहक राजा ने प्रवीणराय जैसी विदुषी पातुर से सगीत सभा को सम्पन्न रखा तथा प्रवीणराय एवं केशवदास महाकवि ने हिन्दी भाषा के साहित्य को समृद्ध किया।[4] वीरसिंह देव बुन्देला स्थापत्य के पुजारी रहे उन्होंने अनेक गढो, सरोवरों का निर्माण कराया, हरदौल देव बुन्देलखण्ड में वीर पूजा के प्रतीक बने। मधुकरशाह के राजगुरु हरीराम शुक्ला व्यास[5] (१५१०-१६१२ ई०) ओरछा के प्रकाण्ड

---

१ सगीत सम्राट तानसेन-प्रभुदयाल मीतल (२०१७ स०) पृष्ठ २३

२. बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी (१६६० स०) पृ० १२४ (महाराज रुद्रप्रताप ने वि० स० १५८८ वैशाख सुदी पूर्णिमा सोमवार तारीख ३ अप्रैल सन् १५३१ ई० को ओरछा बसाया था)

३. केशवदास और उनका साहित्य—डॉ० विजयगोपालसिंह (१६६१ ई०) प्रथम परिच्छेद पृष्ठ, १० ११।१५ पर कविप्रिया द्वितीय प्रभाव, छद २–१७ उद्धृत

४. वही, पृष्ठ २१, २२, ४०

५. भक्त कवि व्यासजी–(२००६) वासुदेव गोस्वामी, पृष्ठ ४३

पण्डित एवं सम्स्कृतज्ञ थे। व्यासजी ने हिन्दी साहित्य में पदों की रचना की। छत्रसाल के गुरु अक्षर अनन्य ने छत्रसाल से पत्र व्यवहार हिन्दी कविता में ही किया।[१]

महाकवि केशवदास के पुत्र महाकवि बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर में हुआ[२] उन्होंने हिन्दी साहित्य को 'सतसई, की रचना करके सेवा की।

आतरी (दतिया–ग्वालियर) के गोविन्द स्वामी शास्त्रीय संगीत के आचार्य थे एवं हिन्दी साहित्य में विष्णु पदों के रचयिता थे।[३] गोविन्द स्वामी, हरिराम व्यास[४] ब्रज में पहुँचकर भक्त–कवि बने रहे। गोविन्द स्वामी से तानसेन[४] ने भी संगीत-कला में में दक्षता प्राप्त की।

नरवरगढ़ के राजा आस करन कछवाहा ने भी गोविन्द स्वामी से संगीत सीखा तथा पद साहित्य की रचना की।

(चन्द्रपुर–३) चन्देरी में छीहल कवि ने 'पंच सहेली' की रचना की[५] तथा इस क्षेत्र में *निपट निरन्जन मस्त कवि भी हुए।*[७]

सिरोंज में रामदास मीना कवि (१६८४ ई०) हुए जिन्होंने उषा–अनिरुद्ध कथा का हिन्दी भाषा काव्य में सृजन किया।[८]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल में मध्यदेश में बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ओरछा, नरवर, दतिया, चन्देरी, सिरोंज आदि क्षेत्रों में हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सेवा हो रही थी और मध्यदेश में ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में अपना विशिष्ट स्थान रखता रहा।

---

१. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १५१, १५२
२. केशवदास और उनका साहित्य–डॉ० विजयपालसिंह पृष्ठ ५२, ५४, ५५
३ गोविन्द स्वामी और तानसेन–(श्री चन्द्रशेखर पन्त) भारती जून १९५६, पृष्ठ ३१२। संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ५१
४. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (हरिराय जी कृत) द्वितीय खण्ड पृष्ठ १८६ से १९३। ४-संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ २१।
५ *ग्वालियर राज्य अभिलेख क्रमांक ६३२*
६. *माधव कृत मैनासत (१९५६) परिशिष्ट ३ में प्रकाशित*
७. भारती दिसम्बर १९५७ पृष्ठ ७०० मध्यप्रदेश का हिन्दी साहित्य (प्रयागदत्त शुक्ल)
८. भारती जुलाई १९५५ [illegible] ४६२.

○ ○ ○

खण्ड १

अध्याय २

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- अ – कछवाहे और प्रतिहार
  ब – चन्देले और ग्वालियर
- तोमर
- अ – अफगान सुलतान एवं मुगल
  ब – गढ़ कुण्डार एवं ओरछा के गहरवार बुन्देलों और तोमरों का परस्पर सहयोग
- अ – कछवाहों का मुगलों से सहयोग एवं तोमरों तथा अन्य राजपूतों से विरोध
  ब – अष्टछाप एवं उसके प्रवर्तक श्री विट्ठलनाथ गोस्वामी की मुगल बादशाह अकबर के राज्यकाल में भूमिका

मध्ययुग में मध्यदेश में वे ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ क्या थीं जिन में ग्वालियर क्षेत्र में एवं बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ग्वालियर, नरवर, चन्देरी, दतिया एवं ओरछा के राजघरानों में आश्रय प्राप्त कवि हिन्दी की रचनाओं में संलग्न रहे ? उन्हीं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का कथन इस अध्याय में विवेच्य है।

कछवाहे और प्रतिहार

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि कुन्तलपुरी (कुन्ति प्रदेश कोतवार) के सूर्यवंशी कछवाहे राजा सूरजसेन ने नाम के अन्त में 'पाल' नाम धारण कर अपना

वंश चलाया इसी वंश के अंतिम राजा ने 'पाल' नाम धारण नहीं किया उसका नाम तेजकरण था।[1]

तेजकरण अथवा दूल्हा राजा (ढोला राजा) की प्रेम कथा का सम्बन्ध ग्वालियर स्थित नरवरगढ़ के राजा से रहा है। इस प्रेम कथा का स्वरूप सम्भवतः पहिले मौखिक ही रहा होगा, लोक गीतों में यह कथा मुखरित रही और बाद में कवियों ने इसे सग्रहीत रूप दे दिया होगा।[2]

'ढोला मारूरा दूहा' की प्रेम कथा में पुगल देश के राजा पिंगल की कन्या मारवणी और नरवरगढ़ के राजकुमार ढोला का प्रेम, खण्ड काव्य का विषय है। जैसलमेर के रावल हरिराज ने अपने समय में प्राप्य दूहों को एकत्र करवाकर अपने आश्रित जैन कवि कुशल लाभ को उनका कथा सूत्र मिलाने की आज्ञा दी। उक्त कवि ने चौपाइयाँ बनाकर और उनको दूहों के बीच-बीच में जोड़कर यह कार्य सम्पन्न किया।[3]

तेजकरण अथवा दूल्हा (ढोला) राजा ग्वालियर गढ़ का अपना राज्य अपने भानजे परमालदेव (परमार्दि देव) को सौंपकर दवसा के रणमल की राजकुमारी मारौनी (मारविणी) से विवाह करने चल पड़े थे। एक वर्ष के पश्चात् जब ढोला लौटे तो उन्हें ग्वालियर गढ़ नहीं लौटाया।[4]

सूर्यवंशी कछवाहों का राज्य आमेर में था जिसे आजकल जयपुर कहते हैं। आमेर राज्य दसवीं शताब्दी ई० के लगभग अपने प्रारम्भिक स्थापनाकाल से मेवाड़ के प्रभुत्व में रहा। १४ वीं शताब्दी में इसका राजनैतिक महत्व बढ़ गया और मुगलकाल में आमेर राजस्थान की प्रथम श्रेणी की रियासत हो गई।[5] राजस्थान के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक 'ढोला मारूरा दूहा' की प्रेम भरी कथा से आज भी लोग अभिज्ञ हैं। इस लोक प्रचलित कथा में जन सुलभ भावना के अनुरूप अनेक प्रसंग स्वतः नियोजित होते चले गए यह स्वाभाविक ही है। 'ढोला मारूरा दूहा' के देखने से यही प्रतिभासित होता है कि उसकी रचना किसी एक काल में नहीं हुई है। उसमें कहीं तो अति प्राचीन शब्द प्रयुक्त मिलते हैं, तो कहीं नवीन प्रयोग। इससे यही प्रतीत होता है कि सम्भवतः इसका स्वरूप भी पहिले मौखिक ही रहा होगा। डॉ० शकुन्तला दुबे ने यह

---

१ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल, पृष्ठ २८

२ ढोला मारू रा दूहा, स० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी नागरी प्रचा० सभा, काशी १९६१, निवेदन पृष्ठ ११

३ काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डॉ० शकुन्तला दुबे पृष्ठ १२४ लगायत १२६ (१९६४ ई०) हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१

४ ग्वालियर राज्य के अभिलेख, पृष्ठ ३७

५ दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृष्ठ २३०

निष्कर्ष ठीक ही निकाला है। आमेर और नरवरगढ़ में परस्पर सांस्कृतिक सम्बन्धों का यह कथा आभास कराती है। 'पाल' नामधारी सूर्यवंशी कछवाहे राजा 'तेजकरण' (तेजपाल-तेगपाल) ग्वालियर गढ़ का अधिपति था इसकी पुष्टि ग्वालियर नामा अथवा गोपाचल आख्यान में भी होती है जिसके लेखक कवि खड़गराय ने 'तेजपाल' का टीका (सगाई) आना तथा राज्य परमाल देव भानजे को सौंप जाना बताया है —

आई ग्वालीया डेरा लीयो।
तेग पाल को टीका दियो॥
सुनो यो बात भूप दे कान।
राखि चलो भानजे थान॥
तब भानेज मतो यह कियो।
चाहत गढ़ को आपुन लियो॥
मामा को जितनो रनिवास।
पठे दयो मामा के पास॥
तदपि राज मामा को लियो।
बड़ो राउ परमाल जो भयो॥

(गोपाचल आख्यान)

सूर्यवंशी कछवाहे राजा जिस कुन्तलपुर में राज्य करते थे वह कुन्तलपुर वर्तमान मध्यप्रदेश के मुरैना जिले में स्थित कुतवार-कोतवार सुहानिया ग्रामों के स्थान पर बसा हुआ था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उसे कांतिपुरी कहा जाता था और नाग राजाओं की एक राजधानी यह भी थी आगे चलकर इसी का नाम 'कुतवाल' पड़ा। विष्णुदास कवि ने महाभारत कथा (१४३२ ई०) के आदि पर्व में इसे कुन्ती से संबद्ध करते हुए लिखा है—

राजा सूरसेन की धिया। अति सरूप सो उत्तम त्रिया।
कुंतल राउ नगर कुतवाल। तिहि तप कियो अधिक अनियाल।
ताकें पुत्र न एकौ आहि। बहुत भाउ तीरथ को ताहि।
सूरसेन की कुवरि जु, वारी। कुंतल राउ घरहु प्रतिपाली।
इतनी सुनि तब कौंति लजानी। बोली नहीं रिषिन की कानी।
पहुंची आस नदी के तीरा। घालि मजूस बहायो नीरा।

'कुन्तलपुर' का छिताई चरित में भी उल्लेख आया है। जहां अलाउद्दीन की दक्षिण से लौटती हुई सेना ने गोपाचल गढ़ को बाईं ओर छोड़ दिया और सेना कुन्तलपुर पर आकर रुक गई।[1]

१. छिताई चरित, पृष्ठ ८७, २२१

मब मारओ घसिउ सुनिताना ।
आनि चदेरी कीयो मिलाना ॥
गोपाचल गढ वाए जानी ।
स्टक परिठ कोतलपुर आनी ॥

(छिताई चरित, पंक्ति ७०६-७१०)

इमी कुन्तलपुर का वर्णन सन १७६६ ई० मे शाहजहा के समय मे विरचित 'गोपाचल आख्यान' मे खडगराय ने किया है–[1]

बरनो सोनपाल को वस । सूरज वस बडौ अवतस ॥
धर्म जु कुनलपुरी अपार । सौरह कोस तनौ बिस्तार ॥
तिह पुर निस दिन बसै अनूप । राजा सोहनपाल तह भूप ॥
पुर पुर नगर चोहटे भीर । सोवत मारग चन्दन नीर ॥
बडौ भूप कछवाहो सूर । दान खर्ग मुख वरमै नूर ॥
पट्ठ परधना जै जै करी । नाउ ककलदे रानी रही ।
अति ऊच्यौ सिव मडप कर्यो । नाउ ककलदे को मठ धरयो ।

रानी ककलदे' के इस विशाल मदिर के अवशेष आज भी कुतवार–सुहानिया में हैं । महीपाल कछवाहे के ग्वालियर गढ पर पद्मनाभ विष्णु के मदिर के सवत् ११५० के शिलालख मे ककनदे रानी और उसके सुहानिया के शिवमदिर का उल्लेख है ।

ग्वालियर के कछवाहो का वश वृक्ष ग्वालियर गढ स्थित सास-बहू (सहस्नबाहु ?) के मदिर के सवत ११५० के अभिलेख मे दिया गया है–[2]

१–लक्ष्मण, २–वज्रदामन, ३–मगलराज, ४–कीर्तिराज, ५–मूलदेव (भुवनपाल, त्रैलोक्य मल), ६-देवपाल, ७-पद्मपाल, ८-सूर्यपाल, ९-महीपाल, १०-भुवनपाल, ११-मधुसूदन ।

सुहानिया (सिहपानिय) के सवत् १०३५ के अभिलेख मे वज्रदामन कच्छपघात का उल्लेख है ।[3] इसी वज्रदामन कच्छपघात ने गोपगिरि (ग्वालियर) कन्नौज के विनायकपाल प्रतिहार से जीता था ।[4] विनायकपाल प्रतिहार का उल्लेख रखेतरा या गढेलना (गुना) के प्रस्तर लेख मे मिलता है ।[5] प्रस्तुत प्रस्तर लेख मे विनायकपाल देव प्रतिहार को 'गोप गिरोन्द्र' भी लिखा है ।

१. 'खडगराय कृत गोपाचल आख्यान' दतिया राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त प्रति विद्यामदिर मुरार ग्वालियर मे है
२ ग्वालियर राज्य के अभिलेख ५५, ५६, ६१ [illegible] ११, १२
३ ग्वालियर राज्य के अभिलेख, क्रमाक २०, पृष्ठ ५
४. वही, पृष्ठ ११
५ वही, पृष्ठ ४

कच्छपघातो (कछवाहों) की एक शाखा का पता दुबकुण्ड (श्योपुर जिला, ग्वालियर कमिश्नरी) के ११४५ संवत् विक्रम के अभिलेख से चलता है जिसमें विक्रमसिंह कच्छपघात महाराज का उल्लेख है। कछवाहों की एक शाखा नलपुर (नरवर) में राज्य कर रही थी जो सं० ११७७ विक्रम के ताम्रपत्र से प्रकट है इसमें वीरसिंह कच्छपघात का उल्लेख है।[1]

कीर्तिराज ग्वालियर गढ़ के कछवाहे राजा ने मालवे के राजा को परास्त किया, यह चन्देलों का करद सामन्त था। इसके समय में महमूद गजनवी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी और उससे अधीनता स्वीकार करली।[2] मधुसूदन कछवाहे राजा ने संवत ११६१ में शिवमंदिर ग्वालियर में निर्माण कराया था. विजयपाल, सूर्यपाल और अनगपाल के पश्चात उनके उत्तराधिकारी सोनेगपाल (मुलक्षणपाल) कछवाहे के राज्यकाल में स० १२५२ (११९६ ई०) में मुहम्मद गोरी ने ग्वालियर गढ़ घेरकर अधीनता स्वीकार कराली थी।[3]

कछवाहों के पश्चात इस प्रदेश का शासन परिहारों के हाथ आया। अनुमान यह किया जाता है कि यह परिहार राजा कन्नौज के राठौर राजाओं की अधीनता स्वीकार करते थे।[4] मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि ईस्वी १२०२-३ में कुतुबुद्दीन एबक ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया और चन्देल राजा परमाल देव (परमादि देव) को हराकर कालिन्जर, महोबा और खजुराहो पर अधिकार कर लिया ग्वालियर गढ़ भी जीत लिया।[5] शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (अल्तमश) के शासनकाल (१२११-१२३६ ई०) में अजमेर, ग्वालियर और दोआब ने तुर्की साम्राज्य का जुआ उतार फेंका। मलयवर्म्मन प्रतिहार ने मुस्लिम सेना का प्रबल प्रतिरोध किया और ग्वालियर दुर्ग, नरवर तथा झासी को अधिकृत कर लिया, चन्देलों ने कालिन्जर तथा अजयगढ़ पुन. जीत लिए। चन्देल राजा त्रैलोक्य वर्मन तुर्की सेना का सामना नही कर सके। अल्तमश ने विदिशा और अवन्ती को लूटा और महाकाल का प्राचीन मंदिर ध्वस्त किया। विक्रमादित्य तथा अन्य राजाओं की अष्टधातु निर्मित मूर्तियों को भी दिल्ली अपने साथ ले गया।[6]

खड़गराय ने भी 'ग्वालियर नामा' में सारगदेव (१२११ ई०) परिहार के समय राजपूतानियों द्वारा ग्वालियर गढ़ स्थिति "जौहरा ताल" में जौहर किये जाने तथा शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की ग्वालियर गढ़ पर चढ़ाई का उल्लेख किया है—

---

१. वही, पृष्ठ ११ तथा १३ एव बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ २८ (गो० गोरेलाल)
२. दिल्ली सल्तनत-डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ ६४
३. वही, पृष्ठ ८१, तथा बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ३०
४. आर्कीलॉजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया, रिपोर्ट भाग २, पृष्ठ ३७६
५. दिल्ली सल्तनत-डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १०० (पंचम संस्करण १९६१)
६. वही, पृष्ठ १०६, ११०, १११ ११३ का फुटनोट

मत्तर रानी परम अनूप । तव इनकी मति मुनियो भूप ॥
जौहर कीवै को मतु ठयो । सारगदेवो[1] जु महल मे गयो ॥
जौहर भयो जौहरा ताल । देखि सराही मदै भुआल ॥

× + + +

गढ़ पै नरेस परिहार है, मारगदेवो अति तेग बल ।
कवि खर्ग भनै दल बल सहित, वालैत लरै बिनु परै न कल ॥
—(गोपाचल आख्यान)

चढ्यो सुरतान समसदी गाजि । गालमलें आयो दल साजि ॥

इस युद्ध मे भाग लेने वाले राजपूतों के वर्गो मे "खड्गराय" ने जादो, पड़ुवमी, सिकरवार, कछुवाहे, बुंदेला, बघेला, चन्देला, पंवार, हाडा, परिहार, भदौरिया, बडगूजर आदि का उल्लेख किया है।[2]

तेरहवीं शताब्दी के अंत तक चन्देरी, कदवाहा (कदम्बगुहा) तथा रन्नोद (रणिपद्र) के आस पास तक प्रतिहारों का राज्य रहा। कीर्तिपाल प्रतिहार ने चन्देरी का कीर्ति-दुर्ग, कीर्तिसागर तथा कीर्तिनारायण मन्दिर बनवाया मन्दिर ध्वस्त हो चुका है। सागर अभी भी कीर्तिमान है। चन्देरी दुर्ग पर नरवर गढ के चाहड़ वंशी गणपति यज्वपाल ने अधिकार कर लिया।[3]

चन्देले और ग्वालियर—

यशोवर्मन के पुत्र धगदेव ने महोबा मे कन्नौज की सम्पूर्ण श्री प्रतिष्ठित करदी और कालन्जर मे सेना के लिये दुर्ग रक्षित शिविर बनाया यही दुर्ग चन्देलों की सैनिक राजधानी बन गया।[4] सम्वत् १०५५ एव १०८६ के अभिलेखों मे धगदेव को क्रमशः 'मरकजुरवाहक' एव 'कालजराधिपति' कहा गया है।[5]

महमूद गजनी के आक्रमण का प्रतिकार कालन्जर, ग्वालियर, कन्नौज, अजमेर एव उज्जैन के राजाओं ने किया। ग्वालियर भी उस समय चन्देलों के अधीन होने से चन्देल शक्ति को ठोस बनाने मे महत्व का सिद्ध हुआ।

तत्कालीन इतिहासकार निजामुद्दीन ने महमूद गजनी द्वारा नन्द (गण्ड) के साम्राज्य पर आक्रमण का वर्णन किया है।[6]

१ मारगदेवो (मारगदेव)
२. ग्वालियर राज्य के अभिलेख, प्रस्तावना पृष्ठ ३८
३ वही, प्रस्तावना पृष्ठ ३३ (अभिलेख क्रमाक ६३०, ६६३) एवम् अभिलेख क्रमाक १७४ पृष्ठ २८
४. इंडियन एण्टीक्वेरी, भाग १६, पृष्ठ २०३, पंक्ति ७
५ एपीग्राफिया इण्डिका भाग १, पृष्ठ १४७ पंक्ति ३२—३३
६ चन्देल और उनका राजत्वकाल—केशवचन्द्र मिश्र, पृष्ठ ७८, ८६

कृष्णमिश्र विरचित 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक मे रूपक के रूप मे नित्य विवेक और महामाया के बीच शाश्वत चलने वाला संघर्ष प्रस्तुत किया गया है, उसमें सूत्रधार कहता है - 'चन्द्रवंश का शासक' (चन्देल चेदि सम्राट से अपदस्थ किया गया। उसी समय गोपाल ने चन्द्रवंश की सत्ता पुनः स्थापित की।[१] कीर्तिवर्मन चन्देल का प्रमुख सामन्त गोपाल ही था। परमार्दिदेव की मृत्यु तक चन्देल साम्राज्य मे—खजुराहो, कालञ्जर और महोबा तीन सुप्रसिद्ध राजधानियां बराबर सम्मिलित रहीं।

चन्देल परमार्दिदेव और चौहान शासक पृथ्वीराज एक दूसरे के शत्रु बने रहे जैसा कि चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो मे महोबाखण्ड मे वर्णित है।[२] परमार्दि की सहायता के लिये प्रसिद्ध वीर आल्हा, ऊदल तथा गहड़वाल शासक जयचन्द्र जुटे थे। भारतवर्ष के इतिहास में चन्देलो एवं चौहानो के युद्ध ने एक राष्ट्रीय संकट ला दिया। भारतवर्ष की सत्ताएं तुर्कों के दुर्दान्त आक्रमणो के समक्ष धराशायी होती जा रही थीं। यह एक ऐसी भूल थी जो राष्ट्रीय विनाश का कारण बनी।[३] कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा कालिन्जर और महोबा मे घोर नृशंसता एवं हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ को कुचला गया। चन्देलो का राजनीतिक महत्व उत्तर भारत के प्रांगण मे एक प्रकार से समाप्त हो जाता है यद्यपि अपने मूल साम्राज्य के भाग पर उनका अधिकार सोलहवीं सदी ईस्वी तक बना रहा।[४]

वीरवर्मन चन्देल का राज्य यमुना के दक्षिण तक रहा और सिन्ध नदी (बुन्देलखण्ड) तथा बेतवा नदियो के बीच उसका आधिपत्य था। भोजवर्मन के समय मे राज्य अशान्त था। इनका उत्तराधिकारी हम्मीरदेव रहा।[५]

कालञ्जर के राजा कीरतसिंह ने सन १५४५ ई० मे शेरशाह सूरी का सामना किया था।[६] कालञ्जर के राजा कीर्तिसिंह की पुत्री वीरांगना दुर्गावती ने गोंडवाने पर आक्रमण के समय वीरतापूर्वक सामना किया।[७] १५५५-६० ई० के बीच उसने कई बार मालवा के सुल्तान को हराया। इस समय उत्तर भारत मे राजपूतो की शक्ति के

१. प्रबोध चन्द्रोदय, प्रथम, पृष्ठ २, विक्रमांक देव चरित, बूलर द्वारा सम्पादित, भाग ३, पृष्ठ १८१
२. पृथ्वीराज रासो—स० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या और श्यामसुन्दरदास, बनारस (१९१३)
३. आर्को० सर्वे रि० भाग २ पृष्ठ ४८८ तथा हिस्ट्री आफ मिडवल हिन्दू इण्डिया, भाग ३, पृष्ठ १८३.
४. चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ १२६
५. तारीख फरिश्ता (ब्रिग्स का अनुवाद) भाग १, पृष्ठ ६३७ तथा चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ १२५, १२६
६. इण्डियन एण्टीक्वेरी (१९००) पृष्ठ ३१२
७. चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ १२८

तीन बड़े केन्द्रों में १५६८ ई० मे चित्तौड़ का पतन हुआ। १५६४ ई० में दूसरा केन्द्र रणथम्भौर राजपूतों के हाथ से जाता रहा। कालन्जर मे मध्यभारत की सैन्य केन्द्र शक्ति थी और राजा रामचन्द्र चन्देलों की राजकीय परम्परा की अन्तिम इकाई के रूप मे शासन कर रहा था। यह भी मुगलो के आधीन हो गया।

चन्देलों ने उत्तर भारत मे केन्द्रीय सार्वभौम सत्ता स्थापित करने की चेष्टा की थी और लगभग तीन सौ वर्षों तक तुर्कों के विरुद्ध संघर्षरत रहते हुए अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने मे उत्तर भारत के राजपूत शासकों मे वे अन्तिम थे।[1]

तोमर अफगान, सुलतान और मुगल -

भारत को जितनी क्षति और दुख तैमूरलंग ने पहुँचाया उतना उससे पहिले किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण मे नहीं पहुँचाया था। तैमूर के आक्रमण के पश्चात भारतवर्ष भूमिसात था और इसके घावों में रक्तस्राव हो रहा था। समस्त उत्तरी भारत मे घोर दुख एवं अराजकता का राज्य था। तिमूर ने हमारे देश के उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों, दिल्ली और राजस्थान के उत्तरी भागों को इतनी बुरी तरह लूटा, जलाया और नष्ट-भ्रष्ट किया कि उन प्रदेशों को अपनी पूर्व समृद्धि पुन प्राप्त करने म अनेक वर्ष लग गए।[2]

तैमूर के भूकम्पी धक्के के बाद दिल्ली पर नासिरुद्दीन नुसरतशाह ने मार्च-अप्रैल १३९९ ई० में अधिकार कर लिया किन्तु महमूद तुगलक के मंत्री मल्लू इकबाल खां ने संघर्ष करके १४००-१ ई० मे अधिकार कर लिया और ग्वालियर पर १४०२ ई० में मल्लू इकबाल खां ने टक्करें दीं किन्तु वरसिंह (वीरसिंह) के पुत्र वीरमदेव ने ग्वालियर, धौलपुर, इटावा मे संघर्ष करके ग्वालियर दुर्ग सुरक्षित रक्खा। बन्दिगी रायाते आला खिज्रखां ने मल्लू इकबाल खां का अन्त कर दिया।[3] वीरमदेव तोमर के काल मे रायाते आला खिज्र खां ग्वालियर पर धावा करके कर और धन लेते रहे।[4] बाद मे खिज्रखां के पुत्र मुबारकशाह ने १४२६-३० ई० में ग्वालियर पर गणपतिदेव तोमर तथा डूगरेन्द्रसिंह तोमर के काल मे असफल आक्रमण किए।[5] १४३२-३३ ई० मे डूगरेन्द्रसिंह तोमर ने मलिक कमालुद्दीन आक्रामक को असफल कर दिया। डूगरेन्द्र-सिंह को 'तारीखे मुहम्मदी' के लेखक मलिक बिहामद के हाथ सम्मानार्थ जड़ाऊ खिल-

१. महारानी दुर्गावती—बाबू वृन्दावनलाल वर्मा (१९६४) परिचय, पृष्ठ २, ३ एवं पृष्ठ ३, १२९
२ दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २४५ (१९६५ संस्करण)
३. उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग १ (१९५८ ई०) पृष्ठ ३, ४, ६, ७, ८, १३ तथा ५६ (स० सै० अतहर अब्बास रिजवी)
४. वही, पृष्ठ १६
५ वही, [illegible] १७, २१, २८, ३०, ६८, ३३, २६, ७६

अत आजम हुमायू ने (पोशाक) भेजी थी और भाण्डेर दुर्ग को बचा लिया था।[1] ग्वालियर मे 'शहरे नव'-(नरवर गढ) को डूगरेन्द्रसिंह तोमर ने विजित किया जिसका जैत खम्भ (विजय स्तम्भ) नरवरगढ मे आज भी विद्यमान है। मालवा के सुलतान महमूद खिलजी ने नरवरगढ मुक्त कराने का अभियान किया था तथा चन्देरी दुर्ग को विजय किया। चित्तौड के राणा कुम्भा के राज्य मे ई० १४५४-५५ मे महमूद खिलजी ने उत्पात किया था।[2]

बहलोल लोदी ने मुबारकशाह के पुत्र मुहम्मदशाह की निष्क्रियता का लाभ उठाया था और उसकी मृत्यु के बाद १४४४ ई० मे उसके पुत्र सुलतान अलाउद्दीन के जमाने मे दिल्ली सल्तनत प्राप्त करली।[3] वाकआते मुश्ताकी' के अनुसार सुलतान हुसैन शर्की ने ग्वालियर दुर्ग की मुक्ति हेतु प्रस्थान किया और घोर संघर्ष किया था।[4] उस समय 'तबकाते अकबरी' के अनुसार राय करनसिंह (कीर्तिसिंह) के पुत्र कल्याणमल तोमर राजा थे। कुतुब खा लोदी ने सुलतान हुसैन शर्की तथा ग्वालियर के राजा एक ओर तथा दूसरी ओर बहलोल लोदी के बीच गहरी शत्रुता करादी।[5]

१४५८ ई० मे बहलोल लोदी और जौनपुर के शासक हुसैनशाह शर्की के बीच सन्धि होने पर भी टकराव होते रहे। ग्वालियर का राजा कीर्तिसिंह तोमर शर्की की सहायता करते रहे, पहिले शर्की हुसैनशाह ने भी ग्वालियर रौंदा था। अन्त मे कालपी के समीप का बुन्देलखण्ड का भाग जौनपुर का अधिकृत प्रदेश लोदी के अधिकार में चला गया।[6]

कल्याणसिंह अथवा कल्याणमल तोमर कीर्तिसिंह के पुत्र के राज्यकाल मे कोई विशेष उथल पुथल नहीं हुई। 'अनगरग' कामशास्त्र की पुस्तक अहमदखा लोदी के पुत्र लाडखां के विनोदार्थ रची गई थी। दामो कवि ने 'विल्हण चरित्र' भी १४८० ई. मे रचा इन्होंने ग्वालियर दुर्ग मे 'बादल महल' का निर्माण कराया जो मानसिंह की स्थापत्य कला का पूर्व रूप है।[7]

---

१. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग २, पृष्ठ ४२
२. वही, पृष्ठ ८३, ६६-६७, ६६, फुटनोट (१)
३. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १, पृष्ठ ८४, ८५, ८७
४. वही, पृष्ठ १००, २०६
५ वही, पृष्ठ २०७
६ उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग १, पृष्ठ २०६, बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ८३ तथा दिल्ली सल्तनत पृष्ठ २०७, २३३, २३८
७. केशवदास और उनका साहित्य—डॉ० विजयपालसिंह, पृष्ठ १४७ मानसिंह और मानकुतूहल—पृष्ठ १० (२०१० वि०)

महाराज मानसिंह तोमर के काल मे तोमर वश का वैभव, शौर्य और कलाप्रियता बुद्धिमता सजीव प्रतिफलित हुई। बहलोल लोदी १४८६ ई० मे मरते समय तक असफल अभियान ग्वालियर पर करता रहा।[1] सिकन्दर लोदी (१४८६–१५१७ ई०) ने नरवर, चन्देरीगढ़ तो ले लिए किन्तु ग्वालियर हस्तगत करने के अभिप्राय से आगरा मे नई सैनिक छावनी बनाने के बावजूद भी नई राजधानी आगरा से किये गये आक्रमण विफल रहे।[2] इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६ ई०) ने अपने भाई जलालखाँ को शरण देने के कारण ग्वालियर पर आक्रमण जारी रखा किन्तु इब्राहीम लोदी की मृत्यु हो गई और मानसिंह का पुत्र विक्रमादित्य तोमर भी दिल्ली के सुलतान का करद सामन्त रह गया।[3]

चन्देरी और मालवा—

चन्देरी पर फरिश्ता के अनुसार महमूदशाह (प्रथम) खिलजी मालवा के शासक का अधिकार रहा।[4] इसके पुत्र गयासुद्दीन के नाम के शासन के शिलालेख दमोह एव गुना जिलो मे पाए जाते हैं। गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी पुत्र नासिरुद्दीन खिलजी तथा इसके पुत्र महमूदशाह द्वितीय के भी शिलालेख मिलते है।[5] महमूदशाह द्वितीय खिलजी के विरुद्ध हुए सामन्ती विद्रोह मे चन्देरी के मेदिनीराय वीर राजपूत ने जो उस समय खिलजी का वजीर था सहायता की[6] किन्तु महमूदशाह द्वितीय ने पीछे मेदिनीराय वजीर के साथ घात की। मेदिनीराय, राणा सागा के विरुद्ध सेना भेजी गई। सलहदी (शिलादित्य तोमर) मेदिनीराय के साथी (ग्वालियर निवासी) ने खिलजी को १५१९-२० ई० मे मारापुर मे पराजित किया और सलहदी ने मालवा पर अधिकार बढा लिया किन्तु गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने १५३१ ई० मे माण्डू (मालवा) पर चढाई की। रायसेन मे लोकमानसिंह सलहदी का भाई शासक था। सलहदी (शिलादित्य) राणा सागा का दामाद भी था। गुजरात के बहादुरशाह से टक्कर लेने मे चित्तौड़ से भी सहायता आई किन्तु काम न आ सकी। शिलादित्य को बलात् सलाहुद्दीन बनाया गया। चित्तोड़ के वीर राणा सागा की पुत्री तथा शिलादित्य की पटरानी दुर्गावती ने रनिवास मे जौहर किया। बहादुरशाह ने रायसेन का दुर्ग जीत लिया। सलहदी (शिलादित्य) तोमर राजपूत ने सलाहुदीन नाम से बलात् धर्म परिवर्तन कराने की

१. दिल्ली सल्तनत पृष्ठ २९१, तैमूरकालीन भारत भाग, १, पृष्ठ २१०
२. दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ २६७ तथा उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १, पृष्ठ २१६–२२५
३. दिल्ली सल्तनत पृष्ठ २७०–२७४, उत्तर तैमूर का० भारत भाग १, पृष्ठ २३६, २३७–३६ २९७, बुन्देलखण्ड का स० इतिहास, पृष्ठ ८६
४. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग २, पृष्ठ ६६, ७२, ९२
५ ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमाक ३१६, ३२०, ३२८, ३२९, ३६४, पृष्ठ ४३, ४४, ४८
६ उत्तर तैमूर का० भा० भाग २, पृष्ठ ११६, १२२–१२८

कुचेष्टा किये जाने पर भी रक्त की एक-एक बूंद से बहादुरशाह के अत्याचार का डटकर सामना किया और सपरिवार बलिदान किया।[1]

रायसेन के शिलादित्य (सलहदी) तोमर शासक, चन्देरी के मेदिनीराय, चित्तौड़ के राणा सांगा, कालपी के राजागण ने देश में बाबर मुगल आक्रमणकारी को पैर न रोपने देने के लिए यही उचित समझा था कि पुराने शत्रु इब्राहीम लोदी को समर्थन दिया जाए। इस संकल्प में महाराजा मानसिंह तोमर के पुत्र विक्रमादित्य तोमर ने महान वीरता का परिचय दिया था।[2]

मुगल बाबर ने २६ जनवरी १५२८ ई० को चन्देरी के शासक मेदिनीराय पर चढ़ाई की थी और राणा सांगा के विरुद्ध खानवा का युद्ध १६ मार्च १५२७ ई० में हुआ।[3] बाबर ने मेदिनीराय और राणा सांगा के विरुद्ध जिहाद छेड़ा था। उसे धर्मयुद्ध की भांति लड़ा गया था। बाबर गाजी बन गया राजपूतों की सैन्य शक्ति को कुचल-कर। वह अपने आपको काफ़िरों का नाशक समझने लगा किन्तु राजपूतों की शक्ति पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो सकी थी कुछ वर्षों में ही दिल्ली के शेरशाह को उससे मुकाबला करना पड़ा।[4]

बाबर ने दिल्ली आगरा और ग्वालियर की अपार धनराशि हस्तगत की। हुमायू ने विक्रमादित्य तोमर से कोहिनूर हीरा ग्वालियर से ही प्राप्त किया था जिसका मूल्य विश्व के दैनिक व्यय का आधा अनुमानित था।[5] इब्राहीम लोदी की मृत्यु के पश्चात हुई उत्पन्न अव्यवस्था में तातारखां ग्वालियर का शासक बन बैठा।[6]

बाबर की मृत्यु (२६ दिसम्बर १५३० ई०) के बाद उसकी उत्तराधिकारिता में बाबर का बहनोई महदी ख्वाजा तथा पुत्र कामरान, अस्करी, हिन्दाल और हुमायू के बीच संघर्ष में हुमायू को सिंहासनारूढ़ (२६ दिसम्बर १५३० ई० में) कराने में एक सूफी दरवेश-'शेख' का हाथ था। उस समय राजपूतों की शक्ति के विरुद्ध मुगल राज्य की स्थापना एवं उसकी भारत में दृढ़ता के लिए सूफियाना जामे पहिनकर अनेक दरवेश विभिन्न रूपों में कार्यरत थे। इसकी पुष्टि मझन कृत मधुमालती तथा खड़गराय कृत गोपाचल आख्यान में वर्णित घटनाओं में होती है। इस सन्दर्भ में डॉ० माताप्रसाद गुप्त

१. वही, पृष्ठ १२८–१३१, बुन्देलखण्ड का सं० इतिहास पृष्ठ ८४, ८५
२. मुगलकालीन भारत—डॉ० आशीर्वादीलाल (१६६५) [illegible] २२, २८ तथा बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ८६, ८७, मुगलकालीन भारत-बाबर (रिज़वी) पृष्ठ २६२–२६६, २६८
३. मुगलकालीन भारत डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ ३२
४. वही, पृष्ठ ४२
५. वही, पृष्ठ ३२, ३३, मानसिंह मानकुतूहल पृष्ठ १४
६. मुगलकालीन भारत—बाबर (सै० अतहर अब्बास रिज़वी) पृष्ठ ३६७, ३६१

ने इस बात की पुष्टि की है कि शेख मुहम्मद गौस का प्रभाव हुमायू पर होना स्वाभाविक है। वे शेरशाह सूर के कोप भाजन भी थे। खडगराय कृत गोपाचल आख्यान मे वर्णित घटना की ओर ही संभवतः मझन का संकेत है।[१]

शेख मुहम्मद गौस इस बात मे भी दिलचस्प रहे कि ग्वालियर गढ पर हिन्दू राजपूत अपना संगठन करके हावी न हो जाय अतएव उन्होंने रहीम दाद के गुनाह बाबर मुगल से बख्शा देने के लिए स्वयं ७ सितम्बर १५२९ ई० मे ग्वालियर से बाबर के पास पहुँचकर जोर डाला और शेख गुरन तथा नूरबेग को ग्वालियर इस आशय से भेजा गया कि वे रहीम दाद को तातारखा से ग्वालियर गढ पर आरूढ कराएँ क्योंकि तातारखा की मुगल भक्ति संदिग्ध हो रही थी। बाबरनामे में ९३३, ९३६ हिजरी सन क्रमश ८ अक्टूबर १५२६ से २५ अगस्त १५३० ई० के बीच ३० नवम्बर और २१ दिसम्बर १५२६ ई० तथा ७ सितम्बर १५२९ ई० का बाबर का रोज नामचा इस विषय मे स्पष्ट है,[२] और प्रामाणिक साक्ष्य इस बात की है कि शेख मुहम्मद गौस १५२६ ई० मे सूफी दरवेश के रूप मे मुगल शासन की दृढता के लिये ग्वालियर मे निवास कर रहे थे और उन्होंने लगभग १२ वर्ष तक मिर्जापुर जिले मे स्थित चुनार की पहाडियो मे अज्ञातवास किया।[३]

शेरशाह सूरी के और हुमायू के बीच १५३२ ई० के सितम्बर से चुनारगढ पर मुगल घेरा पडने के कारण कटुता उत्पन्न हो गई थी[४] अतएव २२ मई १५४५ मे कालिन्जर दुर्ग विजय मे शेरशाह सूर की मृत्यु हो जाने के उपरान्त ही शेरशाह सूर के कोपभाजन तथा हुमायू के समर्थक शेख मुहम्मद गौस प्रकट हुए।[५] और बाबरनामा के अनुसार फिर ग्वालियर निवास करने लगे तथा उनकी मृत्यु १५६२ ई० मे हुई।[६] बाबर ने रहीम दाद ख्वाजा के मदरसे और बगीचे ग्वालियर मे देखे थे। यह महदी ख्वाजा बाबर के बहनोई का भतीजा था जिसे शेख मुहम्मद गौस ने ग्वालियर गढ का शासक बाबर से नियुक्त कराया था।[७] इन समस्त तथ्यो से यह निष्कर्ष निकाला जाना

---

१ मझन कृत मधुमालती-सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका पृष्ठ १
पृष्ठ १४, १५ । 'हिन्दुस्तानी' -जुलाई-सितम्बर १९५६, पृष्ठ ९०
मझन के गुरु शेख मोहम्मद गौस —डॉ० श्याम मनोहर पाडेय।

२ मुगलकालीन भारत – बाबर (सै० अतहर अब्बास रिजवी १९६० (बाबरनामा) पृष्ठ ३४० तथा पृष्ठ २१९, २२०)

३ मुगलकालीन भारत – बाबर (बाबरनामा) स० रिजवी फुटनोट १, पृ० २२० मधुमालती–मझन (सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्ता) (पद २११-७)

४ मुगलकालीन भारत – डॉ० आशीर्वादीलाल (१९६२) पृष्ठ ८८, ८९, ९०

५ वही, पृष्ठ १३८

६ मुगलकालीन भारत बाबर (रिजवी सं०) पृष्ठ २२० फुटनोट (१)

७. वही, पृष्ठ २७३–२७७ तथा फुटनोट (२) पृष्ठ २७५

असंगत न होगा कि शेख मुहम्मद गौस की राजनैतिक हलचलों का मुख्य केन्द्र ग्वालियर ही रहा और उन्होंने अज्ञातवास के समय को छोड़कर मुख्यत: ग्वालियर में ही डेरा जमाया। शेख बहलूल भी हिन्द के उत्कृष्ट मनीषियों और बादशाह के कृपापात्रों में होना मुसलमान इतिहासकारों ने बताया है। शेख बहलूल और कोई नहीं थे शेख मुहम्मद गौस शत्तारी ग्वालियरी के बड़े भाई होना बताया गया है। शेख बहलूल को मिर्जा हिन्दाल के संकेत से हत्या करादी गई थी। मिर्जा हिन्दाल हुमायूं के विरोध में था जिसमें शेरखां (शेरशाह) को बल पहुंच रहा था। इस घटना में भी शेख मुहम्मद गौस को शत्तारी सम्प्रदाय के ग्वालियरी होना इतिहासकारों ने बताया है।[२]

कछवाहों की मुगल भक्ति

जनवरी १५६२ ई० में प्रथम बार अकबर बादशाह ने अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की यात्रा की। मार्ग में आमेर के राजा भारमल (बिहारीमल) से भेंट हुई। भारमल ने अपनी बेटी अकबर को ब्याह दी। इसी राजपूत कुमारी से जहांगीर (युवराज सलीम) उत्पन्न हुए थे। भारमल के दत्तक पुत्र भगवानदास तथा उनके पौत्र मानसिंह कछवाहे को अकबर के यहां उच्च पदों पर रखा गया इस विवाह द्वारा दिल्ली और जयपुर के राजघरानों मुगलों और कछवाहों में मैत्री सम्बन्ध दृढ़ हो गए।[३] रणथम्भौर पर सुरजनराय हाड़ा से अकबर से १५६९ ई० में संधि कराने में आमेर के भगवानदास कछवाहे का हाथ था। चित्तौड़ का दुर्ग विजय करके वीर जयमल पत्ता की पत्थर मूर्ति आगरा किले के दरवाजे पर स्थापित करादी गई।[४] कालिंजर का दुर्ग भी रीवा के राजा रामचन्द्र से अकबर ने अधिकृत करके उन्हें इलाहाबाद के पास जागीर दे दी। मालवा के बाजबहादुर ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार करली।[५] बीकानेर की राजकुमारी और जैसलमेर के राजा हरराज की राजकुमारी से अकबर ने ब्याह किया। १५७० ई० के अन्त में मेवाड़ को छोड़कर सम्पूर्ण राजस्थान ने अकबर की अधीनता मानली थी।[६]

हलदीघाटी १८ जून १५७६ ई० में तोमर और कछवाहों में संघर्ष

मेवाड़ विजय के लिए अकबर ने संघर्ष जारी रखा। हलदीघाटी के मैदान में अकबर की ओर से जगन्नाथ कछवाहा, मानसिंह कछवाहा आमेरकर्ता था और मेवाड़

---

१ हुमायूं भाग १ (स० रिजवी) पृष्ठ ६४ फुटनोट (१) तथा मुन्तखबुत्तवारीख – बदायूंनी भाग १, पृष्ठ ४–६

२. मुगलकालीन भारत – डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १६६-१६७

३. वही, पृष्ठ १३१–१३२

४. वही, पृष्ठ १६७–१६८

५. वही, पृष्ठ १३१–१३२

थे तथा कमान मानसिंह कछवाहा आमेर (जयपुर) के हाथ में थी। दूसरी ओर ग्वालियर के रामशाह (रामसिंह) तोमर, जयमल के पुत्र रामदास राठौर, हकीमखां सूर भामाशाह, बीदा के माना और स्वयं राणा व्यूह रचना में थे। इस युद्ध में (रामसिंह) रामशाह तोमर ग्वालियर के अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़े। रामसिंह तोमर के पुत्र भवानी सिंह प्रतापसिंह तोमर इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। मृत्युन्जय राणा प्रताप को बचाने के लिए रामसिंह तोमर आगे-आगे चल रहे थे कि जगन्नाथ कछवाहे ने उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया। १६ जनवरी १५६७ ई० में राणा प्रताप की मृत्यु होने पर अकबर ने राणा अमरसिंह के विरुद्ध भी सेनाएं भेजी किन्तु मेवाड़ नहीं जीत सका।[1]

बैरामखां के पुत्र अब्दुल रहीम खानखाना को मुलतान की गवर्नरी तथा मानसिंह कछवाहा आमेर को बिहार की गवर्नरी अकबर ने प्रदान की। बैरामखां की विधवा सलीमा बेगम से अकबर ने शादी करके अवयस्क अब्दुल रहीम खानखाना को अपने संरक्षण में प्रारंभ से ही ले लिया था।

अकबर ने दक्षिण विजय १५६३-१६०१ ई० में की। १५६६ ई० के लगभग असीरगढ़ अबुल फजल को भेजा गया था।[2]

खानदेश जाते समय अकबर ने युवराज सलीम को मेवाड़ के राणा अमरसिंह पर आक्रमण करने की आज्ञा दी जिसका युवराज सलीम ने पालन नहीं किया।[3] यह भी उल्लेखनीय है कि युवराज सलीम की शादी मानसिंह कछवाहे की बहिन राजा भगवान दास कछवाहे की पुत्री मानबाई से हुई थी। दूसरी शादी राजा उदयसिंह की पुत्री 'जगत गोसाईं' उर्फ जोधाबाई से हुई थी।[4]

युवराज सलीम और मानसिंह कछवाहे में अनबन

मानसिंह कछवाहा अपने भानजे खुसरो को अकबर का उत्तराधिकारी मान रहे थे युवराज सलीम से मानसिंह कछवाहे से अनबन हो गई।[5]

अकबर का ओरछा बुन्देलों के विरुद्ध अभियान—

नरवरगढ़ के आसकरन कछवाहे और उनके पुत्र राजसिंह ने मुगलों का साथ क्यों दिया ? तथा ओरछा के बुन्देलों के विरुद्ध मुगल अभियान में क्यों भाग लिया ? इस प्रश्न के समाधान के लिये आमेर गद्दी के इतिहास की ओर जाना होगा। आमेर के

---

१ मुगलकालीन भारत – डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १७४–१७७

२. वही पृष्ठ १८१–१८२

३ वही पृष्ठ २६२

४. वही पृष्ठ २६१

५. वही पृष्ठ २०२, २६३

को कुचलने की थी। तदनुसार, अकबर ने राजा रामशाह बुन्देला ओरछा तथा नरवर—ग्वालियर के आसकरन कछवाहे के साथ वीरसिंह देव बुन्देला पर चढ़ाई की किन्तु असफल रहे। वीरसिंहदेव ने बड़ोनी, पवाया (पद्मावती) नरवर (नलपुरा) बेलागम, देरछा, करहरा, हथनौरा, भाण्डेर, एरछ को रोंद डाला ग्वालियर का सूबा हिला दिया। अन्त में अबुल-फजल को दक्षिण से बुलाकर अकबर ने ओरछे के वीरसिंह देव पर चढ़ाई करने भेजा कि आसकरन के पुत्र राजसिंह ने बड़ोनी में आग लगवादी किन्तु ग्वालियर भाग कर प्राण बचा सका। १६०२ ई० में वीरसिंहदेव ने अबुल-फजल का शिर काटकर युवराज सलीम के पास भेज दिया।[1]

जहांगीर ने बादशाह बनते ही वीरसिंहदेव को ओरछे का राज्य लौटा दिया।[2] रामशाह को चन्देरी और बानपुर का राज्य दे दिया। भगवतराय को दतिया, चपत राय को महोबा, दीवान हरदौल को बड़ागाव दिया। चपतराय, खड़गराय, चन्द और सुभानराय भाई-भाई थे। चपतराय के छत्रसाल हुए।[3] दीवान हरदौल के बड़े भाई जुझारसिंह शाहजहां के यहां सामन्त थे। जुझारसिंह ने अपनी साध्वी पत्नी के पातिव्रत की कसौटी पर उसके द्वारा अपने अनुज हरदौल से अनुचित सम्बन्ध होने के संदेह पर विषयुक्त भोजन परोसवा दिया जिसके कारण हरदौल बुन्देलखण्ड में क्षत्रियराज नीलकण्ठ शिव के समान परम पावन देव समझे जाकर पूज्य है और जनमानस की श्रद्धा लोक गीतों में फूट पड़ी है।[4] वीरसिंह देव ने ओरछा को पुनः बसाया। इसका नाम जहांगीरपुर रक्खा। चतुर्भुज मन्दिर, वीरपुर ग्राम, वीर सागर तालाब और बावन गढ़ी धामोनी, झांसी, दतिया के दुर्ग, करेरा दुर्ग, दिनारा का वीर सरोवर आदि एवं मथुरा में ८१ इक्यासी मन सुवर्ण का तुलादान महाराज वीरसिंह देव बुन्देला ओरछा के अमर कीर्तिस्तम्भ हैं[5] और केशवदास महाकवि के चरित्र नायक है—वीरसिंह देव चरित, जहांगीर जसचन्द्रिका, कविप्रिया आदि रचनायें इन्हीं ऐतिहासिक परिस्थितियों की उपज हैं।[6]

---

१. बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास – गोरेलाल, पृष्ठ १२६–१३० तथा० १३४, मुगलकालीन भारत – डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २०३, केशवदास और उनका साहित्य – डॉ० विजयपाल सिंह, पृष्ठ ४७। इन्ट्रोडक्शन आफ आइने अकबरी प्रथम भाग, पृष्ठ ५६ (ब्लाकमैन)

२ बुन्देलखड का संक्षिप्त इतिहास – गोरेलाल, पृष्ठ १३८–३६०

३. वही, पृष्ठ १४८, १५०–१५१

४. वही पृष्ठ १४४, १४५

५. वही पृष्ठ १४०, १४४, ओरछा स्टेट गजेटियर, पृष्ठ ३३, ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक ३८६, पृष्ठ ५१

६. केशवदास और उनका साहित्य —डॉ० विजयपालसिंह, पृष्ठ ६४, १२८

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) आमेर और नरवर के कछवाहों का पारवारिक सम्बन्ध था और मुगल बादशाहों के साम्राज्य की दृढ़ता के लिये कछवाहे राजे प्रयत्नशील रहे।

(२) मुगल साम्राज्य बुन्देलों, तोमरों के विरोध में रहा और कछवाहे मुगलों के साथ रहे।

(३) मेवाड़, ग्वालियर ओरछा, चन्देरी के राजपूत मुगलों से झुके नहीं।

अष्टछाप के प्रवर्तक श्री विट्ठलनाथ गुसाईं की अकबर के राज्यकाल में भूमिका—

जो काम अकबर तलवार से नहीं कर सका, वह काम सांस्कृतिक समन्वय एवं मानवीय रागात्मक सूत्रों की एक निष्ठा का श्री विट्ठलनाथ गुसाईं ने किया। श्री विट्ठलनाथ गुसाईं ने ग्वालियर, नरवर एवं ओरछा, आलरी (दतिया) की प्रतिभाओं को एवं विभिन्न धर्मावलम्बियों को श्री नाथजी के संकीर्तनकार के रूप में एक जगह एकत्रित किया और उन कवियों, संकीर्तनकारों के आराध्य के प्रति पद रचना द्वारा हृदय के उद्गार उद्भूत होने का अवसर दिया। इससे सामूहिक दो लाभ हुए—एक तो कलाकार असाम्प्रदायिक होते हैं और मानव मात्र में एक ही परमात्मा की झलक पाते हैं—इस धारणा को ऐसे समय दृढ़ता मिली जब कि हिन्दू और मुसलमानों की विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय होने का मानवीय तकाजा था और अकबर दीन इलाही एवं राजस्थान के कछवाह राजपूतों में पारवारिक सम्बन्ध स्थापित करके असाम्प्रदायिकता एवं धार्मिक संकीर्णता को मिटा रहा था। वह भारतवर्ष से मुगल सत्ता का विदेशीपन मिटाना चाहता था, उसे वह ब्रज के शृंगार परक लीलाधाम द्वारा सरस अनुभव कराना चाहता था।

अकबर से पूर्व बहलोल लोदी (१४५१-१४८७ ई०) के राज्यकाल में श्री विट्ठलनाथ गुसाईं के पिता श्री वल्लभाचार्य १४७८ ई० में जन्मे थे।[१] १४९२ ई० में वल्लभाचार्य ब्रज में आये और १४९९ ई० में गोवर्धन पर श्री नाथ मन्दिर की नींव डाली गई।[२] सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७ ई०) के जमाने में मूर्तियों को ध्वस किया जाकर उनके टुकड़े कसाइयों को मांस तोलने के काम आ रहे थे। मथुरा, ग्वालियर, नरवर, चन्देरी में मन्दिर ध्वस हो रहे थे।[३] ऐसी स्थिति में 'अष्टछाप वार्ता'

(स) '...' भागवद् धर्म के ... में रक्षा करने के निमित्त श्री वल्लभाचार्य ने

२. बुन्देलखण्ड का ... इतिहास, पृष्ठ ७ (प्रो० यदुनाथ ...)
पृष्ठ १४ ... चतुर्वेदी, संस्करण १९७४ ई०, नाथद्वारा।
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ३१
४. मुगलकालीन भारत – डा० आशीर्वादीलाल पृष्ठ २६५

श्री गोवर्धननाथ की मूर्ति को स्थानान्तरित किया।[1] श्री कुम्भनदास को वल्लभाचार्य ने शरण में लिया। १५०६ ई० काशी में महाप्रभु का विवाह हुआ। वे अडैल (अलर्कपुर) में निवास करने लगे। इन्होंने अडैल से ब्रज जाते समय मार्ग में गऊघाट पर सूरदास को सम्प्रदाय में ले लिया और गोवर्धन पहुँचने पर कृष्णदास को शरण में ले लिया। १५०९ ई० में अर्द्धनिर्मित मन्दिर में श्री नाथजी की स्थापना हुई। अडैल में ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ का जन्म हुआ। वल्लभ जगदीश यात्रा करते हुए चुनार पहुँचे वहाँ १५१५ ई० में विट्ठलनाथ का जन्म हुआ। फिर अडैल में पधारने पर 'परमानन्ददास' को शिष्य बनाया। अन्त में १५३० ई० में काशी में वल्लभाचार्य ने जल समाधि ले ली।[2]

इसके पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ आचार्य हुए। गुजरात प्रचार केन्द्र था। गोपीनाथ के पुत्र पुरुषोत्तम समाप्त हो गए थे। इसके पीछे गोपीनाथ जी भी १५३८ ई० में चल बसे। श्री विट्ठलनाथजी आचार्य बनाए गए।[3] श्री विट्ठलनाथ की पहिली पत्नी रुक्मिणी देवी से ६ पुत्र हुए। १५६३ ई० में विट्ठलनाथ का दूसरा विवाह हुआ जिससे घनश्याम सातवां पुत्र १५७१ ई० में उत्पन्न हुआ। १५६६ ई० में अडैल से सपरिवार विट्ठलनाथजी पहिले गोकुल में कुछ महीने आकर रहे। बाद में चार साल मथुरा रहे किन्तु स्थायी निवास की आवश्यकता थी। इसी बीच तत्कालीन मुगल बादशाह अकबर ने १५६६ ई० में फरमान द्वारा गोकुल और गोवर्धन में माफी में जमीन देदी जिसके कारण १५७१ ई० में गोकुल को स्थायी निवास बनाया जा सका।[4] सम्राट अकबर ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से प्रसन्न होकर गोकुल में निर्भयपूर्वक रहने, गौए उन्मुक्त चरने आदि के फरमान निकाले। एक फरमान इस प्रकार है— "तरजुमा फरमान अलिये जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह गाजी"

—"इस वक्त में हमने हुक्म फरमाया कि विट्ठलराय बिरहमन जो बिला शुबह हमारा शुभचिन्तक है, उसकी गायें जहां कहीं हों, वे चरें। खालसा व जागीरदार कोई उनको तकलीफ न देवें, न रोके टोकें व चरने में मुमानत करें, छोड़ देवें कि उसकी गायें चरती रहें और वह आजादी से गोकुल में रहे।"

---

४ अष्टछाप—पं० कण्ठमणि शास्त्री (सं० १६९७ की वार्ता और भावप्रकाश) २००९ सम्वत् काकरोली, पृष्ठ ३१४—३१६

१ वल्लभ दिग्विजय, पृष्ठ ५०, ५२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ ७१

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ ७२

३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ ७२ तथा ७६

"चाहिये कि हुक्म के मुताबिक तामील करें और कदामत रक्खें और हुक्म के खिलाफ न करें। तहरीर तारीख ३ माह सफर सन ९८९ हिजरी मुताबिक सन १५८१ ई० सवन १६३८ वि०"[1]

"वार्ता" की प्रामाणिकता संदिग्ध

'अष्टछाप' में प्रथम चतुष्टय – सूरदास, परमानंद दास, कुम्भनदास और कृष्णदास की वार्ता '८४ वार्ता' के अन्त में दी गई है। शेष चार – चतुर्भुजदास, नन्ददास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी की वार्ता, "२५२ वैष्णवन की वार्ता" में सकलित है। स० १६९७ वाली प्रति में ८४ और २५२ वार्ता में से संकलित रूप है जो "स० १६९७ की वार्ता और भावप्रकाश" कांकरोली से प्रकाशित है।[2]

'२५२ वार्ता' की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि वार्ता में ऐसा विस्तार छोड़ दिया गया है और उसे इस प्रकार सकुचित किया गया है जो भक्त वैष्णवों की वृत्ति को स्थिर करने तथा श्री (महा) प्रभुन के प्रति निष्ठा दृढ़ करने में सहायक हो इसका स्पष्ट आशय है कि 'वार्ता' के प्रकाशन का उद्देश्य साम्प्रदायिक है और बहुत से चारित्रिक एवं ऐतिहासिक महत्व के प्रसंग कदाचित छोड़ दिये गये हैं। प्रकाशक का यह भी मत है कि २५२ वैष्णवन वार्ता सम्पूर्ण प्राप्त न होने से वल्लभ कुल के शिष्यों तथा प्राचीन वैष्णवों के मुख से सुनने के आधार पर 'वार्ता' मिलाकर प्रकाशित कराई है।[3]

८४ वैष्णवन वार्ता गो० विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र गोकुलनाथजी (स० १६०८-१६९७ वि०) द्वारा गद्य में लिखी गयी किन्तु श्री मीतल के मतानुसार ये गोकुलनाथ जी के पौत्र गोस्वामी हरिराय द्वारा (१६४७-१७७२ वि० स०) वार्ता वर्तमान रूप में लिखी गई है। मूल रूप प्रवचन गोकुलनाथजी द्वारा कथित हुए थे।[4]

गो० विट्ठलनाथजी के चार अष्टछापी सेवकों के जीवन वृत्तान्त के लिए प्रकाशित वार्ता के अंशों की प्रामाणिकता असंदिग्ध नहीं कही जा सकती[5] मुख्यतया उनकी दृष्टि में कृपालु सम्राट अकबर के विरोधी ग्वालियर, ओरछा, दतिया तथा मेवाड़ के भक्त कवियों एवं कलाविदों की कला को 'वार्ता' में ऐतिहासिक रूप में बिना भेदभाव के सुरक्षित नहीं रखा जा सका।

उदाहरण के तौर पर अष्टछापी गोविन्दस्वामी को 'आतरी ग्राम' के निवासी बताकर 'अष्टछाप' (कांकरोली) के सम्पादक पो० कण्ठमणि-शास्त्री ने ग्वालियर स्टेट

---

१. वही पृष्ठ ३२ पर उद्धृत "इम्पीरियल फरमान्स" –
स० के० एम० झावेरी, बम्बई, पृष्ठ ४१, ४२
२. अष्टछाप (कांकरोली) पृष्ठ १०
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त पृ० १३८, १४०.
४. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ ३८
५. वही, उपरोक्त (२)

की भिण्ड तेहसील मे आतरी स्थित होने की टिप्पणी दी है यद्यपि आतरी ग्वालियर जिले मे ही है।[1] 'आसकरन' नरवरगढ के थे। *यह नरवरगढ, ग्वालियर का ही भाग था किन्तु वार्ता से पता नही चलता।* सूरदास के विषय मे ८४ वार्ता सदिग्ध हैं। लगभग सौ वर्ष बाद सुनी सुनाई विभिन्न चर्चाओ पर जोडी गई 'वार्ता' कहा तक ऐतिहासिकता सुरक्षित रख सकी होगी ? यह सहज अनुमान का विषय है। मेवाड की मीरा को 'दासी राइ' की उपाधि ही 'वार्ता' मे मिल सकी क्योंकि वह न तो ऐसे *राजघराने की थी जो मुगलो के कृपापात्र रहे हो और न वह महाप्रभु की कण्ठीबन्द चेलिन थी।*[2]

'बीरबल', टॉड के कथनानुसार, आमेर नरेश राजा भगवानदास के आश्रय मे थे। *बाद मे उन्होने बीरबल को नजर रूप मे अकबर के यहा भेज दिया था।*[3] छीतस्वामी बीरबल के पूज्य पुरोहित थे।[4]

कुभनदास से मानसिंह कछवाहा जयपुर भेंट करने थे तथा मानसिंह कछवाहा के आगमन पर श्री ठाकुरजी तथा मदिरो की सजावट विशेष रूप से होती थी।[5]

बीरबल की बेटी भी श्री विट्ठलनाथ जी की सेविका बनी थी।[6]

गो० विट्ठलनाथजी ने ओरछा पधार कर मधुकरशाह बुन्देला को अपना शिष्यत्व ग्रहण करने के माध्यम से सम्राट अकबर के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने की भी चेष्टा की थी। किन्तु ओरछा के बुन्देले 'अकबर के प्रति अपने हृदय का झुकाव उत्पन्न नहीं कर सके और न उन्होने 'पुष्टिमार्ग' अपनाया बल्कि मधुकरशाह बुन्देला नृसिंह भक्त रहा फिर भी 'वार्ता' मे मधुकर शाह को श्री गुसाईं जी महाराज का सेवक बन जाना अर्थात शिष्यत्व ग्रहण करना बताया गया है।[7] *मधुकरशाह बुन्देला जीवन के चौथे चरण के अन्तिम प्रहर मे सारे जन्म की 'नृसिंह' के प्रति निष्ठा त्याग कर सहसा पूर्व अभ्यास को छोड नया मत्र दीक्षा ग्रहण करता या भय के मारे अकबर के कृपापात्र बनने के निमित्त बुद्ध करता यह ओरछा के बुन्देलो से अपेक्षा नही की जा सकती।*

---

१. अष्टछाप (काकरोली) पृष्ठ २६४
२ ८४ वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २०७
३ 'राजस्थान' भाग २, पृष्ठ ३६०, अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृष्ठ ८३ पर उद्धृत.
४. अष्टछाप (काकरोली) पृष्ठ ६१०
५ वही, पृष्ठ २३६, २३७, २४७
६. दो सौ वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ १३१, १३२
७ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, क्रमाक २४६
मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ११३, ११४। बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल, पृष्ठ १२६-१२७

शिष्य थे। 'आसकरन' राजा को भक्तमाल में कील्हदेव का शिष्य बताया गया है।[१] यह भी ज्ञातव्य है कि श्री राजा आसकरन कछवाहे को नरवर (ग्वालियर) से तानसेन गुसाईं जी की शरण में ले गए थे।[२] भारमल, भगवानदास, मानसिंह सभी अकबर के नातेदार हो गये थे और राजनैतिक परिस्थिति भी कछवाहों की बुन्देलों के विरुद्ध रही थी अतएव श्री गुसाईंजी अकबर के कृपा-पात्र की शरण ही सुखद थी।

तानसेन ने मानसिंह तोमर द्वारा सस्थापित संगीत कला केन्द्र ग्वालियर में संगीत का ज्ञान प्राप्त किया[३] और जो बाघवगढ (रीवा) के बघेला राजा रामचन्द्र के दरबार में भी रहे। ग्वालियर के तोमर और रीवा के बघेला राजा रामचन्द्र से भी अकबर से टक्करें हुई। इसके बलात्कार तानसेन को भी ख्वाजा मुहम्मद गौस की वर्षों पूर्व सतत प्रेरणा पर अपने दरबार में अकबर ने खींच लिया और अपने राजनैतिक शिविर में श्री गुसाईं विट्ठलनाथ के अष्टछापी कवि गोविन्द स्वामी के पास उनकी रुचि के अनुकूल संगीत शास्त्र में व्यस्त कर दिया।[४]

श्री स्मिथ के अनुसार तानसेन सूरदास महाकवि अष्टछापी के भी घनिष्ट मित्र थे।[५] सूरदास और अकबर मिलन की घटना डॉ० दीनदयालु गुप्त १५७५-१५८२ ई० के बीच मानते हैं किन्तु तानसेन को १५६२ ई० में ही अकबरी दरबार में लिया जा चुका था।[६]

गोविन्द स्वामी शरणागति के समय डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार कम से कम ३० वर्ष की आयु के थे और वार्ता के अनुसार शरणागति के पूर्व उच्च कोटि के कवि सिद्ध गवैये, स्वामी, अनेक शिष्यों के गुरु थे।[७] विक्रमादित्य तोमर के पानीपत युद्ध में

---

१ भक्तमाल प्रियादास कृत टीका एवं श्री वणीदास कृत टिप्पणी समेत—देवीदास गुप्त, गोवर्धन (मथुरा) प्रथम संस्करण भूमिका पृष्ठ ४ तथा पृष्ठ ३६८ नाभादास का छप्पय क्रमांक १३६

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता : पृष्ठ १६१-१६३, अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ११२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ २७१.

३. अकबर दी ग्रेट मुगल (स्मिथ) पृष्ठ ४३५.

४ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ २७०, २७१। २५२ वैष्णवन की वार्ता गुसाईंजी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, पृष्ठ ४७५, ४७६, २३७, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई। अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ १०४।१०६। संगीत सम्राट तानसेन पृष्ठ ३, २३, ५०

५ अकबर दी ग्रेट मुगल (स्मिथ) पृष्ठ ४२५, शिवसिंह सरोज पृ० ४२८।
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ २०२, अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृष्ठ १०७, अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९।२८०.

६ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय. पृष्ठ २७१, २७२

७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ २७१, २७२.

अदमान के बाद ग्वालियर के ये कलाकार गोकुल (वृन्दावन) में कीर्तनकार बने और इनके पास तानसेन आसकरण आदि भी समय के साथ पहुँचे।

बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह, 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के रचयिता ने अकबर की ओर से काबुल में विजय प्राप्त की थी, वह भी गुसाईं विट्ठलनाथ की शरण हो गये थे।[1] रानी दुर्गावती भी इनकी शिष्या हो गई थी।

यह उल्लेखनीय है कि वल्लभ मत में श्री विट्ठलनाथजी ने सभी जाति के व्यक्तियों को अपने सम्प्रदाय की भक्ति का अधिकार दिया था। वल्लभ मत में तानसेन की आस्था हो गई थी और अकबरी दरबार में आना जाना कम हो गया था।[2]

वल्लभ मत की पुष्टिमार्गीय भक्ति में प्रीति और करुणा का महत्व सर्वोपरि रखा गया है और उसे इसी कारण 'रागानुगा' भक्ति कही गयी है। प्रभु अनुग्रह की पावना आने पर भक्त सदैव के लिए निश्चिन्त हो जाता है क्योंकि इसके अनन्तर परमाराध्य ही भक्त के समस्त कार्यों का नियामक रहता है।[3] डॉ० आशीर्वादीलाल ने मुगल-कालीन भारत में 'दीन इलाही' के द्वारा केवल राजनैतिक एकता को प्रमुख रूप से प्रतिपादित किया गया है और इसे साम्राज्य के विशिष्ट पुरुषों सामन्तों ने नहीं अपनाया था। सिर्फ बीरबल को छोड़कर।[4] इस दृष्टि से 'वल्लभ मत' को प्रश्रय देना अकबर की तत्कालीन राजनैतिक विचारधारा का ही एक अंग था। यह बताया जा चुका है कि वल्लभ मत में गुसाईं विट्ठलनाथ की [illegible] में तथा उनके अष्टछापी कवियों के पास अकबर के सभी विशिष्ट सामन्तों की पहुँच थी।[5] देशाधिपति अकबर बीरबल से कहते थे कि "श्री गुसाईं जी पालना झुलावते हते और श्री नवनीत प्रियाजी झुलावते हते मोहू ऐसे दर्शन भए हैं" "तुमको गुरु के स्वरूप को ज्ञान नहीं है ऐसेन सों तुमरी प्रीति नहीं है—" ? तब बीरबल की बेटी शिष्या हुई और अकबर अपने हरम की राजमहिषियों को लेकर नन्ददास से मिलने पहुँचते रहे। 'रूपमंजरी वार्ता' द्रष्टव्य है।[6]

---

१. २५२ वार्ता पृष्ठ ४८२-८४

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ७७-७८, अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ११२-११३.

३ "भक्ति रसामृत सिन्धु" पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक ६२ अणु भाष्य, चतुर्थ अध्याय, चतुर्थपाद सूत्र ६, पृ० ११०४, सिद्धान्तमुक्तावली, षोडश ग्रन्थ-भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक १८, पृष्ठ ३१.

४. मुगलकालीन भारत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १६५ (१९६६ सं०)

५. अष्टछाप (कांकरौली) पृष्ठ ५५, ५९, २३६, २९८, २४२, २४४, २४३, २४७.

६ दो सौ वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ २२, २५, १२१, १२२, रूपमंजरी वार्ता पृष्ठ ४६६, मध्यदेशीय भाषा पृष्ठ १२१

उपयुक्त तथ्यों से ये निष्कर्ष निकलता है कि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता राजनैतिक एकता के अन्तर्भूत उद्देश्य पर आधारित थी। अयोध्या के राममन्दिर मसजिदों में बदल गए, तुलसीदास का नाम मुगल इतिहासकारों द्वारा वर्ज्य समझा गया। परकीया प्रेम के सरस निर्वाह की गुंजायश अयोध्या काशी में न थी, वृन्दावन की भक्ति में थी। इसी कारण अकबर के साम्राज्य के प्रभाव के साथ-साथ पुष्टिमार्ग के आचार्य विट्ठलनाथ का प्रभाव बढ़ता गया। पूर्व दीक्षित और गुरु एवं स्वामी लोग बुढ़ापे में श्री विट्ठलनाथ की दीक्षा लेने लगे और निर्भय विचरने लगे।

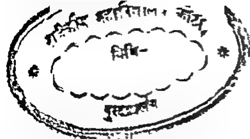
ग्वालियर ओरछे के आश्रित कवि, कलावन्त, राजनैतिक एवं धार्मिकउत्पीडन से बचने, शान्ति और स्थिरता पूर्वक कला की सेवा जारी रखने के उद्देश्य से यह अधिक उचित समझते थे कि अकबर काल में गोकुल वृन्दावन में कोई राजनीतिक उत्पीडन नहीं हो सकेगा अतएव वहीं रहा जाय। ग्वालियर के संगीत कला विद् ध्रुपदिए थे[1] अतएव इनके माध्यम से ध्रुपद गायन शैली की गूंज पुष्टिमार्ग में होती हुई अकबरी दरबार में पहुंची और श्री विट्ठलनाथ के आश्रय से ग्वालियर (ओरछा, ओतरी, नरवर) के अष्टछापी संकीर्तनकारों ने पदों एवं ध्रुपद शैली की रचनाओं में परिनिष्ठित काव्य भाषा हिन्दी का उपयोग किया।[2]



○ ○ ○

१. अ–अष्टछाप परिचय-प्रभुदयाल मीतल, पृष्ट ३२७, ३२८
ब–संगीत सम्राट तानसेन–श्री मीतल ३, १२–१३, २३, ५० (२०१७ वि० सम्वत्)
स–भक्त कवि व्यासजी–वासुदेव गोस्वामी (२००६ सं०) पृष्ठ १४३

२. अ–भक्त शिरोमणि हरिराम व्यास–बाबूलाल गोस्वामी दैनिक वीर अर्जुन १ दिसम्बर १९६६ ई०
ब–शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३८२.



खण्ड १

अध्याय ३

सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

संगीत, साहित्य एवं मध्ययुगीन कला (स्थापत्य, मूर्ति तथा चित्र)

- जैन धर्म का प्रभाव
- नाथ पंथ और संत मत का प्रभाव
- सूफी संतों का प्रभाव
- मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव

सन १३९८ ईस्वी के पश्चात और सन १५२६ के बीच भारतीय संस्कृति एक नई दिशा में मुड़ी। इस काल में अधिकांश राज्यों में मुसलमानों का शासन था और उनमें अनेक हिन्दू त्रस्त थे। किन्तु, उत्तरी भारत में राजस्थान, ग्वालियर तथा बुन्देलखण्ड के भू-भाग में अब भी हिन्दुओं का वर्चस्व था और अनेक स्थानों के साहित्य-सेवी और कलाकार इनके आश्रित हो गए थे। राज्य दरबारों के अतिरिक्त छोटे बड़े हिन्दू जमींदार भी आश्रय दे रहे थे। मुसलमानी-शासन में भी नीति बदल रही थी। अरब, फारस या ईरान से सैनिक आने की आशा नहीं रही थी। मुसलमानों को इस देश में बसे कुछ शताब्दियाँ हो जाने से वे पुराने पड़ रहे थे। कुछ मुस्लिम शासक हिन्दुओं पर कठोरता का व्यवहार करते थे। सताप देते थे। मन्दिर और मूर्तियों को नष्ट करते थे परन्तु भारत के लिये अब वे विदेशी नहीं थे बल्कि वे अब भारत के मुसलमान थे और अब झगड़े का सन्दर्भ "विदेशी और भारतीय" के बीच नहीं था – केवल हिन्दू और मुस्लिमों का था।

मुसलमान सुल्तानों ने भलीभाँति समझ लिया कि भारत में रहकर भारत के हिन्दुओं से बैर-भाव अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। इसलिये उनकी नीति में

परिवर्तन हुआ। उनमे उदारता तथा सहिष्णुता की प्रवृति आई। इस शताब्दि मे काश्मीर का शाहस्ता (जैनुल आब्दीन)[1] सरीखा उदार मुसलमान भी था जिसने घृणित जजिया कर हटा दिया। अपने राज्य मे गोवध बन्द करा दिया और अपनी सम्पूर्ण प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी। काश्मीरी होने के अतिरिक्त जैनुल आब्दीन फारसी, हिन्दी तथा तिब्बती भाषाओ का विद्वान था। वह साहित्य कला, संगीत तथा चित्रकला का पोषक था। उसने महाभारत तथा राजतरंगिणी का फारसी मे अनुवाद कराया। इसी प्रकार अरबी तथा फारसी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का उसने हिन्दी मे अनुवाद कराया। काश्मीरी ब्राह्मणो के उन परिवारों को जिन्हे उसके पिता सिकन्दर 'बुत शिकन' ने निर्वासित कर दिया था, उन्हें अपने घरो को वापिस लौटने की आज्ञा दी गई और हिन्दु विद्वानो को उसने अपने दरबार मे आश्रय दिया।

जौनपुर का इब्राहीम शाह, शर्की वंश का महानतम शासक था। वह सुसंस्कृत सुल्तान तथा विद्या का सरक्षक था। उसने देश के विभिन्न भागो से विद्वानो तथा धर्मशास्त्रज्ञो को आमन्त्रित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस्लामी धर्मशास्त्रो, कानून तथा अन्य विषयो पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। उसके संरक्षण मे जौनपुर मे स्थापत्य की एक नयी शैली का विकास हुआ जो शर्की–शैली के नाम से प्रसिद्ध है। अटाला मसजिद अधिक सुन्दर बनी है, उस पर हिन्दू स्थापत्य का प्रभाव दीख पड़ता है। इब्राहीम को संगीत तथा अन्य ललित कलाओ से भी प्रेम था। उच्चकोटि के सांस्कृतिक कार्यों के कारण इस सुल्तान के समय मे जौनपुर "भारत का शीराज" नाम से विख्यात हुआ।[2]

गुजरात के महमूद बेगडा ने हिन्दुओ के प्रति असहिष्णु रहते हुए भी गुजरात के वैभव और प्रताप की श्रीवृद्धि की।[3]

परन्तु, प्रायः सुल्तानो ने हिन्दी एवं संस्कृत के विद्वानो को आश्रय नगण्य सा ही दिया। लखनसेनी के 'हरिचरित्र' विराट पर्व से विदित होता है कि लखनसेनी को जौनपुर छोडकर अन्यत्र शरण लेनी पडी। उसने लिखा है–"जौनपुर का राजा इब्राहीम शाह बड़ा शक्तिशाली था। उस समय गुणियो का बडा ह्रास हो गया था। जयदेव, धाघ एवं विद्यापति उठ चुके थे। उस समय देश (वासस्थान) का घोर पतन हो गया था। अच्छे अच्छे राजाओ और उनके आश्रय मे रहने वाले गुणीजनो के न रहने से

१. दिल्ली सल्तनत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ २८६ तथा मुगलकालीन भारत (डॉ० आशीर्वादी लाल) पृष्ठ ८ एवम् भारतीय संस्कृति का विकास (प्रो० जी० एन० मेहरा) पृष्ठ २६६ चतुर्थ स० १६६६.

२ दिल्ली सल्तनत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ २७६–२७७.

३. वही, पृष्ठ २८१

अधम श्रेणी के मनुष्यों का बाहुल्य होता जा रहा था। अतः जन परिजन सहित कवि ने यह देश छोड़ दिया।"

बादसाहि जै बीरम साही, राज करहि महिमंडल माही।
आपुन महाबली पुहुमी धावै, जउनपुर महं छत्र चलावै।
भवन चौदह सह इकासी, लखनसेनी कवि कथा प्रकासी।

\+　　　　+　　　　+　　　　+

जै देव चले सर्ग की बाटा, जो गए येष सुरपति भाटा।
नगर नरिंद जो गए उनारी, विद्यापति कहु गड बचारी।
अमृत कुंड मध जे घटाई, नीचनी कुंड नर अब गई।
जिन्ह पापीन्ह कह बोज उठाऊ, जे नहीं लीन्ह जन्मभर नाऊ।
तेहि पापी तह रापीए जेइ हरिनाम न लीन
अधम लोनी सा जीव करि, भ्रम होइ मनि दीन्ह।
भारीव पथ उपरिब पाले समपुर जग समार।
लखनसेनी नाइ ने बसे, साढ़ो जो साही उधार।

—लखनसेनी (हरि विराट पर्व)

जिस प्रदेश को अरबी फारसी के विद्वान "भारत का शीराज" कहते थे वही प्रदेश इस हिन्दू साहित्यसेवी की दृष्टि में उपेक्षणीय था। यही कारण है कि समुचित प्रश्रय के अभाव में अवध और जौनपुर के हिन्दू धर्मावलम्बी कवियों ने ग्वालियर, मेवाड़ तथा अन्य हिन्दू राज्यों में शरण ली। कासी के 'ईश्वरदास' तथा अवध के 'मानिक' ने इसी उपक्रम में पलायन किया। ये दोनों कवि ग्वालियर आए। इससे स्पष्ट है कि मुस्लिम और हिन्दू राज्यों में पोषित कवियों के साहित्य की दोनों धाराओं का विवेचन अपेक्षित है। वैसे कबीर जैसे सार्वदेशिक व्यक्ति भी सामने आए जिनकी धारा संगम का रूप लिए थी। महात्मा कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडित और मुल्ला न सही, किन्तु साधारण जनता 'राम' और 'रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों (दरवेशों) को, दोनों दीन के लोग, आदर करते थे। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिन्दू मुसलमानों का दास्तान हमजा। नल और दमयन्ती की कथा मुसलमान जानने लगे थे और लैला-मजनूं की हिन्दू।[1]

चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानंद के प्रभाव से प्रेम प्रधान वैष्णव धर्म का जो प्रवाह बंग देश से लेकर गुजरात तक रहा, उसका सबसे अधिक विरोध शाक्त-

---

१　जायसी ग्रन्थावली-(रामचन्द्र शुक्ल) २०१३ वि०, भूमिका पृष्ठ ९

मत और वाम मार्ग के साथ दिखाई पड़ा। शाक्तमत-विहित पशु-हिंसा, मंत्र-तंत्र तथा यक्षिणी की पूजा वेद-विरुद्ध अनाचार के रूप में समझी जाने लगी। 'सामान्य' आदर्श की प्रतिष्ठा में दरवेश 'अहिंसा' का सिद्धान्त मानकर मांस भक्षण को बुरा कहने लगे थे।

ऐसी परिस्थितियों में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे। हिन्दुओं के घर की इन कहानियों की मधुरता और कोमलता का अनुभव करके आख्यान-काव्य के प्रणेताओं ने यह आभास करा दिया कि मनुष्य मात्र के हृदयों का रागात्मक सूत्र एक ही है जिसे स्पर्श करते ही मनुष्य बाह्य भेदों की ओर से विरत होकर एकत्व का अनुभव करता है।

अमीर खुसरो ने मुसलमानी राज्यकाल के आरम्भ में ही हिन्दू जनता के प्रेम और विनोद में योग देकर भाव-विनिमय का श्रीगणेश किया था किन्तु अलाउद्दीन खिलजी (१२९६ ई०-१३१६ ई०)[1] के कट्टरपन तथा अत्याचार के कारण दोनों जातियाँ एक दूसरे से खिंची सी रहीं।[2] कबीर की अटपटी बानी से भी दोनों के दिल साफ न हुए। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी, अपने नित्य के व्यवहार में जिस हृदय-साम्य का अनुभव मनुष्य कभी कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना होनी थी। इस अभाव को पूरा प्रेमाख्यानकारों ने किया। अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।[3]

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान काव्यों के विद्वान संपादक एवं मीमांसक डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने खानजहाँ के लड़के जूनाशाह के प्रधानमंत्रित्वकाल में 'लोर-कहा' का रचनाकाल ७८१ हि० (१३७९ ई०) माना है तथा 'चन्दायन' के सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने भी यही स्वीकार किया है।[4] किन्तु उनके मत में, 'चन्दायन' के प्राप्त अंशों में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनमें चाँदा को आध्यात्मिक पक्ष का प्रतीक माना गया हो। मान-

---

१ दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १६६, १८८।

२. हबीब द्वारा अनूदित अमीर खुसरो का 'खज़ाइन-उल-फ़ुतूह' पृष्ठ ४८

३ जायसी ग्रन्थावली (आचार्य शुक्ल) भूमिका, पृष्ठ ७

४. लोर कहा-सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त (भूमिका पृष्ठ १, ४) चन्दायन (सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद) प्रस्तावना, पृष्ठ १७ (१९६२ ई०)

कीय आसक्ति की समागता और ईश्वरीय प्रेम की सारवत्ता का जो आभास कथानक में छिट-पुट पाया जाता है, उसी के कारण संभवतः उस समय के सूफी साधक प्रभावित होते थे। उनके विरह-वर्णनों में और प्रेम की अभिव्यक्ति में परोक्ष सत्ता के प्रति अनुराग और तड़प की झलक मिल जाती है।[1] प्रो० अन्सारी के इस मत में कि "जायसी से भिन्न हमारे १४वीं शताब्दी के मौलाना ने अपने को केवल लोक-प्रचलित विश्वासों तथा हिन्दुओं के धर्माख्यानों तक ही सीमित रक्खा है।" डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने असहमति प्रकट करते हुए यह मत स्थिर किया है कि 'लोर कहा' का कवि अपनी रचना के अर्थ-विचार पर बल देते हुए 'हिरदई जानि सो चाँदा रानी' कहकर स्पष्ट रूप से कथा के रहस्य-परक होने का निर्देश करता है।[2]

इस प्रकार सूफी प्रेमाख्यान काव्यों की परम्परा का श्रीगणेश मौलाना दाऊद की 'लोर कहा' (चंदायन) सन् १३७९ ई० में ही हो जाता है। आचार्य शुक्ल ने कुतबन की मृगावती (९०९ हिजरी) से प्रेमगाथा की परम्परा का प्रारम्भ माना था।[3]

एक ओर तो कट्टर और अन्यायी सिकन्दर लोदी (ई० १४८९-१५१७) मथुरा के मंदिरों को गिराकर मसजिदें खड़ी कर रहा था और हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहा था।[4] दूसरी ओर पूरब में बंगाल के शासक हुसैनशाह[5] (१४९३-१५१८) के अनुरोध से, जिसने 'सत्य पीर' की कथा चलाई थी, 'कुतबन' एक ऐसी कहानी लेकर जनता के सामने आए जिसके द्वारा उन्होंने मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य होने का परिचय दिया। इसी मनुष्यत्व को ऊपर करने से हिन्दूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि के उस स्वरूप का प्रतिरोध होता है जो विरोध की ओर ले जाता है। नुसरतशाह के काल में भी (१५१८-१५३३ ई०) कला और साहित्य का संरक्षण हुआ।

जायसी ने प्रेमियों के दृष्टान्त देते हुए अपने से पूर्व की लिखी हुई कुछ प्रेम कहानियों का उल्लेख किया है जिनमें मुग्धावती, प्रेमावती, मृगावती, मधुमालती एवं ऊषा-अनिरुद्ध कथा के नाम आए हैं किन्तु लोरक, मैना या चन्दा का नाम नहीं दिया गया यद्यपि जहाँगीरकालीन 'रूपावती' में इसका उल्लेख हुआ है इसे डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने कथाकारों का रुचि वैचित्र्य माना है।[6]

---

१. चन्दायन, प्रस्तावना पृष्ठ १६
२. लोर कहा-भूमिका पृष्ठ १०
३ जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृष्ठ ३
४. हिन्दी मसनवी, पृष्ठ २६५
५. वही, पृष्ठ २८५.
६. चन्दायन, प्रस्तावना, पृष्ठ १६.

दाऊद की 'लोर कहा' (चदायन) मे 'जाति अहिर हम लोरक नाऊं' उक्ति मे लोरक ही सर्वत्र प्रधान नायक के रूप मे दिखाई पड़ता है। नायिकायें दो हैं—चादा और मैना किन्तु डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने 'भोपाल प्रति' के वद, ३६ के आधार पर एक तीसरी नायिका 'मजरी' का भी नामोल्लेख किया है।[1] सूफी कवियो के प्रेमाख्यान काव्यों मे भी एक प्रधान, दूसरी सौत और कभी तीसरी सौत भी रहती है। कुतबन की 'मृगावती' मे मृगावती, रुकुमिन, जायसी के पद्मावत मे 'पद्मावती' और 'नागमती' शेख नबी के 'ज्ञानदीपक' मे 'देवजानी' और 'सुरजानी' तथा दुखहरनदास की 'पुहुपावती', मे रगीली और रूपावती पाई जाती हैं। उसी प्रकार चन्दायन मे भी कथा प्रायः मैना, चादा और लोरिक के ही आसपास चक्कर काटती रहती है। इस कथा का विस्तार क्षेत्र बिहार के उत्तरी भागो से लेकर सुदूर दक्षिण के हैदराबाद तक है। उत्तर मे गया मारन, रामनगर, शाहाबाद, मिर्जापुर, छत्तीसगढ का जिला रायपुर और बुन्देलखण्ड, राजस्थान आदि मे सर्वत्र किसी न किसी रूप मे इस लोकगाथा का प्रचार पाया जाता है।

जायसी के पीछे भी प्रेमगाथा की यह परम्परा कुछ दिनो तक चलती रही। गाजीपुर निवासी शेख हुसैन के पुत्र उसमान (मान) ने 'चित्रावली' लिखी। नूरमुहम्मद ने 'इद्रावत' लिखी। इन प्रेमगाथा काव्यो की रचना भारतीय चरित काव्यों की सर्गबध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियो के ढग पर हुई। जिनमें कथा सर्गों या अध्यायो मे विस्तार के भय से विभक्त नहीं होती, बराबर चली चलती है, केवल स्थान स्थान पर घटनाओ या प्रसगो का उल्लेख शीर्षक के रूप मे रहता है। 'मसनवी' के लिये नियमानुसार सारा काव्य एक ही छन्द मे होना चाहिये पर परम्परा के अनुसार उसमे कथारभ के पहिले ईश्वर स्तुति, पैगम्बर की वदना और शाहेवक्त की प्रशसा होनी चाहिये। ये बाते पद्मावत, इन्द्रावत, मृगावती इत्यादि सबमे पाई जाती हैं।

ये सूफी प्रेम कहानिया हिन्दी भाषा मे केवल चौपाई दोहे मे एक नियत क्रम के साथ लिखी गई हैं और मुसलमानो के द्वारा ही लिखी गई हैं इन भावुक और उदार मुसलमानो ने इनके द्वारा हिन्दू जीवन के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। यह कथन भी आचार्य शुक्ल का युक्तियुक्त है कि यदि मुसलमान हिन्दी और हिन्दू साहित्य से दूर न भागते, इनके अध्ययन का क्रम जारी रखते, तो उनमे हिन्दुओं के प्रति सद्भाव की वह कमी न रह जाती जो कभी-कभी दिखाई पड़ती है।[2]

डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया का कथन है कि वेदातकालीन विचारधारा और बौद्ध दर्शन का स्पष्ट प्रभाव इस्लाम पर पडा किन्तु इस्लाम की कट्टरता उसको स्वीकार नहीं कर सकी। इसलिए प्रतिक्रिया स्वरूप सूफी सम्प्रदाय का विकास इस्लाम से पृथक एव

१. चन्दायन, प्रस्तावना पृष्ठ १६

२. जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृष्ठ ४

स्वतन्त्र रीति से हुआ। अरब और फारस में इस्लाम के पहिले ही वेदान्तिक दर्शन ने संसार की सर्वदेशवादी व्याख्या की थी इस विचारधारा ने पूर्व में (भारत, फारस एशिया माइनर में) काफी प्रसिद्धि प्राप्त की और इसको मानने वाले "दरवेश" कहलाए।[1] ये प्रेम के तत्व को महत्त्व देते थे। कालांतर में इन फकीरों पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा और सूफी मत का उदय हुआ। सूफी लोग मुसलमान होते हुए भी कट्टरता से बचे थे। उनकी साधना 'मारिफत' कहलाती थी। किन्तु फिर भी इस्लाम सूफियों को नहीं छोड़ सका।[2]

इस्लाम यदि अपने आपको केवल सूफी विचारों के रूप में ही भारत में प्रस्तुत करता तो भारत में इस्लाम का इतिहास कुछ और ही होता।[3]

डॉ० सुदर्शनसिंह सूफी मत को "इस्लाम" की ही प्रेमपूर्ण व्याख्या कहते हैं उसे एक प्रकार का इस्लाम का ही उप-सम्प्रदाय बताते हैं। साथ ही वे यह भी प्रतिपादित करते हैं कि दार्शनिकों, पंडितों और धर्माचार्यों के धरातल के नीचे जनता के स्तर पर मुस्लिम काल में जो चेतना उठी, जो हृदय-मन्थन हुआ उसका सबसे सुन्दर निष्कर्ष यह था कि इस्लाम और हिन्दुत्व दोनों को किसी न किसी प्रकार का एक समन्वित रूप ले लेना चाहिए। जाति और धर्म अनेकता के कारण होते हैं। वह अनेकता यहां संस्कृति के अनुशासन के नीचे भलीभांति दब चुकी थी।[4]

भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में इन सन्तों का योगदान समाज, साहित्य और धर्म में सबसे बड़ा था। बाह्याचार और छुआछूत के विरोध में विचार प्रकट कर क्रांति को जन्म दिया। निचली जातियों की सामाजिक मर्यादा को उनकी तत्कालीन अवस्था में इन्होंने कहीं ऊंचा उठाया। अवतारवाद मूर्तिपूजा के विरोध में धर्म में अंधविश्वास दूर करने का प्रयास किया। भारतीय मध्यकालीन संस्कृति की एकता को बनाये रखने का प्रयास इन्हीं सन्तों ने किया। इनकी विचार धारा किसी विशिष्ट जाति, वर्ग, सम्प्रदाय हिन्दू या मुसलमानों के लिए न होकर भारतीयों के लिए थी। इन सन्तों की पृष्ठभूमि एक प्रकार से रामानन्द और चैतन्य ने तैयार करदी थी। बंगाल में इन्हीं को मर्मी कवि कहा जाता है। इसी विचारधारा के प्रवर्तक पंजाब में सिख गुरु थे।[5]

कबीर, दादू और नानक की आवाज लोगों के हृदय की आवाज थी। निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा[6] के कवियों पर नाथपंथियों और सिद्धों का पूरा प्रभाव परिलक्षित

---

१. एडवर्ड जी० ब्राउन, लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ दी पर्शा, पृष्ठ १२३.
२ सन्त-साहित्य (डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया) १९६२ पृ० ६७, ६८
३. वही, पृष्ठ ६८
४. वही, पृष्ठ ३६६
५ वही, पृष्ठ ७०
६. हिंदी साहित्य का इतिहास (संस्करण १९६६ ई०) आचार्य शुक्ल, पृष्ठ ८६.

होता है। गोरखनाथ के नाथ पथ का मूल भी बौद्ध वज्रयान शाखा ही है, तथापि नाथपथ मे वज्रयानी सिद्धो जैसी वीभत्सता नही आ सकी। इन पथ मे ईश्वरवाद को स्वीकार करके हठयोग–साधना अग्रसर हुई थी। नाथपंथियो की भाषा सधुक्कडी है तथा इनका ढाचा खडी बोली मिश्रित राजस्थानी है। इनके गीतों मे प्राय आत्मा, मन, पवन, नाद, सुरति, निरति, इला, पिंगला, सुषुम्ना, गुरु महिमा, माया, बिन्दु, मूर्ति-पूजा के निषेध इत्यादि साधनामूलक बातो का उल्लेख मिलता है। नाथपन्थी योगियो और सहजयानियो मे उलट बांसिया भी खूब प्रचलित थी।[1]

हिन्दी गीतिकाव्य की पूर्व पीठिका के रूप मे अपभ्रंश काल की ये रचनाएँ उपयोगी हैं यद्यपि राजनीतिक परिस्थितियो के कारण यह युग गीतिकाव्य के विशेष अनुकूल नही है। मध्यभारत, राजस्थान उन दिनो राजनीति और युद्धो का केन्द्र बना हुआ था अत. कविगण अपने आश्रयदाताओ के युद्धो, आखेटो और विवाहो इत्यादि के वर्णन मे ही तल्लीन थे। अमीर खुसरो और विद्यापति की रचनाओ को छोड़कर किसी ऐसे कवि की प्रामाणिक रचनाए इस काल मे नही मिलती जिनका प्रणयन गाने के लिए ही किया गया हो। बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, आल्हखड का नाम प्रामाणिकता के विवाद से दूर रहकर लिया जा सकता है।[2]

विद्यापति के कृष्ण वस्तुत. शृगार रस के देवता कृष्ण है भक्ति के आलम्बन कृष्ण नही।[3] हृदय की पूर्ण तुष्टि के लिये जैसा आलम्बन अपेक्षित है वैसा न तो ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों के पास था और न प्रेममार्गी कवियो के पास। इस परिस्थिति ने प्राचीन भक्ति स्वरूप की कांति धूमिल कर दी। परिणामत निर्गुण धारा के समानान्तर सगुणधारा भी प्रवाहित हो चली।[4] हिन्दू पडित और आचार्य अपनी धार्मिक क्रियाओ, सिद्धान्तो और विशेषताओ को सुरक्षित रखना चाहते थे वे मन्दिरो मठो और दक्षिण मे स्मृतियो एव ग्रन्थो की टीकाए लिख रहे थे। किन्तु कृष्णभक्ति की नवीन धारा श्री भागवत का आधार लेकर दक्षिण मे तथा बंगाल, आसाम, उडीसा होती हुई बिहार, वृन्दावन, मथुरा और गोकुल तक पहुँच गई तथा उसका प्रभाव मेवाड, मारवाड तथा ग्वालियर मे दिखाई दिया। जयदेव, चैतन्य महाप्रभु, चण्डीदास विद्यापति और मीराबाई की स्वर लहरी से समाज के क्षत-विक्षत अग परिपुष्ट हुए। बल्लभाचार्य ने श्रीनाथ जी के मन्दिर की गोकुल में स्थापना की। रामानन्द की शिष्य मण्डली ने निर्गुण भक्ति का प्रचार किया। इस प्रकार परिवर्तित परिस्थितियो मे हिंदुओ

१. डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'हिंदी साहित्य की भूमिका' प्रथम सस्करण, पृष्ठ ३१
२. काव्य और सगीत का पारस्परिक सम्बन्ध-डॉ॰ उमा मिश्र (सवत १७००-१६००) १६६२ ई॰ पृष्ठ ११५
३. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सकलित 'विद्यापति की पदावली' चतुर्थ सस्करण, पृष्ठ १५२
४. काव्य और सगीत मे पार॰ सम्बध-डॉ॰ उमा मिश्र, पृष्ठ ११६

की तीन चार शताब्दियो को जीवित रहने की साधना पन्द्रहवी शताब्दी मे सफल हुई। बड़ी द्रुत गति मे इस वर्ग ने अपने दार्शनिक चिन्तन की विभिन्नता का हल निर्गुण और सगुण भक्ति द्वारा निकाल लिया तथा साहित्य एव कला का पुनरुद्धार किया। मुस्लिम शासकों के बन्धन के सम्मेलन से एक नई भारतीय संस्कृति की झलक दिखने लगी।

इस शताब्दी की सबसे प्रमुख विशेषता समस्त भारत मे पौराणिक धर्म का उदय एव विस्तार है। महाभारत, रामायण, श्रीमद् भागवत और भगवद्गीता के इस घोष का नाद सर्वत्र सुनाई दिया कि—"जब-जब धर्म का ह्रास होता है तब-तब धर्म का उत्थान करने के हेतु 'विष्णु' अवतरित होते हैं। हिन्दी, गुजराती, मराठी और बगला सभी का प्रारम्भिक साहित्य पौराणिक कथाओ के रूप मे दिखाई देता है। इसके कारण समस्त प्रान्तीय बोलियो और उनकी भाषाओ मे पौराणिक विचारधारा तथा शब्दावली मौलिक एकता बनाये रह सकी।

जैन धर्म का प्रभाव :—

जैन साधु तथा भक्तिमत के सतो ने गुजराती साहित्य का विकास किया। जैन साधुओ ने अनेको रास निर्मित किये तथा काव्य ग्रन्थ भी लिखे। इन साधुओ ने ही लोकप्रिय साहित्य की नीव डाली। जैन महाकवि 'स्वयमु' और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयमु' के रचित अपभ्रंश काव्यो के ग्रन्थ 'पउम चरिउ' रिट्ठणेमि चरिउ तथा 'पचमी चरिउ' हैं। 'पउम चरिउ' (पद्मचरित) या रामायण और दूसरा (अरिष्टनेमि चरित) या हरिवंश पुराण, तीसरा ग्रन्थ पंचमि चरिउ (पचमी कथा-नागकुमार-चरित) है।[१] 'पउम चरिउ' के दो भाग डॉ० हरिवल्लभ भायाणी द्वारा सम्पादित होकर १९५३-४ मे प्रकाशित हो चुके हैं। इसमे ९० सन्धियों मे अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड, सम्मिलित हैं।

श्री नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि अपभ्रंश साहित्य की रचना प्राय: गुजरात, मालवा, बरार और उत्तर भारत मे ही होती रही है। अतएव यही सभावना अधिक है कि वे (पुष्पदन्त) इसी ओर के हो।[२]

पुष्पदन्त की रचना "तिसट्ठिमहापुरिसगुणालकार" (त्रिषष्टि महापुरुष गुणालंकार) या महापुराण, 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) तथा 'जसहर चरिउ' (यशोधर चरित) है। महापुराण मे आदिपुराण और उत्तरपुराण के सम्मिलित दो खण्ड है। उत्तर पुराण मे पद्मपुराण (रामायण) और हरिवश पुराण (महाभारत) भी शामिल है और ये कहीं-कहीं पृथक रूप मे भी मिलते हैं।[३]

१. जैन साहित्य और इतिहास (ले० नाथूराम प्रेमी) १९२९, पृष्ठ १९९
२ वही, पृष्ठ २२७
३. वही, पृष्ठ २३५

डॉ० ए० एन० उपाध्याय को अपभ्रंश भाषा का 'धम्मपरिक्खा' ग्रन्थ हरिषेण कृत मिला है। हरिषेण धक्कडवंशीय थे। धक्कडकुल को सिरिउजपुर (सिरोंज) में निर्गत बतलाया है। *यह ग्रन्थ शक सं० ६०६ या वि० सं० १०४४ में समाप्त किया था।* इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपभ्रंश के चतुर्मुख, स्वयंभु और पुष्पदन्त इन तीन कवियों का स्मरण किया गया है। पुष्पदन्त का समय मान्यखेट में महामात्य भरत के अतिथि के रूप में रहने का सं० ८८१ शक से ८६४ के बीच आता है।[१]

खंभात में चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर में प्राप्त शिलालेख में २६वीं पंक्ति में "गुरुपट्टे बुधैर्वर्ण्यो यशः कीर्तिर्यशोनिधिः" मिला है जिसमें ज्ञात होता है कि उस समय गुरु के पट्ट पर यश कीर्ति थे जो सहस्रकीर्ति की परम्परा के जान पड़ते हैं।[२]

ग्वालियर, नरवर, चन्देरी में जैन भट्टारकों की पूर्व परम्परा सम्भवतः ज्ञान भूषण के उत्तराधिकारी क्रम में ज्ञात हो सकती है। भट्टारक ज्ञानभूषण मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कारगण के थे। उनकी गुरु परम्परा का प्रारंभ भट्टारक पद्मनंदि से होता है। १ पद्मनंदि, २ सकल कीर्ति, ३ भुवनकीर्ति और ४ ज्ञानभूषण, ५ विजय कीर्ति, ६ शुभचन्द्र, ७. सुमति कीर्ति, ८ गुण कीर्ति, ६. वादिभूषण, १० रामकीर्ति, ११. यश कीर्ति।[३] भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा पाण्डव पुराण (सं० १६०८), करकुंडचरितं *(सं० १६११ में) रचनाएं हुई हैं।*

उपाध्याय पद्म सुन्दर नागोरी तपागच्छ के बहुत बड़े विद्वान थे और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के थे। बादशाह अकबर के दरबार के ३३ हिन्दू सभासदों के पांच विभागों में से उनका नाम प्रथम विभाग में था। आइने अकबरी में इन्हें 'परमिन्दर' लिखा गया है। ये जोधपुर के राजा मालदेव द्वारा भी सम्मानित थे।[४] इनके दादा गुरु आनंद मेरु *हुमायूं और बाबर से सम्मानित थे। 'अकबर शाहि-शृंगार दर्पण' की प्रशस्ति में* यह सूचना मिलती है। जो सं० १६२६ वि० के लगभग की रचना है।[५]

रायमल्ल, दिगम्बर सम्प्रदाय के-काष्ठा संघ माथुरान्वय पुष्करगण की आम्नाय *के-श्रावक थे। पार्श्वनाथ काव्य में इनके गुरुओं की नामावली इस प्रकार दी है—* देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, मलयकीर्ति, गुणभद्र, भानुकीर्ति और कुमारसेन। अकबर-काल में ही कवि बनारसीदास हुए हैं जो

१. वही, पृष्ठ २४७, २५०
२. जैन साहित्य और इतिहास-नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ३३४.
३. जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३८०.
४. वही, पृष्ठ ३६६
५. इस ग्रन्थ की प्रति बीकानेर स्टेट लायब्रेरी तथा दूसरी नाहटाजी के संग्रह में है। वही, पृष्ठ ३६७ पर उद्धृत।

भरनगगच्छ के मुनि भानुचन्द्र के शिष्य थे। और दिगम्बर सम्प्रदाय में मूलाम्नाय के प्रचारक।[1]

बम्बई के 'ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन' में द्विज विश्वनाथ की एक रचना १३ छप्पय छन्द वाली सुरक्षित है जिसमें कुण्डलगिरि पाली-शान्ति जिन, गोपाचल (ग्वालियर) का वर्णन करके अन्तिम तेरहवें छप्पय में 'तुंगीगिरि' नाम आया है। इन्हें अर्वाचीन भट्टारक का शिष्य कहा गया है।[2] श्रमणगिरि (श्रवण, सवन, सोन-सोनगिरि) दतिया (ग्वालियर) के समीप स्थित सिद्ध क्षेत्र आजकल माना जाता है। यहां पर *७०-८० मन्दिरों का समूह है और मुख्य मन्दिर श्री चन्द्रप्रभ भगवान का है।*[3] सोनगिरि के भट्टारक विश्व भूषण रचित "सर्व त्रैलोक्य जिनालय जयमाला" नामक पोथी है जिसमें १०० पद्य है। किन्तु संस्कृत के पद्य हैं उनमें सोनागिरि को बुन्देलखण्ड में ही बताया है[4]—

"सोनागिरि बुंदेला खंडे, आगानो चन्द्रप्रभ चडे
पंच कोटि रेवा वरभान, रावन सुनु मोक्ष शिवजान"

मुगल बादशाह अकबर के समय में "हीरविजय सूरि"[5] नाम के एक सुप्रसिद्ध साधु हुए हैं। उनसे सम्बन्धित संस्मरणों में उल्लेख आया है कि 'हीर विजय" ने मथुरा से लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) *बावन-गजी भव्याकृति* मूर्ति के दर्शन किए "और यह मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदाय की है इसमें कोई सन्देह नहीं। उस समय तक मूर्ति सम्बन्धी विरोध तीव्र नहीं था। ग्वालियर राज्य के श्योपुर कस्बा में दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिरों में परस्पर सम्प्रदाय की मूर्तियां हैं। जिनमें एक दूसरे सम्प्रदाय के लोग जाते थे। अब केवल भाद्रपद शुक्ला १० को धूप खेने के लिए आदर करते हैं।[6]

मालवे के विद्याप्रेमी और विद्वान परमार-वंश के राजाओं के काल में जो अनेक जैन ग्रन्थकर्ता हो गये हैं उनमें 'अमितगति' का विशेष स्थान है। इस वंश के राजा जैनधर्म के प्रति आदरभाव रखते थे। 'प्रद्युम्न चरित' कर्ता महासेन मुंज राजा द्वारा पूजित थे। प्रभाचन्द्र भोजदेव द्वारा पूजित थे। धनपाल ने गद्यकाव्य 'तिलक मंजरी' की रचना राजा भोज की प्रेरणा पर की थी। दुबकुण्ड वि० सं० ११४५ के लेख के अनुसार शान्तिषेण ने भोजदेव की सभा में अम्बरसेन आदि जैन विद्वानों का अपमान

करने वाले पंडितों को हराया था। इसी तरह भोज के वंशज अर्जुनदेव के सन्धि विग्रहिक मंत्री सलखण सम्भवतः पण्डित आशाधर के पिता थे। इससे पता लगता है कि उक्त सब राजाओं के काल में जैन विद्वानों की काफी प्रतिष्ठा थी।[1]

मुनि 'जसकित्ति' (यशकीर्त्ति) काष्ठासंघ माथुरान्वय-पुष्करगण के भट्टारक थे और गोपाचल (ग्वालियर) की गद्दी पर आसीन थे। उनके गुरु का नाम गुणकीर्ति था। "जसकित्ति" तोमरवंशी राजा कीर्तिसिंह के समय में विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में हुए हैं।[2]

ग्वालियर क्षेत्र में सहस्त्रकीर्ति, गुणकीर्त्ति यशकीर्त्ति, भुवनकीर्त्ति, विजयकीर्ति, भट्टाचार्य देवसेन आदि के प्राप्त अभिलेखों से जैन साहित्य के इतिहास के आधार पर वर्णित इन्हीं नामों की पुष्टि होती है। नयचन्द्र सूरि ने वीरमदेव तोमर के राज्यकाल में *हम्मीर महाकाव्य की रचना (१४००-१४१०) ई० के मध्यकाल में की थी। नयचन्द्र सूरि ने अपने पितामह जयसिंह सूरि प्रख्यात नैयायिक से काव्यशास्त्र का अध्ययन किया* था। जयसिंह सूरि ने १३४४ ई० में कृष्णर्षिगच्छ की स्थापना की थी और १३०० ई० में रणस्तम्भपुर (रणथम्भौर) के युद्ध को स्वयं देखा था जिनके सहवास में रहकर *कवि ने यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया है।*[3]

भट्टारक यशकीर्ति के शिष्य जैन महाकवि रइधू पद्मावती पुरवाल जाति के गृहस्थ विद्वान ग्वालियर निवासी ने १५वीं शताब्दी ईस्वी में इतना अधिक अपभ्रंश साहित्य का विशाल भण्डार भरा है जिसके प्रकाशन से समग्र साहित्य दृष्टिगोचर होगा।[4]

अधिकांशत: जैन लेखक अपभ्रंश से ही संलग्न रहे। अपभ्रंश से ही हिन्दी का विकास होने के कारण पूर्व के सहजयानी सिद्ध, मध्यदेश के स्वयंभू-पुष्पदन्त, गुजरात के हेमचन्द्र सूरि, उत्तर पश्चिम के अद्दहमान *(अब्दुल रहमान) सब ही हिन्दी कवियों* में गिने गए हैं। इसी को आगे 'रइधू' ने ग्रहण करके अपभ्रंश में पार्श्व पुराण, पद्मचरित, 'सम्यकत्व गुणनिधान' की रचना कर तत्कालीन ग्वालियर पर अच्छा प्रकाश डाला है। तोमरकालीन जैन साधु गुणकीर्ति, भट्टारक यशकीर्ति, देवसेन, जयकीर्ति आदि वातावरण धार्मिकता, *सदाचरण की ओर मोड़ रहे थे। अपभ्रंश साहित्य के भाषानु*-वाद से संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का रूप सवर रहा था।

---

१ वही, पृष्ठ २७५।

२ वही, पृष्ठ २०३ फुटनोट (१)।

३ *संस्कृत साहित्य का इतिहास (बलदेव उपाध्याय) सप्तम संस्करण* १९६५, पृष्ठ २६२-२६३ ६०।

४ हिंदी जैन साहित्य परिशीलन (नेमीचंद शास्त्री) प्रथम संस्करण १९५६ ई०. पृष्ठ २१६-२०। तथा परमानंद जैन शास्त्री : महाकवि रइधू : (वर्णी अभिनंदन ग्रंथ) पृष्ठ ३९८

ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्तर पूर्व भारत और मगध मे एक विशिष्ट विचारधारा पनप रही थी जिसका स्वर वैदिक परम्पराओ से ऐक्य नहीं रखता था। तीर्थंकर महावीर स्वामी द्वारा प्रवर्तित जैन सम्प्रदाय स्वतन्त्र चिन्तन, जीवन के प्रति निराशात्मक दृष्टिकोण, निवृत्ति मार्ग के अवलम्बन, दया, अहिंसा एवं आत्म-निग्रह मे विश्वास लेकर चलने वाला ही हुआ। इसका धर्मप्रचार का साधन तथा प्रकार भिन्न था। लोकाश्रय के ध्येय ने लोकभाषा और लोक साहित्य की ओर आकृष्ट किया। भारतव्यापी होने पर वैदिक विचारधारा से टक्करें अवश्य हुई और इसका रूप भी बदलने लगा। जीवन मे रस लेने की भावना ने जैन सम्प्रदाय को प्रभावित किया। इसका साहित्य भी विशाल और बहुरंगी होने लगा। बौद्धों की हीनयान, महायान शाखायें तथा जैन धर्म का वर्तमान रूप समन्वित नीति का परिणाम है।

जैन धर्म का विशुद्ध वैराग्य और निरीश्वरवाद, वैदिक धर्म के आकर्षक कर्मकाण्ड ईश्वर, देवयोनि अवतारवाद आदि से प्रभावित हुआ। जैन धर्म मे भी देवताओ, यक्ष गन्धर्वों की सृष्टि हुई। इस प्रकार लोक कथाओ के साथ-साथ इस सतरंगी अलौकिक सृष्टि ने बौद्ध और जैन आख्यानो द्वारा अत्यन्त कौतूहलवर्धक कथानक वैचित्र्यपूर्ण तथा आकर्षक कथा साहित्य की सृष्टि की। बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय के आख्यानों ने भारतीय आख्यान साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। जैन आख्यान साहित्य की परम्परा हिन्दी के आविर्भाव के पहले तक तथा कुछ सीमा तक उसके समानान्तर चलती रही और मौलिक रूप मे यह परम्परा हिन्दी मे भी आई।

जैनाचार्यो ने धर्म प्रचार मे कथाओ के महत्व को समझकर लोककथाओं, वैदिक आख्यानो, बौद्ध कथाओ तथा सभी स्रोतो से गृहण कर जैन सिद्धान्तो मे उन गृहीत अशो को रूपान्तरित किया। 'पउम चरिउ' त्रिषष्टिमहापुरुष-गुणालंकार (महापुराण) आदि में रामायण, महाभारत की कथाओ का रूपान्तर हुआ है। चरित ग्रन्थो में कृष्ण चरित का जो मनोहारी रूप जैन कवियो ने प्रस्तुत किया था उसका प्रभाव प्रारम्भिक हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा। केशव और तुलसी के पूर्व जो भारतव्यापी कृष्ण भक्ति की धारायें बही थी उसके मूल मे इस जैन साहित्य का प्रभाव भी कम न पड़ा था। विनय चन्द्र सूरि ने बारहमासा तथा षड्ऋतु वर्णन भी 'नेमिनाथ चउपई' में दिये। शीलभद्र सूरि ने 'बाहुबलिरास लिखा। ऐतिहासिक एवं काल्पनिक आख्यानों मे कथानायक वणिक पुत्र बने, चित्र दर्शन, देव और अप्सरायें, सिंहल की पद्मिनी सब अपने लोक व्यवहृत रूप मे दिखाई दिये। भद्रबाहु ने काम-कथा और धर्मकथा का मिश्रण-एक नया प्रयोग किया था। उद्योतन सूरि ने पुष्टि की। 'समराइच्च कहा' 'कुमार पाल प्रतिबोध' समय सुन्दर का मृगावती, जैन कवि दामोदर के मदन शतक तथा 'मदनकुमार रास' रचना-

विधाओ के अनेक रूप हैं।[1] दिगम्बर जैन (१६वी शती ईस्वी तक अपभ्रंश मे लिखते रहे किन्तु श्वेताम्बरो ने १४वी शती ईस्वी के बाद पन्द्रहवी शता० मे लोकभाषा मे लिखना प्रारंभ कर दिया था।[2]

सिद्ध मत और नाथपंथ का प्रभावः—

महापंडित राहुल साकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों का वंशवृक्ष दिया है, इसके अनुसार कान्हपा जालधर के शिष्य थे तथा राजा देवपाल (सन ८०९-८४९ ई०) के समकालीन थे। इनकी रचनाओ का अनुवाद धर्मकीर्ति द्वारा किया जाना बताया जाता है। डॉ० शहीदुल्ला ने कान्हपा का समय (६७५-७७५ ई०) के बीच माना है। तिब्बती परम्परा के अनुसार ये सोमपुरी महाविहार मे रहते थे जहां 'धर्मकामदीपसिद्धि' की रचना की थी। कान्हपा की एक पुस्तक 'श्रीहे वज्रपंजिका योगरत्नमाला' की नकल गोविन्दपाल देव के शासनकाल मे कायस्थ गजाधर ने ११९९-१२४० में की थी। डॉ० बागची ने 'चर्यागीति कोष' तथा श्री हरप्रसाद शास्त्री के 'बोद्धगान ओ दोहा' में कान्हपा के पद और दोहे संगृहीत हुए जिनमे कान्हुपाद, कान्हपाद, कृष्णचर्यापाद, कृष्णपाद, कृष्णवज्रपाद, कृष्णाचार्य पाद, काहनपाद के नाम मिलते हैं। कृष्ण, कृष्णपाद और कान्हपाद मे अन्तर बतलाना कठिन है। कृष्णपाद (कान्हपा) का समय ८वी शताब्दी ईस्वी के लगभग माना जा सकता है। 'चर्यागीति कोष' मे कृष्णपाद के गुरु 'जालधरि' के बारे मे उल्लेख है—

साखि करिब जालधरि पाए।
पाखि न चाहइ मोरि पाण्डिआचाए॥
'चर्या गीतिकोष' ३६/४

कान्हपाद की उपलब्ध अपभ्रंश कृतियो मे यौगिक साधनाओं तथा वज्रयानी सिद्धान्तो, मडल रचना, बलि विधि का उल्लेख प्राप्त होता है। श्री राहुल साकृत्यायन ने कृष्णपाद के ७४ ग्रन्थो तथा ६ अपभ्रंश कृतियो का उल्लेख किया है।[4] 'चौरासी सिद्धो की जीवनी' का हिन्दी अनुवाद डॉ० रामसिंह तोमर तथा श्री रिग्-जिन ल्हामा ने भी किया है।

१. कल्पना, वर्ष ६, अंक ४, अप्रैल १९५५, पृष्ठ ४७-५४
२ श्री अगरचंद नाहटा "वीर गाथाकाल का जैन भाषा साहित्य" नागरी प्रचारिणी पत्रिका स० २००२, पृष्ठ १०
३. पुरातत्व निबंधावली (साकृत्यायन) पृष्ठ १२६.
४. वज्रयानी सिद्ध कान्हपा की रचनाओ की सूची-द्विजराम यादव, विश्वभारती खण्ड ७ अंक ३, पृष्ठ २८८-२९२

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में नाथ पंथ:—

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में सिद्धमत, सिद्ध मार्ग (योग बीज) योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत अवधूत सम्प्रदाय का मुख्य धर्म योगाभ्यास कहा गया है। इन मतो में 'नाथ' ही सिद्ध माना गया है।[१]

कबीरदास ने अवधू कहकर 'अवधूत' को सम्बोधन करने में इसी मत को ध्यान में रक्खा है। इस मत के योगी साधू कच्चे सिद्ध कहलाते थे।[२]

गोस्वामी तुलसीदास विश्वास करते थे कि गोरख ने योग जगाकर भक्ति को दूर कर दिया है—

"गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग"[३]

तुलसीदास ने वन्दना की है—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥
(बालकाण्ड, प्रारम्भ, श्लोक)

नाथ सम्प्रदाय मूलतः शैव' है। सबके उपास्य 'शिव' हैं। शंकराचार्य का पराभव एक कापालिक द्वारा बताया गया है। कापालिक मत को (श्री) नाथ' ने ही प्रकट किया था।[४]

'शावरतंत्र' में कापालिकों के बारह आचार्यों में प्रथम नाम आदिनाथ का है। नाथ ने ही तंत्रों की रचना की है। 'शाक्तमत' में 'वैदिक', 'वैष्णव', 'शिव' और 'शक्ति' चार प्रधान आचार हैं। शाक्त आचार के अन्तर्गत वाम, दक्षिण, सिद्धान्त एवं 'कौल' चार आचार हैं। 'कौल मार्ग' ही अवधूत मार्ग है। शाक्त तंत्र नाथानुयायी ही माना जाता है।[५]

'शाक्त आगम' में सात्विक अधिकारी को उपदिष्ट आगम 'तंत्र' कहा जाता है। वही राजस-अधिकारी को "यामल" तथा तामस अधिकारी 'डामर' कहलाता है। तान्त्रिक पूर्व में बहिरंग की उपासना करते हैं अन्त में क्रमशः सिद्धि प्राप्त करके कुण्डलिनी की उपासना करते हैं जो यथार्थ में 'अवधूत मार्ग' की ही उपासना है इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय के ग्रंथ 'षोडश नित्यातंत्र', 'षट्शाम्भव रहस्य' आदि में 'कौलमार्ग,'

---

१. गोरक्ष सिद्धांत संग्रह, [redacted] ५, २१
२. बीजक ६९ वीं रमैनी (कबीरदास)
३. तुलसीदास, कवितावली, उत्तरकाण्ड ८४
४. गोरक्ष सिद्धांत संग्रह, पृष्ठ १८
५. वही, पृष्ठ १९

'कापालिक मत'—ये 'नाथ' मतानुयायी ही है । 'कौल-साधना' (कुल—शक्ति, अकुल—शिव) में कुल—अकुल की समरसता ही मुख्य है ।[1]

'योगिनी कौल मार्ग' में ही मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध था जो 'गोरखनाथ' के गुरु थे ।

कौलमार्ग 'कामरूप' देश में उद्‌भुत हुआ था। त्रिपुरा सम्प्रदाय के अनेक सिद्धों के नाम नाथपंथियों के ही हैं। 'दत्तात्रेय' ने त्रिपुरातत्व पर 'दत्त संहिता' लिखी थी। ६ हजार सूत्रोंमें परशुराम नामक आचार्य ने इसे संक्षिप्त किया ।

कापालिक मत[2] का थोड़ा परिचय यामुनाचार्य के 'आगम प्रामाण्य' में मिलता है। भवभूति के 'मालती माधव' में कापालिकों का भयंकर वर्णन है। ये मनुष्य बलि किया करते थे, इनका मत षटचक्र और नाड़िका निचय' के कायायोग से सम्बद्ध था[3]

राहुल सांकृत्यायन आदि 'नाथ पंथ को महायानी और वज्रयानी जैसे परवर्ती बौद्धों का ही परिमार्जित एवं परिवर्तित रूप मानते हैं। श्री राहुल गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य मानते हैं। नाथों से पूर्व सिद्धों की मद्यमांस मैथुनादि से समन्वित साधना पद्धति प्रचलित थी जिसमें सदाचरण का कोई महत्व नहीं था, 'कृत्या', त्रिपुर सुन्दरी आदि की योग प्रधान साधना (उपासना पद्धति) से लिप्त कौल कापालिक आदि जनता को भ्रष्ट कर रहे थे।[4] गोरखनाथ ने इसी आचारहीन उपासना पद्धति का विरोध करने के लिए सदाचार प्रधान इस नये 'नाथपंथ' की स्थापना की थी जिसमें योग क्रियाओं द्वारा शरीर की शुद्धि एवं सदाचार को प्रधानता देकर मद्य, मांस, मैथुनादि का निषेध किया गया था।[5]

गोरखनाथ ने परम तत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया है—

बसति न सून्य न बसित अगम अगोचर ऐसा
गगन सिखर में बालक बोले ताका नाउ धरउगे कैसा ?

कबीर ने भी मिलता-जुलता इसी प्रकार ब्रह्म निरूपण किया है—

गोरख राम एक नहिं उहवा ना वहू वेद विचारा
हरिहर ब्रह्मा ना सिव सक्ति ना वहं तिरथ अचारा

---

१. योगिनी कौल मत-(षष्ठदश पटल)
२ यामुनाचार्य आगम प्रामाण्य, पृष्ठ ४८
३. डॉ० बागची-कौलज्ञान निर्णय, भूमिका पृष्ठ ३२ तथा उपाध्याय-भारतीय दर्शन पृष्ठ ५१८-
४ आचार्य शुक्ल कृत हिंदी सा० का इतिहास पृष्ठ १२ (संस्करण नवम १९६६) तथा डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी, पृष्ठ १३१.
५. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी (हिन्दी साहित्य की भूमिका) प्रथम संस्करण पृष्ठ ३१

माय बाप गुरु जाके नाही सो धौं दूजा कि अकेला
कहहिं कबीर जो सबकी बूझे सोई गुरु हम चेला

ऐसा ब्रह्म सख्या से परे है। यही कबीर का द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्ववाद है। उनका ब्रह्म द्वैताद्वैत के द्वन्द से परे विलक्षण है।

नाथपंथी बिन्दु और नाद मे से 'नाद' को आकाश या ईश्वर का अंश और बिंदु को शरीरांश मानते हैं। इनके योग से ही सृष्टि होती है। ऐसी इनकी धारणा है। कबीर का मत भी यही है—

"अव्यक्त नादे बिन्दु गगन गाजै शब्द अनहद बोलै।
अंतर गति नहिं देखै नेड़ा, ढूंढन बन-बन डोलै॥

नाथपंथियों के अनुसार नाथ-स्वरूप में लय हो जाना ही मुक्ति है। कबीर भी मुक्ति का यही बोध कराते हैं—

कहया न उपजै उपज्या नही
जाणो भाव अभाव बिहूना
उदय अस्त जहां मत बुद्धि नाही
सहजि राम लौं लीना

कबीर के अनुसार 'नाद' के स्थान पर राम में लीन हो जाना ही मुक्ति है।

व्यक्त के परे अव्यक्त और ज्ञेय से परे अज्ञेय की सत्ता ही पूर्ण ब्रह्म का परिचय है। वह वाङ् मनस के परे है, बुद्धि मूर्तरूप का आधार चाहती है और वाणी स्पर्श का, इसलिए उस अमूर्त और अनुपम को ग्रहण करने में बुद्धि और व्यक्त करने में वाणी असमर्थ है।[1] ब्रह्म की यही अनिर्वचनीयता शून्यवाद का रूप है। कबीर में यही शून्यवाद विद्यमान है। जिसका मूल महायान दार्शनिकों में परिलक्षित होता है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि कबीरदास आदि निर्गुणभक्त के साधकों ने भी इस शब्द का व्यवहार अपने-अपने ढंग पर किया है। यह शून्यवाद महायान से नाथपंथ द्वारा कबीर तक पहुँचा है। "........परन्तु बंध-मुक्ति-रहित परम सिद्धान्तवादी अवधूत लोग निर्गुण और सगुण से परे द्वन्द्वातीत स्थान को ही मानते हैं, क्योंकि नाथ निर्गुण और सगुण दोनों से अतीत परात्पर है।" अद्वैत के भी ऊपर विराजमान निराकार-साकार से अतीत परम शून्य, निरंजन स्वरूप नाथ से शुरू में निराकार ज्योतिनाथ हुए; उनसे साकार नाथ, उनकी इच्छा से सदाशिव भैरव और उनसे शक्ति भैरवी उत्पन्न हुई। सदाशिव भैरव से ही विष्णु उत्पन्न हुए, उनसे ब्रह्मा और उनसे ये सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।[2]

१. डॉ० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : पृष्ठ १०२.
२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर : पृष्ठ ४१

नाथपथ की त्रिविध साधना-पद्धति (हठयोग) है। सदाचार में स्थित गगन मंडल में औंधे मुंह का अमृतकुण्ड है यहाँ 'चन्द्रतत्व' है इसमें से निरन्तर अमृत झरता रहता है। इसका पान करने वाला अजर-अमर हो जाता है और इसका पान मुक्तयोगी ही जिसे सद्गुरु की प्राप्ति हो गई है, वही कर सकता है[1]—

गगन मण्डल में औंधा कुआ तह अमृत का वासा।
सगुरा होय से भर-भर पिया, निगुरा जाहि पियासा॥

साधक नाना प्रकार की साधनाओं द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को, जो अधोमुखी रहती है, जाग्रत कर ऊर्ध्वमुखी करता है। कुण्डलिनी की जाग्रति पर साधक विभिन्न प्रकार के शब्दों को सुनता है जो 'नाद' कहलाता है। मन के विशुद्ध होते जाने पर नाद सुनाई देना बन्द होता जाता है। यह शब्द 'मूलाधार' से[2] उठता है और 'सहस्त्रार' में आकर लय हो जाता है। अन्त में योगी को 'खेचरी मुद्रा' की प्राप्ति होती है जो थोड़े समय तक ही रहती है। इसी बीच में योगी को अपनी जिव्हा को उलटकर 'कपाल कुहर' में ले जाना होता है और वहां चन्द्रमा से बहने वाले अमृत का पान कर अमर हो जाता है कबीर ने योगी और अवधू को इसी अमृत का पान करने सावधान किया है—

अवधू, गगन मण्डल घर कीजै,
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंक नालि रस पीजै
मूल बांधि सर-गगन समाना, सुषमन यों तन लागी
काम क्रोध दोउ भया पलीता तहां जोगणी जागी
मनवा जाइ दरीबै बैठा मगन भया रसि लागा
कहै कबीर जिय संसा नाही सबद अनाहद जागा

नाथपंथी साहित्य में ब्रह्म के लिए 'निरंजन' शब्द प्रयोग हुआ है। साधारणतः निरंजन-निर्गुण ब्रह्म तथा विशेष रूप से शिव-वाचक है। डॉ० बड़थ्वाल के अनुसार *निरंजनियों का मार्ग निर्गुणी कबीर के प्रेम और भक्ति से अनुप्राणित योग मार्ग के* ही समान है। निरंजनियों की साधना हठयोगियों जैसी है। इनमें प्रेम और विरह को अधिक महत्व दिया गया है और कबीर में भी यही प्रवृत्ति है। 'निरंजन' को पाने के लिए 'शून्य' का ध्यान आवश्यक है। जो हठयोग ही है। परन्तु कबीर ने उसे 'महाठग' मानकर सुरक्षा हेतु कथन किया है—

---

१. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३१ (प्रथम संस्करण)
२. अमरत्व साधन (पं० गोपीनाथ कविराज) विश्वभारती, खण्ड ७, अंक १, अप्रैल-जून १९६६ पृष्ठ २०, २१

अवधू निरंजन जाल पसारा।
स्वर्ग पाताल जीव मृत मण्डल तीन लोक विस्तारा॥

× × × ×

कबीर, दादू और जायसी ऐसे ही नाममात्र के मुसलमान थे जिनके परिवार में योगियों की साधना पद्धति जीवित रूप में वर्तमान थी। वास्तव में यह जोगी जाति नाथ-मतावलम्बी गृहस्थ योगियों की एक बड़ी जाति थी जो न हिन्दू थी न मुसलमान।[1]

नाथपंथी योगी का स्वरूप—

कबीर द्वारा वर्णित योगियों या अवधूतों तथा नाथपंथी योगियों का स्वरूप-वर्णन एकसा है। योगी कानों में कुण्डल किंगरी, मेखला, सींगी, जनेऊ धंधारी, रुद्राक्ष अधारी, गूदरी, खप्पर और झोला धारण किये रहते हैं। शरीर में भस्म लगाते हैं और बाहुमूल या त्रिपुण्ड लगाया करते हैं परन्तु वे सच्चे योगी के लिये इन चिन्हों को मन में धारण करने की अपेक्षा करते हैं—

सो जोगी जाके मन में मुद्रा, रात दिवस न करई निद्रा।
मन में आसण मन में रहना मन का जप तप मनसूं कहना।
मन में खपरा मन में सींगी अनहद नाद बजावै रंगी
पंच परजारि भसम कर भूका कहै कबीर सो लहसै लंका।

जायसी ने पद्मावत के 'जोगी-खंड' में इन्हीं चिन्हों से सज्जित जोगी की अवतारणा की है[2]—

तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ बियोगी
तन बिसंभर मन बाउर लटा। अरुझा पेम, परी सिरजटा
चन्द्र-बदन औ चन्दन-देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा
मेखल, सिंघी, चक्र धंधारी। जोग बाट, रुदराछ, अधारी
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा
मुद्रा स्रवन कंठ जप माला। कर उदपान काँध बघछाला
पाँवरि पाँव, दीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता
चला भुगुति माँगै कहँ, साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति, जेहि कर हिये वियोग॥१॥

'मसनमेर्ना' (१४२४ ई०) गोरखनाथ का चोला पर रामराज्य समझते हैं—

---

१. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कबीर' की प्रस्तावना, पृष्ठ १
२. जायसी ग्रन्थावली (रामचन्द्र शुक्ल) २०१० वि०, पृष्ठ ११ (१२) जोगीखण्ड।

चौमा नगर जगत पर सीधा, रामराज तह गौरख कीधा।

ईश्वरदास की 'सत्यवती' ने कहा—

एक चित हमें चितवे जस जोगी चित जोग।
धरम न जानसि पापी, कहसि कौन तें लोग॥

कुतबन की मृगावती में भी राजकुंवर 'मिरगावती' के लिये जोगी हो गया। जोगीवेष गोरखपंथियों का है। साधना की जोग साधना भी गोरखपंथी है। गुरु गोरखनाथ का नाम भी आया है।

मीरा को भी आराध्य 'जोगी' हो दिखा वह अभ्यर्थना करने लगी[1] —'जोगी मत जा मत जा मत जा पाव पड़ूँ मैं तेरे"।

दामोदर के 'लखनसेन पद्मावती रास' में भी 'योगी' की चर्चा है—

मुणउ कथा रस लील विलास, योगी मरण राय भनवास।
पद्मावती बहुत दुख सहई, मेलउ करि कवि 'दामउ' कहई।

खड़गराय ने गोपाचल गढ़ पर भी "ग्वालिया" 'सहजनाथ' जोगी को अवस्थित होना बताया है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है।

ग्वालियर क्षेत्र में रन्नौद (रणिपद्र), तेराम्बिपाल (महुआ-तेरही) कदम्बगुहा (कदवाहा), मधुमतेय (महुअर-मधुमती नदी वासी) पुरन्दर, कालशिव, सदाशिव, पवनशिव, शब्द शिव, ईश्वर शिव, पतमेश आदि शैव मठाधीश साधु ईसा की नवम शताब्दि में वर्तमान थे।[2]

इस विवेचन से यह निष्कर्ष सहज निकाला जा सकता है कि नाथपंथ का प्रभाव मध्यकाल के हिन्दी-साहित्य पर पड़ा और हिन्दी प्रेमाख्यानकारों ने 'जोगी की अवतारणा सिद्ध वियोगी के रूप में करके चमत्कार, कौतूहल तथा लक्ष्य प्राप्ती के रहस्यों का कथानकों में सृजन किया है ग्वालियर क्षेत्र में शैव साधुवों की परम्परा ईसा की ६ वीं शती से विद्यमान थी। इस कारण गोपाचल गढ़ के अंचल के लेखक अथवा कवि नाथपंथ के 'जोग' से प्रभावित रहे हैं। कारण स्पष्ट है कि गोपाचल आख्यान में वर्णित 'नागनाथ', भरगनाथ भृंगी) गन (नाथ), 'नाथ-योगी सम्प्रदाय के' द्वादश पंथ के अन्तर्गत आते हैं।[3]

---

१. गजानन वर्मा (मीरा सामान्य नारी) धर्मयुग, २७ सितम्बर १९६४
२. ग्वालियर राज्य के अभिलेख, पृष्ठ ३३, ३४ ३५
३ मेकगेनेन (पंजाब सेन्सस रिपोर्ट) पृष्ठ ११४, ब्रिग्स जी० डब्लू० (गोरखनाथ एण्ड द कनफटा योगीज) पृष्ठ ७४ (चार्ट), पृष्ठ ६२-६, नाथ सम्प्रदाय इलाहाबाद (१९५०) पृष्ठ १३, विश्व भारती खण्ड ७, अंक २, १९६६ में उद्धृत, पृष्ठ १०६, ११२, ११३ (परशुराम चतुर्वेदी)

भवभूति के "मालती-माधव" मे पंचम अंक मे अघोरघण्ट, कपाल कुण्डला का चरित्र आया है। पद्मावती (पवाय, जिला शिवपुरी-ग्वालियर) मे उस समय 'कापालिक मत' की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। मालती 'अघोरघण्ट' से कहती है –"प्रमोद नाथ माहमिक। दारुण खल्वय हताश। तत्परित्रायस्व माम्। निवर्ततामस्मादनयं सकटात्। (पंचम - अंक ३१-३२) अघोरघण्ट 'नाथ-योगी' का प्रतीक है। इसी साहित्य की मध्ययुगीन आख्यानो मे झलक मिलती है।

संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि वज्रयानी सिद्धो और गोरखपंथी साधुओ के प्रचार के कारण भारतवर्ष मे हठयोगी क्रियाओ का प्रचार और उसकी मान्यता बहुत अधिक बढ़ गई थी। हिन्दू कवियो ने अपने रूपकात्मक काव्यो मे हठयोग सम्बन्धी उक्तियो का बहुतायत मे उल्लेख किया है। पुहुपावती मे दूती कुमार को पुहुपावती के पाने के लिये योग साधन के लिये प्रेरित करती है। महलो और चित्रसारी के वर्णनो मे सहस्रार्थ कमल एवं हृदय का प्रतीक प्रस्फुटित हुआ है।[1]

तात्पर्य यह है कि हिन्दू कवियो के प्रेमाख्यानो मे मिलने वाले अध्यात्म पक्ष मे जहा हमे एक ओर सूफियो की साधनापद्धति मिलती है वही दूसरी ओर वैष्णव, शैव शक्ति धर्मो के विश्वासो का परिचय प्राप्त होता है तथा निर्गुण और सगुण के समन्वय की प्रवृत्ति लक्षित होती है। वेदान्तियो के अद्वैतवाद और शंकर के मायावाद तथा पुराणों के अभ्यान्तर एवं संहिताओ और आगमों के बीज, मुद्रा, मन्त्र आदि मे आस्था दिखाई पड़ती है।[2]

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में संगीत कला :–इस्लाम मे संगीत का निषेध होने के कारण प्रारम्भ मे कोई विशेष ध्यान नही दिया गया। किन्तु जैसे-जैसे हिन्दू मुस्लिम सम्पर्क बढ़ता गया, मुसलमानो मे कठोरता कम होती गई। सूफी सन्तों ने श्रद्धा और प्रेम से हिन्दुओं का हृदय जीतने के लिए भजन तथा कविताए बनाई और उन्हे भावपूर्ण ढंग से गाया जिसका प्रभाव जन साधारण पर भी पड़ा। इसके अतिरिक्त 'नो-मुस्लिम" अपनी प्राचीन अभिरुचि नही छोड़ सके। वे प्राचीन गीतो तथा भजनो को गाते थे, जिन्होने मुसलमानो मे गाने के प्रति रुचि उत्पन्न की। मुसलमान कव्वाली तथा ख्याल मे रुचि लेने लगे। उन्होंने भी तबला तथा सितार को प्रस्तुत किया जौनपुर के शर्की राजवंश तथा मालवा के बाजबहादुर ने संगीत कला को अपने दरबार मे स्थान दिया यह सल्तनतकाल (१२०६-१५२६ ई०) के उल्लेखनीय व्यक्ति है।[3] काश्मीर का

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य-डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, (१९६१ ई०) पृष्ठ ९७

२ वही, पृष्ठ ९८.

३. मुगलकालीन भारत (डॉ० आशीर्वादी लाल) पृष्ठ ११७

शासक जैनुल आब्दीन (१४२०-१४७०) भी संगीत साहित्य एवं चित्रकला का पोषक रहा।[1]

संगीत कला तो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। प्राय सभी हिन्दू राजा और विशेषकर गुप्त-वंश के समुद्रगुप्त ने तो इसका सदा संरक्षण किया समुद्रगुप्त के तो सिक्को पर भी अंकित मूर्ति वीणाधारिणी थी।

अमीर खुसरो (१२५५-१३२४ ई०) भी हिन्दी प्रेमी एवं प्रसिद्ध संगीतप्रिय था। वह संगीतज्ञ भी था और नायक गोपाल और जसवन्त से विख्यात गवैये इन्हे गुरुवत मानते थे। इन्होंने कुछ गीत भी बनाए थे जिनमे से एक को आज तक झूले के दिनो मे स्त्रियां गाती हैं।[2]

"जो पिया आवन कह गए—अजहुं न आए स्वामी हो।
(ऐ) जो पिया आवन कह गए।
आवन आवन कह गए आए न बारह मास
(ऐ हो) जो पिया आवन कह गए॥

बरवा राग मे लय भी इन्ही ने रची है। ध्रुपद के स्थान पर कौल या कव्वाली बनाकर उन्होंने बहुत से नए राग निकाले जो अब तक प्रचलित हैं। कहा जाता है कि बीन को घटाकर इन्होंने सितार बनाया था।[3] आचार्य बृहस्पति के अनुसार ये सदारंग के भाई खुसरो खां थे जिन्होंने सितार बनाया था। यह अठारहवीं शता० में हुए थे। (अ)

संगीत तो प्रकृति के तानेबाने में भरा है। लज्जा की ललाई के मनोरम दुकूल से शोभायमान, मन्थर गति से दिग्व्योम का अतिक्रमण करती हुई उषा सुन्दरी को देखकर उद्गायक ऋषियों ने गाया। उनके कल्पनाशील मस्तिष्क मे 'रूपक' का भाव भर उठा और उनके हृदय की कवितामय राग रसिकता भाव गीतो की अभिव्यंजना बनी। उषा के नि शब्द पद संचालन की भी आहट से निद्रमग्न खगकुल जागकर कलरव कर उठते हैं। पृथ्वी पर मातृत्व का आरोप होते देख भी ऋषि के गीत मुखरित हुए।[4]

वज्रयान सम्प्रदाय के बौद्ध तान्त्रिकों के गीत प्रस्फुटित हुए जिनमे डोमिनी के साथ समागम एवं नृत्य करने का अर्थ योगपरक है[5]—

१. दिल्ली सल्तनत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ २८६
२ खुसरो की हिन्दी कविता (ब्रजरत्नदास) (२०१० वि०) पृष्ठ ७, ६
३ वही, पृष्ठ १० (खुसरो की हिन्दी कविता-ब्रजरत्नदास) अ—हिंदुस्तान साप्ता. १४ सित. ६६ पृ. २५
४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५, अंक ४ (सम्वत २००७) 'श्रुति साहित्य की काव्योन्मुखता' लेख उद्धृत। अथर्ववेद १२-१-७२, ऋग्वेद १।४८। ५, ६, १० १२, १३।
५. काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध डॉ० उषा मिश्र, पृ० ११३, अपभ्रंश साहित्य पृ० ३१४-१५

आलो डोंबि । तोए सम करिब म साङ्ग ।
निघिण कण्ह कपाली जोइ लाग
एक सो पदमा चौषट्ठि पाखुड़ी
तहि चड़ि नाचअ डोंबी बापुड़ी ।
हालो डोंबी ! तो पुछमि सदभावे
अइससि जासि डोंबी का हरि नावें

(कण्हपा चर्यापद)–१०

साम्प्रदायिक भक्ति और महापुरुष कीर्ति स्मरण के रूप में अपभ्रंश साहित्य का जैन काव्य संग्रह[1] इस बात का परिचायक है कि उसमे भी बहुत से गीत भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो में लिखे गए हैं जिनमें संगीत को पोषण मिला ।

आचार्य शुक्ल ने 'जयदेव' के गीतों के विषय में लिखा था कि जयदेव की देव-वाणी की स्निग्ध पीयूषधारा जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरसता मे परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिलकण्ठ मे प्रकट हुई और आगे चलकर व्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाये मनो को सींचने लगी । आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन करने उठी जिनमे सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी ।[3]

विद्यापति के कृष्ण शृंगार रस के देवता बन । उनके व्याज से आवेगपूर्ण सगीतात्मक अभिव्यक्ति हुई[4]

जनम होअए जनु, जों पुनि होई । जुबती भए जनमए जन कोई ।
होई जुबति जनु हो रसमंति । रस ओ बुझए जनु हो कुलमति ।
ईंधन मांगओं बिहि एक पए तोहि । थिरता दिहह अवसानहु मोहि ।
मिलि सामी नागर रसधार । परबस जनु होए हमर पियार ।
होए परबस बुझ बुझाए विचारि । पाए विचार हार कओन नारि ।
भनइ विद्यापति अछ परकार । दद-समुद्र होअ जीव दए पार ।

महाराष्ट्र के सन्त भक्त नामदेव के 'अभंग' और हिन्दी पदो ने अवतार लीलाकीर्तन भक्तवत्सलता का गान किया ।[5]

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह (सं० अगरचन्द नाहटा भंवरलाल नाहटा सं० १९९४, कलकत्ता से प्रकाशित)
२. भ्रमरगीतसार (चतुर्थ संस्करण) आचार्य शुक्ल द्वारा सं०, भूमिका पृष्ठ १, २.
३. भ्रमरगीतसार (चतुर्थ संस्करण) आचार्य शुक्ल द्वारा सं०, भूमिका पृ० १, २
४ विद्यापति की पदावली श्री रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा संकलित चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १२१
५. आचार्य शुक्ल (हि० सा० का इतिहास, संस्करण १९९९) पृ ७८

कबीर, धरमदास, नानक, रैदास आदि संत कवियों के कुछ पद ऐसे हैं जिनमें गीतात्मकता ही नहीं प्रत्युत जिनका संगीत में स्थान है[1]—

करम गति टारे नाहि टरी
मुनि वसिष्ट से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी
..... कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही।

× × ×

मिथऊ मड़ैया सूनी करि गैलो
अपन वलम परदेस निकरि गैलो
हमरा के कुछ मोन गुन दे गैलो
जोगिन ह्‌वैके मैं वन-वन ढूढ़ो
हमरा के विरह वैराग दै गैलो

× × ×

धरमदास यह अरज करतु हैं
सार सबद सुमिरन दै गैलो।[2]

'नानक' गा उठे—

सुमिरन करले मेरे मना
तेरि बिति जाति उमर हरिनाम बिना

× × ×

कहे 'नानक गा' सुन भगवता या जग मे नहि कोई अपना।[3] रैदास की वाणी में संगीत जागा—

नरहरि चंचल है मति मोरी। कैसे भगति करूं मैं तोरी॥
तू मोहि देखे हौ तोहि देखू प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखे तोहि न देखू, यह मति सब बुधि खोई।[4]

× × ×

ईस्वी १३ वीं शताब्दी में पार्श्वदेव ने 'संगीतसमयसार' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में लेखक ने काश्मीर के राजा मातृगुप्त, धार के राजा भोज, अनहिलवाड़ के चालुक्य

१. कविता कौमुदी (श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित) प्रथम भाग, पाँचवां संस्करण, पृ० १५८, १५६
२. वही, पृ३ १६८ (कविता कौमुदी)
३. वही पृ३ १७२-१७३।
४. रैदासजी की बानी (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग) पृष्ठ ७।

राजा सोमेश्वर तथा महोबा के चन्देल राजा परमार्दिदेव को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। पार्श्वदेव स्वयं को संगीतकार कहता है। जिन चन्देलों की राजसभा में नंद कवि जैसे—पद रचयिता, जगनायक जैसे—'आल्हाकार' और परमार्दिदेव जैसे संगीत मर्मज्ञ थे उनके द्वारा पोषित हिन्दी में पद रचना अवश्य हुई होगी किन्तु किसी सम्प्रदाय के पोषण में रचना होती तो सम्भव है कि किसी मठ या प्रतिष्ठान में सुरक्षित होती। राजकीय पुस्तकालयों का बहुत महत्वपूर्ण अंश विदेशी आक्रान्ताओं ने नष्ट कर दिया।[1]

हिन्दू राजाओं की राजसभाओं में चारण-भाटों द्वारा भी संगीत तथा उसकी अनुगामिनी भाषा (हिन्दी) पनपती रही। हिन्दी मसनवी को शेख तकीउद्दीन मस्जिद में पढ़कर सुनाया करते थे और उसे हिन्दुस्तानी गायकों भाटों जैसे गीत बताते थे।[2]

रासो भी गायन के लिए लिखे गये और प्रचलित लोकभाषा में उनकी रचना की गई। डॉ० उदयनारायण तिवारी का मत है कि जैन लेखक तथा कवि प्राकृत (अर्द्ध-मागधी प्राकृत तथा अपभ्रंश) का ही प्रयोग अपनी कविताओं में करते थे, किन्तु साधारण चारण और कवि प्राकृत में अपरिचित होने के कारण अपनी प्रचलित भाषा में ही रचना करते थे। नरपति नाल्ह न तो भाषा का पण्डित था और न कोई सुकवि। अतएव उसके लिए अपनी मातृभाषा राजस्थानी में कविता करना सर्वथा स्वाभाविक था।[3]

डॉ० तारकनाथ अग्रवाल ने वीसलदेव रासो के पद भी लोक गीतों के सदृश बताये हैं। रानी राजमती उलग (परदेश) जाते हुए अपने पति से विनय करती है कि वह भी उनके साथ चलेगी। एकाकी रहना उसके लिये दुर्लभ है...

हउ न पठीजु राजा भावी से बात
सामाण चालिस्यइ राइ कइ साथ।
बादली हुई करि आन्तम
पाखन सार मिस्याउ छोमिस्या बाइ॥
उभी पहरइ जागिमिउ
अन्द करि सेविस्यउ आपणयउ राय॥

(वीसलदेव रासो पद सं० ६२)[4]

१ मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ७२
२ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य (डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ) पृष्ठ ६
३ वीरकाव्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ २००
४ वीसलदेव रासो—डॉ० तारकनाथ अग्रवाल, पृष्ठ ६३

रास ग्रन्थो की परम्परा से सम्बद्ध गेय काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' मे नरवर (ग्वालियर) के कछवाहा राजवश का 'माल्ह कुमार' नायक है जिसे प्रेम का उपनाम 'ढोला' दिया गया। इस कथा को नायक की सुप्रसिद्धि मे 'नायक' का नाम ढोला पडा। हेमचन्द्र के 'प्राकृत व्याकरण' मे अपभ्रश के उदाहरणो मे 'ढोला' शब्द आया है। टाड के राजस्थान मे ढोला और उसके पिता का 'नल' नाम मिलता है। ढोला' के बाद कछवाहो ने जयपुर (ढूढाड) मे अपना राज्य स्थापित किया। मुता नैणसी की "राजस्थानी ख्यात" मे भी ढोला का उल्लेख मिलता है।[1]

पूगल के पिंगल राजा की राजकुमारी मारवणी कहती है—

बाबहिया निम्न पखिया वाडत दइ दइ लूण
प्रिउ मेरा मइ प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ सकूण

हे नीले पखो वाले पपीहे तू नमक लगाकर मुझे क्यो काट रहा है। पिउ मेरा है और मैं पिउ की हू।[2]

हिन्दी इसी गेय साहित्य को लेकर ईसवी पन्द्रहवी शताब्दी मे आई। इस शताब्दी मे मालवे के खिलजी शासक, जोनपुर के शर्की वशी शासक, दिल्ली के लोदी वंशी शासक, सभी देशी सगीत को प्रश्रय देने लगे। इस शताब्दी मे सगीत ने मध्यदेश मे इतना विकास किया कि–"तान ग्वालियर की, औ कमान मुलतान की" जैसी उक्तियाँ प्रचलित हुई।[3]

इस शताब्दी मे मेवाड मे राणा कुम्भा ने भी 'सगीत कला' का उन्नयन किया। कु० डॉ० प्रेमलता शर्मा डीन फैकल्टी आफ म्यूजिक (काशी) का कथन है कि पन्द्रहवी शती ई० मे मेवाड (राजस्थान) के प्रतापी शासक महाराणा कुम्भा द्वारा रचित विराट ग्रन्थ 'सगीतराज' भारतीय सगीत शास्त्र मे अद्वितीय स्थान का अधिकारी है।[4]

राणा कुम्भा उस इतिहास प्रसिद्ध शाखा—(हम्मीर–खेता–लाखा–मोकल–कुम्भा) मे उत्तराधिकारी थे। इनका राज्यारोहण काल सन् १४३४ ई० माना जाता है। गीत गोविन्द की टीका भी 'रसिकप्रिया' नाम से राणा कुम्भा ने की थी। ये दो अमर कृतियाँ ही उन्हे प्रभूत यशस्वी बनाने के लिये पर्याप्त हैं। कीर्तिस्तम्भ कुम्भलगढ आदि

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ १६१, १६६
२. वही, पृष्ठ १७०
३. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ७३
४. महाराणा कुम्भा का सगीतराज [डा० (कु०) प्रेमलता शर्मा] विश्वभारती, खण्ड ७, अक १ अप्रैल-जून १९६६, पृष्ठ ३७-४१ एव राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा—डॉ० राजकुमारी कौल, पृष्ठ १७ (१९६९)

में प्राप्त शिलालेखों से, 'रसिक प्रिया' की अन्त.साक्ष्य से डॉ॰ प्रेमलता ने "संगीतराज" का लेखक राणा कुम्भा को ही माना है।[१]

राणा कुम्भा के गीत गोविन्द की मधुर वाणी की ओर आकर्षित होने के कारण एवं संगीत-साधना की ओर प्रवृत्त होने के कारण हिन्दी को मरु कोकिला मीरा की पदावली प्राप्त हुई। मतवाली मीरा की मादक स्वर-लहरी से और उसके पगों के घुंघरू से संगीत गूंजने लगा। राजस्थान का पद साहित्य गलता की रामानन्दी गद्दी के "पयआहारी" और अग्रदास की रचनाओं में भी मिलता है।

संगीत कला और काव्य कला की दृष्टि से यह बात सत्य है कि कला मीरा का साध्य न होकर साधना का माध्यम मात्र थी। उसकी भक्ति नाद-मार्गी भक्ति थी और उसके हृदय के स्वप्न क्योंकि गीतों में साकार हुए थे, अतः बिना इच्छा के ही वह कवियित्री कही सुनी जाने लगी। मीरा की माधुर्य भावना तथा भाव-विह्वल आत्म-समर्पण ने उनके भगवद्-विरह में ऐसा आकर्षण, ऐसी मादकता और ऐसी प्रभावोत्पादकता भरदी है जिसके कारण हिन्दी-गीत-काव्य परम्परा में मीरा के पद प्रमुख स्थान रखते हैं।[२]

स्वामी हरिदास टट्टी सम्प्रदाय के आदि पुरुष हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से चैतन्य सम्प्रदाय का इस सम्प्रदाय से पर्याप्त साम्य है। हिन्दी साहित्य के सभी इतिहास लेखकों ने हरिदास स्वामी को उत्कृष्ट गायक माना है और उन्हें तानसेन का गुरु भी माना है और सभी ने अकबर बादशाह का छद्म वेष में पहुंचकर तानसेन के साथ स्वामी हरिदास का गायन सुनने की घटना का उल्लेख किया है।[३] श्री मीतल ने अकबर-हरिदास भेंट सं॰ १६२३ (१५६६ ई॰) में होना निश्चित किया है।[४]

किशनगढ के राजा भक्तवर 'नागरीदास' द्वारा सं॰ १८०० में रचित 'पद प्रसंग माला' में तानसेन के शिष्यत्व सम्बन्ध पर कथन किया गया है।

श्री मीतल ने लिखा है कि चाहे तानसेन स्वामीजी (हरिदास) के विधिवत् शिष्य न हो किन्तु उन्होंने संगीत के क्षेत्र में किसी समय उनसे कुछ प्राप्त अवश्य किया था।[५]

---

१. वही, पृष्ठ ४३.
२ काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध (डा॰ उमा मिश्र) पृष्ठ १३४, १३५
३. ” ” पृष्ठ १३६
४. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ २१, सूर निर्णय पृष्ठ ६१, अष्टछाप परिचय, पृष्ठ ११८, ११६
५. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ २०

स्वामी हरिदास जी द्वारा गाये हुए पद को नागरीदास ने "विष्णु पद" कहा है यद्यपि उनकी रचनाओं को साधारणतः 'ध्रुपद' कहा जाता है।[1]

'ध्रुपद' ग्वालियर मे 'मार्गी' की जगह क्यो अपनाया गया ? इसकी पृष्ठभूमि मे वे परिस्थितियां हैं जिनमे मध्यदेश मे वासपास भारतीय-ईरानी रागों का मिश्रण हो रहा था। अमीर खुसरो ने ख्याल गायकी चलाया था जिसमे बीच-बीच मे फारसी के शेर भी मिलाये जाते हैं।

जौनपुर के सुलतान हुसैनशाह शर्की को 'तुरुकला' प्रिय था। ग्वालियर से जौनपुर से मैत्री सम्बन्ध हो गया था जहां एक राग 'मान काल' भी प्रचलित हुआ। यह राग मानसिंह ग्वालियर के मानस्वरूप चाहे चल पड़ा हो। मुलतान मे शेख बहाउद्दीन जकरिया रागों का मिश्रण कर रहे थे। गुजरात का सुलतान हुसैन बहादुर भी भारतीय रागो को ईरानी मे ढाल रहा था। ऐसी परिस्थिति मे ग्वालियर अकेला कैसे 'मार्गी मस्कृत' को पकड़े रहता ? अतएव देशवारी गीत 'ध्रुपद' का ग्वालियर ने नया आविष्कार किया। मानसिंह तोमर ने नियमो से जकड़े हुये मार्गी को विदा दी और उसके स्थान पर देशी को प्रस्थापित किया।[2]

'ध्रुपद' के विषय मे 'भावभट्ट' ने 'अनूप संगीत रत्नाकर' मे प्रकाश डाला है—

अथ ध्रोपद लक्षणम्
गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्।
द्विचतुर्वाक्य सपन्न नर नारी कथाश्रयम् ॥१६५॥
शृंगार रस भावाढ्य रागालाप पदात्मकम्।
पादांतानुप्रासयुक्त पादांतयमक च वा ॥१६६॥
प्रतिपाद यत्र बद्धमेव पाद-चतुष्टयम्।
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगोत्तम ध्रुव पदस्मृतम् ॥१६७॥

यह ध्रुपद संस्कृत के अतिरिक्त मध्यदेशीय भाषा एव साहित्य मे राजित था। ये पद छोटे-छोटे, दो-चार वाक्यो के, चार चरणों के होते थे। इनमे नर-नारी की कथाएं वर्णित होती थी। इनका मूल रस शृंगार था। पदों के अन्त में अनुप्रास अथवा यमक रहता था। उसके गेय होने के लिए जिन गुणो की आवश्यकता थी वे भी उसमें थे।[3]

१. वही, पृष्ठ २५, २६
२. मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ ६९, ६७
३. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ७७

'ध्रुपद' के स्वरूप के बारे में विद्वानों को भी भ्रान्ति रहने का पता चलता है। 'काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध' विषय के प्रबन्ध में डॉ० उमा मिश्र ने यह मान्यता स्थापित की है कि ध्रुपद कदापि किसी राग का नाम नहीं है, ध्रुपद तो एक शैली है जिसमें गम्भीर प्रकृति का कोई भी राग बड़ी सरलता से गाया जा सकता है। पीलू, तिलक, कामोद, खमाज जैसे चंचल प्रकृति के रागों में भी ध्रुपद शैली का प्रयोग असम्भाव्य नहीं है। दूसरी बात यह है कि घनाक्षरी ही नहीं सवैया भी ध्रुपद शैली में गेय है।[1]

कैप्टन विलर्ड ने ध्रुपद शैली की गायकी का प्रारम्भ राजा मानसिंह ग्वालियर से माना है और उसे ध्रुपद गायकी का जनक कहा है।[2] श्री विलर्ड ने राजा मानसिंह के समसामयिक बैजू, भोनू पाडवीय, बक्सू, लोहंग, जुरजू भगवान ढोंढी और डालू को बताया है।[3]

वल्लभ सम्प्रदाय के वार्ता साहित्य में तानसेन का ग्वालियर जन्म-स्थान बतलाया है।[4] मुंशी अबुलफज़ल ने अकबरी दरबार के जिन ३६ संगीतज्ञों की नामावली दी है उनमें १५ को उन्होंने 'ग्वालियरी' बताया है जिसमें तानसेन का सर्वप्रथम नाम लिखा है और उनकी समाधि ग्वालियर में ही बनवाई जाने का उल्लेख किया है।[5] श्री कृष्णानन्द व्यास कृत 'राग कल्पद्रुम' में प्रकाशित पद 'छत्रपति मान राजा, तुम चिरंजीव रहो, जोलों ध्रुव मेरु तारो'।

× × ×

"देत करोरन गुनी जनन को अजाचक किये, 'तानसेन' प्रतिपारो॥" से आशय मानसिंह तोमर महाराज से है। श्री मीतल के ध्रुपद संग्रह पद (६०) तथा स्वयं श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने प्रथम पुस्तक में "छत्रपति मान राजा" पाठ ही स्वीकार किया है। ये ऐतिहासिक तथ्य है कि राजा मानसिंह ग्वालियर ही 'छत्रपति' थे आमेर के राजा मानसिंह 'अकबर' के अधीन होने से 'छत्रपति' का उनसे सम्बन्ध नहीं हो सकता। फजल अली कव्वाल कृत "कुल्लियात ग्वालियर"[6] तथा मानसिंह तोमर की संगीतशाला इस अनुमान की पुष्टि करते हैं कि तोमर राज्य की संगीतशाला में ही अपने होनहार विद्यार्थी की प्रतिभा को पहिचानकर उसको 'तानसेन'

१. काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध (डॉ० उमा मिश्र) पृष्ठ २६६, २६७

२. ट्रीटाइज आन हिन्दुस्तान—कैप्टन विलर्ड, पृष्ठ ८८

३. वही, पृष्ठ १०३

४. दो सौ बैष्णवन की वार्ता, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १२४

५. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ३, ४, ६, ३२

६. फजलअली कव्वाल कृत 'कुल्लियात ग्वालियर' में राजा विक्रमाजीत द्वारा तानसेन उपाधि दिये जाने का उद्धरण हेतु 'संगीत सम्राट तानसेन' की भूमिका, पृष्ठ २१

की उपाधि देकर प्रतिष्ठित किया गया होगा क्योंकि मानसिंह के दरबार मे संगीतज्ञ संगीतशास्त्र के आचार्य एवं नायक थे। उन्हें होनहार विद्यार्थी की पहचान कठिन न थी और यही कारण है कि तानसेन विद्यार्थी को शेरशाह के पुत्र दौलतखा सूरी[1] तथा रामचन्द्र बघेल शासक रीवा[2] के यहा गौरव मिला तथा गोविन्द स्वामी से शिक्षापूर्ण होकर, शाहे वक्त 'अकबर' से प्रतिष्ठा मिली और 'ग्वालियर' की तान तानसेन के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई। ग्वालियर का गायक बख्शू पीछे कालिंजर और गुजरात चला गया।

ओरछा मे इन्द्रजीतसिंह के दरबार मे भी संगीत, नृत्य की धूम मची थी। प्रवीण-राय पातुर स्वयं कवियित्री थी। मुगल शासको मे बाबर, हुमायू, अकबर स्वयं संगीत प्रेमी थे। अकबर नक्कारा बजाता था स्वयं पद रचना भी करता था।

बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने नायक बैजू (बैजनाथ) को 'मृगनयनी' उपन्यास मे चन्देरी (ग्वालियर) का निवासी बताया है और उसके द्वारा राजसिंह को वाद्य गायन सिखाया जाना कहा है। उसी की पडोस मे 'कला' नामक लडकी बैजू की 'कला' पर आसक्त हो गई कि इसे बैजनाथ से 'बैजू बावरा' बना डाला।[3] यही बैजू बावरा ग्वालियर मानसिंह के दरबार मे जा पहुचा। पन्द्रहवी शताब्दी मे मानसिंह के ग्वालियरी दरबार मे संगीताचार्यों और नायको का जो इतिहासप्रसिद्ध जमघट रहा है उससे ग्वालियर की सास्कृतिक भूमि और साहित्य संगीत कला का केन्द्र स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मध्ययुगीन कला की पृष्ठभूमि :—

महर्षि शुक्राचार्य ने कहा है कि देवताओ की मूर्तियो की सृष्टि करते समय शिल्पी को केवल आध्यात्मिक दृष्टि को ही आधार बनाना चाहिये, मानवेन्द्रियो द्वारा गम्य होने वाले तत्वो को नही। सभी भारतीय कलाओ मे यही मौलिक तथ्य प्राप्त होता है कि सौन्दर्य का सहज सम्बन्ध आत्मा से है, उपादानो से नही।

भारतीय कलाकार अपने चित्र अथवा कृति को सभी प्रकार के अत्यन्त पूर्ण चराचर जीवो से आच्छादन कर चित्रपट को समष्टि का रूप प्रदान करता है। चित्रपट में एकान्तिकता नही रहती। वहा तो भावनाओ और कल्पनाओ की सकुलता सामुदायिक पृष्ठभूमि बनाती है, किन्तु पश्चिमी कलाकार का आग्रह अलकार की ओर नहीं होता वह चित्र मे सादगी को भूमिका रखता है। उसकी कृति मे सामुदायिक परिस्थिति नहीं

१. शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४२६
२. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ २४।३२ (स० २०१७ सस्करण)
३. मृगनयनी, वृन्दावनलाल वर्मा (१९६२) पृष्ठ ९९, १००

रहती। वह मनुष्य की एकात्मक सत्ता का प्रमुख प्रतिष्ठित करता है। भारतीय कला में वही सार्वभौम सत्ता का प्रतीक है। यह अखिल सृष्टि की एकता का द्योतन करता है। भारतीय मूर्तिकार अपनी आलंकारिक भावना को सघन से सघन बनाता जाता है। पवित्र आस्तिकता और 'भक्ति के आत्मसमर्पण' की अभिव्यंजना में भारतीय कला ने जिस सर्वांगीण सरलता और सजगता का अवलम्बन किया है, उसकी अविजित श्रेष्ठता सर्वदा बनी रहेगी।

भारतीय कलाकार—चाहे वह मूर्तिकार हो, शिल्पी हो अथवा चित्रकार हो—एक आध्यात्मिक साधक है। उसकी सृष्टि अहैतुक साधना है। मुक्ति के इस सोपान पर पहुँचे बिना, वह अपनी कृति में उस अमूर्त आध्यात्मिक पक्ष को मनोगत नहीं कर सकता, जहाँ से उसकी रचना के सहज स्रोत का उद्गम है। महाकवि कालिदास ने कलाकार की असफलता के लिये उसकी "शिथिल समाधि" (साधना की कमी) को उत्तरदायी ठहराया है।[1]

शुक्रनीति में भी मूर्तिकार से साधक और उपासक होने की अपेक्षा की गई है।[2] कला की अनुभूति जीवन की समग्रता और स्थिति की सर्वांगीण विविधता से बल ग्रहण करती है।

दुर्ग, मंदिर एवं जलाशय :—

विभिन्न क्षेत्रफलों के सरोवर सारे बुन्देलखण्ड में वर्तमान हैं। चन्देले और बुन्देले शासकों ने बड़ी संख्या में जलाशय और मन्दिरों की स्थापना कराई जिसमें भित्ति चित्रों में रामायण-महाभारत-पुराण आदि के शृंगार, वीर रस की प्रतीक गाथाओं को उनके पात्रों और परिस्थितियों के सजीव चित्रण में चित्रित किया गया है। महोबा में राहिल सागर, मदन सागर, चन्देरी का कीर्तिसागर, दितया का वीर सरोवर, नरवर-गढ़ की आठ पुरानी बावड़ियाँ, करेरा के भिन्न भिन्न बावड़ियाँ एवं गुप्तेश्वर-गुहा, दतिया का महल, कालिन्जर का अजेय दुर्ग[3] अपने अतीत की गौरव गाथा लिए स्थापत्य के क्षेत्र में भावी पीढ़ी के लिए पुरुषार्थ के प्रेरक हैं। कालिन्जर को "महातीर्थ" बताया गया है।[4] कालिन्जर दुर्ग के तीन द्वार कामता फाटक, पन्ना फाटक और रेवा फाटक के नाम से ज्ञात, आज भी वर्तमान हैं। यह नीलकण्ठ पर्वत पर अवस्थित है जिसकी ऊँचाई समुद्र सतह से १२३० फीट है। यह विन्ध्याचल की सर्वोच्च श्रेणी

१. मालविकाग्निमित्र (कालिदास) २. ३ [illegible]
२. शुक्रनीति-अ० ४, भाग ४-श्लोक १४७-१५०
३. मेमायर्स आफ महमूद आफ गजनी, ३२२
४. वाल्मीकि-उत्तरकाण्ड ३६ अ० । महाभारत-वनपर्व, ८५ अ० । हरिवंश पुराण अध्याय २१ । पद्म पुराण-१ अ०

और पावन चित्रकूट पर्वतमाला का अंग है। दुर्ग में प्रवेश के सात द्वार हैं। गणेश फाटक, चण्डी द्वार है। चौर-बुर्ज दरवाजे पर सन् ११६६, १२७२, १५८०, १६०० ई० के उत्कीर्ण शिलालेख प्राप्त होते हैं। काली, गणेश, नन्दी, चण्डिका, शिवलिंग, शिव-पार्वती आदि की मूर्तियां हैं। यहां पत्थर पर चन्देल शासक कीर्ति वर्मा, मदन वर्मा के नाम खुदे हुए हैं।

लाल दरवाजे में बड़ा शिलालेख है। इस गोपुर के पश्चिमी भाग मे सम्भीर कुण्ड है। भैरव की सुविशाल मूर्ति तथा अन्य छोटी २ मूर्तियां हैं। यहां की दो भारवाही मूर्तियां ग्यारहवीं सदी की हैं जिनके कंधों पर जलपूर्ण कलश का भार है। मृगधार स्थित सरोवर में कोटितीर्थ से पर्वत से दिनरात बूंद-बूंद पानी टपका करता है। नीलकण्ठ महादेव के मंदिर का देवायतन एक सुरम्य गुफा में है जो पर्वत काटकर बनाई गई है। अष्टकोण महामंडप का रचना-कौशल भी चमत्कारपूर्ण है। गुहा-द्वार और स्तम्भों पर उत्कीर्ण मूर्तियों की बड़ी विशिष्ट कला है। यहां का शिवलिंग गहरे नील वर्ण के प्रस्तर से बना है। दुर्ग का प्रांगण राजप्रासादों, सैनिक शिविरों, देवालयों और रक्षा पंक्तियों के भग्नावशेषों से पटा पड़ा है। अजयगढ़, देवगढ़, बारीगढ़, मनियागढ़, मारफा, मौधागढ़, मदट्र सब पर्वत पर अवस्थित चन्देलों के दुर्ग खण्डहर रूप में पड़े हैं।[१]

खजुराहो के मन्दिर :—

खजुराहो के मंदिर आयताकार नागर-शैली अर्थात् 'इन्डो आर्यन' शैली पर बने हैं। सभी देवालय ऊंचे मंच पर बने हैं। देवायतन के अग्रभाग में अन्तराल और फिर महामंडप बने हैं। प्रदक्षिणापथ प्रकाशित रखने के लिये विशाल वातायन रखे गए हैं। बाहरी आकार-प्रकार में श्रृंग, शिखर और विमान यहां के मंदिरों के प्रभावकारी लक्षण हैं। उरोंशृंगों की बनावट तथा वितरण खजुराहो की विशेषता है।[२]

खजुराहो के कुछ ही मंदिर 'पंचायतन' शैली के हैं। ऐसे मन्दिरों के अलिन्द के कोनों पर चार गर्भगृह बने हैं। कुंधारिया का विशाल शिव मन्दिर मनोहर है। मंदिर के प्रवेश-द्वार पर विषाणयुक्त और समुज्ज्वल देवताओं तथा मगीनक्षों आदि से अलंकृत ऐश्वर्यपूर्ण तोरण तथा जयतोरण द्रष्टव्य हैं।

मूर्तियां हिन्दुओं के प्रमुख देव, देवियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। पुनः भित्ति-शृंगों की बहुत सी पंक्तियां है जो प्रतिमाओं के समूह में क्रमानुरूप सजी हुई हैं उनके साथ ही सूक्ष्माकार शिखर बने हैं जो उसी रूप में बनते-बनते चोटी के कूट तक पहुंचते हैं। इन अलंकारों का सामूहिक दृश्य बड़ा मनोहारी है।

१. चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ २३३, २३२

२. वही, पृष्ठ २३६

'ए गाइड टु खजुराहो' की भूमिका मे श्री बी० एल० धाम ने ठीक ही लिखा है कि इन मंदिरो पर सिचित मूर्तियो की राशि का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि हिन्दू विश्व-देवालय का कदाचित ही कोई ऐसा सदस्य छूटा हो जिसका प्रतिनिधित्व न हुआ हो। केवल कंधारिया मंदिर पर ८१२ मूर्तियो का अलंकरण है।[1] चित्रगुप्त मन्दिर का महामण्डप और बीच मे ८ फीट ऊंचा विशाल शिल्प है।[2]

विश्वनाथ और लालाजी का मन्दिर धगदेव चन्देल के शासनकाल के उत्तरार्ध का बताया जाता है।[3] पूर्वी समूह मे यहा जैन मन्दिरो मे एक घंटाई मन्दिर आदिनाथ और पार्श्वनाथ का है। पार्श्वनाथ के मन्दिर को परिवेष्टित करने वाली विशाल भित्ति पर जैन तीर्थंकर शृंगार के लिये बने हुए हैं। ब्रह्मा का मन्दिर कनिंघम के अनुसार ई० आठवी–नवी सदी से पहिले का है।[4]

दक्षिण समूह के मन्दिरो मे चतुर्भुज मन्दिर 'पंचरत्न' शैली का है। यह ताजमहल की ही भांति ईंट के ऊंचे मंच पर खड़ा हुआ है जिसके चारो कोनो पर छोटे-छोटे देवायतन बने हुए है।[5]

देवगढ के मन्दिरो को कनिंघम ने गुप्तकालीन बताया है क्योंकि उनके अंग का विन्यास और रूपरेखा गुप्तशैली ही है।[6] किन्तु चन्देल राजत्वकाल के लेखक का कथन है कि देवगढ के मन्दिरो की छतें स्तूपाकार हैं जहा गुप्तयुगीन सांची, एरण और तिगोव के मन्दिर समतल छतो के है ऐसा प्रमाधन इन मन्दिरो को बाद के समय का निर्धारित करता है।[7]

मान्मथ मूर्तियां

अलंकरण की मूर्तियो को मन्तव्य, प्रयोजन एवं उद्गम परम्परा की दृष्टि से तीन भागों मे रखा जा सकता है। प्रथम तो वे मूर्तियां जो पौराणिक आख्यानों से ली गई है। दूसरे वे जो भीतर ही मंडप और अर्द्धमंडप के अलंकरण के लिये प्रयोग मे लाई गई हैं। तीसरे प्रकार मे वे मूर्तियां जो मन्दिर की बाहरी भित्ति पर कटि भाग पर बनी है। इन मूर्तियों की क्रम से तीन पंक्तियां—प्रत्येक चौड़ी पेटी मे—गई है। इनमे हिन्दू देवताओं, दिक्पालो और स्त्री-पुरुष वेश मे नाग-देवो की है और अप्सराओं और सामान्य

१. ए गाइड टु खजुराहो-भूमिका
२. आर्को० सर्वे रिपोर्ट भाग २, पृष्ठ ४२१
३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३७, पृष्ठ १३२-३३
४. वही,
५. ए स्टडी आव दी इन्डो आर्यन सिविलिजेशन, पृष्ठ २१०
६. वही, पृष्ठ १०५
७. चन्देल और उनका राजत्वकाल, पृष्ठ २४३

नारियों की हैं। अप्सराओं एवं सामान्य नारियों के मान्मथ और रति विषयक हाव, भंगिमा और मुद्राओं का नग्न प्रदर्शन ही इन मूर्तियों में दिखाई देते हैं। इनमें काम-शास्त्र की कितनी ही उत्कृष्ट, उद्दीपनभरी मूर्तियां हैं। पवित्र देवालयों पर इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा न केवल विस्मय बल्कि एक गवेषणा का विषय बन गया है।

इतिहासकार भगवतशरण उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में समाधान प्रस्तुत किये हैं जो ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बद्ध और समीचीन है।[1] मान्मथ मूर्तियों का प्रादुर्भाव बौद्ध स्तूपों से हो जाता है। फिर क्रम से भुवनेश्वर, कनारक, पुरी के जगन्नाथ, इलौरा के कैलास और खजुराहो के मन्दिरों तक पहुँचकर इस रूप में आ गया। काशी के नेपाली मन्दिर में भी रति विषयक उत्कृष्ट मूर्तियों की रचना उन्हीं आधारों पर हुई है। इसका मूलपात बेसनगर की यक्षि मूर्ति में होना प्रतीत होता है। श्री उपाध्याय इस प्रकार के दर्शन का विकास दो स्वतन्त्र साधनों से मानते हैं। हीनयान बौद्धशाखा का मूलरूप से व्यष्टिपरक सिद्धान्त था यह प्रतीकात्मक और अमूर्त सत्ता में विश्वास करने वाला था। इसमें बुद्ध के शरीर, रूप और व्यक्तित्व से अधिक उनकी शिक्षा थी किन्तु इस अविकारी भावना का विकास क्रमशः व्यक्त की ओर होने लगा। यही वास्तव में हीनयान से दार्शनिक प्रस्थान का उपक्रम प्रारम्भ हुआ। बुद्ध जो प्रतीकों में अंकित होते थे मानवमूर्तियों में प्रतिष्ठित हुए। इन बुद्ध मूर्तियों के साथ ब्राह्मण धर्म के अगणित देव-वृन्द भी प्रतिष्ठित किये जाने लगे। बौद्ध मन्दिरों में यक्षों और देवताओं की प्रतिष्ठा के साथ एक ओर कला का रूप बदलने लगा दूसरी ओर जटिल परिचर्याएं समाविष्ट होती गईं। अततोगत्वा महायानियों का मानवमूर्ति-बुद्ध, सर्वशक्तिमान, सर्वव्याप्त के रूप में ग्रहण कर लिया गया। अर्चना रहस्यमय होने लगी। मन्त्रों के प्रयोग बढ़े। महायान मन्त्रयान तक पहुँचा। मन्त्रयानी बौद्धों ने सिद्धि प्राप्त करना आरंभ किया। हठयोग का सहारा लिया। ऐसे सिद्धों के रहस्यमय और चमत्कारपूर्ण आचरण ने लोगों को विस्मित किया और सरल चित्त नारी समाज को आकृष्ट कर लिया। फलतः सिद्धों ने मन्त्र तथा हठयोग के साथ भक्ति के नाम पर मैथुन को प्रश्रय दिया।[2] इस विचारणा ने धर्म को आच्छादित कर लिया, तब कला जो देवालयों से सम्बद्ध हो गई थी, उस भावना का प्रत्यक्षीकरण किया। यह विकृति यहां तक बढ़ी कि 'वैपुल्यवाद' और 'अधक निकायों' ने मैथुन को बढ़ावा दिया। उड़ीसा के श्रीपर्वत के सिद्धों ने रति-भाव को बल दिया। यही वज्रयानियों का पीठ बना जिसमें सुरा-सुन्दरी ही सिद्धों की सिद्धि-साधिका बनी। गुह्य समाज तन्त्र के अनुसार तो इन सिद्धों ने माता, पुत्री, बहिन और पत्नी में भेद नहीं रक्खा।[3] ग्यारहवीं शती तक सिद्ध बढ़ गए। यही समय पुरी

१ दी जर्नल आव दी बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी भाग ५, अंक २, (१९६०) पृष्ठ २२३

२. वही, पृष्ठ २३०, २३१, २४८

३. गुह्य समाज तन्त्र, पृष्ठ १२०-१३६

और खजुराहो के मन्दिरो की रचना का है। ब्राह्मण धर्म में शक्ति की पूजा वेद युगीन है। आगम और तन्त्र साहित्य द्वारा ईस्वी पूर्व प्रथम शती तक पर्याप्त विकास हो गया था। शाक्तो के *नव रूप तान्त्रिक* हुए जिन्होंने रहस्य के साथ नारी भोग और तन्त्र को खूब महत्त्व दिया। तान्त्रिकों का विकास जब कापालिको और अघोरपंथियो के रूप में हुआ तब उनकी सभी चेष्टाओ में वज्रयानियो की लिप्सा आ गई। तान्त्रिको का क्षेत्र कामरूप, बंगाल में था। सातवीं सदी के पश्चात् कामाख्यापर्वत से क्रमशः पश्चिम में पहुँचा। विन्ध्य मेखला और मध्यभारत तक वज्रयानियो तथा तान्त्रिक कापालिकों की मान्यता का प्रसार हो गया। चन्देल मन्दिरो पर रति विषयक और मांसल मूर्तियो की रचना इसी पृष्ठभूमि में हुई। कला में नग्न मूर्तियो का प्रदर्शन भारतीय कला की पुरातन मनोवृत्ति है। *कला में यक्ष और यक्षिणी की परम्परा इस भावना के मूल में* है। शुंगयुगीन जो यक्ष-यक्षिणियां सांची और भारहुत के तोरणो में लगी मिलती हैं वे अर्धनग्न हैं। कुषाण और गुप्त युग तक इसकी बहुलता हो जाती है। स्तूपों के साथ जो वैचित्र्यपूर्ण सम्बन्ध नग्न यक्षिणियों का है वही सम्बन्ध उन मांसल मूर्तियों का देवालय की पावन-पूज्य मूर्तियों के साथ है। एक विश्व है तो दूसरा अध्यात्म की अलौकिक विभुता का सम्पर्श।[1]

ओरछा के वीरसिंहदेव बुन्देला के भवनों, पुण्य सलिला बेतवा और मधुकरशाह बुन्देला की धर्मपत्नी रानी गणेश कुंवरि द्वारा प्रतिष्ठित 'रामराजा' के मन्दिर को भी लेखक ने देखा और महाकवि केशवदास के निवास-स्थान पर भी पहुंचा। उनके विज्ञान गीता में कहे हुए दोहे की दृष्टि से ओरछे का सांस्कृतिक इतिहास स्पष्ट होने लगा—

> बेहाव तुगारण्य में नदी बेतवे तीर।
> जहांगीरपुर बहु बसै पंडित मंडित भीर ॥[2]

रामराजा के मंदिर में भित्ति चित्रों के रंग बहुत आकर्षक हैं तथा चित्रों में शौर्य और शृंगार का अपूर्व समन्वय है। वीरसिंह देव बुन्देला के ओरछा और दतिया के भवन बुन्देला स्थापत्य और शिल्प के सजीव स्मारक हैं। किन्तु इन सबसे अद्भुत है स्थापत्य कला का रत्न 'मानमन्दिर', मनोरम प्रेमकथा से अनुरंजित 'गूजरी महल', मोतीझील के ध्वस्त चिह्न।

मुगल सम्राट बाबर और हुमायूं सहज में ग्वालियर यात्रा करके सांस्कृतिक झांकी

---

१. दी जर्नल आव दी बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, भाग ३, अंक २, सन १९४०, पृष्ठ २२७-२३४
२. विज्ञान-गीता, प्रथम प्रभाव, छंद ३

करते थे, हिन्दू मंदिरो के दर्शन, झीलो के प्राकृतिक दृश्यो मे बैठकर ग्वालियर के कलावन्तो के संगीत से मन बहलाते थे।[1]

बाबर २६ सितम्बर सन् १५२८ को ग्वालियर गढ में "हाती पुल" (हथिया पौर) से प्रविष्ट हुआ। इस द्वार से मिले हुए राजा मानसिंह के महल हैं। राजा विक्रमाजीत (विक्रमादित्य) के भवनो के समीप उसने पड़ाव किया। उसने बाबरनामे में लिखा, *"कि ये भवन बड़े ही विचित्र हैं। ये भवन अनुपात से शून्य भारी-भारी तराशे हुए* पत्थरों के बने हैं। समस्त राजाओं के भवनों की अपेक्षा मानसिंह के भवन बड़े ही उत्तम एवं भव्य हैं। मानसिंह के महल की उत्तरी दिशा के भाग मे अन्य दिशाओं के भागो की अपेक्षा बड़ा अधिक काम बना हुआ है। यह लगभग ४०-५० कारी (गज) ऊंचा होगा और पूरे का पूरा तराशे हुए पत्थर का बना है। उसके ऊपर सफेद पलस्तर है। कही-कही पर इसमे चार-चार मंजिलें है। इस भवन के प्रत्येक कोण में ५ गुम्बद है। इन गुम्बदों के मध्य मे हिन्दुस्तान की प्रथानुसार चौकोर छोटे-छोटे गुम्बद है। बड़े गुम्बदों पर मुलम्मा किया हुआ तांबा चढ़ा है। दीवार के बाहरी भाग पर रंगीन टाइल का काम है। हरी टाइलो से चारों ओर केले के वृक्ष दिखाये गये है। पूर्वी कोण के बुर्ज की ओर हाती पुल (हथिया पौर) है। *पील को यहा हाथी कहा जाता है और* द्वार को पुल (पौर)। इसके फाटक पर एक हाथी की दो महावतो सहित मूर्ति रक्खी हुई है। हाथी की मूर्ति हाथी के समान ही दृष्टिगत होती है। इसके कारण इस द्वार को हाथी पुल कहा जाता है। इस चौमंजिले भवन की सबसे नीचे की मंजिल मे एक खिड़की है जो इस हाथी की ओर है और वहा से इसका निकटतम दृश्य मिलता है।"

मानसिंह के पुत्र *विक्रमाजीत के भवन किले के उत्तर मे केन्द्रीय स्थान पर स्थित* है जब रहीम दाद[2] विक्रमाजीत के भवनो मे निवास करने लगा तो उसने इस हवेली *के ऊपर एक छोटे से हाल का निर्माण कराया।*

यहा के उद्यानों को रहीमदाद का बगीचा, रहीमदाद का मदरसा कहा गया है। इसके पश्चिम मे स्थित तेली के मंदिर के पास ही अल्तमश ने जामा मस्जिद खड़ी करदी। धौलपुर की पहाड़ियों से ग्वालियर गढ और मानमंदिर (लगभग ३० मील दूर से) दिखाई पड़ना बाबर ने बाबरनामे मे बताया है। मोतीझील से ही पत्थर काटकर मंदिर के निर्माण के लिये निकाले गए थे।[3]

दक्षिणी पार्श्व लगभग १५० फीट लम्बा तथा ६० फीट ऊंचा है। सबसे नीचे मकर पंक्ति बनाई गई है और मुखो के *समीप कमल पुष्प* बने हुए है। इस पंक्ति के

१. मुगलकालीन भारत (बाबरनामा) अनु० रिजवी, पृष्ठ २७४-२७६ तथा मुगलकालीन भारत (हुमायूं भाग १) अनु० रिजवी, पृष्ठ ५०८ (हुमायूंनामा)
२. बाबरनामा अनु० रिजवी, पाद टिप्पणी, पृष्ठ २७५
३. बाबरनामा (रिजवी) पृष्ठ २७६

ऊपर हंसों की पंक्ति है। और भी ऊपर खुदाई के काम के बीच सिंह, गज एवं मकरों की आकृतियां बनी हुई हैं। महल के भीतर तथा टोडियों पर सुन्दर और आकर्षक काल्पनिक जीवों की आकृतियां बनाई गई हैं। रंगशाला में जालों पर नर्तकियों का नृत्य, मुद्रा में अंकित किया गया है।

नाना रंगों के उत्पलों में उत्पन्न किये गये सौन्दर्य और पत्थर को काटकर उसमें प्रकृति के उपकरणों की सज्जा, विशालता तथा मनोरमता का समन्वय इस महल की विशेषता है।[1]

'गूजरीमहल'—मानसिंह की प्रेयसी मृगनयनी (गुर्जर महिला) के लिये निर्मित महल में भी विविध रंगों के उत्पल खंडों की कारीगरी तथा पत्थर की कटाई इस महल में भी दिखती है। ये दोनों महलों में स्थापत्य के साथ-साथ मूर्तिकला एवं चित्रकला का सुन्दर समन्वय है।

मानमंदिर तथा गूजरी महल के नानोत्पल खचित हंस, मयूर, कदली, मकर एवं अन्य बेल-बूटे बनाने वाले शिल्पियों के वंशजों ने सीकरी के महलों में एवं ताजमहल में भी काम किया होगा, यह संभव है। मध्यकाल में जिस प्रकार संगीत और काव्य एक दूसरे से सम्बन्धित थे उसी प्रकार चित्रकला भी कभी काव्य से और कभी संगीत से सम्बन्धित दिखाई देती है। चित्रकारों ने अपने चित्रों के विषय धार्मिक आख्यानों से लिए जो काव्य के भी विषय थे। इस प्रकार उनमें निकटता स्थापित हुई, नायिका भेद, षट्ऋतु आदि काव्य और चित्र दोनों के विषय बने। बिहारी महाकवि ने चित्रकार को लक्ष्य करके कहा है—

> लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि गहि गरब गरूर।
> भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

जगत के न जाने कितने चतुर चितेरे अपनी कला पर भरोसा कर करके नायिका की छवि को उतारने बैठे किन्तु नायिका का सौन्दर्य चित्रपट पर उतर न सका, चित्र में उसके सौन्दर्य को बांधा न जा सका। किन्तु फिर भी चित्रकारों ने कवियों की रचनाओं के आधार पर षट्ऋतु, बारह मासा, नायिका भेद आदि विषयों पर चित्रकारी की। चौदहवीं, पन्द्रहवीं शताब्दी के अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक चित्र जिसके पृष्ठ भाग पर केशवदास (महाकवि ओरछा) के कवित्त लिखे हुए हैं भारत कला भवन में है तथा एक चित्र प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में है जो सोरठ रागिनी का चित्र है। इस चित्र के पृष्ठ भाग पर लिखा हुआ है "संवत १७३७ वर्षे

1. मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ २७, २८

ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे एकादशी शुक्रवार को पोथी लिखित चित्र माधोदास नरस्यग सहर जदि के स्थित ।"[1]

अर्थात् यह चित्र संवत् १७३७ (१६८० ई०) मे नरसिंह शहर के निवासी माधव-दास द्वारा बनाया गया ।

वीरसिंहदेव बुन्देला को मुसलमान इतिहासकार नरसिंह लिखते है तारीखे मुबारिकशाही (अनु० रिजवी)[2] मे वीरसिंह देव 'तोमर' को नरसिंह लिखा है पाद टिप्पणी मे बदायूनी के अनुसार हरीसिंह तथा फिरिश्ता के अनुसार 'नरसिंह' दिया गया है ।

मध्ययुग मे चित्रकार की अनूठी कला का दिग्दर्शन छिताई 'चरित' मे द्रष्टव्य है–जब छिताई चित्रशाला मे आती है तब क्या देखती है —

ठोकति बीना निरखति नारी, रचि रचि राग सवारति सारी
गज गति चलइ मंद मुसकाई, सखी पाच दस संगि लगाई
देखन चली चित्र की सारा, लिखिउ चित्र तह विविध प्रकारा
लिखत चितेरो दीन्हे पीठा, सुनिउ झुनक तह फेरी दीठा
रहिउ छिताई कउ मुह जोई, यह मानस कइ अपछर होई
लागिउ चित्र फिरइ चहुपासा, बीन सबद रस श्रवन उदासा
देखइ चित्र कोकु जह कीन्हा, कामुकथा जो देखइ लीन्हा
आसन चित्रे विविध प्रकारा सुमंज परी तरगि रस सारा
आसन देखति खरी लजाई, आचर मुह मूदे मुसकाई
सखिन्ह दिखावइ बाह पसारी, कहा आहि यह कहउ विचारी
देखिउ चित्र सुभुज विपरीता, चलहिं भर्मु भागे भयभीता
देखे नट नाटक आरंभा, लिखिउ कोकु चउरासी खभा
चतुर चितेरे देखी जिसी, करि कागदु लइ चित्री तिसी
चितवनि चलनि मुरनि मुसकानी, रचि रचि चित्र चितेरे बानी
सुन्दर सुघर सो गये प्रवीना, जोबन जुवान बजावइ बीना
नादु करति हर कउ मन हरई, नर बापुरो कहा धउ करई
चित्र देखि बहुरी चित्रनी, आलम गति गयदु बनिनी
कवियन कहै नरायनदासा । गई छिताई बहुरि अवासा ।[3]

चित्रकार ने 'छिताई' का पीछा किया और जिस जिस रूप, हाव भाव मे उसे देखने का अवसर मिला वैसी ही छवि चित्र मे उतारने की चेष्टा करने लगा चित्रकार

१. मानसिंह मानकुतूहल, पृष्ठ १६६
२. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १, पृष्ठ ६
३. छिताई चरित (१४१-१५०) चौपाई संख्या (विद्या मंदिर, ग्वालियर)

'छिताई' की छवि देख-देख स्वयं ही मूर्छित हो जाता है वैसे ही सात्विक स्पन्दन में उसकी तूलिका और कलम कागद पर चलती है वह देखता है—

> पहरिउ वहुर कुसुभी चोरा, गौर वरन ते स्वरन शरीरा
> कुच कंचुकी मोहियन स्याम्, मानहु गुडरी दीन्ही काम्
> सुम चेटुवा लगाए माथा, आपुन भए हरे जब हाथा
> ताहि चरावत बाह उचाई, कुच कंचुकी मधि होद आई
> सब कुच सूरि चितेरे देखा, स्याम घटा जनु ससि की रेखा
> रहइ नयन मन नाहि लगाई, जोय ते सुरति न कबहू जाई
> फिरति महल में निरखी भई, मूर्छा देखि चितेरहि गई
> नेयो तब चित्रग सभारी, लिखिउ रूप सो मनहि विचारी
> जब जब दृष्टि तासु की परी, तब तब बुद्धि तासु की हरी
> तब तब लेखउ लिखिउ स्वरूपा, वायइ पुसिम न और अनूपा[1]

मुगलकाल में भी चित्रकला को प्रश्रय मिला। बाबर ने चित्रकला को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। हुमायूँ और अकबर ने हिरात के चित्रकार मीर सैयद अली ख्वाजा अब्दुल समद से चित्रकला का अभ्यास किया। अकबर ने चीनी अथवा मंगोलियन चित्रकला को भारत में लाकर अपने दरबार में स्थान दिया। उस समय प्राचीन भारतीय कला को अकबर के दरबार में स्थान मिलने लगा था। यह भारतीय कला बिना राज्याश्रय के ही अपनी परम्परा में जीवित थी। अजंता और एलोरा की चित्रकारी देखकर प्राचीन चित्रकारी की महत्ता का ज्ञान हो जाता है। अकबर के दरबार में फारसी (चीनी) तथा भारतीय चित्रकारी एक दूसरे में समाने लगी और कुछ समय में दोनों एक हो गयी। धीरे-धीरे विदेशीपन जाता रहा। 'दास्ताने अमीर हमजा' को भी उपर्युक्त मीर सैयद अली, अब्दुल समद ने १५५०-६० के बीच चित्रित किया था। १५६२ ई० में हिन्दू तथा चीनी-फारसी चित्रकारी आपस में समाने लगी थी। प्रसिद्ध गायक तानसेन का मुगल दरबार में आगमन जिस चित्र में दिखाया गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। १५६६-१५८५ ई० के बीच सीकरी के महलों के दरवाजों पर उत्तम चित्र बनवाये गए। अकबर के दरबार में हिन्दू चित्रकार अधिक थे तथा औरों से अधिक योग्य थे। इनमें दसवन्त, बसावन, सांवलदास, ताराचन्द, जगन्नाथ, लाल, केसू, मुकुन्द और हरिवंश उल्लेखनीय हैं। फारसी चित्रकारों में अब्दुस समद, फर्रुखबेग, खुसरू, कुली, जमशेद प्रसिद्ध थे।[2]

---

१. वही, १५१-१५२

२. मुगलकालीन भारत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ६११-६१२

अबुल फजल ने हिन्दू चित्रकारों की संख्या अधिक मानकर उनके चित्र आशातीत अच्छे बताये हैं और लिखा है कि उनके समान संसार में बहुत कम चित्रकार थे।[1]

जहांगीर ने अकबर के चित्रकला के स्कूल को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया हिन्दू चित्रकारों में विशनदास, मनोहर, माधव, तुलसी और गोवर्धन अधिक प्रसिद्ध थे।[2]

मुगलकाल में अकबर ने चित्तौड़ के राजपूत वीर जयमल और फत्ता की प्रस्तर मूर्तियां बनवाकर आगरा किले के मुख्य द्वार पर प्रतिष्ठित किया। फतेहपुर सीकरी का हाथी पोल, १२½ फीट ऊंचे खम्भों पर दो बड़े-बड़े अगहीन हाथियों से आज भी शोभायमान है। यहां यह उल्लेखनीय है कि बाबरनामा में उल्लिखित 'मानमन्दिर' ग्वालियर गढ़ स्थित 'हातीपुल' के हाथियों से[3] ही कदाचित अकबर को प्रेरणा मिली। बादलगढ़ जो मानसिंह तोमर ने किले के नीचे अत्यन्त दृढ़ तथा भव्य भवन निर्माण कराया था वह भी बाबर ने देखा था और उरवाही द्वार में स्थित २० गज ऊंची जैन मूर्तियां भी देखी थी किन्तु इनके उत्तम अंग भग करा दिये थे।[4] बादलगढ़ में एक पीतल की बैल (गाय) की मूर्ति जिसकी पूजा होती थी सुलतान सिकन्दर लोदी के काल में ग्वालियर आक्रमण के समय आजम हुमायू देहली ले गया और बगदाद द्वार पर डाल दिया।[5] बादल द्वार में हिंडोले की सुन्दर योजना थी इसमें रंगीन प्रस्तर खण्ड लगाकर नानोत्पल खचित चित्रकारी करने के प्रथम दर्शन होते हैं एवं तक्षण का भी उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होता है। यह कल्याणमल तोमर के भाई बादल के नाम पर बना हुआ मानमन्दिर का पूर्व रूप कहा जाता है।[6]

उरवाही द्वार के समूह में अनेक प्रतिमायें हैं जिनमें सबसे ऊंची खड़ी प्रतिमा २० नं० की है जो १७ फीट ऊँची वास्तव में है जिसे बाबर ने २० गज ऊँची होने का अनुमान किया था। चरणों के पास यह ६ फीट चौड़ी है २२ नं० की नेमिनाथजी की मूर्ति बैठी हुई बनी है जो ३० फीट ऊँची है। १७ नं० की प्रतिमा तथा चरण चौकी पर डूंगरेन्द्रदेव तोमर के राज्यकाल का संवत १४९७ (१४४० ई०) का लम्बा अभिलेख खुदा है। दक्षिण-पश्चिम समूह में ८ फीट लम्बी स्त्री की प्रतिमा लेटी हुई है। यह त्रिशला माता की ज्ञात होती है। १ नं० में प्रतिमा समूह में एक स्त्री, पुरुष तथा बालक है।

१. आईने अकबरी, जिल्द १, पृष्ठ १०७
२. तुजुके जहांगीर, अनुवादक रोजर और बेवरिज, जिल्द १, पृष्ठ २०
३. मुगलकालीन भारत-बाबर (बाबरनामा-अनु० रिजवी) पृष्ठ २७५
४. वही, पृष्ठ २७७ एवं मानसिंह मानकुतूहल पृष्ठ ३१
५. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १, (तबकाते अकबरी-रिजवी) पृष्ठ २३६-२३७, टिप्पणी (१)
६. मानसिंह मानकुतूहल पृष्ठ २८

उत्तर-पश्चिम समूह में केवल आदिनाथ की एक प्रतिमा महत्वपूर्ण है जिसमें सं० १५२७ (१४७० ई०) का अभिलेख खुदा हुआ है। ग्वालियर गढ़ का दक्षिण-पूर्व समूह मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह मूर्ति समूह फूलबाग ग्वालियर दरवाजे से निकलते ही लगभग आधे मील तक चट्टानों पर खुदा हुआ मिलता है। इनमें से लगभग २० प्रतिमाएं २० फीट से ३० फीट तक ऊंची हैं और इतनी ही ८ से १५ फीट तक ऊंची हैं। इनमें आदिनाथ सुपद्म (पद्मप्रभु), 'चन्द्रप्रभु', संभू (संभव) नाथ, नेमिनाथ, महावीर, कुन्थ (कुन्थ) नाथ की मूर्तियां हैं। इनमें से कुछ पर संवत् १५२५ से १५३० तक (१४६८ से १४७३ ई०) तक के अभिलेख खुदे हैं।

गढ़ की शिलाओं में उत्कीर्ण इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त भी कुछ मूर्तियां इस काल में बनी ज्ञात होती हैं। 'तेली के मंदिर' के पास कुछ जैन प्रतिमाएं रखी हुई हैं, वे भी इनके समकालीन ज्ञात होती हैं।

ये सब स्थापत्य एवं तक्षण कला का प्रारम्भिक विकास था। इनका पूर्ण विकास मानसिंह तोमर के समय में हुआ।[1] जिनकी प्रेरणा मुगलकाल में झलकी। ताजमहल पर *सिकन्दरे (आगरा)* में अकबर की कब्र पर तथा फतहपुर सीकरी में शेख सलीम चिश्ती की कब्र पर सुन्दरजालों तथा नक्काशी बादलों की घटा, पौधे, फूल तितली, कीड़े-मकोड़े और तरह-तरह के गुलदस्तों के चित्रों में शोभायमान दिखती है। स्थापत्यकला में मुगलकाल में रंग-बिरंगी पच्चीकारी तथा जड़ाऊ काम भी हुआ।[2]

मध्ययुग की कला में बुन्देलखण्ड एवं ग्वालियर के राजवंशों ने भी भाग लिया। यह ऐतिहासिक तथ्यों से विदित है। बुन्देलखण्ड, ग्वालियर और तत्कालीन मालवा, गुजरात, राजस्थान, दक्षिण, काश्मीर एवं दिल्ली सल्तनत का सांस्कृतिक आदान-प्रदान रहा जिसके कारण राजनैतिक उथल-पुथल के बीच भी भारतीय साहित्य—संगीत एवं कला का उन्नयन होता रहा।

○○○

---

१. मानसिंह मानकुतूहल, पृष्ठ २८, ३०, ३१
२. मुगलकालीन भारत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ६१२, ६१६



खण्ड १

अध्याय ४

ग्वालियर क्षेत्र के साहित्य के सम्बन्ध में उल्लेख

- मुल्ला वजही 'गोलकुण्डा' कृत 'सवरस' (१६३६ ई०)
- महीपति बुआ - "भक्त-विजय"
- नवाब नियमत खां 'जान कवि' फतहपुर (जयपुर) कृत 'कनकावती' - १६१८ ई०, 'सतवन्ती सत' - १६२१ ई०
- 'ग्वालियरी' का व्याकरण - 'अज्ञात कवि'
- मध्ययुग के मुस्लिम इतिहासकार अबुलफजल तथा अन्य मुगलकालीन ग्रन्थ
- फकीरुल्ला सैफ खाँ - 'रागदर्पण' १६६६ ई०

मुल्ला वजही:—

ग्वालियर क्षेत्र के साहित्य के संबंध में दक्षिण के प्रसिद्ध कवि श्री मुल्ला 'वजही' के उल्लेख बडे महत्वपूर्ण है। वजही ने सन् १६०० के लगभग अपना गद्यकाव्य 'सवरस' लिखा और यह तब लिखा जबकि एक ओर राम और कृष्ण काव्य की पुण्य सलिला तुलसी और सूर प्रवाहित कर चुके थे, दूसरी ओर मुगल दरबार के नवरत्नों की चका-चौंध भी भारत में फैल रही थी उस समय भी वजही ने विशेष तौर से ग्वालियर की

सांस्कृतिक आभा में विशेष ज्योति के दर्शन किए और ग्वालियर के सांस्कृतिक वैभव का स्तवन किया। वजही ने यह लिखा कि[1]

नार सहेली एक पिउ चउधर पिउ-पिउ होय
जिन पर पिउ का प्यार है सो धनि विरली कोय।
सोऊ सत्त न छड़िये, सत छोड़े पत जाय
सतमी सत की दानि है, पग लगी कर आय।'

यह सांस्कृतिक गरिमा मध्यकालीन मध्यदेश ने भारत की श्रेष्ठतम परम्पराओं का रूप निर्माण कर चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के ग्वालियर को प्रदान की थी जिसे उसने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा में दोहे-चौपाई गेय पद आदि द्वारा प्राजन किया।

'नवरस' में वजही ने खुसरो के एक पद्य को भी उद्धृत किया है—

ज्यों खुसरो कहता है बैत
पखा होकर मैं झली साथी तेरा चाव
मुज जलती को जनम गया तेरे लेखन थाव।

'वजही' ने भाषा को 'सबरस' में हिन्दी कहा है—[2]

"हिन्दुस्तान में हिन्दी जबान सो इस लताफत इस छन्दा सों नज्म और नस्र मिलाकर गुलाकर यों मैं बोल्या"। वजही ने दूसरे स्थल पर 'दखिनी' नाम दिया।[3]

"दखिनी में जो दखिनी मिठी बात का
अदा ने किया कोई इस घात का॥"

वजही की प्रेमाख्यानक कृति 'कुतुब मुश्तरी' सन् १६११ ई० की है।[4]

दखिनी या हिन्दवी का सर्वप्रथम कवि ख्वाजा बन्दा नवाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी (१३१८-१४२२ ई०) था। ग्रन्थकार बन्दानवाज तैमूर के आक्रमण के समय १३९८ ई० में दक्षिण गए तब भेलसा, ग्वालियर, मांडू, गुजरात होते हुए दौलताबाद पहुँचे थे। भाषा की खोज में इनका सम्पर्क तत्कालीन काव्य भाषा से होना स्वाभाविक है।[5]

दखिनी हिन्दी की प्रथम कविता 'कदमराव व पदम' नामक निजामी की मसनवी कही जाती है।[6]

---

१. श्री राहुल सांकृत्यायन (ग्वालियर और हिन्दी कविता—'नवरस' पर लेख) भारती, अगस्त १९५५ पृष्ठ ९६७-६८
२. डा० बाबूराम सक्सेना (दखिनी हिन्दी) पृष्ठ १४
३. वही, पृष्ठ १५
४. हिन्दवी के तीन प्रेमाख्यानक काव्य—डा० शिवगोपाल मिश्र, भारती, अक्तूबर १९५६, पृष्ठ ६६८
५. वही ६ वही

मसऊद ने १२ वी शताब्दी मे इब्राहीम के शासन काल मे दो दीवान फारसी मे –१ हिंदवी मे लिखा। अवधी के प्रथम कवि कबीर १५ वी शताब्दी मे हुए [१]

गूजरी और दक्खिनी हिन्दी —

फीरोज शाह तुगलक की सेना मे ग्वालियर मे तोमर राज्य के सस्थापक, श्री बीरसिंह देव तोमर भी थे। [२] गोगदेव बडगूजर फीरोज तुगलक का सामन्त था।[३] मानसिंह तोमर की गूजरी पत्नी 'मृगनयनी' के कारण 'गूजरी', बहुल गूजरी, माल गूजरी रागो को जन्म मिला।[४]

'गोपाचल' भी ग्वालो का नाम दिया है। चरखारी मे गूजर, बडगूजर गगा किनारे पहुँचे और उन्होने अनूपशहर बसाया।[५]

डॉ० बाबूराम सक्सेना का कथन है कि गूजरी नामक इस दक्खिनी हिन्दी का रूप पजाब के पूर्वी हिस्से और दिल्ली मेरठ की आस-पास की भाषा से हुआ है।[६]

खुसरो का मसनवी खिज्रनामा या खिज्रखा-देवलरानी या इश्किया (आशिकी) (१३१६ ई०) मे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज्रखा और देवलदेवी के प्रेम का वर्णन है। खिज्रखा की आज्ञा से यह मसनवी खुसरो ने लिखी थी।[७] किन्तु 'देवलरानी तथा खिज्रखा' के अनुसार खिज्रखा ने अपने प्रेम की वेदना का वर्णन खुसरो को बुलाकर किया या फिर दासो से एक कहानी खुसरो के पास भेजी जिसके आधार पर खुसरो ने यह प्रेम कथा लिखी थी। खुसरो ने लिखा है कि पहिले आक्रमण मे उलुगखा गुजरात के राय करण की पत्नी कमला दी (देवी) को लाया जिसे अलाउद्दीन खिलजी ने रानी बना लिया। देवल दी उस समय ६ महीने की थी। फिर देवलरानी दुबारा आक्रमण मे लाई जाकर शाही महल मे रखदी गई। खिज्रखा उस समय १० वर्ष तथा देवलरानी ८ वर्ष की थी। उनका साहचर्य रहा और धीरे-धीरे प्रेम बढ़ता गया। पीछे उनके साहचर्य मे व्याघात उपस्थित कर दिया गया। खिज्रखा की २ फरवरी १३१२ ई० मे अलपखा की पुत्री से शादी हुई और खिज्रखा तथा देवलरानी विरह मे व्याकुल रहे। खिज्रखा ने गुप्त रूप से देवलरानी से शादी करली। कुछ दिनो बाद मलिक नायब ने खिज्रखा को ग्वालियर गढ मे बन्दी रखे जाने का आदेश दिलवा दिया। सुलतान बेटे के विरह मे शीघ्र ही १३१६ ई० मे चल बसा। मलिक नायब

१ वही
२. गौरीशकर हीराचद ओझा-(राजपूताने का इतिहास) पृष्ठ २६७
३ वही, पृष्ठ १४२
४. वही, पृष्ठ १६
५ टाड का राजस्थान (ओझा कृत अनुवाद) जिल्द १, पृष्ठ १४०
६ डा० बाबूराम सक्सेना (दक्खिनी हिन्दी) पृष्ठ २३, ३१
७. खुसरो की हिन्दी कविता-ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ६

ने सुम्बुल द्वारा ग्वालियर गढ़ के बन्दीगृह में खिज्रखाँ की आँखों में सलाई फिरवादी। सुलतान मुबारिकशाह ने देवलरानी को खुद को सौंपे जाने का प्रस्ताव रखा तथा किसी इलाके का राज्य देने का खिज्रखाँ को प्रलोभनपूर्ण सन्देश दिया। यह न मानने पर मुबारकशाह ने खिज्रखाँ की हत्या करादी।[1]

'नूह सिपेहर' में तीसरा सिपेहर खुसरो के कथनों के लिये महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष की भाषा के बारे में उसका कथन है— अन्य भाषाओं के समान हिन्दुस्तान में भी प्राचीन काल में हिन्दवी भाषा बोली जाती थी, किन्तु गोरियों तथा तुर्कों के आगमन के उपरान्त लोगों ने फारसी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं। सिन्धी, लाहौरी कश्मीरी, डुबरी, धौर समुद्री, तिलंगी, गूजरी, माबरी गोरी, बंगाली तथा अवधी, भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाती हैं। देहली के आस-पास हिन्दवी भाषा बोली जाती है जो कि प्राचीन काल से प्रचलित है इसके अतिरिक्त एक अन्य भाषा है जिसका प्रयोग केवल ब्राह्मण करते हैं इसका सर्वसाधारण को कोई ज्ञान नहीं। इसका नाम संस्कृत है समस्त ब्राह्मणों को भी इसका ज्ञान नहीं है। अरबी के समान इस भाषा का भी कठिन व्याकरण है। चार पवित्र ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गए हैं। वे चार वेद कहलाते हैं। इनमें देवताओं की कहानियां लिखी हुई हैं। लोग अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए साहित्यिक ग्रन्थ तथा अन्य पुस्तकें संस्कृत में ही लिखते हैं। यह अरबी से कम तथा फारसी से बढ़कर है"।[2]

+ + + "मैं भूल में था पर अच्छी तरह सोचने पर हिन्दी भाषा फारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मीर और सबों में मुख्य है। अरबी अपनी बोली में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती पर फारसी में यह कमी है कि वह बिना मेल के काम में आने योग्य नहीं है। इस कारण कि वह शुद्ध है और यह मिली हुई है। हिंदी भाषा भी अरबी के समान है क्योंकि उसमें मिलावट का स्थान नहीं है।[3]

महीपति बुआ :—

महीपति बुआ ताहराबादकर[4] के ग्रन्थ "भक्त विजय" में ग्वालियर के सम्बन्ध में सूचना डॉ० विनय मोहन शर्मा ने अपने लेख में दी है।

१. देवलरानी-खिज्रखाँ (१६१७ ई०) अलीगढ़ से प्रकाशित जिसका अनुवाद रिजवी ने किया देखिये (खिलजीकालीन भारत-रिजवी) १६५५, पृ० १७१-१७६ तथा (फुतूहुस्सलातीन-एसामी, अनु० रिजवी) पृष्ठ २०६, २०७

२. खिलजीकालीन भारत (डा० रिजवी-अनु० नूह सिपेहर) पृष्ठ १८०, भारती, सितम्बर १९५६ पृष्ठ ५६० "खिज्रखाँ-देवलरानी"।

३. खुसरो की हिन्दी कविता-ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ७ (सं० २०१०)

४. ग्वालियर के कवि नाभादासजी-डा० विनयमोहन शर्मा, भारती, जून १९५९, पृष्ठ ३४५

उनके निष्कर्ष ये हैं कि "हिन्दुस्तानी भाषाओं के नाम में 'ग्वाल्हेरी' भी था। नाभाजी की भाषा जो आज गलती से व्रजभाषा कहलाती है प्रादेशिक भाषा समझी जाती थी और कबीर की बोली "कबीर बोलिले हिन्दुस्थानी देश भाषा आपुली"—हिन्दुस्तानी देश भाषा अर्थात् राष्ट्रभाषा मानी जाती थी जो खड़ी बोली कहला रही है। महीपति बुआ ने कितने प्रेम सम्मान से 'देश भाषा' का स्मरण किया है—

आपुली देश भाषा आदि। 'भक्त विजय' ग्रन्थ की समाप्ति शाके १६८४ चित्रभानु संवत्सर में होना कही जाती है।

भाषा किस नाम से पुकारी जाती थी या किस नाम से पुकारी जाना चाहिये इस विवाद में पड़ना यथेष्ट नही है। केवल प्रस्तुत साहित्य एवं उद्धरणों के पर्यालोचन से इतना देखना है कि हिन्दुस्तानी भाषा (हिन्दी) के विशाल महासागर में एक धारा बुन्देली, ग्वालियर से भी पहुँचकर अपना अंशदान दे रही थी और उस अंशदान को विद्वानों ने अनेक प्रकार से प्रकट किया है जिसमें एक यह भी प्रकार है कि ग्वालियर क्षेत्रीय अंशदान को 'ग्वालियरी' कहा जाने लगा। इस तथाकथित 'ग्वाल्हेरी' से इतना ही निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' की सेवा में किये गये क्षेत्रीय अंशदान का यह विद्वानों की स्वीकृति का एक रूप है। ग्वालियर के नाम पर जब भाषा का नामकरण हुआ तो इतना तो कहा ही जा सकता है कि ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र था जहां भाषा परिष्कृत हो रही थी और उसका रूप परिनिष्ठित काव्य भाषा का संवर रहा था।

जान कवि :—

फतहपुर (जयपुर) के नवाब नयामतखां ने कनकावती कथा संवत् १६७५ वि० (सन् १६१८ ई०) में लिखी। इस लौकिक आख्यान काव्य में ग्वालियर क्षेत्रीय हिन्दी सेवा को रुचिकर समझा गया और उसे क्षेत्र विशेष के नाम से अभिहित किया गया।[1] जान कवि लिखते है—

> काहत जान कवि चित में आनी, वूडि बाधि है सुलभ कहानी
> लिखित हाथ नाहिन अकुलावै, पढत नाहिं रसना अलसावै
> दूडि लही यह कथा पुरानी, ज्यों जानी तिहि भांति बखानी।
> भाषा आनी जो मुख आई, 'ग्वारेरी' हो मनसा भाई
> कीनो बुध परवान विचार, जहा खोरि सो लेहु सुधार।
> और भेद गुन छांडिके तनहु न भूलै और
> सकल रूप मूरिख तजे, चरम निहारे भोर

१. भारती, अक्टूबर १६५६ पृष्ठ ६६८ (जान कनकावती)

'जान' कवि के यह चित्त मे आया कि किसी सुरस कहानी की खोज करके उसे बाधा जाय जिसे कथानक का रूप देने समय मन मे अकुलाहट न हो और जिसे पढ़ते समय चित्त न ऊबे, आलस्य उत्पन्न न हो, इस इच्छा को क्रियान्वित करते समय एक प्राचीन कथा मिल गई और जिस प्रकार वह जानने मे आई वैसा ही वर्णन किया गया। आख्यान की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे 'ग्वारेरी भाषा' अपनाने सुख हुआ, 'ग्वारेरी भाषा' मन को भा गई!

जन कवि का रचना करने का क्षेत्र वागड था, सोरठ मारू का क्षेत्र था। उस क्षेत्र में बैठकर उसे ग्वारेरी भाषा की मनसा दौडी, रुचि ग्वारेरी भाषा की ओर जगी। जान कवि ने सन १६०० मे अपने ग्रथ 'रूपावती' मे अपने निवास तथा क्षेत्र का वर्णन किया है—[1]

> जबु दीप देश तहा वागर, नगर फतेहपुर नगरा नागर।
> आसि पासि तहा सोरठ मारू, भाषा भल्नी भाव पुनिन ॥

जान कवि का 'ग्वारेरी' भाषा मे आशय स्पष्ट ग्वालियर क्षेत्रीय प्रयुक्त हिन्दी की शैली विशेष से है।

श्री नाहटाजी ने 'कविवर जान और उनके ग्रन्थ'[2] 'कविवर जान और उनका कायम रासो', [3] 'कविवर जान का सबसे बडा ग्रन्थ (बुद्धिसागर)'[4] 'कविवर जान रचित अलिफखा की पैडी'[5] नामक लेखो में जान कवि के सम्बन्ध में लिखा है। स० १६७१ से १७२१ तक 'जान' की साहित्य-साधना का समय माना जाता है।

आचार्य चन्द्रवली पांडे और 'ग्वालियरी-ब्रजभाषा':—

श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु के छंद प्रभाकर मे वर्णित दो दोहे इस प्रकार हैं।[6]

> देश भेद सो होति है, भाषा विविध प्रकार।
> बरनत हैं तिन सबन में, ग्वार परी रस सार॥
> ब्रज भाषा भाषत सकल सुरबानी समतूल।
> ताहि बखानत सकल कवि, जानि महारस मूल॥

१. राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, द्वितीय भाग (अगरचन्द नाहटा) पृष्ठ ७१, ७२, ८३, ८४
२. प्र० राजस्थान भारती वर्ष १, अक १
३. प्र० हिन्दुस्तानी वर्ष १२, अक २
४. प्र० हिन्दुस्तानी वर्ष १६, अक १
५. प्र० हिन्दुस्तानी वर्ष १६, अंक ४
६ श्री जगन्नाथप्रसाद भानु (छन्द प्रभाकर) भूमिका पृष्ठ १३

इनमे से प्रथम दोहे में 'ग्वार परी' शब्द के 'प' को आचार्य चन्द्रबली पाडे ने 'य' बनाया और यह कथन किया कि—

'यहां पर हमे विशेष ध्यान देना है वह है श्री भानुजी की यह टिप्पणी—

"ग्वार— ग्वाल भाषा अर्थात् व्रजभाषा।"

"किन्तु हमारा निवेदन है जी नही। फलत. उसका अर्थ भी है ग्वालियर की भाषा।"

आचार्य पाडेजी ने यह भी कथन किया, "कि व्रजभाषा महारस की भूल' है जो राधाकृष्ण की लीला का प्रसाद है, 'ग्वारियरी' को 'दाय' के रूप मे मस्कृत का तो कुछ अभिमान हो सकता है पर वह 'महारस' को अपने मे कहा समेटे? फलत. भक्ति भावना के प्रसार के कारण वह हारी और व्रजभाषा जीत गयी।"[1]

श्री चन्द्रबली पाडे के 'केशवदास' सम्पादित ग्रथ मे मौलाना हाफिज मुहम्मद महमूद खा शेरानी का उद्धरण दिया गया है जिसमें महमूद खा शेरानी ने लिखा है— "फारसी अहल कलम उर्दू को हिन्दी या हिन्दवी कहते हैं और व्रज को ग्वालियरी।" "*मुगलिया अहद के मुसन्नफीन अबुल फजल, अब्दुल हमीद लाहौरी, मुहम्मद सालह—बल्कि खान आरजू तक व्रज को इसी नाम से पुकारते हैं।*"[2]

पाडेजी ने आगे लिखा कि "*यही 'ग्वालियरी' जब कृष्ण की बासुरी मे ढली तब व्रजभाषा के नाम से बाज उठी।*"[3]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी जो इस प्रदेश मे गेयपद साहित्य आख्यान काव्यो मे प्रयुक्त हुई वह संस्कृतनिष्ठ मूल रूप में होते हुए शौरसेनी अपभ्रंश का दाय ही थी, तोमर राज्यकाल मे 'हिन्दी' की ग्वालियर क्षेत्र मे विशेष सेवा हुई इसलिये इसे क्षेत्रीय प्रमुखता के साथ कदाचित ग्वालियरी व्रज श्री चद्रबली पाडे ने कहा है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भी, जो कार्य हिन्दी भाषा एव साहित्य का ग्वालियर क्षेत्र मे हुआ उसे यदि व्रजभाषा समझी जाय तो भी क्षेत्र विशेष के नाम से ग्वालियरी—व्रज कही जा सकती है, फिर कुछ न कुछ तो सूक्ष्म भेद भाषा मे जनपदीय स्तर पर होता ही है जबकि हर बारह कोस पर बोली मे भेद पड़ने लगता है और लोक प्रचलित बोली से उत्पन्न क्षेत्रीय शब्द भी स्थानीय काव्य को किसी न किसी सीमा में प्रभावित करते ही है ऐसी दशा में भी क्षेत्र विशेष के योगदान को स्पष्ट करने की दृष्टि

---

१. मध्यदेशीय भाषा पृष्ठ ५२ पर उद्धृत।

२. ओरिएण्टल कालेज मैगजीन नवम्बर १९३४, पृष्ठ २, श्री चन्द्रबली पाडे के केशवदास में पृष्ठ २६३ पर उद्धृत।

३. 'चन्द्रबली पांडे-'केशवदास' पृष्ठ २६३

मे हिन्दी भाषा मे ग्वालियरी-ब्रज, कल्पित नाम से हिन्दी के विकास क्रम के अध्ययन मे सुविधा रह सकती है। 'ग्वालियरी' के उद्धरणो को लेखक उसी दृष्टि में ग्रहण करता है जहा तक कि वे राष्ट्र भाषा हिन्दी के क्षेत्र विशेष के योगदान को स्पष्ट करने मे सहायक हो। अतएव आचार्य पाडे का यह कथन एक ओर क्षेत्र विशेष की सास्कृतिक परम्परा का उद्घाटन भी कर देता है साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी की अखडता और मध्यदेशीय हिन्दी की ग्वालियरी-ब्रज नाम से अभेदता भी स्थापित कर देता है।

यह बात यहा उल्लेखनीय है कि शौरसेनी से ही आगे गुजराती, सिन्धी, मारवाडी[1] हिन्दी, पजाबी एव पहाडी भाषाओ का विकास हुआ।[2]

अबुल फजल तथा अन्य मुगलकालीन ग्रन्थ —

मुगलकालीन ग्रन्थो मे 'बाबर' का लिखा हुआ बाबरनामा तथा बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम द्वारा लिखा हुआ 'हुमायुनामा" ऐसे ग्रथ हैं जिनसे बाबर और हुमायु के काल की गतिविधियो पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश पडता है।

'बाबरनामा' —

बाबरनामा मे १४९३-९४ से १५०८-९ तक का विवरण इतिहास रूप मे दिया गया है और प्रत्येक वर्ष की घटनाओं पर पूरे-पूरे लेख लिखे गये है। १५१९ ई० से लेकर अन्त तक का वृत्तान्त दैनन्दिनी के रूप मे है और प्रत्येक दिन की घटना का उल्लेख अलग-अलग किया गया है।[3]

१५२५-२६ ई० के विवरण मे बाबर ने भारत के भूगोल, पशुओं, पक्षियों तथा वनस्पति इत्यादि के विषय मे बहुत से स्थानो के निरीक्षण के उपरान्त लेख लिखा और इसमे अपने पूर्व के अभियान के भी हवाले दिये हैं। १५०८ ई० से १५१९ ई० तक के मध्य का भाग नष्ट हो गया है अतः यह कहना अति कठिन है कि इस बीच का कितना भाग लेख के रूप मे था और कितना ", दैनन्दिनी के रूप मे।[4]

हुमायूं के ग्रन्थो की भी समय-समय पर हानि होती रही। १५३४-३५ में गुजरात के आक्रमण के समय जब वह खम्बात के समीप पडाव किये हुए था तो मलिक अहमद लाड एव रुकन दाऊद नामक सुल्तान बहादुर के अमीरों ने कोल भील एव अन्य ग्रामीणो की सहायता से उसके शिविर पर छापा मारा जिसमें उसके अधिकाश ग्रन्थ नष्ट हो गये। इसके अतिरिक्त उसे शेरशाह की विजय के उपरान्त १४ वर्षों तक

१. कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी : "माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर" पृष्ठ १२
२. डा० धीरेन्द्र वर्मा (हिन्दी भाषा का इतिहास) पृष्ठ ४८
३. बाबरनामा, पृष्ठ ४३४
४. मुगलकालीन भारत, बाबर (डा० रिजवी) पृष्ठ १६

(१५४१-१५५५ ई०) तक कभी भी एक स्थान पर शान्ति में बैठना नसीब नहीं हो सका। इस बीच उसके ग्रन्थों को कुछ न कुछ हानि अवश्य हुई होगी।[1]

बाबरनामे से ग्वालियर के साहित्य, संगीत एवं कला से सम्बद्ध व्यक्तियों का परिचय प्राप्त करने के साथ उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का भी ज्ञान हो जाता है कि जिन परिस्थितियों में वे व्यक्ति कला परक रहे।

इससे यह स्पष्ट होता है कि १५२६ ई० में पानीपत के युद्ध के १२० वर्ष पूर्व अर्थात् १४०६ ई० के लगभग [redacted] तोमरवंशी राज्य ग्वालियर गढ़ पर चला आ रहा था।[2]

बाबरनामे से यह संकेत भी मिलता है कि फीरोजशाह तुगलक के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में से ही उत्तरी भारत के विभिन्न प्रदेश स्वतन्त्र होने लगे थे। अन्तिम सैयद सुलतान की बादशाही तो देहली से पालम ही तक सीमित रह गई थी। सुलतान बहलोल लोदी (१४५१-१४८८ ई०) का अधिक समय विद्रोहियों के दमन में व्यतीत हुआ। सुलतान सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१७ ई०) के समय में यद्यपि बहुत से भाग विद्रोहियों से मुक्त हो गये थे किन्तु उनके राज्य में शान्ति स्थापित न हो सकी थी।[3]

'तारीखे मुबारिकशाही' से स्पष्ट हो जाता है कि "ग्वालियर का किला मुगलों के उत्पात [redacted] समय दुष्ट वरसिंह (वीरसिंह तोमर) ने मुसलमानों के अधिकार से विश्वासघात करके छीन लिया था। जब वह नरकवासी हो गया तो उसके स्थान पर उसका पुत्र वीरमदेव गद्दी पर बैठा। उपर्युक्त किला उसके अधिकार में आ गया। इकबालखां (मल्लू इकबाल) ने वहां से हटकर उसकी विलायत को विध्वंस कर दिया और देहली की ओर लौट गया। इकबालखां की यह चढ़ाई जमादि-उल-अव्वल ८०५ हिजरी (नवम्बर-दिसम्बर १४०२ ई०) में हुई थी।[4]

शेख अबुल फजल अल्लामी (१५५१-१६०२ ई०), शेख मुबारक नागौरी का पुत्र तथा शेख अबुल फैज फैजी का छोटा भाई था। वह १४ जनवरी १५५१ ई० में आगरा में उत्पन्न हुआ। १५७३-१५७४ ई० में वह अकबरी दरबार में उपस्थित हुआ और अकबर का विश्वासपात्र एवं मित्र बन गया। अकबर के समय के कट्टर आलिमों के के जोर को तोड़ने में (उनका वर्चस्व कम करने में) उसने अकबर की बड़ी सहायता की और अकबर के 'सुलहकुल' (सभी से मेल) के सिद्धान्तों के निरूपण एवं प्रचार में

१. अकबरनामा भाग १, पृष्ठ १२६
२. वही, पृष्ठ १६०, १६१, कोष्टक के शब्द डॉ० रिजवी ने पाद टिप्पणी में इन्हीं पृष्ठों में दिये हैं।
३. अब्दुल्लाह–तारीखे दाऊदी (अलीगढ़) पृ० ३६-४०, रिजवी, उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १ (अलीगढ़ १९५८) पृष्ठ २६३
४. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १ (रिजवी) (तारीखे मुबारिकशाही पृष्ठ १७१, १७२ का अनुवाद) पृष्ठ ६

उसका बड़ा हाथ था। उसने दक्षिण में अकबर के राज्य की सराहनीय सेवाएं की और वहीं से लौटते हुए उसे शाहजादा सलीम (जहाँगीर बादशाह) ने १०११ हिजरी (२२ अगस्त १६०२ ई०) को वीरसिंह देव नामक बुन्देला सरदार द्वारा उसकी हत्या करादी। अबुल फजल का शव आतरी (ग्वालियर) में दफनाया गया। उसकी सबसे प्रसिद्ध रचना "अकबरनामा" तथा 'आईने अकबरी' ही हैं। "आईने अकबरी" अकबरनामा का तीसरा भाग है, किन्तु यह पृथक् ग्रंथ ही के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। 'इन्शाए अबुल फजल' में उसके पत्रों का संग्रह है। 'महाभारत' का अनुवाद तथा 'तारीखे अलफी' के प्राक्कथन की भी उसी ने रचना की थी।[1]

शेख अबुल फैज फैजी आगरा में १५४७ ई० में उत्पन्न हुआ। अकबर ने उसे 'मलेकुश शुअरा' (कवियों के सम्राट) की उपाधि प्रदान की थी। उस समय के दरबार के संस्कृत ग्रंथों के फारसी अनुवाद की योजना में उसका बहुत बड़ा हाथ था। उसने निजामी के सिकन्दरनामा के समान 'अकबरनामा' काव्य की रचना प्रारम्भ की जो ५ मसनवियों के संग्रह तक एक छोटा-सा भाग लिखा जा सका कि १५६५ ई० में उसकी आगरा में मृत्यु हो गई।[2]

अकबर का गुरु मीर अब्दुल लतीफ १५५७-५८ ई० में नियुक्त हुआ था। अब्दुल लतीफ के पुत्र नकीब खां 'महाभारत' के अनुवादकों में मुख्य था। हुमायूं व शाह तहमास्प के सम्बन्ध पर 'नफायसुल मआसिर' के लेखक मीर अलाउद्दौला ने प्रकाश डाला है।[3]

अब्दुल कादिर बदायूनी ने "मुन्तखबुत्तवारीख में ऐतिहासिक विवरण दिया है। यद्यपि यह एक प्रकार से आलोचक का पक्ष भी निभाता है।

इन समस्त इतिहासों में अफगान सुलतान अथवा मुगलों के मुसलमान इतिहासकारों ने पहिली दृष्टि ये रखी कि राजपूतों अथवा हिन्दू शासकों की अनुपम वीरता को भी दबे स्वर में कहा और उन्हें काफिर समझकर रणक्षेत्र में उनके वीरगति प्राप्त होने को भी "नरकगामी" होना बताया तथा उन्हें "दुष्ट" लिखा। कारण यह है कि इन इतिहासकारों ने अपने मुस्लिम आकाओं को ये रचनाएं पेश की थीं और उन्हें उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखना था। अमीर खुसरो दरबारी कवि को भी अपनी सीमा थी, उसने जो कुछ लिखा उससे अधिक लिखना उसके लिये असम्भव था। जैसाकि हमें विदित है उसने अनेक अप्रिय सत्यों का उल्लेख नहीं किया है जिनमें

---

१. मुगलकालीन भारत-बाबर (डॉ० रिजवी) भूमिका पृष्ठ ६३-६४
२. वही, पृष्ठ (भूमिका) ६३ पाद टिप्पणी।
३. हुमायूं भाग १ (डॉ० रिजवी) भूमिका पृष्ठ २०-२१

अलाउद्दीन द्वारा अपने चाचा जलालुद्दीन का वध, मंगोलों के हाथों सुलतान की पराजय तथा उनके द्वारा दिल्ली का घेरा आदि मुख्य हैं ।[1]

रणथम्भौर :—

अलाउद्दीन के आक्रमण के समय पृथ्वीराज चौहान द्वितीय का वंशज हम्मीरदेव शासक था। हम्मीरदेव के प्रधान मंत्री रणमल को फोड़कर किले पर सन् १३०१ ई० जुलाई में अधिकार किया जा सका। हम्मीरदेव उसका परिवार एवं रणमल भी वध करा दिये गये। [2] यह शौर्य भी आख्यान काव्यों का आधार बना।[3]

चित्तौड़ :—

मेवाड़ के गुहिलौतों का भारतीय शासकों में प्रमुख स्थान था इसलिए उन्हें इल्तुतमिश (अल्तमश) से लोहा लेना पड़ा था और सुलतान (अल्तमश) का आक्रमण विफल हो गया था। १३०३ ई० के प्रारंभ में अलाउद्दीन खिलजी ने २८ जनवरी को चित्तौड़ घेर लिया। कहा जाता है कि राणा रतनसिंह की पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य अलाउद्दीन का था। यद्यपि गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा तथा डॉ० के०एस० लाल आदि आधुनिक इतिहासकारों ने इस कहानी को मनगढ़न्त बताया है। इस कहानी को श्री ओझा तथा लाल ऐतिहासिक न बताने के निम्नलिखित आधार देते हैं।[4]

(१) अमीर खुसरो ने जो अलाउद्दीन के साथ चित्तौड़ गया था और घेरे के समय उपस्थित था इस विषय में कुछ नहीं लिखा।

(२) अन्य तत्कालीन लेखकों ने इसका उल्लेख नहीं किया।

(३) कहानी मलिक मुहम्मद जायसी की लिखी हुई है जिसने अपना पद्मावत १५४० ई० में लिखा था और सभी परवर्ती लेखकों ने उसी का अनुकरण किया है।

डॉ० आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि ये तर्क अमीर खुसरो के ग्रन्थों के उथले अध्ययन पर अवलम्बित हैं और युक्तिसंगत नहीं हैं। उन्होंने ये भी कथन किया है कि अमीर खुसरो अवश्य इस घटना की ओर संकेत करता है जबकि वह अलाउद्दीन की सुलेमान से तुलना करता है, "सँबा" को चित्तौड़ के किले के भीतर बतलाता है और अपनी उपमा उस "हुद-हुद" पक्षी से देता है जिसने यूथोपिया के राजा सुलेमान को सँबा की सुन्दर रानी बिलक्सि का समाचार दिया था।[5]

१. दिल्ली सल्तनत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ १८०-१८१
२. वही, [redacted] १७८
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास (आचार्य बलदेव उपाध्याय) १९६५ ई०, पृष्ठ २६२-२६३
४. दिल्ली सल्तनत, (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ १७८-१७९
५. प्रो० हबीब द्वारा अनूदित 'खुसरव' का 'खजाएन-उल-फुतूह' पृष्ठ ४८

श्री नेत्र पाण्डे अपने मध्यकालीन भारत हिन्दी संस्करण में मेवा की रानी की तुलना निर्जीव लक्ष्मी से करते हैं किन्तु प्रो० हबीब द्वारा अनूदित खुसरव का 'खजाएं-उल-फ़तूह' में टिप्पणी द्वारा स्पष्ट किया है कि कवि का अभिप्राय शायद सुन्दरी पद्मिनी से है। इसी पर बल देते हुए डॉ० आशीर्वादीलाल ने लिखा है कि खुसरो के वृतान्त से स्पष्ट है कि चित्तौड के किले पर अधिकार करने से पहिले अलाउद्दीन उनके (खुसरव) साथ एक बार उसके भीतर अवश्य गया था—उस किले में जिसके भीतर पक्षी भी उड़कर नहीं पहुंच सकते थे। *राणा अलाउद्दीन के खेमों में आया और उसने तभी समर्पण किया* जब सुलतान किले के भीतर से वापिस लौटा। राणा के समर्पण करने के बाद निराश अलाउद्दीन ने राजपूतों का वध कराया।[1] डॉ० आशीर्वादीलाल ने यह भी लिखा कि उपर्युक्त वृत्तान्त की उचित समीक्षा करने से कहानी की मुख्य घटनाएं स्पष्ट हो जाती हैं। *खुसरव दरबारी कवि को इससे अधिक लिखना संभव भी न था।* जैसा कि उसने अनेक अप्रिय सत्यों का उल्लेख नहीं किया जिनके उदाहरण दिये जा चुके हैं अतएव यह कहना गलत है कि यह कहानी जायसी की मनगढ़न्त थी। सत्य तो यह है कि जायसी ने प्रेम-काव्य रचना का आधार खुसरव के "खजाए-उल-फ़तूह" से लिया। पद्मावत में वर्णित प्रेम कहानी में *ब्योरे की अनेक घटनायें कल्पित हैं किन्तु काव्य का मुख्य कथानक सत्य* प्रतीत होता है। अलाउद्दीन पद्मिनी को प्राप्त करने का इच्छुक था। कामुक सुलतान को रानी का प्रतिबिम्ब दिखलाया गया था और उसने उसके पति को बन्दी कर लिया था, ये घटनाएं सम्भवतः ऐतिहासिक सत्य पर आधारित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राणा को बंदी बना लेने के पश्चात् राजपूत स्त्रियों ने जौहर कर लिया, राजपूत योद्धा शत्रु पर टूट पड़े और राणा को उन्होंने मुक्त कर लिया। किन्तु, अन्त में उनमें से प्रत्येक का वध कर दिया गया और चित्तौड का किला तथा राज्य अलाउद्दीन के अधिकार में आ गए।[2]

इस ऐतिहासिक प्रसंग का विवेचन करने का अभिप्राय यह है कि छिताई वार्ता के प्रधान सम्पादक श्री रुद्र काशिकेय के इस कथन से लेखक सहमत नहीं है कि छिताई वार्ता के आख्यानकार इस पद्मिनी सम्बन्धी घटना अपनाने के लिए जायसी के ऋणी हैं। इस संबंध में छिताई वार्ता के विद्वान सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त के निष्कर्ष सही हैं— *"इस बात की सम्भावना यथेष्ट है कि पद्मावत के रचयिता के सामने छिताई* वार्ता का वही रूप था जो हमें 'क' में मिलता है और जायसी की रचना सं० १५९७ (१५४० ई०) की है और छिताई वार्ता की रचना उससे बहुत पहले की है।" श्री रुद्र काशिकेय[3] का कथन है कि—डॉ० गुप्त से सहमत होने में एक साधारण सी बाधा यह

१. वही, पृष्ठ ४६
२. दिल्ली सल्तनत (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ १८०-१८१
३. छिताई वार्ता (सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त) 'परिचय' पृष्ठ १८ प्रधान सं० श्री रुद्र काशिकेय।

है कि यदि जायसी के सामने छिताई वार्ता मौजूद थी तो उन्होंने जहा सपनावती, मुगधावती, मृगावती, प्रेमावती का नाम लिया वहाँ उन्हें 'छितावती' नाम लेने मे कोई सकोच न होता ।"

श्री रुद्र कार्तिकेय आक्षेप के बारे मे विनम्र निवेदन यह है कि ये तो कथाकारो का रुचि वैचित्र्य है । यदि कोई कथाकार किसी पूर्ववर्ती कथा का उद्धरण नही देता तो क्या यह इस बात का अकाट्य एव असदिग्ध तर्क माना जा सकता है कि पूर्ववर्ती रचना केवल इसी कारण पश्चात्वर्ती मानी जाय ? कथाकार अपनी कथा के स्थल विशेष और प्रसग विशेष पर अपनी रुचि के अनुकूल पूर्ववर्ती रचनाओं का उद्धरण सादृश्यता की दृष्टि से देता है वह कोई अन्तिम सूची पूर्ववर्ती रचनाओं की उद्धरण स्वरूप नही देता । इस अपवाद को समझने के लिये 'पदायन' के सम्पादक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद का मत भी स्पष्ट है । डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार इसे लेखक की विवक्षा अथवा रुचि वैचित्र्य ही कह सकते हैं ।[१]

अतएव जायसी के पद्मावत मे 'छिताई' का उल्लेख न होने की बात उसके पूर्व-वर्ती रचना होने मे बाधक नही है । दूसरे, इस सन्दर्भ मे यह भी विचारणीय है कि जायसी ने जो भी उद्धरण मिरगावति, प्रेमावति, सपनावति, मधुमालती आदि प्रेम-कहानियो का दिया है उनसे छिताई कथा की सादृश्यता नही है । सौरसी छिताई का पति है और अपनी पत्नी को पाने के लिये श्रीराम के द्वारा की गई–सीताजी की खोज की भाति ही उसने खोज की है । इसमे प्रेमी पात्र "अलाउद्दीन" भी नही माना जा सकता क्योकि वह तो आक्रामक था, प्रणयी न था, अपनी कामुकता के लिये अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर रहा था अतएव अलाउद्दीन के प्रयास या सौरसी के प्रयासो का उद्धरण इनके सन्दर्भ मे दिया भी नही जा सकता था । 'छिताई वार्ता' ऐसा आख्यान काव्य है जिसमे नीति सम्मत काम, पातिव्रत की साधना तथा एक पत्नीव्रत पर बल दिया गया है अतएव उसे उन प्रेमाख्यान काव्यो के धरातल पर साथ रखकर जाचना कि जिनमे 'प्रेम' की प्रतिष्ठा के लिये दो स्त्रियो की अवतारणा करके अथवा प्रणय के उभय पक्ष की मिलन उत्कण्ठा को चित्रित करके कथा कही गई है, 'छिताई वार्ता' की रचना के साथ कदाचित न्याय नही हो सकेगा ।

तीसरा तर्क श्री कार्तिकेयजी का यह है कि "अपनी इस उक्ति के लिये—"

कवीगण कहइ नारायण दास
मरइ फूल जीवइ दिन वास

१. पदायन-स० डा० विश्वनाथप्रसाद, प्रस्तावना, पृष्ठ १६ तथा पद्मावत, ना० प्र० सभा तीसरा सस्करण स० २००१, पृष्ठ ३००

"कवि नारायण दास जायसी की इस पंक्ति के ऋणी हैं—"

"फूल मरै पै मरै न बासू"

और अपने इस मत के आधार मे कल्पना का सहारा लिया है उनकी कल्पना है कि यदि छिताई वार्ता की रचना उसके प्रतिलिपिकाल (क० प्रति का स० १६४७, ख० प्रति स० १६८२) से बीस ही वर्ष पूर्व हुई तो उसका रचनाकाल सवत् १६२७ हो सकता है।[1]

इसके उत्तर मे निवेदन यह है कि प्रतिलिपिकाल को आधार मानकर और प्रतिलिपियो की पीढियो का अनुमान कर पन्द्रहवी शताब्दी और उसके पूर्व की रचनाओ के रचनाकाल के विषय मे अनुमान करना ठीक नही है। इस युग मे मध्यदेश भीषण उथल-पुथल मे रहा है। राजस्थान एव गुजरात मे इनमे से कुछ कृतिया सुरक्षित रह सकी हैं क्योंकि देश के इस भाग को मध्यकाल की उत्पीडक ज्वाला से अपेक्षाकृत कम भुलसना पडा है। इन शताब्दियो की प्राप्त रचनाओ के प्रतिलिपिकाल और उन रचनाओ में दी गई रचना तिथियो के अन्तर को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१. महाभारत कथा	—	रचनाकाल	सवत् १४९२ वि०
		प्रतिलिपिकाल	सवत् १७६५ वि०
२. लखनसेन पद्मावती रास	—	रचनाकाल	सवत् १५१६ वि०
		प्रतिलिपिकाल	सवत् १६६६ वि०
३. बिल्हण चरित्र	—	रचनाकाल	सवत् १५३७ वि०
		प्रतिलिपिकाल	सवत् १६७४ वि०
४. बैताल पच्चीसी	—	रचनाकाल	सवत् १५४६ वि०
		प्रतिलिपि .	सवत् १७६३ वि०
५. गीता (भाषानुवाद)	—	[illegible]	सवत् १५५७ वि०
		प्रतिलिपिकाल	सवत् १७२७ वि०

इन पाचों रचनाओ मे उनका रचनाकाल दिया गया है। लखनसेन पद्मावती रास के अतिरिक्त अन्य रचनाओं मे रचना स्थान भी दिया गया है। श्री रुद्र कामिकेय के तर्कों के अनुसार इन ग्रन्थो को प्रतिलिपिकाल के हिसाब मे सत्रहवी-अठारहवी विक्रमी की रचनाएं मानना पडेंगी जो स्पष्टतः उचित नही है। अतएव 'छिताई वार्ता' की रचना का प्रतिलिपिकाल के बीस वर्ष पूर्व लेखन का अनुमान युक्तियुक्त नही है। 'छिताई वार्ता' के विद्वान सम्पादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त की स्थापना उचित ही है कि मुसलमान इतिहासकारो ने छिताई को स्वेच्छा से भेंट किया जाना बताया है। छिताई

1. छिताई वार्ता-परिचय (श्री कामिकेय) पृ० २१

सम्बन्धी अन्य ज्ञात रचनाएं तथा उल्लेख पद्मावत के परवर्ती हैं। पद्मावत में 'छल-पूर्वक' छिताई के अपहरण का जो उल्लेख हुआ है उसका आधार कदाचित् प्रस्तुत "छिताई वार्ता" ही है। दोनों रचनाओं में उल्लिखित सुवास सम्बन्धी उक्ति की शब्दावली तक अभिन्न है और वह उक्त दोनों रचनाओं में अन्त में ही आती है, इसलिये इस बात की संभावना यथेष्ट है कि 'पद्मावत' के रचयिता के सामने 'छिताई वार्ता' का वही रूप था जो हमें छिताई वार्ता में कथित स० प्रति में मिलता है।"[1]

दूसरी यह स्थापना विद्वान स० डॉ० मानाप्रसाद गुप्त की समीचीन है कि 'छिताई वार्ता' ग्रन्थ की भाषा और शैली भी इसी परिणाम की पुष्टि करती है। अपने वर्तमान रूप में भी इसकी भाषा और शैली भक्ति युग की किसी भी ज्ञात रचना की भाषा और शैली से प्राचीनतर लगती है। इस दृष्टि से वस्तुत यह हिन्दी के आदि युग और भक्ति युग के बीच की एक कड़ी प्रतीत होती है।

श्री कार्तिकेय की अन्य स्थापनाएं भी विवादास्पद हैं। उनका यह कथन कि छिताई सम्बन्धी तीनों ग्रंथों का उद्देश्य राजस्थानी कवियों द्वारा राजस्थानी नरेशों को शायद इस लज्जा से बचाने के लिए कि उन्होंने स्वेच्छया अपनी पुत्रियां मुगल को दी केवल यह नजीर प्रस्तुत करना है कि उनके बहुत पहले राजा रामदेव भी स्वेच्छया ऐसा ही कर चुका था—युक्तियुक्त नहीं है।[2]

आदरणीय विद्वान श्री कार्तिकेय का यह भी कथन है, "क्या कारण है कि अकबर के समकालीन और उसके बाद के राजस्थानी कवियों को छिताई पर काव्य रचना का शौक सहसा क्यों चर्रा उठा"[3]

श्री कार्तिकेय ने राजपूतों द्वारा पुत्रियां स्वेच्छया देने की प्रथा बताने के लिये 'छिताई वार्ता' काव्य रचना करने का उद्देश्य किन आधारों पर मान लिया जबकि ऐतिहासिक तथ्य एवं काव्य का उद्देश्य उनकी कथित धारणा के विपरीत है?

"छिताई वार्ता" के रचनाकारों को स्वेच्छया मुगलों को राजपुत्रियां देने की प्रथा को बल देने या लाज मिटाने—"लिखने का शौक नहीं चर्राया" अपितु रचनाकार 'हम्मीरदेव' के शौर्य एवं सत्ताहृहीन (शिलादित्य) राजपूत को अत्याचारपूर्वक मुसलमान बनाकर उसका नाम बदल देने आदि की नृशंसतापूर्ण कहानी को और सुलतान द्वारा राजपूतानियों के बलात् अपहरण को जन-जीवन में सामने लाना चाहते थे, जिससे उन्हें 'रामायण' की सीता के धैर्य एवं साहस को छिताई के रूप में प्रेरणा मिले और

---

१. छिताई वार्ता (भूमिका-डॉ० माताप्रसाद गुप्त) पृष्ठ १५, १६
२. छिताई वार्ता (परिचय श्री कार्तिकेय) पृष्ठ २३
३. वही, पृष्ठ २१, २२

सोरंसी (समरसिंह) का वह रूप सामने आए जो "एक नारि नौतनु निकलंकू" तथा "मेरे गेह एक बर नारी" के रूप में उसका एकपत्नीव्रत में प्रतिष्ठित है। छिताई को अपहरण छलपूर्वक की जा सकी अन्यथा राजपूतों के शौर्य में कमी न थी। 'चन्देरी का जौहर' और मेदिनीराय का बलिदानी संघर्ष इसका साक्षी है।

खजाइनुलफतूह के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य है कि अलाउद्दीन हम्मीर सम्बन्धी घटना (१३०१ ई०) तथा पद्मिनी अलाउद्दीन की घटना १३०३ ई० की है तथा अलाउद्दीन के देवगिरि अभियान की घटना 'खजाइनुलफतूह' के अनुसार २४ मार्च १३०७ ई० (शनिवार १९ रमजान ७०६ हिजरी) की है।[1] अतएव ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध यह कल्पना कि रामदेव पहले ही पुत्री स्वेच्छा से दे चुका था—यही बताने छिताई वार्ता की रचना हुई है—असगत है। देवगिरि की घटना, पश्चात् की है अतएव उस घटना को पूर्व प्रथा के रूप में सामने लाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता और खजाइनुलफतूह तथा फुतूहस्सलातीनइसामी के उद्धरणों में भी रामदेव के स्वेच्छया पुत्री भेंट में देने की कल्पना पुष्ट नहीं होती वरन् संघर्ष ही स्पष्ट झलकता है।[2]

छिताई वार्ता के रचनाकारों ने ऐतिहासिक वृत्त जो मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा लिखा गया था उसे अपने दृष्टिकोण से परखा और तत्कालीन राजपूतों के ग्वालियर, चन्देरी, चित्तौड़, रणथम्भौर एवं कालिंजर [illegible] किये गये शौर्यपूर्ण बलिदानों के अनुकूल कथानक को मौलिकता प्रदान की एवं इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तियों को कथानक का पात्र बनाया जिसमें अलाउद्दीन छिताई, रामदेव, सोरसी, चन्द्रनाथ योगी (नाथपंथी), राघव, मोल्हण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नयचन्द्र सूरि के हम्मीर महाकाव्य (१४००-१४१० ई०) तथा मुस्लिम इतिहासकारों का इतिहास छिताई वार्ता के रचनाकारों के समक्ष कथानक के विचार करने के लिए उपस्थित था। मुस्लिम इतिहासकारों के प्रसंग में इस विषय पर इसीलिए चर्चा करनी पड़ी।

मुगलकालीन ग्रंथों में स्थापत्य पर भी ' ',श पड़ता है। बाबर, हुमायूं, ग्वालियर धौलपुर की यात्रा करते रहे और ग्वालियर की शिल्पकला की मुगल ग्रंथों में प्रशंसा की गई। आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर एवं अलीगढ़ में इमारतों के निर्माण हुए। नरवर के क्षेत्र में पवाया (पद्मावती) में असकन्दराबाद नाम से सिकन्दर लोदी ने निर्माण कराया। नरवर, चन्देरी, ओरछा में मुस्लिमों ने नवनिर्माण कराये। बाबर ने एरछ (ईरिज) बान्दीर (भाण्डेर), कचवा (कचौवा) चन्देरी के किले का विवरण दिया है।[3] बाबर ने लिखा है कि मेरे आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर,

१. खिलजीकालीन भारत (डा० रिजवी, खजाइनुलफतूह पृष्ठ ७०-७१) पृष्ठ १६१
२. छिताई वार्ता (स० डा० माताप्रसाद गुप्त) भूमिका परिशिष्ट पृष्ठ ५४-६०
३. मुगलकालीन भारत बाबर (डॉ० रिजवी) पृष्ठ ३१

ग्वालियर तथा कोल के भवनों के निर्माण में १४९१ पत्थर काटने वाले रोजाना कार्य करते थे। इसी प्रकार हिन्दुस्तान में प्रत्येक प्रकार के अगणित शिल्पकार तथा कारीगर हैं।[1]

फकीरुल्ला सैफखां – 'राग दर्पण' १६६६ ई० —

समसामुद्दौला शाहनवाजखां के "जीवनी संग्रह"-मासिर-उल-उमरा" में सैफखां शीर्षक में पूरी जीवनी दी गई है तथा मानसिंह-मानकुतूहल में 'रागों' के प्रकरण में इनका उद्धरण मिलता है।[2] इसके अतिरिक्त डॉ० रघुबीरसिंह ने 'फकीरुल्ला सैफखां' के रागदर्पण पर लेख में भी प्रकाश डाला था।[3] 'राग दर्पण' मानसिंह तोमर द्वारा रचित 'मानकुतूहल' संगीत ग्रंथ का प्रामाणिक फारसी अनुवाद है। अनुवादक सैफखां का ऐतिहासिक परिचय संक्षेप में इस प्रकार है—

फकीरुल्ला सैफखां (सैफुद्दीन महमूद) के पिता तबियत खां जहांगीर–राज्यकाल में तूरान से भारत आकर शाही मनसबदार बने। उनकी मृत्यु के बाद सैफखां १६५६ ई० में स्वयं मनसबदार बन गए। कहा जाता है कि ये पहिले जोधपुर नरेश जसवन्त सिंह सूबेदार मालवा के साथ, औरंगजेब और मुराद का सामना करने गए फिर दूसरे दिन औरंगजेब ने इन्हें अपनी ओर मिला लिया। इन्हें खिलअत मनसब में तरक्की दी गई, 'सैफखां" की उपाधि प्रदान की गई।

दारा के पुत्र 'सिपर शिकोह' को दिल्ली से बन्दी रूप में लाकर "सैफखां" ग्वालियर-गढ़ में पहुँचा गए और सैफखां फिर आगरा के सूबेदार बना दिये गए। जुलाई १६६१ ई० तक फिर अपनी अहम्मन्यता के कारण उन्हें सेवा-च्युति मिली।

'रागदर्पण' की रचना —

अवकाश के इन क्षणों में सैफखां ने संगीत के लिए बड़ी देन दी। एक ऐसे ग्रन्थ का फारसी अनुवाद करके उद्धार किया जो लगभग २०० वर्ष पुराना था और आज उसका महत्व और भी अधिक इसलिए है कि राजा मानसिंह तोमर का रचित मानकुतूहल 'हिन्दी' का अनुपलब्ध होने से इसके फारसी अनुवाद के कारण संगीत के मर्मज्ञ, मानसिंह द्वारा रचित 'मानकुतूहल' से परिचित हो सके और तोमर राज्य में किये गए संगीत के प्रयासों की प्रमाणिक साक्ष्य पासके। साथ ही, ग्वालियर के ध्रुपद शैली के गायन और अकबरी दरबार के कलाकारों की कला का अभिज्ञान प्राप्त कर सके।

---

१. वही, पृ० ४८
२. मानसिंह-मानकुतूहल पृष्ठ ४७, ५७
३. डा० रघुबीरसिंह - फकीरुल्ला सैफखां, भारती दिसम्बर १६५४, पृष्ठ ५२४ पर 'मासिरुल उमरा'-सैफखां पृष्ठ ४७६-४८४ उद्धृत।

औरंगज़ेब कट्टर इस्लाम पंथी का सूबेदार फकीरुल्ला काफ़िरों की प्रशंसा में कुछ लिखे [1] यह बात कला की उस भावना के लिए महत्वपूर्ण है जिसको वास्तविकता से फकीरुल्ला अभिभूत हो उठा। यह बात कला के उन तत्व के लिए भी महत्वपूर्ण है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कलावन्त, वर्ग, जाति भेद और सम्प्रदायगत भेदभाव से ऊंचा होता है, वह कलावन्त के स्तर पर मानव की अभेदता को समादृत करता है। यह बात सन्देह से परे प्रतीत होती है कि फकीरुल्ला [redacted] साम्प्रदायिक दोष चाहे भले ही हो किन्तु वह संगीत कला के लिए सर्वतोभावेन समर्पित था। उसकी यह भावना उसकी कृति से स्पष्ट होती है।

संगीत के प्रति फकीरुल्ला की अत्यधिक अनुरक्ति और आस्था थी। उसने इस कला की आराधना में बहुत धन भी व्यय किया था। वह संगीत को ईश्वराराधन का प्रधान साधन समझता था। हयातरसखानी, शेख कमाल आदि कलावंतों को उसने प्रश्रय दिया।

अनेक विदेशी संगीतज्ञों से भी फकीरुल्ला मिला था। फ़ारसी गायन और भारतीय गायन की तुलना में उसे विशेष आनन्द आता था। अमीर खुसरो का भी वह इसी कारण बहुत बड़ा प्रशंसक था। अमीर खुसरो और गोपाल नायक की संगीत प्रतियोगिता के वर्णन में उसने खुसरो की भारतीय और फारसी संगीत की प्रवीणता की प्रशंसा की है।[1]

फकीरुल्ला ने अनेक स्थानों और क्षेत्रों का वर्णन भी किया है परन्तु सबसे अधिक वे प्रभावित हुए तत्कालीन ग्वालियर के सांस्कृतिक स्तर से। उन्होंने लिखा कि भारतवर्ष में यहां की भाषा सबसे अच्छी है। यह स्थल भारतवर्ष में उसी प्रकार है, जिस प्रकार ईरान में शीराज। काश्मीर को तो उन्होंने भूस्वर्ग बताया ही है।

फकीरुल्ला की साक्षी [2]

"मैं फकीरुल्ला, जो सृष्टि में सबसे तुच्छ हूं, गायन-वादन के रसिकों की सेवा में यह निवेदन करने का मान प्राप्त करना चाहता हूं कि सन् १०७३ हिजरी में इस दीन की दृष्टि में एक प्राचीन पुस्तक आई जिसकी प्रतिलिपि उसके लेखक के समय में ही हो गई थी और जिसका नाम मानकुतूहल' था। यह पुस्तक 'भरत संगीत' के मत पर लिखी हुई है। हजरत आदम की उत्पत्ति के कई हज़ार वर्ष पूर्व इसे देवताओं ने लिखा था, ऐसा हिन्दुस्तान के गैर मुस्लिमों (काफ़िरों) का अनुमान है।"

---

१. मानसिंह-मानकुतूहल पृष्ठ ३०
२. मानसिंह-मानकुतूहल, प्रथम सर्ग, पृष्ठ २७-२८

"राजा मानसिंह ग्वालियर का शासक था और उसका संगीत शास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहले ध्रुपद का आविष्कार राजा मानसिंह ने किया था। उसके समय में अनेक अनुपम गायक थे। राजा स्वयं उनमें संगीत विद्या के विषय में वाद-विवाद करता था। उन प्रसिद्ध गायकों के नाम थे, नायक बख्शू, नायक पाण्डवीय, जो गंगा के किनारे से कुरुक्षेत्र स्नान करने आया था, महमूद लोहंग जिसका स्वर उच्चकोटि का था तथा नायक कर्ण। ये सब नायक ग्वालियर में एकत्रित हुए थे।"

"राजा के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि ऐसे उच्च कोटि के नायक एक स्थान पर कठिनाई से बहुत समय पश्चात् एकत्रित होते हैं। इसलिए यह उचित है कि रागों की संख्या तथा प्रकार विस्तारपूर्वक तथा व्याख्या सहित लिपिबद्ध कर लेना चाहिए ताकि संगीत के विद्यार्थियों को कठिनाई न हो। इस विचार से राग, रागिनी और उनके पुत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन करके ऊपर लिखी हुई पुस्तक की रचना राजा के नाम से की गई।"

"यह पुस्तक विश्वसनीय होने के कारण मैंने (फकीर उल्लाह ने) उसका अनुवाद किया और अन्य आवश्यक बातें उसमें मिलादी जिससे संगीत के विद्यार्थियों को भरत संगीत, संगीत दर्पण और संगीत रत्नाकर देखने की आवश्यकता न पड़े और उनको देखने का अभिप्राय इससे पूरा हो जाय।"

"इस छोटी सी पुस्तक का नाम मैंने "राग दर्पण" रखा। इसलिए कि एक छोटे से दर्पण में वन, पर्वत सभी प्रकट हो जाते हैं। इसमें रागों के गाने के समय भी लिख *दिये हैं और कुछ राग "तुरय-तुरयी" तथा चन्द्रावली नामक पुस्तकों के आधार पर भी लिख दिये हैं। यह विशेषता अन्य पुस्तकों में नहीं है। अन्य किसी को इस प्रकार सब रागों के विषय में लिखना सम्भव नहीं क्योंकि अच्छे गाने तथा बजाने वाले इकट्ठे होने का अवसर नहीं आता है जिससे कि स्वयं चयन करके लिखा जा सके। यदि मुझे ये अवसर मिल जाय तो ईश्वर की कृपा से इस विषय को पूरा कर सकूंगा।"*[1]

'रागदर्पण' के द्वितीय सर्ग में रागों का वर्णन हुआ है।

•• "चूंकि रचयिता (मानकुतूहल) ने कानडा से प्रारम्भ कर यह बतलाया है कि कि कौन से राग मिलकर एक नया राग बना लेते हैं तब हम भी कानडा से ही प्रारम्भ *करते हैं।"*

•• "मालश्री और भरत मूल पुस्तक (मानकुतूहल) में मलारी और मधुमालती की जगह आया है। सरस्वती केदार और सकराभरण मिलाकर गाए तो उसे मालरी कहते हैं। वह सम्पूर्ण राग है और प्रत्येक समय गाया जा सकता है।"

1. मानसिंह-मानकुतूहल, प्रथम सर्ग, पृष्ठ २८-२९

"गूजरी और आसावरी को मिलाकर गाने से गौडकली नाम हो जाता है। सबसे पहले इसे गुरु गोरखनाथ ने गाया था।"

\+ \+ \+

"पूर्वी, गौरी और श्याम को मिलाकर गाने से फरोदस्त (नौबे का) कहते है। इसको अमीर खुसरो ने निकाला है।"[1]

\+ \+ \+

रागदर्पणकार ने 'मानकुतूहल' के अनुसार लिखने के बाद अन्य राग-रागिनियों को मन्सूरशाह की पुस्तक तथा अमीर खुसरो, शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी और सुलतान हुसेन शर्की आदि गायनाचार्यों के लेखों के आधार पर लिखा है।[2]

फकीरुल्ला का कथन है कि "मार्गी भारत में तब तक प्रचलित रहा जब तक कि ध्रुपद का जन्म नही हुआ था। कहते हैं कि राजा मानसिंह ने उसे पहिली बार गाया था जैसाकि पहले उल्लेख हो चुका है। इसमे चार पंक्तियां होती हैं और सारे रसो मे बांधा जाता है। नायक बख्शू, बख्शू और सिंह जैसा नाद करने वाला महमूद तथा नायक कर्ण ने ध्रुपद को इस प्रकार गाया कि इसके सामने पुराने गीत फीके पड गये। इसके दो कारण थे पहला यह कि ध्रुपद देशी भाषा मे देशकारी गीत था तथा मार्गी मे संस्कृत थी इसलिए मार्गी पीछे हट गया और ध्रुपद आगे बढ गया। दूसरा कारण यह था कि मार्गी एक शुद्ध राग था और ध्रुपद मे सब रागो को थोडा थोडा लिया गया है।"

'पादशाही नामा (फारसी ग्रंथ) मे कौल, तराना, ख्याल, नक्श, निगार, बसीत, तल्लाना, सुहिला गीतो के नाम आए है। अमीर खुसरो ने इन रागों को खूब चमकाया।"

गाते-गाते चुप हो जाना व एक बोल को बार-बार दोहराना यह दो लय (तर्ज) अमीर खुसरो ने फारसी और हिन्दुस्तानी मिलाकर उत्पन्न की थी फलस्वरूप गीत आनन्ददायक हो गया। नायक गोपाल के मुकाबले मे खुसरो ने फारसी के कौल तैयार किये थे।[3]

ख्याल दो पंक्ति का होता है उस समय देहली मे गाया जाता था। उस जमाने मे गायक बहुत थे। किसी भी जमाने मे इतने गायक नहीं हुए थे इन गाने वालो में अधिकतर संख्या ग्वालियर वालो की थी।[4]

---

१ वहीं, द्वितीय खंड, पृष्ठ ६६-६८

२ मानसिंह,-मानकुतूहल, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ७२-७८

३. मानसिंह-मानकुतूहल, पृष्ठ ६३

४ वही, पृष्ठ ६६, ६७, ६८, १२६

इस देश की भाषा सस्कृत है। ख्याल मे प्रेमी और प्रेमिका का वार्तालाप होता है। इसमे चार पक्तिया होती हैं। कभी-कभी गाने मे फारसी के शेर मिला देते हैं। मुहले मे कई पक्तिया होती हैं। इसमे विवाह का वर्णन होता है। मथुरा मे एक राग और गाया जाता है जिसे 'विष्णुपद' कहते हैं। उसमे चार बोल से लेकर आठ बोल तक होते है। इसमे कृष्णजी की स्तुति होती है, पखावज बजाई जाती है। "कजनी में यश बणन, रणक्षेत्र मे कडक्के गाये जाते है। एक राग सोरठ होता है इसमे चार, छः या आठ पंक्तिया होती हैं वह नाना भाषाओ मे गाया जाता है। नवशिशु के उत्पन्न के समय 'लीला' गाई जाती है। उत्सव विवाह के लिये 'जयति श्री' निर्मित की गई है।

"सगीत रसिको को ज्ञात होना चाहिए कि "राग सागर" स्वर्गवासी सुल्तान (अकबर) के समय मे रचा गया है उसमे बहुत से राग 'मानकुतूहल' के विपरीत लिखे गए है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि मानकुतूहल और 'रागसागर' के काल मे बहुत अन्तर है। उस समय गायक (गायनाचार्य) थे परन्तु अकबर के काल मे कोई भी गायक सगीतशास्त्र के सिद्धातो मे राजा मान के काल के गायको को नही पाता। दूसरे सम्राट अकबर के समय मे बहुधा अताई व्यक्ति थे, जिन्हे गायन का व्यवहारिक ज्ञान तो था, परन्तु वे गायन के सिद्धान्त से अपरिचित थे।"

मिया तानसेन, सुभानखा फतहपुरी, चादखा और सूरजखा, जो दोनो भाई थे मिया चद जो तानसेन के शिष्य थे, तानतरग खा और विलासखा जो तानसेन के पुत्र थे, रामदास मुडिया, ढाडी, मदनखा मुल्ला इस्हाक खा ढाढी (इनके कई शिष्य थे इसलिए इनसे मुल्ला कहते हैं) खिजरखा, इनके भाई नबाबखा, हमनखा ततवनी जो रईम थे आदि सभी अताई की श्रेणी मे आते हैं।"

"बाजबहादुर जो मालवे का नवाब था, नायक चर्जू नायक भगवान, सूरतसेन जो मिया तानसेन के लडके थे, लाला और देवी (ब्राह्मण भाई) और आकिलखा जो बादखा का लडका था—ये लोग किसी न किसी मात्रा मे सगीत के सिद्धान्तो से परिचित थे। परन्तु फिर भी नायक भनू, नायक पाडे और बक्षु की भाति सगीत शास्त्र के आचार्य नही थे। इस बात का प्रमाण इनके गाने की बैठक है। नायक सिंहासन पर बैठता है और वादक सब पीछे बैठते हैं। सगीत की पुस्तक पढी जाती है और नायक शिष्यो के समक्ष सगीत के सिद्धान्तों की व्याख्या करता है और उनको कार्यान्वित नही कर पाते हैं। इस बात को विचार मे रखते हुए मैंने 'राग सागर' की बात को ग्रहण नही किया और मानकुतूहल का अनुवाद कर दिया है।"

उपर्युक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि ग्वालियर मे देश के कोने-कोने के कलावन सगीताचार्य इकट्ठे थे जिन्हे तोमरकालीन शासको के यहा प्रश्रय था। उनका सम्बन्ध

अमीर खुसरो, सुलतान हुसेन शर्की, शेख नसीरुद्दीन, शेख बहाउद्दीन जकरिया, जैनुल, आब्दीन, सुलतान हुसेन बहादुर गुजरात से भी था । रागो के मिश्रण एव ध्रुपद शैली में गाये जाने वाले हिन्दी भाषा मे पदो की रचना मे ऐसे शब्दो का सम्मिश्रण हो रहा था जिसे मध्यप्रदेश की भाषा कहलाने का गौरव था और यह भाषा का रूप निर्माण सगीत के माध्यम से हो रहा था जिसका सास्कृतिक केन्द्र फकीरुल्ला की साक्षी के अनुसार ग्वालियर ही था ।

* * *

खण्ड २

अध्याय ५

ग्वालियर का साहित्य (१५वीं १६वीं शती)

○ हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का उपलब्ध ज्ञात समकालीन साहित्य

अ. संस्कृत–हम्मीर महाकाव्य (नयचन्द्र सूरि)
१४००–१० ई० वीरमदेव तोमर राज्यकाल।

ब. यशोधर चरित–पद्मनाभ

स. अनंगरंग कल्याणसिंह, 'कल्याणमल' १४८१ ई०

○ अपभ्रंश– अ. पार्श्वपुराण
अ–[रइधू] ब. पउम चरिउ
स. सम्यकत्व गुण निधान

: डूंगरेन्द्रसिंह कीर्तिसिंह तोमर राज्यकाल :

ब. यश-कीर्ति,

स. श्रुतकीर्ति (हरिवंश पुराण) (पाण्डव पुराण)

नयचन्द्र सूरि :—

नयचन्द्र सूरि ने अपने पितामह जयसिंह सूरि से, जो अपने समय के प्रधान नैयायिक थे काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। इन्होंने सम्वत् १४६१ (१३५४ ई०) में 'कृष्णर्षिगच्छ' की स्थापना की थी। १३५७ विक्रमी में होने वाले रणथम्भौर के युद्ध को इन्होंने स्वयं देखा था तथा उसे देखने वालों से पूरी जानकारी प्राप्त की थी।

नयचन्द्र सूरि ने इन्हीं के सहवास में रहकर इस युद्ध का यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया जो मुस्लिम इतिहासकारों के साक्ष्य पर उचित तथा प्रामाणिक ठहरता है। कवि की शैली बड़ी सुन्दर है। प्रसादमयी भाषा में निबद्ध यह काव्य सचमुच वीररस से सर्वथा आप्लुत है–ओजस्वी तथा स्फूर्ति प्रदान करने में यह काव्य सर्वथा समर्थ है।

ग्वालियर के दुर्गपति महाराज वीरमदेव की प्रेरणा :—

नयचन्द्र सूरि ने ग्वालियर के दुर्गपति महाराज वीरमदेव के एक कटाक्ष से प्रेरित होकर शृंगार, वीर तथा अद्भुत रस से सम्पन्न इस काव्य का प्रणयन किया :—

> काव्यं पूर्वकवेर्न काव्य सदृशं कश्चिद् विधाताधुने–
> त्युक्ते तोमर वीरम क्षिति पतेः सामाजिकैः संसदि।
> तद् भ्रूचापल केलि दोलित मनाः शृंगार वीराद्भुत
> चक्रे काव्यमिदं हमीर नृपतेर्नव्य नयेन्दुः कविः॥१४।४३।

हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल —

इस घटना से इस महाकाव्य के रचनाकाल का संकेत भी मिल जाता है। वीरमदेव तोमर ग्वालियर के दुर्गपति के पद पर १४५७ वि० (१४०० ई०) में आसीन हुए और सम्भवतः १४७६ (१४१९ ई०) तक इस पद पर प्रतिष्ठित रहे। इनके अन्तिम शिलालेख का समय १४६७ वि० (१४१० ई०) है।[1] फलतः इस काव्य का प्रणयन काल १५वीं शती के आरम्भिक वर्ष हैं (१४०० ई० से लेकर १४१० ईस्वी का मध्यकाल)।

संक्षेप में कथावस्तु

इस काव्य में सब मिलकर १४ सर्ग और भिन्न-भिन्न छंदों में निबद्ध १५७२ श्लोक हैं। चौहान वंश के संस्थापक चाहमान से लेकर हम्मीरदेव तक ३८ पीढ़ियों का अन्तराल पड़ता है और प्रत्येक राजा का वर्णन कहीं संक्षेप में, कहीं विस्तार में उपन्यस्त है। सम्वत् १३३९ (१२८२ ई०) में राजा जैत्रसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हम्मीरदेव को राज्य देकर वानप्रस्थ ले लिया था। हम्मीरदेव ने लगभग १८ वर्षों तक वीरतापूर्वक राज्य किया और सन् १३०१ ई० के श्रावण मास में रणस्तम्भपुर (रणथम्भौर) में शरणागतवत्सल श्री हम्मीरदेव, अलाउद्दीन खिलजी (आक्रामक) के विरुद्ध, लड़ते-लड़ते वीरगति पा गए थे। किले के भीतरी स्थानों को देखने के लिए 'मोल्हणदेव' नामक दूत भेजा गया जिसने हम्मीर के सामने खिलजी के लौट जाने की दो शर्तें रखीं–हम्मीर की बेटी को ब्याह में देना तथा महिमाशाह आदि चारों मुगल सरदारों को लौटा देना

1. ग्वालियर राज्य का अभिलेख नम्बर २४०, पृष्ठ ३२ (वि०१४६७) जनरल एशिया० सो० बंगाल भाग ३१, पृष्ठ ४२२ तथा चित्र।

जो राजा की शरण में आकर रहते थे। हम्मीर ने प्रस्तावों को ठुकरा दिया, परन्तु संधि हेतु 'रतिपाल' को भेजा। अलाउद्दीन ने ऐसी चालाकी की कि रतिपाल तथा रणमल्ल जो हम्मीरदेव के विश्वासपात्र सरदार थे उन्हें फोड़ लिया। हम्मीर के पराजय की यही घटना कारण बनी। हम्मीर के युद्ध में जाने से पहले रानियों ने जौहर किया।

विशेष —

इस काव्य में पृथ्वीराज चौहान के देहावसान का कारण तीसरे सर्ग में जो दिया गया है वह ऐतिहासिक महत्व का है। नयचन्द्र सूरि का कथन है कि शहाबुद्दीन गौरी के द्वितीय आक्रमण में पकड़े जाने पर पृथ्वीराज चौहान ने आमरण अनशन किया—

अथ स धरणि कान्त सद्गुणाली निशान्त
प्रतिहत बलजात शौर्यगाढावदातः।
विधिविलसित योगादाप्तबन्ध शकेन्द्राद
द्विरपि रतिमहासीद् भोजने जीवने च ॥३।६५॥

और इसी अनशन से इनकी मृत्यु मुहम्मद शहाबुद्दीन गौरी के कारागृह में हुई थी। तथ्य यह है कि चौहानों के इतिहास की जानकारी के लिए यह काव्य विशुद्ध इतिहास-ग्रन्थ के समान प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है।[१]

हिन्दी-साहित्य में हम्मीर की वीरता पर अनेक काव्य लिखे गये हैं। श्री चन्द्रशेखर कवि का 'हम्मीर हठ' लोकप्रिय है। ग्वाल कवि का 'हम्मीर काव्य' अप्रकाशित है, परन्तु जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' (१७८५ सं०-१७२८ ई०) श्री चन्द्रधर शर्मा द्वारा संपादित (१६५२ काशी ना० प्र० सभा) प्रकाशित है।

वीरमदेव की ऐतिहासिक परिस्थिति :—

वीरमदेव की दिल्ली के सुलतान के सेनापति इकबाल खाँ से टक्करें हो रही थीं। इकबाल खाँ ग्वालियर दुर्ग पर आक्रमण कर रहा था। १४०२ ई० में यह आक्रमण हुआ था। ऐसी स्थिति में 'हम्मीरदेव' के चरित काव्य के प्रणयन की प्रेरणा सामयिक ही थी।[२]

---

१. हम्मीर काव्य-श्री नीलकंठ जनार्दन कीर्तने द्वारा संपादित, बम्बई से १८९८ में प्रकाशित। हम्मीर महाकाव्य लेख-जगनलाल गुप्त-(नागरी प्रचा० पत्रिका, १२ भाग, सं० १९८८, पृ० २५६-३०६)
संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ २६२-२६३ पाद टिप्पणी पृष्ठ २६४ पर उद्धृत

२. तारीखे मुबारिकशाही पृष्ठ १७१, १७२ (उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १) (डा० रिजवी), पृष्ठ ६

वीरमदेव के मंत्री कुशराज (जैनधर्मी) पद्मनाभ की साखी[1]

तोमर वीरमदेव स्वयं तो विद्वान और लेखकों के आश्रयदाता थे ही, उनके मंत्री कुशराज ने भी प्रबन्ध काव्यों की रचना कराई। पद्मनाभ ने 'यशोधर चरित' काव्य की प्रशस्ति में लिखा है —

ज्ञाता श्री कुशराज एव सकलक्ष्मापाल चूडामणि ।
श्रीमत्तोमर वीरमस्य विदितो विश्वासपात्र महान् ॥

वीरमदेव के समय में ही जैन धर्म का ग्वालियर में बहुत अधिक प्रवेश हो गया था। पद्मनाभ के उल्लेख के अनुसार 'वीरम' का महान् विश्वासपात्र मंत्री कुशराज जैन मतावलम्बी था। इसी ग्रन्थ में पद्मनाभ आगे लिखता है—

मंत्री मंत्र विचक्षण: क्षणमय क्षीणारिपक्ष:क्षणात् ।
क्षोण्यामीक्षण रक्षण क्षममतिर्जैनेन्द्र पूजारत:

× × ×

ये नैं तत्समकालमेव रुचिर भव्यंच काव्य तथा ।
साधु श्री कुशराज केन सुधिया कीर्तिरिचरस्थापयन् ॥

पद्मनाभ को जैन भट्टारक महामुनि गुणकीर्ति का उपदेश प्राप्त था और मंत्री कुशराज का आश्रय था—

उपदेशेन ग्रन्थो य गुणकीर्ति महामुनेः ।
कायस्थ पद्मनाभेन रचितः पूर्वसूत्रतः ॥

जैन मुनियों और महामुनियों के निकट सम्पर्क ने ग्वालियर को सुदूर गुजरात तक की पिछली छह सात शताब्दियों की साहित्य-साधना के निकट ला दिया। गुप्तों के काल में कच्छपघातों के राज्य तक की वैष्णव एवं शैव परम्परा तो इसे प्राप्त थी ही, संस्कृत से भी निकट सम्पर्क था। अब अपभ्रंश साहित्य से भी ग्वालियर का निकट सम्बन्ध हो गया। डूगरेन्द्रसिंह और कीर्तिसिंह तोमर महाराजाओं (आगे के राज्यों) के काल में यह सम्पर्क बहुत अधिक बढ़ गया। ग्वालियर और स्वर्णगिरि के जैन मंदिरों में स्वयम्भू और पुष्पदत जैसे महान् जैन लेखकों के ग्रंथ आने लगे। हरिवंश पुराण की आद्य प्रशस्ति में बताया गया है कि उस समय सोनागिरि (ग्वालियर) में भट्टारक शुभचन्द्र पदारूढ हुए थे। इससे अनुमान किया जाता है कि ग्वालियर भट्टारकीय गद्दी का एक पट्ट सोनागिरि में भी था।[2]

---

१. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १३२

२. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-श्री नेमिचन्द्र शास्त्री, भाग २, पृष्ठ २२० (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)

श्री राहुलजी का मत है कि 'नानापुराणनिगमागम' आदि के साथ अपने रामचरित मानस के लेखन में गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयभू के 'पउम चरिउ' (पद्म चरित) से भी स्फुर्ति ली थी। स्वयभू रचित इस पद्म चरित—रामायण की सबसे प्राचीन प्राप्त प्रति सन १४६४ ई० मे ग्वालियर मे उतारी गई थी।[1]

स्वयभू के हरिवंश पुराण का उद्धार भी ग्वालियर मे 'जसकित्ति' (यश कीर्ति) द्वारा किया गया था।[2] इस प्रकार तोमरकालीन ग्वालियर, अपभ्रंश के महानतम राम और कृष्ण काव्यो के निकट सम्पर्क में आ गया था।

जैन कवि नयचन्द्र सूरि की दूसरी रचना 'रम्भा मंजरी' भी है जिसे 'सट्टक' कहा गया है। 'रम्भा मंजरी' मे काशी के राजा जयचन्द गहिरवार (११७०-९३ ई०) के रम्भा नामक सुन्दरी से विवाह करने का विचित्र प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि वाराणसी (काशी) के गहडवाल ही आगे बुन्देलखण्ड मे आकर बुन्देले कहलाये।[3] गढकुण्डार के बुन्देले राजा सोहनपाल (१२३१–५६ ई०) की पुत्री धर्मकुवंरि का विवाह पद्मावती (पवाया) के परमार राजा पुण्यपाल से हुआ था। यह पुण्यपाल परमार ग्वालियर के तोमर वीरपाल का भानजा था।[4] महाराज रुद्रप्रताप बुन्देले ओरछा की प्रथम पत्नी करेरा के परमार गगादास की कन्या थी जिससे भारती चन्द, मधुकरशाह बुन्देला, उदयाजीत तीन पुत्र हुए थे।[5] इस प्रकार बुन्देलो और तोमरो के बहुत पुराने सम्बन्ध थे। वीरमदेव की राजसभा के कवि नयचन्द्र ने अपनी नाटिका के लिए गहडवाल जयचन्द्र को, वीरम तोमर से उनके सम्बन्धो के कारण ही नायक चुना होगा।

पद्मनाभ :—

जैन साधु तो प्रवासी ही रहा करते थे। वीरमदेव तोमर की सभा मे नयचन्द्र सूरि कब तक विद्यमान रहे, नही कहा जा सकता। पद्मनाभ ने भट्टारक गुणकीर्ति से उपदेश ग्रहण किया था। ग्वालियर मे भट्टारको की गद्दी थी ही, जैन भट्टारक देवसेन, यशःकीर्ति, भानुकीर्ति आदि के नामो के शिलालेख ग्वालियर गढ के उरवाही द्वार पर मिले है।[6]

---

१. राहुल सांकृत्यायन-ग्वालियर और हिन्दी कविता-भारती, अगस्त १९५१, पृष्ठ १६६
२. परमानन्द जैन शास्त्री (महाकवि रइधू) वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ६६८
३. बुन्देलखण्ड की प्राचीनता (डॉ० भागीरथप्रसाद शास्त्री पृष्ठ १ टिप्पणी।
४. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास-गोरेलाल, पृष्ठ १२१–१२२ (१९९० वि० प्रथम संस्करण)
५ वही पृष्ठ १२५
६: ग्वा० राज्य के अभिलेख क्रमांक २५७, ४१० विक्रमी १४९७, १६५३, पृष्ठ ३०, ५४

"मुनि जसकित्ति (यशकीर्ति) काष्ठासंघ-माथुरान्वय पुष्करगण के भट्टारक थे और गोपाचल या ग्वालियर की गद्दी पर आसीन थे। उनके गुरु का नाम गुणकीर्ति था। 'ज्ञानार्णव' की प्रति में तोमरवंशी राजा कीर्तिसिंह के राज्यकाल के लेखक 'यशःकीर्ति' ने १५२१ सं० (१४६४ ई०) में अपने गुरु गुणकीर्ति का नामोल्लेख किया है तथा अपने शिष्य मलयकीर्ति और प्रशिष्य गुणभद्र का नाम भी दिया है।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि गुणकीर्ति गोपाचल की भट्टारक-गद्दी पर आसीन थे। उन्होंने वीरमदेव तोमर के काल में मंत्री कुशराज जैन के आश्रित पद्मनाभ कवि को उपदेश दिया था। अतएव पद्मनाभ के ग्रंथ का प्रणयन ग्वालियर में माना जा सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि माथुर कायस्थ तथा कायस्थों के परिवार लेखक व कला प्रेमियों का मध्ययुग में ग्वालियर क्षेत्र में अनेक शिलालेखों से अस्तित्व का पता चलता है।[2]

माणिक, थरू, देवी, देवचंद, दामोदर नाम के व्यक्ति तोमरवंशी राजाओं के काल में कायस्थ वंश के पाए भी जाते हैं।[3]

हरिवंस पुराणु (रिट्ठणेमि चरिउ) पर गोपगिरि में प्रवचन.

'हरिवंस पुराणु' की ९९ सन्धियां 'स्वयंभु देव' की बनाई हुई हैं और १००-११२ सधियां त्रिभुवन स्वयंभु उनके पुत्र ने बनाई किन्तु सन्धि क्रमांक १०६, १०८, ११० और १११वीं सधियों के पद्यों में मुनि 'जसकीर्ति' का भी नाम आता है। जैन साहित्य के इतिहास के अनुशीलन से पता चलता है की गोपगिरि (ग्वालियर) के समीप कुमर-नगरी के जैन मन्दिर में प्रवचन के लिये 'हरिवंस पुराणु' की जीर्ण-शीर्ण प्रति के अंतिम नष्ट पत्रों में मुनि जसकित्ति ने अपनी रचना बढ़ादी थी क्योंकि जसकित्ति ने स्वयं अपभ्रंश भाषा में 'हरिवंसपुराणु' लिखा था अतएव यह कार्य उनके लिये सुगम था।[4]

धर्म:—

वीरम के ग्वालियर की प्रजा हिन्दू धर्मावलम्बी थी। राजा स्वयं भी हिन्दू धर्म का पालन करता था। असहिष्णुता के उस युग में वीरम इस्लाम के प्रति सद्भावना रखता होगा—इसकी संभावना कम है। वीरसिंह तोमर तुगलकों की सेवा में रह चुके थे किन्तु वीरम को दिल्ली के सुलतानों से कोई सम्बन्ध न रह गया था। इनके राज्यकाल

१. जैन साहित्य और इतिहास—स० नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ २०३ की पाद टिप्पणी 'ज्ञानार्णव' की प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में है।
२. ग्वा० राज्य के अभिलेख १२८, १०४ वि० १३४८, १३२१, पृष्ठ २५, २० तथा अभिलेख क्रमांक ४३१ वि० १७०१, पृष्ठ ५७। क्रमांक ४६६ पृष्ठ ६२। क्रमांक (७०४ पृष्ठ ६६)।
३. 'छिताई वार्ता' प्रस्तावना डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ ७, ८
४. जैन साहित्य का इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ २०१, २०२-३।

मे जैन धर्म को अवश्य प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला उसका कारण जैन मतावलम्बी मन्त्री कुशराज का होना भी हो सकता है। कुशराज जैन ने आकाश मे प्रतिस्पर्धा करता हुआ उन्नत एव विशाल चैत्यालय बनवाया था। डूगरेन्द्रदेव के काल मे वि० १५१० (१४५३ ई०) के शिलालेख के अनुसार चन्द्रप्रभु की मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई।[1]

राज्य सीमा —

वीरम तोमर ने अपनी राज्य सीमा कहा तक फैलाई ? इसकी स्पष्ट जानकारी नही है। इनके उल्लेख सहित एक शिलालेख १४६७ वि० का ग्वालियर मे प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि वीरमदेव तोमर ईस्वी सन् १४०८ तथा १४१० ई० मे विद्यमान थे और सुहानिया, ग्वालियर तो उनकी राज्य सीमा मे सुनिश्चित रूप मे थे ही, किन्तु चम्बल और सिन्ध के बीच उनकी राज्य सीमा रही।[2]

अनगरग (कल्याणसिंह अथवा कल्याणमल तोमर) कृत —

कल्याणसिंह तोमर ग्वालियर गढ की गद्दी पर १४७९-१४८६ ई० तक लगभग सात वर्ष रहे। इनका राज्यकाल बहलोल लोदी के जमाने में था, इनसे विशेष सघर्ष नही हुआ। बहलोल लोदी (१४५१-१४८६ ई०) ने जुलाई १४८६ ई० मे ही मानसिंह तोमर के काल मे (१४८६-१५१६ ई०) ग्वालियर पर आक्रमण किया था। ग्वालियर से लौटते समय ही मार्ग मे उसका देहान्त हो गया।[3] अतएव कल्याणमल तोमर अपना राज्यकाल चैन से निकाल सके और 'अनगरग' कामशास्त्र का प्रणयन १४८१ ई० मे सस्कृत भाषा मे कर सके।

श्री भालेराव ने यह माना है कि यह अनगरग इन्ही कल्याणमल ने लिखा है।[4] और डा० विजयपालसिंह ने अपने ग्रथ मे कल्याणमल के अनगरग का नायिका भेद के अन्तर्गत केशवदास की रसिकप्रिया से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए केशवदास पर 'अनगरग' का प्रभाव माना है।[5] किन्तु 'अनगरग' मे प्रशस्ति का यह श्लोक विचारणीय है —

> अस्यैव कौतुकनिमित्तमनगरग
> ग्रथ विलासिजन-वल्लभ मातनोति।

१. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमाक २७७, पृष्ठ ३६
२. सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २६३ तथा ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमाक २४० वि० १४६७ ग्वालियर गिर्द, पृष्ठ ३२।
३. दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २६१
४ दिल्ली सल्तनत—डा० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ २६१
५. भा० रा० भालेराव : कल्याणमल और उनका अनगरग, लेख भारती, अक्टूबर, १९५४, पृष्ठ ३६२।

श्रीमन्महावविशेष कला विदग्ध.
कल्याणमल्ल इति नृप-मुनियंशस्वी ॥

कल्याणमल 'नृपों में मुनि एवं यशस्वी' हैं। इस श्लोक द्वारा पंडित जन में से किसी ने तत्कालीन राजा कल्याणमल की प्रशस्ति की है। चतुर्वेदी,[१] गौड़ विप्र एवं मिश्र परिवार[२] में से व्यक्ति ग्वालियर, ओरछा, मेवाड़, जयपुर, मथुरा, जौनपुर, काशी में फैले थे और ग्वालियर से उनका सम्बन्ध रहा।

यह निश्चित है कि कल्याणमल के इस 'अनंगरंग' के प्रणयन से परवर्ती हिन्दी साहित्य को लाभ मिला।

अपभ्रंश का जैन महाकवि "रइधू" (ग्वालियर):—

महाकवि 'रइधू' के पितामह का नाम देवराय और पिता का नाम हरिसिंह तथा माता का नाम विजयश्री था। यह पद्मावती पुरवाल जाति के थे। ये गृहस्थ विद्वान थे। कवि-कुल-तिलक, सुकवि इत्यादि इनके विशेषण हैं। ये मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराने के भी आचार्य थे। इनके दो भाई थे—बाहोल और माहणसिंह। इनके कविता-गुरु थे भट्टारक यशकीर्ति (जसकित्ति) थे जिनके आशीर्वाद से इनमें कवित्व का स्फुरण हुआ तथा इनके विद्या-गुरु ब्रह्मश्रीपाल थे जिन्होंने इन्हें विद्याभ्यास कराया। कविवर रइधू ग्वालियर के निवासी थे। इनके समकालीन राजा (डूगरेन्द्र सिंह) डूगरसिंह, कीर्तिसिंह, भट्टारक गुणकीर्ति, भट्टारक यश:कीर्ति, भट्टारक मलयकीर्ति और भट्टारक शुभचन्द्र थे।[३]

इनका समय ग्वालियर के तोमरवंशी नरेश डूगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्यकाल का है।

रचनाकाल:—

डूगरेन्द्रसिंह १४३५ ई० (सं० १४९२) में ग्वालियर गढ़ के अधिपति थे उनके काल में विष्णुदास ने 'महाभारत भाषानुवाद' की रचना की जिस पर आगे विचार किया गया है। १४४० ई० (वि० १४९७) का शिलालेख श्री डूगरेन्द्रदेव तोमर के राज्यकाल और गोपाचल के उल्लेखयुक्त ग्वालियर दुर्ग में जैनमूर्ति पर लेख के रूप में प्राप्त है।[४] तथा उरवाही द्वार की ओर जैनमूर्ति पर इसी संवत् का अभिलेख देवसेन यश:कीर्ति, जयकीर्ति आदि जैन आचार्यों के उल्लेख सहित है।[५] डूगरेन्द्र डूगरसिंह के

१. मानसिंह-मानकुतूहल, परिशिष्ट, पृष्ठ १२८-१६२
२. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १४२
३. हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन—नेमिचन्द्र शास्त्री, भाग २, पृष्ठ १९१, १९६६ प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
४. ग्वालियर राज्य के अभिलेख क्रमांक २४४ वि० १४९७, पृष्ठ ३६-३७
५. वही, पृष्ठ ३७, क्रमांक २४७ (वि० १४९७)

राज्यकाल के स० १५१०, १५१४, १५१६ के अन्य अभिलेख भी हैं इनमे स० १५१० (१४५३ ई०) मे चन्द्रप्रभु की मूर्ति-प्रतिष्ठा हुई है।[1] 'सम्मइजिन चरिउ' की प्रशस्ति मे रइधू ने चन्द्रप्रभु आठवें तीर्थंकर की विशाल मूर्ति निर्माण किये जाने का उल्लेख किया है। संभव है ये मूर्ति प्रतिष्ठित होने के पूर्व और निर्मित होने के बाद 'सम्मइजिन चरिउ' की रचना रइधू ने की हो। जबकि चन्द्रप्रभु की मूर्ति १४५३ ई० मे अभिलेख के अनुसार गोपाचल (ग्वालियर) पर प्रतिष्ठित हुई। 'सम्मइजिन चरिउ' की तत्सम्बन्धी पंक्तिया इस प्रकार हैं।[2]

सातसिम खणि वभवय भार भारेण
सिरि अयसालक वसम्मि भारेण
ससार तणु-भोय-णिब्विण चित्तेण
वर धम्म झाणामएणेव तित्तेण
खेल्हाहि हाणेण णमिऊण गुत्तेण
जसकित्ति विणयत्तु मडिय गुणोहेण
भो भयण दावग्गि उल्हवण णणदाण
ससार जलरासि उत्तार वर जाण
सुम्ह ह पसाएण भव दुह-कयतस्स
ससिपह जिणेंदस्स पडिमा विसुद्धस्स
काराविया मइजि "गोपायले तुग"
उडुवावि णामेण तित्थम्मि सुह सग

इस प्रशस्ति मे 'जसकित्ति' का गुरु के रूप मे उल्लेख है और 'गोपायले तुग' (गोपाचल शिखर) का भी उल्लेख है।

कीर्तिसिंह तोमर के राज्यकाल के शिलालेख स० विक्रम १५२२ (१४६५ ई०) से १५३२ वि० (१४७५ ई०) तक लगभग १३ की सख्या मे उपलब्ध होते हैं।[3] जिनमें अभिलेख क्रमाक २६६ वि० १५२५ (१४६८ ई०) मे गोपाचल दुर्ग के डूगरेन्द्रदेव तोमर के पुत्र कीर्तिसिंह के शासन का उल्लेख है और क्रमाक २६७ मे गुणभद्र देव कीर्तिसिंह तोमर के अधिकारी होना प्रकट है जो यश:कीर्ति का प्रशिष्य है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी कीर्तिसिंह तोमर ने १४७६ ई० अपने राज्यकाल के अन्त तक बहलोल लोदी के विरुद्ध जौनपुर के हुसैनशाह शर्की को शरण दी और अपनी सेना भेजी।

---

१ वही, पृष्ठ ३६, क्रमाक २७६, २७७, २८०, २८१।

२. हिन्दी-जैन-साहित्य परिशीलन भाग २, पृष्ठ २२०

३. ग्वालियर राज्य के अभिलेख कीर्तिसिंहदेवकालीन क्रमाक २८८, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, पृष्ठ ४०-४१।

अतएव यह कहा जा सकता है कि सन् १४२४ ई० से १४७९ तक 'रइधू' महाकवि वर्तमान थे।

हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन में 'रइधू' के प्रसिद्ध ग्रन्थों की सूचना इस प्रकार है:—

सम्यक्त्व जिन चरित (सम्मइजिन चरिउ),
मेघेश्वर चरित, त्रिषष्टि महापुराण, सिद्ध चक्र विधि,
बलभद्र चरित, सुदर्शनशीलकथा, धन्यकुमार चरित,
हरिवंश पुराण, सुकौशल चरित, करकण्डु चरित,
सिद्धान्तार्थसार, उपदेश रत्नमाला, आत्मसम्बोधकाव्य,

पुण्यास्रव कथा, सम्यक्त्व कौमुदी तथा पूजनों की जयमालाएं।[1] इनके ४० के लगभग ग्रन्थ कहे जाते हैं।

महाकवि रइधू ने सम्यक्त्व गुण निधान का समाप्तिकाल वि० सं० १४९२ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा मंगलवार दिया है। ये रचना १४३५ ई० में डूगरेन्द्रसिंह तोमर के राज्यकाल (१४२५-१४५४ ई०) में ही हुई। इस ग्रन्थ को कवि ने तीन महीनों में ही लिखा था।[2] इसलिये सम्यक्त्व गुण निधान का रचनाकाल सं० १४९२ (१४३५ ई०) ही ठहराया जा सकता है। इसी वर्ष गोपाचल में विष्णुदास ने 'महाभारत कथा' की भाषा में रचना की।

'सुकौशल चरित' की रचना-समाप्ति का काल वि० सं० १४९६ माघ कृष्ण दशमी बताया गया है।[3] ये भी रचना डूगरेन्द्र तोमर के राज्यकाल में सन् १४३९ ई० में की गई प्रतीत होती है। चन्द्रप्रभु की मूर्ति १४५३ ई० में गोपाचल में प्रतिष्ठित हुई है उसके निर्माण का उल्लेख 'सम्मइजिन चरिउ' (सम्यक्त्व जिन चरित) में रइधू ने किया है। अतएव यह रचना सुकौशल चरित के बाद में करना प्रतीत होता है और ये भी रचना डूगरेन्द्रदेव के राज्यकाल में की जाना कहा जा सकता है। ये महाकवि तो स्वतंत्र शोध का विषय है।

रइधू के अन्य ग्रन्थों का उल्लेख :—

'सुकौशल चरित' की हस्तलिखित प्रति पंचायती मंदिर देहली में वर्तमान है।

अपभ्रंश भाषा में सबसे अधिक रचनाएं लिखने वाले यही कवि हैं। यह ग्वालियर के निवासी थे और वहीं तोमरवंशी राजा डूगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्य-

१ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग २, पृष्ठ २२०

२ वही, पृष्ठ २१६

३. वही, पृष्ठ २१९ एवं अपभ्रंश साहित्य-हरिवंश कोछड़ (२०१३ वि०) पृ० २४२, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली।

काल में इन्होंने अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनके लिखे २५ के लगभग ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें से अनेक की हस्तलिखित प्रतियां अभी भी उपलब्ध नहीं हो सकी।[1]

आमेर शास्त्र भंडार में रइधू के लिखे निम्नलिखित ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां वर्तमान हैं :—

(१)	आत्म सम्बोध काव्य	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ ८४)
(२)	धनकुमार चरित्र	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १०४)
(३)	पद्म पुराण	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ ११६)
(४)	मेघेश्वर चरित्र	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १५६)
(५)	श्रीपाल चरित्र	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १७८)
(६)	सन्मति जिन चरित्र	(प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १८१)

श्रीपाल चरित्र की अन्तिम प्रशस्ति (प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १८०) में रइधू के पिता के विषय में उल्लेख है – 'हरसिंघ संघविहु पुत्तु रइधू कइ गुण गण निलउ' इसी प्रकार का निर्देश सन्मति जिन चरित्र की प्रशस्ति (प्र० सं० पृष्ठ १८२) और मेघेश्वर चरित्र की प्रशस्ति (वही पृष्ठ १५७) में भी मिलता है। अतएव रइधू के पिता हरिसिंह थे। कवि ने मेघेश्वर चरित और 'सम्मत्त गुणणिहाण' (सम्यकत्व गुणनिधान) में यशःकीर्ति का गुणगान किया है।[2] सुकौशल चरित की रचना रइधू ने अपने गुरु कुमारसेन के आदेशानुसार रणमल्ल वणिक् के आश्रम में रहते हुए की। उस समय तोमरवंशीय राजा डूंगरसिंह शासन करते थे। कवि ने माघ कृष्ण १० वि० सं० १४९६ में ग्रन्थ की रचना की।[3] रइधू ने अपनी कृतियों में अपने आश्रयदाता और ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा देने वाले श्रावकों की मंगलकामना एवं आशीर्वाद परक अनेक संस्कृत पद्य रचे। इन पद्यों से इनके संस्कृतज्ञ होने की कल्पना की जा सकती है। इनकी कृतियों की शैली के आधार पर १५वीं शताब्दी का अंतिम चतुर्थांश और १६वीं शताब्दी का प्रारम्भिक चतुर्थांश इनका रचनाकाल अनुमित किया जा सकता है।[4]

---

१ (अ) अपभ्रंश साहित्य-हरिवंश कोछड़, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली (२०१३ वि०), पृष्ठ २४०, २४१।

(ब) पं० परमानन्द जैन, अनेकान्त वर्ष ५, किरण १२, जनवरी १९४३, पृ० ४०४ में रइधू के ग्रन्थों की सूची दी है जिनमें कुछ को श्री अगरचन्द नाहटा अपने लेख अनेकान्त, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४ पर भ्रान्तिपूर्ण मानते हैं।

२. अनेकान्त, वर्ष १०, किरण १२, पृष्ठ ३८१

३ श्रीरामजी उपाध्याय-सुकौशल चरित, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १०, किरण २

४. अनेकान्त, वर्ष ५, किरण १२, पृष्ठ ४०४

कवि ने चार सन्धियों में सुकौशल मुनि के चरित का वर्णन किया है। ग्रन्थ रचना के आरम्भ में कवि ने वन्दना, आश्रयदाता का परिचय और आत्मनम्रता का प्रदर्शन किया है। कवि अपने आपको जडमति और अगर्व कहता है (१.५), शब्दार्थ, पिंगल-ज्ञान रहित बतलाता है (१.३ ४)। कवि मगध देश, राजगृह और राजा श्रेणिक का वर्णन करता है। श्रेणिक के जिनेश्वर से केवली सुकौशल का चरित्र पूछने पर गणधर कथा कहते हैं।

ग्रन्थ की ४ सन्धियों में ७४ कडवक हैं। पहिली दो सन्धियों में कवि ने पुराणों की तरह काल, कुलधर, जिननाथ और देशादि का वर्णन किया है। चतुर्थ सन्धि में अन्तःपुर की रमणियों के हाव-भाव और अलंकारों का काव्यमय वर्णन मिलता है। ग्रन्थ की समाप्ति कवि ने निम्नलिखित वाक्यों से की है —

"रायउ णदउ सुहि वसउ देसु
जिण सासण णदउ विगयलेसु॥"

सम्मतिनाथ चरित की हस्तलिखित प्रति आमेरशास्त्र भण्डार में विद्यमान है। (प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १८१-१८७)

रइधू ने १० सन्धियों में अन्तिम तीर्थंकर महावीर के चरित का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में कवि ने यशःकीर्ति को अपना गुरु कहा है। कवि ने रचनाकाल का निर्देश नहीं किया।

रइधू के समय में आधुनिक काल की भारतीय भाषायें अपनी प्रारम्भिक अवस्था में साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थीं। रइधू के पश्चात् अपभ्रंश की जो कतिपय अप्रकाशित कृतियां मिलती हैं उनमें श्रीपाल चरित, वर्द्धमान कथा, वर्द्धमान चरित्त, अमरसेन चरित, सुकुमाल चरिउ, नागकुमार चरित, शान्तिनाथ चरित, मृगांक लेखा चरित आदि हैं।[1]

पदम पुराण—बलभद्र पुराण[2] रइधू द्वारा रचित ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां आमेर शास्त्र भंडार में विद्यमान हैं। रइधू ने इस ग्रन्थ द्वारा ग्यारह संधियों एवं २६५ कडवकों में जैन मतानुकूल रामकथा का वर्णन किया है। सन्धियों में कडवकों की कोई निश्चित संख्या नहीं। नवीं सन्धि में नौ और पांचवीं संधि में उनतालीस कडवक पाये जाते हैं। कृति की पुष्पिकाओं में ग्रन्थ का नाम बलभद्र पुराण भी मिलता है। कृति कवि ने हरीसिंह साहु की प्रेरणा से लिखी थी और उसी को समर्पित की गई है। प्रत्येक संधि की पुष्पिका में इसके नाम का उल्लेख है।[3]

---

१. अपभ्रंश साहित्य-हरिवंश कोछड, पृष्ठ २६३
२ वही, पृष्ठ ११६, ११०
३. वही,

इस बलहद्द पुराणे बुहियण विंदेहि लद्ध सम्माणे,
गिरि पडिय रइधू विरइए, पाइय बंधेण अय
विहि सहिए सिर 'हरसीह' साहुकंठि कंठाभरणे
उहयलोय सुह सिद्धिकरणे · इत्यादि

संधियों के प्रारम्भ में संस्कृत पद्यों द्वारा हरिसिंह की प्रशंसा और उसके मंगल की कामना की गई है।[1]

य. सर्वदा जिनपदाब्जु अयो द्विरेफः
सत्पात्रदान निपुणो मदमान हीनः।
दाता क्षतो हि सतत हरसीह नाम
श्री कर्मसीह सहितो जयतास्स दाता (ता) ॥ सन्धि ३

कृति में गोव्वगिरि गढ (गोपाचल गिरि) और राजा डूंगरेन्द्र के राज्यकाल का निर्देश है।[2]

गोव्वगिरि णामें गढु महाणु।
ण विहिणाणिम्मिउ रयण ठाणु ॥
जहं उच्चु धवलु ण हिमगिरिंदु
जहिं अम्मु समिछइ मणि सुरिंदु।
तहि डूगरेंदु णामेण राउ
अरि गण सिरिम सदिन्न घाउ।
[पद्म पुराण-रइधू-(संधि १२)]

'सुकौशल चरित' में बलभद्र पुराण का उल्लेख मिलता है,[3] अतएव बलभद्र पुराण की रचना सुकौशल चरित के रचनाकाल (सं० १४९६) से पूर्व ही हुई होगी, ऐसी कल्पना की जा सकती है।

ग्रन्थ का आरम्भ निम्नलिखित पद्य से होता है—

ॐ नमः सिद्धेभ्य
परणय विद्धमणु मुणि सुव्वयजिणु पणविवि बहुगण गण भरिउ।
सिरि राम हो केरउ, सुक्ख जणेरउ, सह लक्खण पयडमि चरिउ।

इसके बाद जिन स्तवन किया गया है। तदनन्तर कवि ने ग्रन्थ रचना की प्रार्थना की जाती है।

१. वही,
२. वही,
३. सुकौशल चरित, १-२२ फुटनोट २, अपभ्रंश साहित्य-हरिवंश कोछड़, पृष्ठ ११३

भो रंधू पण्डिय गुणणिहाण पोमावइ वर वसह पहाण।
सिर पाल्ह वम्ह अयरियसीस, महुवयणु मुणहि मो बुहगिरीस
सोढल निमित्त नेमिहु पुराणु, विरयउ जह पइ जण विहिय माणु
तह राम चरितु विमहु भणेहि, लक्खण समेउ इउ मणि मुणेहि

(प० च० १–४)

रइधू काव्य रचना में अपने को असमर्थ पाते हैं किन्तु हरसीहु साहु उन्हें प्रोत्साहित करता है।

तुहु कव्व धुरंधर दोस हारि, सत्यत्य कुसल बहु विणय धारि
करि कव्वु चित्त परिहरहि भित्त, तुह मुहि णिवसइ सरसइ पवित्त

(१ ५)

इसके बाद जम्बूद्वीप, भरत क्षेत्र, मगध देश, राजगृह, सोणिक राजा, रानी चेलणा, सबका एक ही कडवक (१ ६) में निर्देशमात्र कर दिया गया है।

कथा का आरम्भ गौतम श्रेणिक की आशंकाओं से होता है। इन्द्रभूति उसके उत्तर में क्या कहते हैं

जइ रामहु तिहुवणि ईसरत्तु, रावणेण हरिउ किं तहु कलत्तु।
वणयर पव्वउ किं उद्धरति, रयणयरु बंधिवि किं तरंति॥
दम्भाम णिह किं णउ मणेइ कुमयणु पुणुवि किं आयरेइ।

(प० च० १ ८)

काव्य में घटनाओं को घनता करने का प्रयत्न दिखाई देता है। देखिये एक ही वाक्य में कीर्ति धवल की रानी लक्ष्मी का वर्णन कर दिया गया है—

कित्ति धवलु लका परि रायउ।
तासु लच्छिणामे प्रिय सुन्दरि, मद वयणि गइ णिज्जइ सिंधुर

(१.१०)

इसी प्रकार निम्नलिखित ग्रीष्मकाल का वर्णन भी अत्यन्त संक्षिप्त है—

पुणु उण्ह कालि पव्वय सिरेहि, खर किरण करावलि तप्पिरेहि
सिरि रागम चउपहि झाणु लीणु, अहणिसु रव तावें गत्त खीणु

-मा.. में उनतालि..

(२.१८)

भद्र पुराण भी मिल.. (—) १० में भी राम-रावण युद्ध सामान्य कोटि का वर्णन है। उसी को समर्पित की ग

१. अपभ्रंश साहित्य-हरिवं..ण अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियां आमेर
२. वही, पृष्ठ ११६, ११७ ..ति देहली के पचायती मन्दिर में विद्यमान है।
३. वही,

यश.कीर्ति ने पाडव पुराण के अतिरिक्त हरिवश पुराण की भी रचना की । यश कीर्ति का लिखा हुआ चन्द्रप्रभ चरित नामक खण्डकाव्य भी उपलब्ध है किन्तु कवि ने उसमे रचना काल या अपने गुरु के नाम का उल्लेख नही किया ।[1] कवि ने पाण्डव पुराण की रचना बील्हा साहु के पुत्र हेमराज के अनुरोध मे की थी ।[2]

इय चिततउ मणि जाम थक्कु ।
ताम पराणउ साहु एक्कु ॥
इह जोयणि पुरु बहु पुर ह सारु
घण, धण्ण णरेहि फारु ।
सिरि अयरवाल वसह पहाणु
जो सयह् वच्छलु विणयमाणु
तही णदणु बील्हा गय पमाउ,
नव गाव नयरे सो मइ जि आउ ।
तहो णदणु णदणु 'हेमराउ'
जिण धम्मोवरि अमुणिय्भाउ

(१.२)

सन्धिओ की पुष्पिकाओ मे भी हेमराज का नाम मिलता है और इन्ही पुष्पिकाओ से प्रतीत होता है कि यश कीर्ति गुणकीर्ति के शिष्य थे ।[3]

इय पडव पुराणे सयल जण मण सवण सुहयरे सिरि गुण
कित्ति सीस मुणि जस कित्ति विरइये, साधु बील्हा
पुत्त रायमति हेमराज णामक्तिए·· ·· ··· ·· इत्यादि

प्रत्येक सन्धि के आरम्भ मे कवि ने सस्कृत मे हेमराज की प्रशसा और मगलकामना की है ।

श्रीमान सताय करोत् धामा नित्योदयो द्योतित विश्वलोक" ।
कुर्याज्जिना पूर्व रविर्मनोऽग्ने श्री हेमराजस्य विकाश लक्ष्य ॥१

दान श्रृखलया बद्धा चला आस्वा हरिप्रिया
हेमराजेन तत्कीर्ति दूरे दूरे पलायिता ॥२

द्वितीय सन्धि

प्रत्येक सन्धि की समाप्ति पर सन्धि के स्थान पर कवि ने 'सग्ग' शब्द का प्रयोग किया है—

१. अपभ्रश साहित्य–हरिवश कोछड, ७ वा अध्याय
२. पाडव पुराण, १. २. (यश.कीर्ति)
३. अपभ्रश साहित्य–हरिवश कोछड, पृष्ठ ११६

कुरुवस गवेय उप्पत्ति वण्णणो नाम पठमो सग्गो[1]

कवि ने कार्तिक शुक्ल अष्टमी बुधवार वि० स० १४६७ को यह कृति समाप्त की थी–

१ ४ ६ ७

विक्कम रायहो व व गय कालए, महि सायर गह रिसि अकालए।
कातिय सिय अट्ठमि बुह वासरे, हुउ परिपुण्णु पढम नदीसरे ॥

इति पद्‌मु पुराण समाप्त
ग्रन्थ सख्या ६६००

कवि ने भिन्न-भिन्न सधियो मे कडवक के आरम्भ मे दुवई, आरणाल, खडय, हेला जभेहिया, रचिता, मलय विलासिया, आवली, चतुष्पदी, सुन्दरी, वसत्य गाहा, दोहा, वस्तु बन्ध आदि छन्दो का प्रयोग किया है। २८ वी सन्धि के कडवकों के आरम्भ मे कवि ने दोहा छन्द का प्रयोग किया है। दोहे का कवि ने दोहय और दोधक नाम दिया है। इसी सन्धि मे कही-कही कडवक के आरम्भ मे दोहा है और कडवक चौपाई छन्द मे है।[2] उदाहरणार्थ—

दोधक–
ता सिंचिय सीयल जलेण,
विज्जिय चमर निलेसु
उटिठय सोयानल तविय
मइलिय असु जलेण ॥

कडवक—
हा हा णाह णाह कि जायउ।
मइ आमा तरु केणवि पायउ ॥
हा सिगार भीउ महु भग्गउ
हा हा विहि कि कियउ अजोग्गउ।
(यश:कीर्ति–पद्‌मु पुराण– (२८.१३)

हरिवश पुराण यशःकीर्ति द्वारा रचित भी अप्रकाशित है। इसकी वि० स० १६४४ की एक हस्तलिखित प्रति देहली के पंचायती मदिर मे विद्यमान है।

इस ग्रंथ की रचना कवि ने दिउडा साहु की प्रेरणा से की थी। सधियो की पुष्पिकाओं मे दिउडा साहु का नाम मिलता है। कवि ने संस्कृत भाषा मे प्रेरक के लिये आशीर्वाद परक छन्द शार्दूल विक्रीडित वसन्त तिलका, अनुष्टुप, गाथा आदि लिखे है।[3]

१. वही,
२. अपभ्रंश साहित्य–हरिवश कोछड, पृष्ठ १२१
३ वही, पृष्ठ १२३

दान थू मलया चढा चला ज्ञात्वा हरिप्रिया।
दिवड्डास्थेन तत्कीर्तिः दूरे दूरे पलायिता ॥ (४१)

कवि ने कृति की रचना भाद्र शुक्ल एकादशी स० १५०० मे की थी।

विक्कम रायहो ववगय कालइ मेहि इंदिय दुसुण्ण अंकालइ

भादव एयारसि सिय गुरु दिणे हुअ परिपुण्णउ उग्गतहि इणे॥ १३-१८ और २६७ कडवको मे यशःकीर्ति ने महाभारत की जैन धर्म के अनुकूल, कथा का सौधा वर्णन किया है।

कवि के नारी वर्णन मे केवल उसके बाह्य रूप का ही चित्रण नही मिलता अपितु उसके हृदयस्पर्शी प्रभाव का चित्रण भी किया गया है जैसे—

ण णाय कणण ण सुर कुमारि, णं विज्जाहरि विरहियण मारि
ण काम भल्लि ण काम मत्ति ण तामु जि कोरी थाण पत्ति
ण जण मोहणि मोहिणय वल्लि, ण मयणा वलि णव ओव्वणिल्ल
ण रयणायरि रोहिणि सुभामा, सूरहो ईसहो चव हो समासा
(५८)

श्रुतकीर्ति :—

यह त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य प्रतीत होते हैं 'हरिवंश पुराण' की संधि पुष्पिका मे कवि ने इस ग्रंथ को महाकाव्य कहकर अपनी गुरु परम्परा भी दी है—

"इय हरिवण पुराणे मणहरसराय पुण्णि गुणालकार कल्लाणे तिहुवणकित्ति सिस्स सप्पमुद्द सुदकित्ति महाकव्वु विरयंतो णाम पढमो संधी परिछेउ सम्मातो।[1]

कवि ने इसका समय स० वि० १५५३ दिया है—

१५ ५३
गह पण सय तेवण गय बासई पुण
विक्कम णिव सवच्छरहे
तह सावण मासहु गुर पचमि सहु
गधु पुण्ण तय सहमत हे॥ (७७४)

अतः कवि का समय वि० स० १६ वी शताब्दी का मध्यभाग माना जा सकता है। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार मे विद्यमान है।

गाथा —

सुम्इ तिरोडरयण, किरणवु पत्ताहमित्त जह चलण
पणविवि तह परम जिण, हरिवंस कयतणो वुंधे ॥

---

१. अपभ्रंश साहित्य—हरिवंश कोछड पृष्ठ १२७

हरिवंश पुराण का कवि ने रूपक रूप में वर्णन किया है—

हरिवंसु पयोरुह अट्ठरवण्णु, इह भरइ खित्त सत्तरउ वण्णु।

श्रुतिकीर्ति के 'परमेष्ठि प्रकाश सार' ग्रंथ की प्रति भी हस्तलिखित उपलब्ध है। अमरकीर्ति ने अपने ग्रंथ छक्कम्मोवयस (षट्कर्मोपदेश) नामक ग्रंथ को महाकाव्य कहा है किन्तु विषय प्रतिपादन की दृष्टि से महाकाव्य नहीं माने जा सकते।[1]

रइधू द्वारा वर्णित "गोवा गिरि"[2] "गोव्वगिरि"[3] से 'गोवर गिरी' भी गोप-गिरि या गोपाचल का नाम रहा होगा यह संभावना की जा सकती है।

तानसेन की बानी गोरारी 'गोवरहारी' या 'गुवरहारी' भी कहलाती थी। इसे डॉ. उमा मिश्र ने 'काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध' में लिखा है। यह बानी भेद ध्रुपद शैली के गायकों का था जो गुवरहार, खडार, डागुर, नौहार चार प्रकार का था, तानसेन के अतिरिक्त अकबरी दरबार में ब्रिजचन्द, समोखनसिंह, श्रीचन्द ध्रुपद गायकों की शैली के बानी भेद क्रमशः खडार, डागुर और नौहार थे।[4]

इसकी पुष्टि 'संगीत सुदर्शन' ग्रन्थ में ग्रन्थकार श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री ने की है जो अमृतसेन के शिष्य थे। अमृतसेन तानसेन की २३ वीं पीढ़ी में उत्पन्न कहे जाते हैं ध्रुपदियों के सुप्रसिद्ध ४ गोत्रों से उनका 'गुवरहार' गोत्र था।[5] बानी [illegible] चार भेद बताने वाला एक ध्रुपद भी तानसेन का निम्नलिखित है—

बानी चारों के ब्यौहार सुनि लीजै हो गुनीजन तब पावै यह विद्यासार।
राजा गुवरहार, फौजदार खडार, दीवान डागुर, बक्सी नौहार॥
अचल सुर षडज, चल सुर रिषभ, मध्यम धैवत, निषाद गंधार।
सप्त तीन, इक्कीस मूर्छना, बाईस सुरति, उनचास कूट तान, 'तानसेन' आधार॥

(तानसेन ध्रुपद संख्या १३३)[6]

मेरे मत में ध्रुपदियों की इन बानी का भेद क्षेत्रज था और 'गोवरगिरि' 'गोवा-गिरि' या 'गोव्वगिरि' का निवासी तानसेन यहां के कलाकेन्द्र की बानी का प्रतिनिधि

---

१. वही, पृष्ठ १२८, पाद टिप्पणी (१)
२. अपभ्रंश साहित्य हरिवंश कोछड़ पृष्ठ २४२। सुकोशल चरित की प्रति आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर में सुरक्षित है।
३. वही, पृष्ठ ११७
४. काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध डॉ० उमा मिश्र, पृष्ठ ७६, आचार्य भातखण्डे कृत, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, भाग ४, पृष्ठ २९६।
५. संगीत सम्राट तानसेन जीवनी और रचनाएं श्री मोहन, पृष्ठ ४७
६. वही, पृष्ठ ६४

होने से ग्रन्थप्रशस्तियों में 'गुवरहार' और गोवरहारी वाली भेद से पहिचाना जाता था। 'रइधू' के गोवागिरि या गोव्वग्गिरी' गोपगिरि या गोपाचल के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

छिताई चरित में 'गोवरगिरि' शब्द आया है जिस पर 'गोवागिरि, गोव्वग्गिरि' शब्दों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जा सकता है। छिताई चरित का एक लेखक देव चन्द (दिउचन्द) लिखता है—

आधी कथा सुनत सुख भईयो।
हमि दिउचन्द कवि बूझन गईयो॥
कहि कविदास होए थरि नाऊ।
किमउ छिताई करिउ उछाऊ॥
सरस कथा मेरे जीय रहई।
कीरति धनइ दमोदर कहई॥
कायथ वंस समोरी आता।
गोवर गिरी तिनकी उतपाता॥
तिनको वाप्यो दिउचन्दु आही।
कही कथा सुख उपज्यो ताही॥
धर्म नीति मारग विउपरही।
बहुत भगति विप्रन की करही॥
देवी सुत कवि दिवचन्दु नाऊ।
जन्म भूमि गोपाचल गाऊ॥
जइसी सुनी सेमचन्द पासा।
तैसी कवियन कही प्रगासा॥
आधी कथा नराइन करी।
सपूरन दिउचन्दु उचरी॥
अमृ पत्रह कीरति लिख लेहू।
पढवे करहु गुनी जन देहू॥

दोहरा

विहसि दमोदर पूछियो कह दिउचंद समुझाइ।
किमइ छिताई वसि परी कैसे हारित राइ॥

(छिताई चरित, पंक्ति ५५६-५७२)

कदाचित उपर्युक्त उद्धरण में 'दमोदर' कायस्थ वंश के व्यक्ति की उत्पत्ति 'गोवर-गिरि' (रइधू के 'गोव्वग्गिरि' गोवागिरि (गोपगिरि) में ही हुई थी जिसके आश्रित

'दिउचन्द्' कवि था। दिउचन्द्र (देवचन्द) गोपाचल, गाउ का निवासी था। कवि ने गोवरगिरि लिखकर 'गोपाचल' भी लिखा है इससे यह भी मत विद्वान सपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने प्रकट किया है कि गोवरगिरि गोपाचल से भिन्न है और 'गोवल कुड या गोआल कुड' मे सदृश होने की सम्भावना बताई है।[१]

डूंगरेन्द्रसिंह पर जैन प्रभाव —

रइधू ने लिखा है कि डूगरेन्द्रसिंह की जैन धर्म पर आस्था थी। उनके राज्यकाल मे जैन प्रतिमाएं बनना आरम्भ हुई थी जो ग्वालियर गढ को चारो ओर से घेरे हुए हैं। ग्वालियर और स्वर्णगिरि (सोनागिरि) के भट्टारकों को इनके दरबार मे अच्छा सम्मान प्राप्त था। ऊपर जिन भट्टारक गुणकीर्ति का उल्लेख है उनके शिष्य तथा छोटे भाई भट्टारक यश कीर्ति भी इनके राज्यकाल मे विद्यमान थे। यशःकीर्ति ने विबुध श्रीधर से भविष्यदत्त चरित्र (संस्कृत) लिखवाया। सुकुमाल चरित का लिपिकार थनू कायस्थ था। इन दोनो ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे डूगरसिंह के राज्य का उल्लेख है। डूगर सिंह के जीवनकाल मे ही उनके पुत्र कीर्तिसिंह राज-काज देखने लगे थे।

कीर्तिसिंह और रइधू—

डूगरेन्द्रसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह के आसीन होने के पश्चात् पिछली नीति आगे बढाई गई। रइधू तथा जैन मण्डली समादृत रही। 'सम्यक्त्व-कौमुदी' कीर्तिसिंह के राज्यकाल मे पूरी की गई जिसमे कीर्तिसिंह को तोमर-कुल-कमलो को विकसित करने वाला सूर्य बनाया है। उसकी यश-रूपी लता लोक मे व्याप्त हो रही थी और उस समय वह काल चक्रवर्ती था। डूगरेन्द्रसिंह ने तत्कालीन मालवा के अधीन कछवाहो से नरवर छीन लिया था वह विस्तृत राज्य कीर्तिसिंह को मिला था।[२]

'यशोधर चरित' और पुण्यास्रव कथा कोश की प्रशस्ति मे भी अनेक ऐतिहासिक उल्लेख हैं।

डॉ० राजाराम जैन के अनुसार रइधू का जीवनकाल वि० १४५०-१५१६ वि० (१३९३ ई०-१४७६ ई०) लगभग ८० वर्ष बताया गया है।[३]

रइधू ने डूगरेन्द्रसिंह की सर्व-धर्म-समन्वय अथवा सर्वोदयी प्रवृति पर प्रकाश डाला है। उन्होंने कमलसिंह अग्रवाल साहू को आदिनाथ की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित करने की अनुमति दी थी। धर्म सम्बन्धी नीति का जो विश्लेषण रइधू ने किया है उससे डूगरेन्द्रसिंह की अतुल वीरता तथा भारतीय इतिहास एव संस्कृति का अच्छा ज्ञान होना परिलक्षित होता है।

१. छिताई वार्ता, प्रस्तावना, पृष्ठ ८
२. परमानन्द जैन शास्त्री (महाकवि रइधू) वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ३९८
३. राजा डूगरसिंह तोमर (डॉ० राजाराम जैन) मध्यप्रदेश सन्देश, ८ अक्टूबर १९६६, पृष्ठ ८, २६

पद्म चरित् —

बौद्ध लेखकों के समान जैन लेखकों ने भी अपने कुछ ग्रन्थों के लिए संस्कृत का माध्यम स्वीकार किया था। पद्म चरित की परम्परा प्रथम शताब्दी में 'विमल सूरि' ने डाली। रविषेण सातवीं शताब्दी में इसी परम्परा में लेखक हुए और आठवीं शताब्दी में 'स्वयंभु' ने 'पद्म चरित' के नाम से अपभ्रंश में राम का चरित्र लिखा। इस जैन उपासक द्वारा राम को मानव रूप में चित्रित किया गया। इनके पुत्र त्रिभुवन ने इस ग्रन्थ को जैन धर्म परक रूप दे दिया। जैन धर्म के विविध उपदेश और जन्म-जन्मान्तर की कथाओं का उसमें समावेश किया गया। पुष्पदन्त ने दशवीं शताब्दी में रामकथा के विषय में श्रेणिक द्वारा गौतम से प्रश्नोत्तर रूप में अनेक शंकाएं कराई जैसे—रावण दशमुख सहित कैसे उत्पन्न हुआ ? क्या सचमुच उसके दस सिर और बीस भुजाएं थीं ? क्या उसने अपने सिर देकर शिवाराधना की थी ? इन्हीं शंकाओं के समाधान में जैन साहित्य में अभिनव रामकथा पुष्पदन्त ने लिखी।

इसी परम्परा में 'रइधू' ने भी पद्म पुराण लिखा। पद्म चरित और 'हरिवंश पुराण' नाम से राम और कृष्ण के साहित्य को रइधू ने भी अपने काव्यों में सृजन किया। समकालीन जैन कवि श्रुतिकीर्ति ने भी कृष्ण-चरित्र वर्णन किया। इसी चरित में 'रइधू' को कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के बारे में लिखने की प्रेरणा मिली।

इन जैन कवियों द्वारा पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी तक कृष्ण चरित्र का जो मनोहारी रूप प्रस्तुत किया गया उस आख्यान साहित्य का प्रभाव प्रारंभिक हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा। केशव तुलसी के पूर्व जो कृष्ण भक्ति की भारतव्यापी धाराएं बही थीं उसके मूल में इस जैन-साहित्य का प्रभाव भी कम न था।

• • •



खण्ड २

अध्याय ६

अध्ययन सामग्री (सुनिश्चित कालयुक्त)

- विष्णुदास की कृतियाँ (१४३५ ई०) डूंगरेन्द्रसिंह तोमर राज्य-काल—गोपाचल
- मानिक कवि (बेताल पच्चीसी) १४८९ ई०, गढ ग्वालियर
- थेघनाथ (गीता पद्यानुवाद) १५०० ई०, गढ ग्वालियर
- छीहल चन्देरी (पंच सहेली) १५१७ ई०
- मानसिंह तोमर 'मानकुतूहल' १४८६–१५१६ ई० ग्वालियर
- गोविन्द स्वामी, आंतरी (ग्वालियर) १५५० ई०
- तानसेन, बेंहट (ग्वालियर) १५००–१५२६–१५८९ ई०
- आसकरन कछवाहा, शासक नरवरगढ (ग्वालियर) १५४८-१६०५ ई०
- प्रवीणराय पातुर (११६४ ई.)
  [इन्द्रजीतसिंह कार्यवाहक राजा ओरछा की प्रेयसी तथा महाकवि केशव की शिष्या]

डूंगरेन्द्रसिंहकालीन महाकवि विष्णुदास (१४३५ ई०) —

डूंगरेन्द्रसिंह तोमर (डूंगरसिंह) ने (१४२५-१४५४ ई०) शासन सम्हालते ही अपनी तलवार को सनाथ करों में थामकर उत्तर में सैयद वंश, दक्षिण में माण्डो के सुलतान तथा पूर्व में जौनपुर के शर्कियों से लोहा लेकर सबके प्रयास विफल कर

दिये ।[1] इतना ही नही मालवा के अधीनस्थ तत्कालीन (१४३८ ई०) नरवरगढ को अपने अधीन करके गोपाचल गढ के शासन मे मिला लिया । वि० १४६२ (१४३५-ई०) में डूगरसिंह को चैन न था । माडो के मुहम्मद (प्रथम) खिलजी ने सशक्त आक्रमण ग्वालियर पर किया था ऐसे समय मे डूगरसिंह गोपाचल के योद्धा शासक को 'धर्मयुद्ध' की वाणी सुनने की इच्छा बलवती हुई । धर्मप्राण महापुरुष राम और कृष्ण के अजेय पौरुष के स्वर सुनने की उत्कठा हुई ।

फलत. डूगरेन्द्रसिंह तोमर ने देशी भाषा अपभ्रंश और हिन्दी मे राजनीति और धर्म पर साहित्य सृजन करने के लिये प्रतिभाशाली आश्रित कवियों का आह्वान किया । उन्हे प्रेरणा दी और इतना ही नही उन कवियो को प्रतिष्ठा के लिए अपने हाथ से पान का बीडा दिया । महाकवि विष्णुदास ने परिस्थिति का तकाजा समझा और महाभारत के कर्मयोगी श्रीकृष्ण की मोहविनाशिनी वाणी एव क्षात्रधर्म की बलिदानी तत्परता के स्वर सजोये । कवि ने सृजन का आह्वान स्वीकार किया—

तिहि तमोर दियो कवि हाथा, पुनि पूछे डोगर नर नाथा ।
कहि कवि दास हिये धरि भाऊ कौरौ पडव को सतिभाऊ ॥
+ + +
जो फलु गगा न्हान तें, सो भारथ ते जानि ।
पडव कौरवनि आदि तें, उतपति कहो बखानि ॥
आदि पर्व तैं कहौं बखानी, सुनियहु पडित कथा सुजानी ।
ऊ दिन पर्व पाचवो ठानो, भारथ कथा सुनो परवानो ।
बिसनदास कवि भाख्यो तैसो, कौरव पडव बीत्यो जैसो ।

विष्णुदास ने 'तमोर' (ताम्बूल का बीडा) लेकर 'भारथ कथा' (महाभारत)[2] की भाषा रचना की । विष्णुदास ने 'महाभारत' की अपनी रचना मे रचना-स्थल एव तत्कालीन गोपाचल गढ के अधिपति की जानकारी दी है जो इस प्रकार है—

पुनि तिहि व्यास नवनि किय सीसा, नानर रोगु कलकु न दीसा ।
चौदह सौ रु बानवै आना, घड चरितु मैं सुन्यो पुराना ।
कातिक,कस्न भई तिथि आसी, वासर सुक सिघ की रासी ।
तिहि सजोग भऊ भौ तासू, राइ हकारि लियो कवि दासू ।
+ + +

१. उत्तर तैमूरकालीन भारत भाग १ (डा० रिजवी) (तारीखे मुबारिकशाही, वाकयाते मुश्ताकी) पृष्ठ ६, ७, १६, २८, ३७, ६४, ६८, ७२, ७३, ७६, ७६, ८०, ८४, १००

२. विष्णुदास की 'महाभारत' भाषा, रचना दतिया राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त, प्रति विद्या-मन्दिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है ।

पहु वस तोवर घुरधीरू, डोगरसिंह राउ वर वीरू।
गढ़ गोपाचल वैरिनि सालू, हय गय नरपति टोडर मालू॥
भुजबल भीम न सकै कामू, वसि वर आनि दिखावै नामू।
ता सिर सेतु छत्तु फरहरई, कोऊ समर समानु न करई॥
ता गुन कोहोत न सकौ बखानी, कीरत सायर पर भुमि जानी।

इस अन्तर्साक्ष्य से प्रकट होता है कि गोपाचल गढ़ पर पाण्डव वंशी तोमर महाराजा डोगरसिंह अधिपति थे। यह गढ़ वैरियों को खटकता था किन्तु महाराजा की भुजाओं में भीम के समान बल था। उन्ही के सिर छत्र फहराता था। उनकी कीर्ति पृथ्वी पर व्याप्त थी। डोगरसिंह ने स० १४९२ विक्रमी (सन् १४३५ ई०) मे पाण्डव चरित्र का पुराण सुनने के लिए आश्रित कवि विष्णुदास को प्रेरित किया और विष्णुदास ने गोपाचल गढ़ के अंचल मे 'महाभारत कथा' की रचना करके महाराज को सुनाया। हिन्दी मे प्रबन्ध की दोहा चौपाई शैली में सम्भवत. यह पहिली रचना हुई। १४३५ ई० पूर्व की जो भी रचनाएं ज्ञात हैं वे दाऊद के चंदायन (१३७९) तथा हरिविराट पर्व (१४५४) हैं। चंदायन (१३७९) को सूफी मसनवी ढंग का पहिला प्रेमाख्यानक काव्य माना जाता है तथा लखनसेनी के हरिविराट पर्व को सर्गबद्ध कथा की श्रेणी मे नही लिया जा सकता। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विष्णुदास सर्गबद्ध, पौराणिक कथा, प्रबन्ध की दोहा चौपाई शैली मे लिखने वाले हिन्दी के कदाचित प्रथम कवि हैं।

डॉ० शिवप्रसादसिंह का मत .—

सूरदास के जन्म से अर्द्ध शताब्दी पहले, जिन दिनो ब्रज भाषा मे न तो वह शक्ति थी, न वह अर्थवत्ता, जिसका विकास अष्टछाप के कवियो की रचनाओं मे दिखाई पड़ा, विष्णुदास ने एक ऐसे साहित्य की सृष्टि की जिसने कृष्णभक्ति के अत्यन्त मार्मिक और मधुर काव्य की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। विष्णुदास ने एक ऐसी भाषा का निर्माण किया *जिसे १७ वी शताब्दी मे भारत की सर्वश्रेष्ठ साहित्य भाषा होने का गौरव मिला।*[1]

पौराणिक कथा प्रबन्ध के हिन्दी रचनाकार विष्णुदास आदि कवि के रूप मे माने जाते हैं।[2]

विष्णुदास की रचनाओं की सूचना .—

विष्णुदास की रचनाओं की सूचना प्रथमत १९०६-८ की खोज-रिपोर्ट मे प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट के निरीक्षक डॉ० श्यामसुन्दरदास ने इस कवि के बारे मे

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा (डॉ० शिवप्रसाद सिंह) पृष्ठ १४९ और उसका साहित्य (फरवरी १९६४) द्वितीय संस्करण।
२. हिन्दी के आदि कवि गोस्वामी विष्णुदास, भारती दिसम्बर १९५७, पृ० ७१९

कुछ नहीं लिखा केवल विन्ध्यप्रदेश की खोज का विवरण देते हुए विष्णुदास की दो रचनाओं—महाभारत कथा और स्वर्गारोहण की सामान्य सूचना दी गई थी और ये दोनों हस्तलिखित ग्रन्थ दतिया राज पुस्तकालय में सुरक्षित बताये गये थे। उस समय विष्णुदास के बारे में इतना ही ज्ञात हो सका कि गोपाचल गढ या ग्वालियर के रहने वाले थे जो उन दिनों डोगरसिंह नामक राजा के अधीन था। महाभारत कथा में लेखक ने रचनाकाल का भी उल्लेख किया था इस आधार पर रिपोर्ट में उन्हें १४३५ ईस्वी का कवि बताया गया।[1]

महाभारत कथा' और 'स्वर्गारोहण' की पाण्डुलिपियों के विवरण से क्रमश संवत १७६७ और १७७५ की लिखी हुई होना ज्ञात हुआ। महाभारत की पाण्डुलिपि २४ पंक्तियों के ७६ पत्रों की पुस्तक है जिसमें २५११ श्लोक आते हैं। स्वर्गारोहण महाभारत से छोटी रचना है जिसमें २० पंक्तियों के १५ पत्र हैं। श्लोक संख्या ४१८ है।[2]

चार वर्षों के बाद पुन. खोज रिपोर्ट में विष्णुदास की सूचना प्रकाशित की गई। इसमें विष्णुदास के "रुक्मिणी मगल" का विवरण भी दिया गया। रचना के आदि अन्त के कुछ पद भी उद्धृत किये गये। अन्त का विष्णुपद इस प्रकार है[3]—

महमन मोहन करत विलास।
कहा मोहन कहा रमन रानी और कोउ नही पास
रुकमन चरन सिरावत पिय के पूजी मन की आस
जो चाहे घिसो अब पायो हरि पति देवकी सास
तुम बिनु और कौन बो मेरी चरत पताल अकास
पल सुमिरन करत तिहारी, ससि पूस परगास
घट घट व्यापक अन्तर्यामी सब सुखरासी
विष्णुदास रुकमन अपनाई, जनम जनम की दासी।

सन् १९२६-२८ की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास की एक रचना 'सनेह लीला' और प्रकाश में आयी तथा पूर्व सूचना जो 'रुक्मिणी मगल' के बारे में थी उसमें अब सविस्तार प्रकाशित हुई। प्रस्तुत रिपोर्ट में पूर्व उद्धृत विष्णुपद का लिपि के कारण दूसरा रूप ही दिखाई पडा—

१. खोज रिपोर्ट, १९०६-८, पृष्ठ ६२, नम्बर २४८
२. वही, पृष्ठ ३२५-३२६, संख्या २४९ ए और बी
३. वृन्दावन के गोस्वामी राधाचरण की प्रति से विष्णु पदों की खोज रिपोर्ट १९१२-१४, (पृष्ठ २५२, २४२)।

विष्णु पद

मोहन महलन करत विलास।
कनक मंदिर मे केलि करत है और कोउ नहि पास॥
रुक्मिनी चरन सिरावै पी के पूजी मन की आस।
जो चाहो सो अबै पावो हरि पति देवधि तास॥
तुम बिन और न कोऊ मेरो, धरणि पताल अकास।
निस दिन सुमिरन करत तिहारो, सब पूरन परकास।
घट-घट व्यापक अन्तरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुख रास।
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दास॥[1]

'रुक्मिणी मगल' कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का मगल काव्य है जिसमे विष्णुदास ने भक्ति और शृगार का अनोखा समन्वय किया है।

विष्णुदास की 'सनेहलीला' :—

खोज रिपोर्ट १६२६-२८ में सनेह लीला का विवरण दिया हुआ है। सनेह लीला 'भ्रमर गीत' का पूर्वाधार प्रतीत होती है। उद्धव जब कृष्ण के प्रेम सन्देश को ज्ञान की उक्ती मे सुनाते है तो प्रेम की साक्षात मूर्तिया गोपियों के आगे उनको वक्षान ही ठहरती है। विष्णुदास के शब्दों मे—गोपियों के पास से लौटकर आए हुए उद्धव की अनुभूति सुनिए—

तब ऊधो आये यहा श्रीकृष्णचन्द्र के धाम।
पाय लागि वन्दन किय बोलन ले से नाम॥१०६॥
ग्वाल बाल सब गोपिका ब्रज के जीव अनन्य
तुमही पाय लागत कह्यो सुनो देव ब्रह्मन्य॥११०॥
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय।
वे आने के तुम भले सो पै कह्यो न जाय॥१११॥
वे चित टारत नहीं स्याम राम की ओर।
मथ नामक पुर तौ यहै मूरति मधुर किशोर॥११२॥
उन गोपिन के प्रेम की महिमा बहुत अनन्त।
मैं पूछो षट् शास्त्रों, तऊ न पायो अन्त॥११३॥
देह गेह सब छाडि कै करत रूप को ध्यान।
बन को भजन बिचारिये सो सब फीको ज्ञान॥११४॥

---

१. खोज रिपोर्ट, १६२६-२८, पृष्ठ ७४६, संख्या ४८८ ए

सन्त भक्ति भूतल विषे वे मन ब्रज को सार।
चरण सरण रही सदा मिथ्या लोग विमार।११५।
उनके गुण निन गाइये कर कर उत्तम प्रीति।
मैं नाहिन देखूं कहू ब्रज वासिन की रीत।११६।
तब हरि ऊधो सो कह्यो तू जानत सब अग।
हो कहू छाड्यो नही, ब्रज वासिन्ह को सग।११७।
यंत्र तजि अनत न जाय हो मेरे तो या टेक।
भूतल भार उतार हौ, धरि हो रूप अनेक।११८।

इस उद्धरण को देखते हुए यह ऐतिहासिक तथ्य हिन्दी साहित्य के विचारकों के निकट आया कि सगुण कृष्ण भक्ति का आरम्भ बल्लभाचार्य के वृन्दावन पधारने के ८०, ९० वर्ष पहले ही हिन्दी-भाषा के कवि विष्णुदास द्वारा किया जा चुका था।[1]

विष्णुदास के अन्य ग्रन्थ :—

'विन्ध्य शिक्षा'[2] में चौबीस एकादशी 'वृन्दादास' द्वारा रचित बताई गई हैं। इसकी प्रति 'सरस्वती भंडार किला, रीवा' में उपलब्ध होने का उल्लेख है। यह 'वृन्दादास' विष्णुदास ही हैं जो प्रतिलिपिकार की पुरानी लिखावट पढ़ने की कठिनाई के कारण 'वृन्दादास' पढ़ा जाना प्रतीत होता है। इसके समर्थन में (गद्य) एकादशी माहात्म्य-'विष्णुदास कृत' होने का भी 'विन्ध्य शिक्षा'[3] में उल्लेख है और यह प्रति लाला देवीप्रसाद मुतसद्दी, छतरपुर (म०प्र०) के पास बताई गई है। लाला देवीप्रसाद के नाती आदि परिवार के लोगों से पूछने पर पता चला कि खजुराहो आदि में उनके बाबा ने दे दी थी। इससे यह निश्चित अवश्य होता है कि 'एकादशी माहात्म्य' (गद्य) भी विष्णुदास कवि ने लिखा था। इस ग्रंथ की उपलब्धि पर हिंदी गद्य के विकास के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ेगा।

विष्णुदास की 'सनेह लीला' की चर्चा खोज विवरण १९२६-२८ ई० में की गई है और 'सूर पूर्व ब्रज भाषा' में भी इसके अंश दिए गए हैं। विन्ध्य शिक्षा[4] में सनेह लीला मोहनदास रचित भी बताई गई है और बाबू जगन्नाथ प्रसाद, प्रधान लेखक, छतरपुर के पास प्रति होना लिखा है। सनेह लीला-जनमोहन कृत बताई गई है जो स्टेट लायब्रेरी, टीकमगढ सुरक्षित होना कहा जाता है।[5] रसिक राय कृत 'सनेह लीला' की प्रति सरस्वती भंडार किला, रीवा में होना बताया गया है।[6]

---

१. फुटनोट -१- सूर पूर्व ब्रज भाषा, पृष्ठ १२१
२. 'विन्ध्य शिक्षा' मार्च १९३६-रीवा (म०प्र०)
३. वही, ४. वही, ५. वही, ६. वही

अनुमान यह है कि विष्णुदास रचित 'स्नेह लीला' का अत्यधिक प्रचार हुआ जिसको अन्य लेखकों ने भी अपनाया।

विष्णुदास की "वाल्मीकि रामायण भाषा" (पद्य) (रामायणी कथा) की प्रतिलिपि (१८०७ सम्वत् विक्रमी से पूर्व की) नागरी प्रचारणी सभा के त्रैमासिक खोज विवरण सन् १९४१–४३ ई० में नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद में होने का उल्लेख आया है।[1] और हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज विवरण भाग (२) में जिसका प्रारंभ 'व' से हुआ है उसमें इसका उल्लेख है।[2] नगरपालिका संग्रहालय, प्रयाग की प्रति अपूर्ण है। इस ग्रंथ की एक प्रति श्री लोकनाथ सिलाकारी, सागर (म०प्र०) के पास है जिससे उन्होंने स्वयं "विष्णुदास की रामायणी कथा" पर शोध कार्य किया है।[3] डा० शिवशरण शर्मा, दतिया की सूचना के अनुसार वाल्मीकि रामायण भाषा, विष्णुदास रचित की एक तीसरी प्रति प्रयाग में किसी पंडा के यहा खोज में प्राप्त हुई है। डा० शिवशरण शर्मा द्वारा लेखक को प्रयाग के पंडा वाली प्रति से सूचना सहित[4] कुछ पंक्तियां प्राप्त हुई हैं —

(अ) इसका आदि और अन्त फट चुका है। अतएव प्रथम अध्याय तथा अन्त की पुष्पिका से इसका रचनाकाल का या प्रतिलिपिकार का पता नहीं चल सका।

(ब) दूसरे अध्याय के अन्त से आठवें अध्याय तक की वाल्मीक रामायण के बालकाण्ड की कथा चौपाइयों में है। नमूने का अंश छटे अध्याय का अन्त है। इसमें विष्णुदास कवि का नाम आया है। भाषा शैली ठीक वही है जो कवि की अन्य रचना महाभारत भाषा की है।

(स) प्राप्त नमूने की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

इतनी कथा कही रिषि राइं। मुनि वशिष्ठ आराधे जाइ ॥२०८॥
तिहि बुलाइ तब पहुंचे तहा। विस्वामित्र करें तपु जहा ॥
विनयो ताहि जोरि कैं हाथ। तोहि समान नहि तप बल नाथ ॥
आसनु छाड्यो तब रिसि राई। दोई साम्नि भये इक ठाई ॥२०९॥
तुम देखत न छिपें गुन दोसु। रहैं जोगु परिहरि रिसि रोसु ॥२१०॥

---

१. त्रैमासिक खोज विवरण (१९४१-४३ ई०)
२. ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों के संक्षिप्त खोज विवरण, भाग २ 'व' से प्रारम्भ वाली जिल्द, पृष्ठ २९।
३. मध्यप्रदेश सन्देश २४ सितम्बर १९६६, पृष्ठ ४, श्री सिलाकारी के लेख से सूचना प्राप्त
४. डा० शिवशरण शर्मा, संस्कृत विभागाध्यक्ष, महाविद्यालय, दतिया द्वारा वाल्मीकि रामायण भाषा की प्रति प्रयाग के पंडे के गृह की प्रतिलिपि से प्राप्त पंक्तियाँ एवं सूचना, (पत्र दिनांक १४-५-६७)।

कहे सतानदु सुनहु कुवार । बिस्वामित्र तने व्यौहार ॥
अब सो राम तुमरि गुरु भए । तुमते अधिकुन जाने उहे ।।२११।।
जाइ समर्थु होइ गुरु साई ।........ ....
भैया मित्रु पुत्रु गुनवन्तु । धंनि सु गौतम पुत्र कहन्तु ।।
यह रिषि चरितु सुनौ चितु लाइ । लहैं सु पुरिषु परम पदु पाइ ।।२१२।।
अरसठि तीरथु को फल होइ । बिस्नदास गुर पह सुन सोइ ।।
इति श्री रामायने बालमीक विरचिते
विस्वामित्र रिषि वसिष्ट मिलापो नाम षष्टमोध्याय: ॥

विष्णुदास की महाभारत भाषा (पद्य) की दो प्रतिलिपियाँ दतिया राजकीय पुस्तकालय मे उपलब्ध है। एक प्रति गुटके मे है जिसमे कथा अपूर्ण है। दूसरी प्रति दतिया राजकीय पुस्तकालय मे पूर्ण है। पूर्ण प्रति मे 'चौपाई' और 'पाल्हुरी' है। इसमे लगभग चौपाई छन्द २०११ हैं। किन्तु क्रमाक १७२१ चौपाई से क्रमाक १६०५ चौपाई छन्द के लगभग जीर्ण-शीर्ण पन्नो में छन्दो की लिखावट मे चौपाई का आदि, कही अन्त और कही मध्य नष्ट हो गया है। अतएव, पाठ निर्धारण मे कठिनाई होती है। गुटके वाली प्रति मे 'पाल्हुरी' नही है बल्कि दोहा है। 'पाल्हुरी' दोह एव चौपाई इसकी प्रति मे दी गई है।

पाल्हुरी छन्द :—दोहे का आधा आदि भाग तथा चौपाई छन्द का आधा भाग मिलाकर बनाया गया है। पूण प्रति मे केवल एक "अश्लोकु" भी चौपाई १६३६-४१ के बीच दिया गया है—यथा,

"अश्लोकु"

गतो भीष्म हतो द्रोनु कर्णस्य दूसासनः, आसा बलवती राजन् सल्यो जयति पांडवा ।१।

क्रिपाचार्जु अरु सल्य सुसर्मा । अस्वस्थामा अरु कृतिवर्मा
पाचौ चले जूझ के टाना । अर्जुन को रथु छायौ बाना

मूल प्रतिलिपि मे क्रमाक १६४० चौपाई का नही दिया गया। (१६४१) पूर्ण प्रति की अंतिम पुस्तिका इस प्रकार है :—

"इति श्री महाभारते विस्नदास कवि कृते
अठा .....समाप्तं ॥ शुभ मस्तु । सवतु
१८२४ वर्षो माह सु . ..."

पूर्ण प्रति मे द्रोन पर्व की कथा चौपाई क्रमांक १७२६ से २०११ तक दी गई है। "स्वर्गारोहण" विष्णुदास रचित की एक प्रतिलिपि डा० शिवशरण, दतिया के पास भी है जो अधूरी ही है। 'स्वर्गारोहण' महाभारत भाषा कथा का ही अंग ज्ञात होता है जो कवि ने उसी सदर्भ मे रचा है। 'स्वर्गारोहण' की इस प्रतिलिपि मे २६१ चौपाई छन्द है। प्रथम अध्याय मे १२३ छद है, दूसरे अध्याय मे १२४ छद पर 'द्वतिय अध्याय सपुर्न.' लिखा है। १८६ छद पर 'त्रति अध्याय सपुर्नः' लिखा है। १३०, १३१ तथा २३८ छद के बाद, २४४ छद के बीच के नीचे के वाक्य भी नष्ट हो गये हैं इसी प्रकार अनेक जगह छद नष्ट हैं। कुल छद '२६१' पर पुष्पिका मे लिखा गया गया है—"इति सर्गा रोहिनि समापता कहता सुनता धर्मफलप्रात"।

विष्णुदास ने 'स्वर्गारोहण के अंतिम छन्द (२६१) मे इस प्रकार लिखा है :—

सुनं कथा को आवैं छेव। जुग जुग जीवे नराइन देव ॥(२६१)

कथा की परिसमाप्ति पर 'नारायण देव' की प्रशस्ति करने की मध्य काल मे यह परम्परा सी प्रतीत होती है। 'छिताई चरित' मे रतनरंग कवि ने कथा की समाप्ति यही कहकर की है :—

"चरितु छिताई आयो छेऊ। सब कह जयौ नरायन देऊ"

ग्रंथ के अन्त मे जाखू मणियार ने भी हरिचन्द्र पवाडा (हरिचन्द पुराण) मे इसी प्रकार की पंक्ति जोड़ी है :—

"इहि कथा को आयो छेव, हम तुम्ह जपो नरायन देव ॥"

'छेव' (-छेऊ) बुन्देलखण्ड के ग्रामो मे अत्यन्त सन्निकट के अन्तर को कहते हैं और 'छेव' आगया अर्थात अन्तर या दूरी, सदय की पूरी होकर साधक लक्ष्य तक आ पहुचा, उसकी मंजिल आ गई जहा उसे पहुचना था। 'छेव' देशज शब्द है जिसका बुन्देली मे प्रयोग होता है।

महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व एव रुक्मिणी मगल के रचना–अश मध्यदेशीय भाषा के परिशिष्ट मे दिये गए हैं।[1]

समकालीन रचनाकार :—

पीछे जैन भट्टारको, उनके शिष्यो तथा महाकवि 'रइधू' का वर्णन किया जा चुका है जिन्होने अपभ्रंश की परम्परा निभाई, किन्तु यह लोक भाषा का युग था। देश

1. मध्यदेशीय भाषा, परिशिष्ट पृष्ठ १७१७२,१७३–७८ पर प्रकाशित अश

भाषा का स्फुरण काल था इसमे ऐसी वाणी की आवश्कता थी जो सीधे जन मानस के अंतराल मे पैठ सके। इस युग की माग समर्थ महाकवि विष्णुदास ने पूरी की।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपेक्षा :—

चार बार खोज विवरणो के प्रकाशित होते रहने के बाद भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में विष्णुदास का परिचय प्रवेश नही पा सका। मिश्र बन्धु विनोद मे सूचना भर है। बुन्देल-वैभव के बुन्देलखण्डी कवियो मे स० १९९० मे इस प्रकार सूचना मिलती है —

२७ – विष्णुदास
जन्म स्थान – ग्वालियर
जन्म सवत् – स० १४७० वि०
कविता काल – स १४९५ वि०

रचित ग्रथो की नामावली – महाभारत कथा, स्वर्गारोहण पाण्डवकी राजा डोंगरसिंह के आश्रित थे।[1]

विष्णुदास की भाषा शैली :—

विष्णुदास के विष्णु पदो की शैली पदो की थी और विष्णुदास को सगीत का ज्ञान था, राग रागिनी से परिचित था। यही कारण है कि विष्णुदास ने पूर्वी, धनासिरी, गौरी आदि रागो मे पदों की रचना की। विष्णुदास के छन्द द्रष्टव्य हैं :—

प्रथम ही गुरु के चरण वधत, गौरी पुत्र मनाइये।
\+ \+ \+
सत महत की पग रज ले, मस्तक तिलक चढाइये।।
\+ \+ \+
विष्णुदास प्रभु प्रिया प्रीतम को रुकमिनि मगल गाइये।

रागिनी पूर्वी दोहा :— विदा होय घनश्यामजू, तिलकै करै कुल नारि
तात मात रुकमिनि मिली, अखियन आसू डारि
\+ \+ \+

---

१. बुन्देल-वैभव, प्रथम भाग-स गौरीशकर द्विवेदी 'शकर,' पृष्ठ २८०, स० १९९० प्रथमावृति। बुन्देल वैभव ग्रन्थ माला, टीकमगढ (बुन्देलखण्ड)

नाचत गावत मृदंग बाज रंग बसावत आज
विष्णुदास प्रभु को ऊपर कोटिक मन्मथ लाज।

राग गौरी :— गुण गाऊ गोपाल के चरण कमल चितलाय
मन इच्छा पूरण करो जो हरि होय सहाय।

रागिनी धनासिरी दोहा—

पूजत देवी अंबिका पूजन और गणेश। चन्द्र सूर्य दोऊ पूज के पूजन करत महेश

स्वर्गारोहण

दोहरा

गवरी नन्दन सुमति दे गन नायक वरदान। स्वर्गारोहण ग्रंथ की वरणों तत्व बखान।

चौपाई

गणपति सुमति देह आधारा सुमिरत सिद्धि सो होइ अपारा।
भारत भायो तोहि पसाई अरु शारद के लागौं पाई।
अरु जो सहज नाथ वर लहहू स्वर्गारोहण विस्तार कहहूं।
विष्णुदास कवि विनय कराई देहु बुद्धि जो कथा कहाई।
रात दिवस जो भारथ सुनई नाथै पाप विष्णु कवि भनई।
यो पाडव गरि गये हेवारे कहो कथा गुरु वचन विचारे।
दल कुरखेतहिं भारत कियो कौरव मारि राज सब लियो।
जदुकुल में भये धर्म नरेशा गयो द्वापर कलि भयो प्रवेशा।

+ + +

ले लै भूमि भुगुगु बरवीरा काहे दुर्लभ होव सरीरा।
सात दिवस मोहिं जूझत गयऊ। टूटो गदा लढ द्वै भयऊ।[1]

स्वर्गारोहण पर्व

तुम जिन वीर धरो सदेहू पूरव जन्म लहो फल ऐहू।
मुनि कौंता बिलखानी बैना जल हल रूप भये ते नैना :
जा धरती लगि भारथ कीना द्रोवान गये बैंधी लीना।

1. दरियाबगंज जिला एटा के लाला शंकरलाल पटवारी की प्रति से (खोज रिपोर्ट १९२९-३१, [illegible] ६५६-६५७)।

कमल फूल सेई रमझारी सो भैया घाले सिधारी ।
मारे कर्न सक्ति संजूता से घर छाडि चले अब पूता ।[1]

महाभारत कथा

बिनसै धर्म किये पाखडू बिनसै नारि गेह परचडू ।
बिनसै रांडु पढाये पाडे बिनसै खेलै ज्वारी डाडे ॥१॥
बिनसै नीच तनैं उपजारु बिनिसै सुत पुराने हारू ।
बिनसै मागनो जरै जुलाजै बिनसै जूझ होय बिन माजै ॥२॥
बिनसै रोगी कुपथ जो करई बिनसै घर होते रनधरमी।
बिनसै राजा मत्रजु हीनू बिनसै नटकु कला बिनु हीनू ॥३॥
बिनसै मन्दिर रावर पासा बिनसै काज पराई आसा ।
बिनसै विद्या कुसिषिपढाई बिनसै सुन्दरि पर घर आई ॥४॥
बिनसै अति गनि कीने ब्याहू बिनसै अति लोभी नर नाहू ।
बिनसै घृत हीनें जु अगारु बिनसै मन्दौ चरै अटारु ॥५॥
बिनसै सोनू लोहू चढायें, बिनसै सेव करे अनभायें ।
बिनसै तिरिया पुरिष उदासी, बिनसै मनहि हसे बिन हासी ॥६॥
बिनसै रुख जो नदी किनारे, बिनसै धरू जु चले अनुसारे ।
बिनसै खेती आरमु कीजे, बिनसै पुस्तक पानी भीजे ॥७॥
बिनसै करनु कहे जे कामु बिनसै लोभ ब्योहेरे दामू ।
बिनसै देह जो राचे बेस्या, बिनसै गेह मित्र परदेसा ॥८॥
बिनसै पोखर जामे काई, बिनसै बूढो ब्याहे मई ।
बिनसै कन्या हर-हर हसयी, बिनसै सुन्दरि पर घर बसयी ॥९॥
बिनसै बिप्र बिन षट कर्मा, बिनसै चोर प्रजा से मर्मा ।
बिनसै पुत्र जो बाप लडायें, बिनसै सेवक करि मन भायें ॥१०॥[2]

+ + +

प्रनवहु गवर पूत गननाहू सिद्धि बुद्धि बरु देहु बपाहू ।[3]
उदर चढयो भवे दिन राती विस्नदास सुमरैं गनपाती ॥

१. भतमादपुर, जिला आगरा के पंडित अजीराम की प्रति से (खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१, पृष्ठ ६५७-६५८)।
२. पिनाहट, जिला आगरा के श्री चौबे श्रीकृष्ण जी की प्रति से (खोज रिपोर्ट १९२९-३१, [redacted] ६५३-६५४)।
३. दतिया राजकीय पुस्तकालय की प्रति से विद्या मंदिर, मुरार (ग्वालियर) में प्राप्त

गजमुख ऐक दत युदियानू कीना सानु करै रन सानू ।
हरि सुमरयो हिरनाकुसलागी सुमिरत तासु गई भो भागी ।

+ + +

महाभारत कथा की रचना का उद्देश्य विष्णुदास इस प्रकार प्रकट करता है: —

जे नर सुमिरहिं रन महं जता, ते बैरीदल जितहि ननंता ॥

+ + +

गुरु ब्रह्मा हरि ईसु धरि ध्याऊ चरन मनाय ।
जिहि बल भाखौ भारथहि अजर अमर सिधि पाई ॥

× × ×

[1]स्वर्गारोहण मन दै सुने, नासै पाप विष्णु कवि भनै ।२९९
रामकृष्ण सेवक को लिखौ, वाचै सुणै सो होसी सुखी ।
श्रीवल्लभ रामनाम गुण गाई, तिनकैं भक्ति सुदृढ ठहराई ॥३००।

विष्णुदास के विष्णु पदों का संगीत में स्थान:—

संगीत पदों के पूर्वाधार के रूप में विष्णुदास के विष्णु पदों की संगीत में गूंज थी। सुलतान जैनुलआ०दीन और बहादुर मलिक ने एक संगीतज्ञों का विशाल सम्मेलन बुलाया था। १४२८ ई० में डूंगरसिंह ने 'संगीत शिरोमणि' ग्रंथ तैयार कराकर भेजा था जिसमें ग्वालियर का गीत, ताल, वाद्य कला आदि का भी वर्णन था। मेवाड़ में राणा कुम्भा ने 'संगीतराज' ग्रन्थ लिखा। इन्हीं विष्णुपदों से प्रेरित होकर जौनपुर में ख्याल गायकी प्रारम्भ हुआ। व्रज क्षेत्र में पहुँचकर कृष्ण भक्ति शाखा को तथा राम भक्ति शाखा को पदों द्वारा अपने-अपने आराध्य स्तवन के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

विष्णु पदों के प्रचलन के प्रमाण में आमकरण वार्ता द्रष्टव्य है।[2] तथा दूसरा उदाहरण मसकवर नागरीदास जी की 'पद प्रसंग माला का' है।[3] यहां यह उल्लेखनीय है कि कृष्ण भक्ति तथा संकीर्तन आदि के लिए निर्मित पदों का नाम विष्णु पद ही रहा जो महाकवि विष्णुदास ने ही रचे थे उसी परम्परा पर पद रचना होती रही और इन्हीं विष्णु पदों को ग्वालियर के गायन कला की विशेष शैली 'ध्रुपद' में गाया गया। ध्रुपद शैली में गाये जाने योग्य रागों में, रचित पदों की संज्ञा ध्रुपद हो गई।

---

1. वही क्रमांक (1)
2. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, आमकरण वार्ता, पृष्ठ १६१-१६४। अकबरी दरबार के हिन्दी कवि-डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृष्ठ २६-४० की पाद टिप्पणी से उद्धृत।
3. संगीत सम्राट तानसेन-प्रभुदयालु मीतल, पृष्ठ २१ पर उद्धृत।

ध्रुपद शैली में मेय रचित पदों को ही संगीत शास्त्र की दृष्टि से ध्रुपद कहा जाता था अन्यथा भक्त कवि द्वारा रचित आराध्य के स्तवन के लिए वे विष्णु पद ही थे।

विष्णुदास की शैली को साहित्य को देन :—

विष्णुदास की दोहा चौपाइयों की शैली परवर्ती काव्य साहित्य के प्रबन्धों में अपनाई गई और लौकिक प्रेमाख्यान काव्यों में प्रयुक्त हुई। जायसी, तुलसी, सूर, केशव, बिहारी इसी शैली से प्रेरित हुए। विष्णुदास के 'रुक्मिनि मंगल' काव्य रूप से प्रेरित होकर तुलसी ने जानकी मंगल, पार्वती मंगल काव्य रूप रचे। सूर ने विष्णुदास तथा तत्कालीन पद-रचयिताओं से प्रेरित होकर कृष्ण भक्ति काव्य 'सूर सागर' की रचना की और इनकी दोहा शैली को बिहारी ने अपनाया।

विष्णुदास ने संस्कृत, अपभ्रंश के काव्य साहित्य की परम्परा में लोक भाषा में रचना में प्रवृत्त होते हुए यही कहा था—

"बुद्ध मत मोरी थोरी भी चौराई, भाषा काव्य बनाई"[1]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी यही कहा—

—"भाषा भनिति मोरि मति भोरी, हसिबे जोग हसे नहिं खोरी।[2]

केशवदास महाकवि ने भी संस्कृतज्ञ पूर्वजों की परम्परा में भाषा में काव्य रचना करते हुए मन्द मति अपने को समझा—

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास।
भाषा कवि भो मन्द मति, तिहि कुल केशवदास॥[3]

विष्णुदास ने काव्य रचना के पूर्व रुक्मिणी मंगल में गणेश वंदना की है—

रिधि सिधि सुख सकल विधि नव निधि के गुरु ज्ञान।
गति मति सुति पति पाईयत गनपति को धर ध्यान॥
जाके चरन प्रताप ते दुख मुख परत न डिठ।
ता गज मुख मुख करन की सरन आवरे डिठ॥[4]
संत महंत की पग रज ले मस्तक तिलक चढ़ाइये।

तुलसीदास ने यही भाव इस प्रकार व्यक्त किये—

१. मध्यदेशीय भाषा, परिशिष्ट पृष्ठ १७१, (रुक्मिणी मंगल से)
२. तुलसीकृत रामायण, बालकाण्ड, दोहा ८-४ चौपाई
३. कविप्रिया द्वितीय प्रभाव, छन्द १७
४. वही क्रमांक १

जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करि वर वदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥
वदउ सत समान चित हित अनहित नहिं कोई।[1]

यह शैली तथा भाषा भाव साम्य से यह प्रतीति होती है कि विष्णुदास ने परवर्ती कवियों को प्रभावित किया और हिन्दी साहित्य को वह देन दी कि जिससे परिनिष्ठित काव्य भाषा का उत्तरोत्तर विकास होकर हिन्दी का प्रतिनिधि प्रबन्ध काव्य विश्व साहित्य का अलभ्य भाग बन सका।

'विष्णुदास' पर डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत :—

"गोस्वामी विष्णुदास सचमुच ही प्रतिभाशाली कवि ज्ञात होते हैं। उनका काव्य संग्रह शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। पृष्ठ १३७-३८ पर महाभारत कथा में विष्णुदास की कविता का जो नमूना दिया गया है उसकी सरल और तरंगित शैली पन्द्रहवीं शताब्दी की उदीयमान हिन्दी भाषा की नवीन शक्ति का परिचय देती है।"[2]

मानिक कवि (१४८९ ई०) :—

मानिक कवि ग्वालियर में मानसिंह तोमर महाराजा के राज्यकाल में था। उनके राज्यकाल में १५४६ सम्वत विक्रमी के अगहन मास शुक्ल पक्ष अष्टमी रविवार को कवि को कथा-रचना के लिए प्रेरित किया गया। सेमल सिंघई ने बीड़ा लिया और मानिक कवि को इस आशय से दिया कि वह 'वैताल' के अनेक रूपों की अनूप कथा सुनाए। मानिक ने इस प्रकार की सूचना अपनी 'वैताल-पचीसी' नामक रचना में दी है—

संवत् पनरह से तिहिंकाल और बरस आगरी छियाल
निर्मल पाख आगहनु मास, हिम रितु कृष्ण चन्द को बास
आठें पोस वार तिहं भानु कवि भाषे वेताल पुरानु
गढ़ ग्वालियर थानु अति भलो मानसिंघ तोवर जा बसो
सघई सेमल बीरा लीयो, मानिक कवि कर जोरें दीयो।
मोहिं सुनावेहु कथा अनूप, जो वेताल कियो बहु रूप॥[3]

मानिक कवि की खोज :—

सन् १९३२-३४ ईस्वी की खोज रिपर्ट में मानिक कवि की 'वैताल पच्चीसी'' की सूचना प्रकाशित हुई। विवरण का कुछ अंश नागरी प्रचारिणी पत्रिका में सवत् १९९५

१. बालकाण्ड, सोरठा प्रथम एवं दोहा (१-क) तुलसीकृत रामायण।
२ फुटनोट— 'मध्यदेशीय भाषा' में दो शब्द, पृष्ठ १०-११
३. कोसीकलां, जिला मथुरा के श्री० रामनारायण जी की प्रति से त्रैवार्षिक खोज विवरण १९३२-३४ पृष्ठ २४०-२४१।

में छपा जिसमें मानिक कवि का नाम दिया हुआ है।[1]

कवि का वंश परिचय :—

कवि मानिक अयोध्या वासी है। अमउ नामक कवियों का दास है। जिसने 'वैताल पच्चीसी' की कथा कही और जो स्वर्गवासी हो गया उसके वंश की पांचवी शाखा के कवि ने आदि में कथन किया उसके पुत्र के पुत्र का पुत्र, गुनियों का सेवक है। जैसे पाताल छला गया। विक्रम राजा ने जैसे मारा जिस विधि से चित्ररेखा वश में की गई, और अपनी आपत्ति दूर की गई, ओछी मति और थोड़े ध्यान से अपनी बुद्धि के अनुमान से यह कथा रचना की है। मानिक ने लिखा है –

> कायथ जाति अजुध्या बासु अमउ नाउ कविन को दासु
> कथा पचीस कही बेताल, पोहोचो जाइ भीव के पताल
> ताके बस पाचह साख। आदि कथनु सो मानिक भाखि॥
> ता 'मानिक' सुत सुत को नदु। कवितावन्त गुननि को बदु॥
> जैसे भाद्रु छल्यो पाताल। ज्यों मार्यो विक्रम भुवाल॥
> जेहि विधि चित्ररेख बस करो। ओह आपनी आपदा हरी॥
> \+ \+ \+
> मति ओछी अरु थोरो ग्यान। करी बुद्धि अपने उनमानु॥
> अक्षर फटे होइ तुक भग। समझो जाइ अर्थ को अंग॥
> जहां जहां अनमिली बात। तह चोकस कीजो तात॥
> \+ \+ \+

'वैताल पंचविंशति का आधार–'वैताल पच्चीसी'

भारत में नितान्त प्राचीन कथाओं का संग्रह पंचतंत्र है।

नीति कथाओं में पंचतंत्र के बाद हितोपदेश का ही नाम आता है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में मनोरंजन कथाओं का संग्रह संस्कृत में विद्यमान है। इसके तीन संस्कृत अनुवाद उपलब्ध हैं। बुध स्वामी कृत, बृहत्कथा श्लोकसंग्रह क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा मंजरी, 'सोमदेव' कृत कथा सरित्सागर, महाकवि भास, हर्ष तथा भटनारायण अपने नाटकों की वस्तु ग्रहण के लिए बृहत्कथा के विशेष रूप से ऋणी हैं।[2]

वैताल पंचविंशति :—

पंचतंत्र के साथ ही साथ पशु-पक्षियों की कहानियां सदा के लिये अस्तगत हो गई तथा 'बृहत्कथा' का भी कोई साक्षात् वंशज उपलब्ध नहीं होता। केवल 'वैताल पंचविंशति'

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ भाग २, अङ्क ४.
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४२८–४३०

ही रोचक लोक-कथाओं का एक सुन्दर तथा सुव्यवस्थित संग्रह है ये पचीस कहानियाँ मूल बृहत्कथा में भी विद्यमान थीं, यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि इनका अस्तित्व बृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर में तो अवश्य है परन्तु बुध स्वामी के नेपाली वर्णन में ये नहीं मिलती। इस वैषम्य के कारण यही कहा जा सकता है कि ये बृहत्कथा का अंग नहीं है, प्रत्युत यह एक स्वतंत्र कथानक है जिनका सम्बन्ध लोक कथाओं के साथ पूर्णतया स्थापित किया जा सकता है। इन कहानियों का ११ वें शतक में प्रचलित सर्व प्राचीन रूप क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव के ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। दोनों ग्रन्थों में कथाएँ मुख्यतया एकाकार ही हैं यद्यपि क्षेमेन्द्र का वर्णन कुछ छोटा तथा अवान्तर घटनाओं से विरहित है।[1]

जम्भलदत्त की वेताल पंचविंशति[2] :—

बिलकुल गद्यात्मक ही है तथा नाम आदि के विषय में काश्मीरी विवरण के निकट है, यद्यपि कथा वस्तु में अन्तर विद्यमान है। वर्तमान भारतीय भाषाओं में भी समय-समय पर इस संस्कृत ग्रन्थ के अनुवाद किये गये थे तथा लोकप्रिय हुए। इन समस्त विवरणों के तुलनात्मक अध्ययन से मूल कथा का परिचय मिल सकता है। डा० हर्टेल की सम्मति है कि शिवदास ने १४८७ ई० से बहुत पहले ही 'वेताल पंचविंशति' की रचना की थी, क्योंकि उसी समय इसका प्राचीनतम हस्तलेख उपलब्ध होता है।

जान पड़ता है कि मानिक कवि ने शिवदास की १५ वीं शताब्दी ईस्वी में रची गई 'वेताल पंचविंशति' संस्कृत ग्रन्थ का आधार लेकर ही 'वेताल पचीसी' काव्य रचना की होगी।

वेताल पचीसी कथा का संक्षिप्त रूप :—

वेताल पचीसी की कथाएं बड़ी ही रोचक, बुद्धिवर्धक तथा कौतूहलोत्पादक हैं। कोई सिद्ध राजा त्रिविक्रम सेन या विक्रम सेन (जो पिछले युग में विक्रमादित्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है) के पास रत्नगर्भित फल लाकर देता था जिसको सिद्धि में सहायतार्थ राजा एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को लाना चाहता है, परन्तु वह शव पूर्व से ही किसी वेताल के आधिपत्य में है जो राजा के चुप रहने पर ही शव देना चाहता है, परन्तु वह इतनी विचित्र कथा सुनाता है कि राजा को मौन भंग करना ही पड़ता है। कहानियां बड़ी ही आकर्षक तथा रोचक हैं राजा का उत्तर भी सुन्दर होता है। प्रश्न भी बड़े पेचीदे तथा विषम हैं। कौन सबसे अधिक रसज्ञ है? वह मनुष्य जो पके हुए मान को इसलिये नहीं छूता कि वह धान श्मशान के पास ही खेत में उगा था।

---

1 वही, पृष्ठ ४११, बृहत्कथामंजरी (६/२)

2. डा० एमेनाउ द्वारा रोमन अक्षरों में अंग्रेजी के साथ प्रकाशित अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी, १६३४। "संस्कृत साहित्य का इतिहास", पृष्ठ ४१२ पर उद्धृत।

अथवा वह व्यक्ति जो मोटे गुलगुले गद्दों पर बीच मे एक बाल के आ जाने से रात भर जागता ही रह जाता है अथवा वह मनुष्य जो स्त्री को इसलिये नही छू सकता कि बचपन मे बकरी के दूध पर उसका पालन-पोषण हुआ था और इसलिए उसके शरीर मे बकरी का गन्ध आता था ? ऐसे ही पेचीदे प्रश्न इस ग्रन्थ मे भरे पड़े है जिनका समुचित उत्तर विक्रम की चातुरी का परिचायक है। शिवदत्त का ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर है।

मानिक कवि :—

वेताल पचीसी प्राचीन 'वेताल पचविंशति' का अनुवाद प्रतीत होता है, वैसे भाषाकार ने कई प्रसगो को अपने ढग पर कहा है जिनमे मौलिक उद्भावना भी दिखती है आरम्भ का अश नीचे उद्धृत किया जाता है [1]

चौपही

सिर सिंदूर बरन मैमत। विकट दन्त कर फरसु गहन्त ॥
गज अतन्त नेवर झकार। मुकट चन्दु अहि सोहे हार ॥
नाचत जाहि धरत धसमसे। तो सुमिरन्त कवितु हुलसे ॥
सुर तेतीस मनावें तोहि। 'मानिक' भनै बुद्धि दे मोहि ॥
पुनि सारदा चरन अनुसरो। जा प्रसाद कवित उच्चरो ॥
हस रूप ग्रथ आ पानि। ताकी रूप न सकौं बखानि ॥
ताकी महिमा जाइ न कही। फुरि-फुरि माइ कद भा रही ॥
तो पसाइ यह कवितु सिराइ। सा सुबरनो विक्रम राइ ॥

\+ + +

सुनै कथा नर पातग हरे। ज्यो वेताल बुद्धि बहु करे ॥
विक्रम राजा साहस करे। कहु 'मानिक' ज्यो जोगी मरे ॥

\+ + +

जो पढ़ि है वेताल पुरानु। और सन सुनि देहै कान ॥
तिनि के पुत्र होहि धन रिधि। और सहस्र जिती मन सिधि ॥
अरु ओरें माधे मावन्तु। ज जै कृष्णु (?) मत को तत ॥
विक्रम कथा सुने चित कोइ। कायरु सो नर कबहू न होइ ॥
रात साहसु पुरुषारथ धरे। जो यह कथा चित्त अनुसरे ॥
सो पण्डित कवि होइ अपार। बानी बुद्धि होइ विस्तार ॥

---

१. मध्यदेशीय भाषा, परिशिष्ट पृष्ठ १८१-१८२ पर उद्धृत

सिघई शब्द एक विशेष अर्थ का सूचक :—

सिघई पद धारी बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश के परवार गोलापूर्व, गोलालारे, बघेरवाल आदि जातियों में से होना चाहिए क्योंकि ये ही लोग 'गजरथ' निकालकर 'सिघई' या 'सिगई' बनते हैं।[1]

सगी, संघवी, सिघई, सिगई :—

ये सब शब्द 'संघपति' के अपभ्रंश हैं। संघपति के प्राकृत रूप' संघवई', 'संघवई' होते हैं। गुजरात काठियावाड़ में प्रचलित 'संघवी शब्द बुन्देलखण्ड आदि में 'सिघई' या 'सिगई' हो गया है। राजपूताने का 'संघी' या 'सिंघी' पद भी इसी का रूप है। महाराष्ट्र में यह 'सिंघवे' या 'सगवे' हो गया है।

प्राचीन काल में धनी मानी लोग तीर्थयात्रा के लिए बड़े-बड़े संघ निकालते थे, जिनमें मुनि आर्यिका, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ होता था। उन दिनों यात्रा कार्य बड़ा कठिन था। सारा प्रबन्ध भार जो कोई उठाता था वही शायद 'संघपति' कहलाता था।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में शत्रुंजय, गिरनार आदि के लिए संघ निकालने की परम्परा अनवच्छिन्न रूप से अब तक चली आ रही है और अब भी इस तरह के संघ निकालने वाले संघपति की पदवी से विभूषित किये जाते हैं, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय में यह बीच में परम्परा टूटसी गई उसके पहले के अवश्य ही इसके बहुत से प्रमाण मिलते हैं। फिर भी इस पदवी का मोह नष्ट नहीं हुआ। इसलिये 'संघ' निकालने के बदले जो लोग 'गजरथ' निकालने लगे उन्हें भी पीछे से यह पदवी दी जाने लगी।[2]

अब बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश में ही 'सिंघई' बनते हैं।

खेमल सिंघई :—

मानिक कवि की मानसिंह तोमर के दरबार में पहुंच 'खेमल सिंघई' के द्वारा ही हो सकी और उन्होंने ही बीड़ा लेकर कवि को दिया।

खेमल सिंघई अथवा खेमचन्द (सिघई) :—

सिंघई खेमल हो इन्हीं राजा मानसिंह के काल में मानिक द्वारा, वैताल पचीसी में प्रयुक्त हुए हैं। और खेमचन्द 'छिताई चरित, में देवचन्द्र कवि के सन्दर्भ में आते हैं। देवचन्द्र गोपाचल वासी था, सिंघई खेमल को बुन्देलखण्ड का होना ही चाहिए उसका अस्तित्व मानसिंह के बराबर में निर्विवाद रूप से स्पष्ट है।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ४८६.
२. वही

छिताई चरित' मे देवचद्र का अंश निश्चित रूप से मानसिंह काल मे पूरा हुआ किन्तु सिकन्दर लोदी के आक्रमण के पहले (१५०५-६ ई०) मे अधिपति ग्वालियर को फिर चैन नहीं मिलता। देवचद्र ने लिखा है "जइसी सुनी खेमचद पासा"।

खेमचद ऐतिहासिक एव लोक कथाओ का मर्मज्ञ जान पड़ता है। उसे कथा सुनाकर सृजन की प्रेरणा देने का भी चाव था। क्षेमचद्र, खेमचन्द और खेमल बाणी सुलभ तथा अर्द्धाली मे यति गति ठीक बैठाने कवि कर्म पर निर्भर है जब जैसा रूप ग्रहण करले। नाम की समानता एव कालक्रम, उद्देश्य की एकता तीनो दृष्टि से खेमचद और खेमल एक ही प्रतीत होते हैं।

तत्कालीन ग्रन्थ में 'बेताल पचीसी' भाषा काव्य की चर्चा

ईश्वर कवि द्वारा 'सत्यवती' कथा[१] (१५०० ई०) मे लिखी गई। सत्यवती कथा मे 'स्वर्गारोहण कथा' भी ईश्वरदास रचित दी गई है जिसके रचनाकाल के बारे मे ईश्वरदास ने लिखा है :— "पन्द्रह से सत्तावन जान, सवत के अब करी बखान "अर्थात् स० १५५७ (१५०० ई०) मे स्वर्गारोहण लिखी गई जो बेताल पचीसी के बाद की है। स्वर्गारोहण कथा मे ईश्वरदास ने लिखा है :—

कालिदास अमरपद कीन्हो, लखनसेनि पडित कवि कीन्हा।
हिन्द के वस जो भयेउ हकारा, कस वध जिन्ह कीन्ह प्रसारा।
सूरजदास सीय पद गायो, ऊरवा कथा बीरसिंह देव गायो
कीन्ह धन्य जे बेताल पचीसी, जैदेव किहिन क्रिस्न चौबीसी,
विपरीति भांति डडकुमारा। क्रिस्न केलि जिन्ह कीन्ह रमारा।
जिन्ह कवितन पदवन्यो कहै ईसर मन लाइ।
महि मडल जेता कवितु सो तो बरन न जाइ॥

यद्यपि ईश्वरदास कवि के इस उद्धरण से यह पता नहीं चलता कि 'बेताल पचीसी मानिक कवि की है किन्तु अन्य की रचित भी नही कहा है। और 'बेताल पचीसी काव्य रचना इस १५ वी शताब्दी ईस्वी मे अन्य कवि की बात भी नहीं हो सकी। इस उद्धरण से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि 'बेताल पचीसी' नामक भाषा काव्य रचना के सदर्भ मे उद्धरण है और वह ईश्वरदास कृत ग्रन्थो के समय १५०० ई० के पूर्व रचित है। इसके अतिरिक्त खोज विवरण तथा मानिक कवि की अन्त साक्ष्य से ही उस की रचना की जाना स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

बेताल पचीसी की भाषा शैली —

'बेताल पचीसी' चौपाईयो मे छन्दबद्ध की गई है। यह कथा हिन्दी आख्यान साहित्य के अन्तर्गत आती है और यह रचना लोक आख्यान काव्य मे 'वार्तापरक'

१. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा सम्पादक–डा० शिवगोपाल मिश्र तथा रावत श्री ओमप्रकाशसिंह।

है। वेताल पचीसी की पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। इसके अंश खोज विवरण से उद्धृत किये गये हैं।

वेताल पचीसी में राजा विक्रमादित्य का परदुखभंजनकारक रूप एवं लोकोपकारक व्यक्तित्व मुखरित हो उठा है जो अनेक कथाओं में वर्णित है।

कवि मानिक मूल निवासी अवध का था और वहां से वह ग्वालियर (गोपाचल) वासी बना। 'वेताल पचीसी' की भाषा मूलतः मध्यदेशीय है।

वेताल पचीसी की कथा मानिक के परवर्ती भरतपुर के मंसेराम ने १६५१ ई० में लिखी।

थेघनाथ (गीतापद्यानुवाद) १५०० ई०

१५५७ वि० (१५०० ई०) में थेघनाथ गोपाचल गढ़ में अवस्थित थे। इनके गुरु का नाम रामदास था जिनका कवि ने शारदा की वन्दना के पश्चात् काव्य रचना में प्रवृत्त होने के पहिले स्मरण किया है। इस काल में 'मान साहि दुर्ग के नरेन्द्र' मानसिंह तोमर नरेश थे। सत्य और शील से सम्पन्न बलशाली तोमर कुल में राजा भानु ऐसे थे जैसे हथनापुर (हस्तिनापुर) में भीषम (भीष्म पितामह) थे। सर्व जीवों का संरक्षण करते थे। कवि की भाषा में ये विवरण इस प्रकार हैः—

> [1]सारद वहु वदी करि जोर। फुनि सिमरों तेतीस करोर॥
> रामदास गुर ध्याऊं पाइ। जा प्रसाद यह कवितु सिराइ॥
> मूढ़िनि कौं है विष मन्जरी। गुनियनि कौ अमृति मंजरी॥
> थेघनाथ अक्षर विस्तरे। बिनती गुनी लोग सौं करै॥
> आगि माहि डारियें स्वर्न्न। बुरे भले को लीजै मर्म॥
> तैसें संत लेहु सुम जानि। मैं जु कथा यह कही बखानि॥

\+ \+ \+

कवि रचनाकाल का संकेत करता हैः—

> पंद्रह सै सत्तावनि जानु। गढु गोपाचल उत्तम ठानु॥
> मान साहि तिहं दुर्ग निरिंदु। जनु अमरावती सोहैं ईन्दु॥
> नीत पुंन सौं गुन आगरौ, वसुधा रासन कौं अवतरौ॥

\+ \+ \+

१. थेघनाथ-'गीता पद्यानुवाद.' आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सौजन्य से प्राप्त प्रति। विद्या मन्दिर, मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है। (मध्यदेशीय) भाषा, पृष्ठ १८६-१६०)

सब ही राजन माहि अति भलै । तोवर सत्य शील ज्यावलै ॥
ता घर मान महा मरु तिमें । हथनापुर महि भीषम जिसे ॥
+ + +
सर्व जीव प्रति पालै दया । मानु निरदु करै तिहू मया ॥

राजा भानुसिंह समस्त विद्याओं से सम्पन्न हैं और कीरतसिंह नृपति के पुत्र हैं । षट्दर्शन के वेत्ता, गुरु और ब्राह्मण देवों के आराधक हैं । भानुसिंह राजा मानसिंह के कुल में ही कुवर हैं । (कदाचित मानसिंह के भाई ही होते हैं) इन्होंने थेघनाथ को बीड़ा दिया:—

भानु कुवरु गुन लागहि जिते । मोपे वर्ने जाहि न तिते ॥
तिहि तबोर थेघू कहु दयो । अति हित करि सो पूछन ठयो ॥

कवि को भानुसिंह को प्रेरणा —

इहि संसार न कोऊ रह्यो । भान कुवरु थेघू सो कह्यो ॥
माता पिता पुत्र ससार । यहि सब दीसै माया जारु ॥
जाहि नाम ना कलजुग रहै । जीवै सदा मुवो को कहै ॥
कहा बहुत करि कीजै आनु । जो जानै गीता को ग्यानु ॥
जो नीकै करि गीता पढ़ै । सब तजि कहिबे को नहि चढ़ै ॥
गीता ज्ञान हीन मरु इमो । सार माहि पसु बाधो जिसो ॥
यातैं समझौ सारु असारु । वेग कथा करि कहे कुमारु ॥
इतनो वचन कुवरु जब कह्यो घरीक मनु सोर्चे परि रह्यो ॥
सायर को बेरा करि तरै । कोऊ जिन उपहासहि करै ॥

कवि रचना करने प्रस्तुत हुआ:—

जो मेरे चित्त गुरु के पाय । अरु जो हियैं बसे जदुराय ॥
तो यह मोपै व्है है तैसें । कह्यो कृस्न अर्जुन को जैसे ॥
सुनिहु जे प्रानी गीता ग्यान । तिन समानि दूजो नहि आन ॥

भगवत गीता भाषा:—(संजय उवाच)

कोऊ दल चढि ठाडे भये । जिर्जोधन गुन पूछत लये ।
विपम अनी यह कही न जाई । आचारजहि दिखावै राई ।
तेरे सिष्य पढ के पूत । कुटल वचन तिन कहे बहूत ।
धृष्टदमनु अरु अर्जुन भीमु । निकुलु सहदेराऊ जीमु ।
राऊ विराट द्रुपदु वर वीर । कुन्त भाज रन साहस धीर ॥
+ + +

अस्वत्थामा अरु भगदत । बहुत राई को जानै अन्त ॥
भाँति अनेक गहहि हथयार । जानहि सबै जूझ की मार ॥
सब जोधा ए मेरे हेत । तजि जीवनि आए कुरखेत ॥
तिन महि भीषम महा जुझार । सबहि सेना को रखवार ॥

\+ + +

ओजस्वी वाणी की अभिव्यक्ति कवि के शब्दों में द्रष्टव्य है:—

सिंघनाद गज्यौ बर बीर । सतन सुत रन साहिस धीर ।
पूरे पंच सब्द तिन घने । नारायनि अर्जुन तब सने ।
सेत तुरी रथ चढ़े मुरार । पंच लिये गोविन्द हकार ।
पंचाजन्नु सख कर लिये । देवदत्त अर्जुन को दिये ।
भान जुझार पड़ दस जिते । सखनि पूरनि लागे तिते ।
सुनि करि सब्द अघ सुत डरे । विनती पंच क्रुष्ण सों करे ।

अर्जुन को स्वजनों को समर में देखकर मोह उत्पन्न होता है जिसकी सरल और हृदयग्राही भाषा में जन मानस में पैठ करने योग्य वाणी में कवि का कथन देखिये—

ए सब सहुदे हमारे देव । कै रन मद्धे विनवौं सेव ।
सिथल भयो सब मेरो अंग । कांपे हाथ कम्पत रत रग ॥
सूकै मुख अरु वर्षहि आप । बहुत दुख ता उपजै मन माप ॥
इष्ट मित्र क्यो मकि महि मारि । गोपीनाथ तुम हिदै विचारि ॥
वह पड्व के बूडै राज । मानो बुरो अधिष्टर आजु ॥
हो न करन अब जुधहि करौं । देखति ही क्यों कुल संघरौं ॥
ले उन मोंसो देखहि देव । होइ दुष्ट गति विनवौं सेव ॥
अर्जुन बोले देव मुरारि । जिहि ठा तुम्ह तह होइ न हारि ॥
हो न किओ चाहो आपने । अरु सुख राज जुहो टल तनै ॥
कहा राजु जीवनु यह भोग । भैयाबंध हमें सब लोग ॥
जिनके अर्थ जोरिये दर्व । देषति जिनहि होइ अति गर्व ॥
राज भोग सुख जिनके काम । ते कैसें वधिये सग्राम ॥

मेघ यज्ञादि होने पर जल बरसाते हैं तथा जल बरसने से अन्न उपजता है कर्मकाण्ड की सजीव प्रेरणा देते हैं—

मेघनि ते सो उपजै अन्नु जग्यानि तें उपजै परजन्यु ।

जोग के विषय में मेघनाथ लिखते हैं—

ऊरध नारी पेंचे बाऊ, मनें जोग बोले हरि राऊ ।

संस्कृत की अष्टादश अध्यायी गीता सर्व-साधारण के समक्ष में नहीं आ सकती इसलिये कवि भाषा मे कहने का उद्देश्य प्रकट करता है—

गीता जिते अठारहि ध्याइ । दुर्लभ सर्व कहाँ को जाइ ॥
भानु कुवर को थीरा लहै । थेघनाथु भाषा करि कहै ॥

थेघनाथ के सन्देश का धरातल मानवोय है और नैतिक स्तर के मान की स्थापना का उत्तम प्रयास है —

जो ज्ञानी को दोय न देई । सत्य बात परगासे सोई ॥
निर्मल चित्त न चितवौ बुरो । पापनि को न लेह आसरो ॥

— "निर्मल चित्त से देखना बुरा नही है पाप बुद्धि का आश्रय बुरा है।"

थेघनाथ की हिन्दी सेवा :—

कवि 'भगवत गीता भाषा' मे सामान्य जन के समक्ष मे आ सकने वाली लोक प्रचलित भाषा मे गीता ज्ञान देने तत्पर हुआ। नीति, धर्मविषयक शिक्षा कवि ने गेय चौपाइयो मे दी। ससार मे अनुरक्त जीवो को शाश्वत मार्ग की दिशा का ज्ञान सरल बनाया। उस युग मे जब हिन्दू सस्कृति पर प्रबल आघात हो रहे थे राजपूतो की तलवार को चैन न था, उस समय में धर्मयुद्ध और कुरुक्षेत्र की याद दिलानेवाला क्षात्रधर्म और मोह विनाश का कार्य, जनभाषा मे ये कवि कर रहा था जिससे तत्कालीन परिस्थितियो में जनता मे प्राणो का सचार हुआ तथा राष्ट्र भाषा हिन्दी अपने कलेवर को पुष्ट करने लगी।

किसी भी सशक्त कवि के प्रबन्ध का कुछ न कुछ आधार तो होता ही है। किन्तु कवि की अपनी अभिव्यक्ति, उसकी भाषा, अपने ढग से नित नूतन प्रभाव डालती चलती है। इसी आधार पर किसी घटना विशेष, नायक विशेष को लेखको और कवियो ने अपनी भाषा और भावो में नये परिधान दिये हैं, उन्हे नये परिवेश मे रक्खा है। नीति को काव्य गुणों से समन्वित किया है। थेघनाथ की रचना अनुवाद मात्र नहीं है उसमे स्वतत्र भाव भी हैं जो सरल भाषा मे जनमानस को स्पर्श कर सके। कहने को तो सूर सागर तथा तुलसी की रामायण आदि ग्रथ भी वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्-भागवत, हनुमन्नाटक आदि ग्रथो के किसी अश मे अनुवाद कहे जा सकते हैं। सस्कृत साहित्य के तो ऋणी हैं—बडे बडे कवि। किन्तु, प्रबन्ध या चयन का निर्वाह उन्होने अपनी-अपनी क्षमता से किया। सूर, तुलसी युग के प्रतिनिधि कवि बने किन्तु उन्हें इस रूप मे प्रतिष्ठित होने मे भाषा, भाव, शैली, काव्य रूढियां और विभिन्न क्षेत्रो मे सामग्री जुटादी मध्ययुगीन इन पूर्वज कवियों ने।

मेघनाथ कवि के बारे में खोज रिपोर्ट :—

मेघनाथ के विषय मे सर्वप्रथम सूचना खोज रिपोर्ट (१९४४-४६) में प्रकाशित हुई। किन्तु कदाचित यह रिपोर्ट अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रति आर्य भाषा पुस्तकालय के याज्ञिक संग्रह मे सुरक्षित है। इस प्रति का लिपिकाल संवत १७२७ माने जाने का स्व० याज्ञिकजी ने लिखा है।[1] कारण यह बताया जाता है कि चतुरदास कृत एकादश स्कन्ध की प्रति जो इसी जिल्द मे थी उसका लिपिकाल सं० १७२७ है। दोनो के लिपिकार एक ही व्यक्ति है। (देखिये प्रति न० २७८।५०) जिल्द टूट जाने से दोनों पुस्तके अलग-अलग हो गयी है।

कवि छीहल अग्रवाल (१५१७ १५१८ ई०)

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा चर्चा —

आचार्य शुक्ल ने 'छीहल' के बारे मे कुछ अनमने भाव से यह लिखा—"संवत १५७५ में इन्होंने 'पंच सहेली' नाम की एक छोटीसी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमे ५२ दोहे है।"[2]

बावनी ५२ दोहे की छोटी रचना नही है इसमे ५३ छप्पय छन्द है जो उच्चकोटि के है।[3] छीहल बावनी अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, अतिशय क्षेत्र भण्डार, जयपुर अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर डॉ० शिवप्रसादसिंह ने सम्पादित की है।

छीहल कवि की चार रचनाओ का पता चला है 'आत्मप्रतिबोध जयमाल' 'पंच सहेली, छीहल बावनी, 'पथीगीत'। 'छीहल बावनी' तथा 'पथी गीत' जयपुर के आमेर भण्डार में है। पथीगीत मे जैन-कथाओ के सहारे कुछ उपदेश हैं ये 'रचना साधारण कोटि की है। आत्मप्रतिबोध जयमाल 'जैन ग्रन्थ धार्मिक प्रतीत होता है।

छीहल बावनी का 'प्रथम छप्पय' इस तथ्य को प्रकट करता है कि कवि जैन मतानुयायी है और बावनी के शुरू के कुछ छप्पयो के प्रथम अक्षर से 'ऊ नम. सिद्ध' बनता है इससे भी लेखक के जैन होने का अनुमान होता है।

प्रारम्भ के पाच छप्पयो की प्रारम्भिक पत्तियां यहा दी जाती हैं जिनसे इस पर विचार किया जा सकेगा—

---

१ याज्ञिक संग्रह, नागरी प्रचा० सभा की प्रति के अन्त की टिप्पणी (सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ १६३ की तृतीय टिप्पणी)।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत २००७, पृष्ठ १६८।

३. छीहल-बावनी (डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित) वाराणसी।

ओंकार आकार रहित अविगति अपरम्पर ॥१॥

+ + +

नाद श्रवण धावन्त तजइ मृग प्राण ततृखिण ॥२॥

+ + +

मृग वन मज्झि चरत डरिउ पारधी पिखिख तिह ॥३॥

+ + +

सबल पवन उत्पन्न अगिनि उज्जि फर दहे सब ॥४॥

+ + +

धनि ते नर संसि दियइ जे पर कज्जु सवारण ॥५॥

पूरा पहला छप्पय इस प्रकार है—

ओंकार आकार रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी मम सृष्टिकर्ता विस्वंभर ॥
घटि-घटि अंतर बसइ तासु चीन्हइ नहिं कोई ।
जल थलि सुरगि पयालि जिहां देख तिह सोई ॥
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके प्रबल महातप सिद्धयउ ।
· छीहल कहइ तस पुरुष को किण ही अन्त न लद्धउ ॥१॥

छीहल बावनी की रचना, तिथि तथा वंश परिचय कवि ने दिया है—

चउरासी अग्गल सइ जु पनरह संवच्छर ।
सुकुल पक्ख अष्टमी कातिग गुरु वासर ॥
हृदय उपन्नी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो, सारद तणइ पसाइ कवित सम्पूरण कीन्हो
नाहिग वंश सिनाथु सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि
बावनी बसुधा विस्तरी कवि कंकण छीहल्ल कवि ॥५३॥

इति छीहल कवि बावनी सम्पूर्ण समाप्त संवत् १७१६ लिखित पंडित मीर लिखते व्यास हरि राय महला मध्ये राउत श्री सिवसिंघ जी राज्ये । संवत् १७१६ का वर्षे मिति वैसाष सुदि ५ सनि सुर वार मे शुभ भवतु ।

इसकी अन्तिम पुष्पिका का लेख पढ़ने से लेखक के विचार हैं कि यह प्रति ओरछा मे उतारी गई होगी क्योंकि "व्यास हरि राय महला मध्ये" के स्थान पर "व्यास हरिराम मुहल्ला मध्ये" पढ़ा जाना चाहिये । ओरछा लेखक गया वहां व्यास मुहल्ला (हरिराम शुक्ल जो 'व्यास' के नाम से) अब तक विख्यात है तथा सं० १७१६ (१६५६ ई०) मे सिवसिंह कदाचित वीरसिंह बुन्देला का वंशज हो सकता है । छीहल बावनी की रचना १५८४ सं० (१५२७ ई०) मे हुई । इससे रचना का स्थान प्रकट नहीं होता

केवल कवि अग्रवाल कुल का प्रतीत होता है। इनके वंशज कहा के थे ये भी पता नहीं चलता। डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने इनके वंशजो को उपर्युक्त छप्पय के आधार पर 'नालि गाव' का माना है और साथ ही कवि के अग्रवाल जैन मतानुयायी होने की सम्भावना भी प्रकट की है।[१]

छीहल बावनी की रचना से पूर्व 'पच सहेली' लगभग ६ वर्ष पहले रची यह रचना फागुन मास की पूर्णमा के उत्सव पर गायन के लिए सन् १५१७-१८ ई० में चन्देरी मे की गई थी जहा सलहदी तवर (शिलादित्य तोमर) के मित्र मेदिनीराय का आधिपत्य था।[२] सलहदी तवर (शिलादित्य तोमर) ग्वालियर से मालवा गया था। 'पंच-सहेली' मे यह भी प्रकट होता है कि उस काल मे जनगानो को वियोग और सयोग के मनोभावों की अभिव्यक्तियो से परिपूर्ण रचनाए बहुत आकर्षित करती थीं।

यद्यपि छीहल 'जायस' (मंझावत के कवि) के रचना कौशल और उदात्त एवं प्रशस्त कल्पना के निकट नही पहुच सका किन्तु उसकी रचना तत्कालीन प्रवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। छीहल ने मालिन, तमोलिन, छीपिन, कलालिन तथा सुनारिन वियोगिनियों का वर्णन किया है परन्तु उन सब मे प्रतिनिष्ठा का ही आरोप किया है और अन्त मे प्रिय मिलन कराया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'पच सहेली' और वस्तु विवरण सही दिया है। किन्तु बावनी का उल्लेख नही किया।[३] कवि छीहल की पंच सहेली आरम्भिक रचना ज्ञात होती है। कवि ने इस छोटे किन्तु अत्यन्त उच्च कोटि के सरस काव्य मे पाच विरहिणी नायिकाओ की मर्म व्यथा को अत्यन्त सहज ढंग से अभिव्यक्त किया है। ये भोली नायिकाए अपने दुःख को अपने जीवन की सुपरिचित वस्तुओ तथा उनके प्रति अपने रागात्मक-बोध के माध्यम मे प्रकट करती हैं। जैसे मालिन अपने दुःख को इन शब्दों मे व्यक्त करती है—

पहिली बोली मालणी मुझकूं दुख अनंत ।
बाला जोवन छाडि करि चल्या दीसाउर कत ॥१७॥
निसि दिन वहइ पनाल ज्यू नयनह नीर अपार ।
विरह माली दुख का मूभर भरया कियार ॥१८॥

---

१. सूरपूर्व ब्रजभाषा (डॉ० शिवप्रसाद सिंह) पृष्ठ १६६ तथा परिशिष्ट पृष्ठ ४०५-४०६ पुष्पिका।

२. (अ) डॉ० रघुबीरसिंह द्वारा लिखित-रायसेन का शासक सलहदी तवर, [शिवाई चरित परिशिष्ट (५) पृष्ठ ४२७-४३६]।

(ब) मुगलकालीन भारत-डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ ३३ (१९६२ का प्रथम संस्करण)

(स) दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ २३६-८०

३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ३२४-४४८

कमल वदन कुमलाइया सूकी सुख वनराई ।
वाजु पीयारो एक खिनि वरस बराबर जाइ ॥१६॥

छीपिन (दर्जी) की पत्नी का शरीर रूपी कपडा है उसका पूरा ब्योंत नहीं ब्योंत रहा, विरहा अपनी तीक्ष्ण कैंची से उसके टुकड़े-टुकड़े कर रहा है और दुःख की बखिया देखकर सी रहा है, वह भला अपने 'जीय की पीर' क्या कहे ?

तन कपड दुख कतरी दरजी विरहा एह ।
पूरा व्यूंत न ब्योंतही दिन-दिन कटइ देह ॥३२।

सुनारिन के विरह ने तो सुनारिन का रूप (सौन्दर्य) और सोना (निद्रा) दोनों चुरा लिए और उसके शरीर को हृदय की अंगीठी पर तपाया और शरीर—रूपी कुंदन को गलाने सुहागा भी (सौभाग्य) डाल दिया। सुहागा गला ढला, शरीर को कोयला कर डाला। टाका न रहा, रत्ती भर धीर न रहा और माशे भर भी मास न रहने दिया। विरह ने सब शरीर का शोषन कर डाला। इस प्रकार—

विरहे रूप चोराइया सोना हइ मुझ जीव ।
किसइ पुकारू जाइ करि अब घरि नाही पीउ ॥४८॥
तनु तोलइ कटइ धरइ देखइ कसि नाई ।
विरहा कूड सुनार जिम घड़ई फिराई फिराई ॥४६॥

रूप और निद्रा भग हो गई। विरह रूपी क्रूर सुनार शरीर को काटे पर तौल रहा है और अपनी कसौटी पर कसे जा रहा है और फिरा फिरा कर सर्वांग को (गड) घड़ रहा है।

छीहल ने पाचो सहेलियो की विरह वेदना से व्यथित हो सवेदना प्रकट की और सान्त्वना देकर लौट आए किन्तु जब फिर देखा तो मिलन-सुख का दृश्य ही कुछ और था—

मालिणि का मुख फूल ज्यु बहुत विगास करेई ।
पेम सहित गुजार करि पिउ मधुकर रस लेई ॥५८॥
चोली खोलि तबोलिणी काढ्या गात अपार ।
रग किया बहु पीउ सु नयन मिलाई तार ॥५६॥

छीहल की 'पंच सहेली' १६वी शती का अनुपम शृंगार-काव्य है, इस प्रकार का विरह वर्णन, उपमानों की इतनी स्वाभाविकता और सजीवता अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। संभवत. शुक्लजी ने पूरे काव्य को न देख सकने के कारण ही प्रारंभिक दो-चार दोहों की सूचना के आधार पर ही उसे सामान्य कोटि का ठहराया होगा।

छीहल की आकांक्षा स्पष्ट है :—

धन सु मन्दिर धन दिन धन सु पावस एह ।
धन वलभ घरि आईया धन सु वरिसइ मेह ।।६५।।
निस दिन जाइ आणंद महि दिननहि बहुत विधि भोग ।
छीहल पंच सहेलिया कीया पीउ संजोग ।।६६।।
मीठा मन का भावतो कीया सरस बखाण ।
अण जाणे मूरख हसइ रीझइ रसिक सुजाण ।।६७।।

छीहल रचना तिथि देता है —

पनरह सइ पचहुत्तरइ पूनिम फागुन मास ।
पंच सहेली वर्णई कवि छीहल परगास

सं० १५७५ फागुन मास की पूर्णिमा (१५१७-१५१८) को छीहल ने 'पंच सहेली' का प्रकाश किया ।

'पंच सहेली' का रचना स्थान चंदेरी होना अन्तःसाक्ष्य से प्रकट होता है :—
(कवि छीहल कृत श्री पंच सहेली)

देख्या नगर सुहावनो अधिक सुचंगा थानु ।
नाऊ चंदेरी प्रगटा जनु सुर लोक समान ।।१।।
ठाई ठाई मंदिर सतखिना सोने लहीया लेह ।
छीहल तिन की उपमा कहत न आवै छेह ।।२।।
ठाई ठाई सरवर पेखइ सूभर भरे निवाण ।
ठाई ठाई कुवा बावडी सोहइ फटिक सिवाण ।।३।।
पवन छत्तीसह तिहा बसइ अति चतुर से लोग ।
गुण विद्या रस जाणने जाणे परिमल भोग ।।४।।
तिहा ठाइ नारी पेखई, रमा कउ उणिहार ।
रूपवंत ते आगली अवर नही ससार ।।५।।
पहिर सवाए आभरण अंग दखण का चीर ।
बहुत सहेली साथ मिलि आई सरवर तीर ।।६।।
चोआ चंदन घाल भरि परिमल पुहुप अनंत ।
खडहि बीगी पान की मदनई सखी बसंत ।।७।।
कोई गावइ मधुर ध्वनि केइ देवइ रास ।
के हींडोलइ हींचनो इहि विधि करई विलास ।।८।।
तिह मे पंच सहेलिया बहसी ठांरा जोरि ।
नाउ वइ गावइ ना हसइ, ना मुखि बोलइ बोल ।।९।।

अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है :—

लिखत रामा ।। इति पंच सहेली संपूर्ण ।।[1]
फागुण वदि १० दिने लिखत ।।

चंदेरी का छीहल द्वारा वर्णन, बाबरनामा के चंदेरी के वर्णन से मेल खाता है जिसका पूर्व में उल्लेख हो चुका है। अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में 'पंच सहेली' की चार प्रतियाँ उपलब्ध हैं।[2] डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने सामान्यतः पंच सहेली की भाषा को राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा कहा है।

कवि छीहल की बावनी —

भाषा और भाव दोनों के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। नीति और उपदेश को मुख्य विषय बनाते हुए भी रचनाकार कभी भी काव्य से दूर नहीं हुआ है। कवि की रचना में नीति एक नये ढंग से तथा नये भावों के साथ व्यक्त हुई है। एक छप्पय[3] नमूने के हेतु प्रस्तुत है :—

लीन्ह कुदाली हाथ प्रथम खोदियउ रोस करि।
करि रासभ आरूढ़ घरि आनियो गूण भरि।।
देकर लत्त प्रहार मूड़ गहि चक्क चढ़ायो।
पुनरपि हाथहि कूट धूप धरि अधिक सुखायो।।
दीनी अगिनि छीहल कहै कुंभ कहै हउ सहयो सब।
पर तरणि याह टकराहणे मे दुख सालै मोहि अब ।।१५।।

बावनी की रचना छप्पय छन्द में है। इस रचना की भाषा में प्राचीन प्रयोग अधिक मिलते हैं। छप्पय में अपभ्रंश का प्रयोग है।

मानसिंह तोमर – 'मानकुतूहल' (१४८६–१५१६) :—

तोमर महाराजा मानसिंह द्वारा 'मान कुतूहल' संगीत शास्त्र की पुस्तक जो भरत मत पर हिन्दी में रची गई थी अपने फारसी अनुवाद के कारण अधिक प्रकाश में आई। यह अनुवाद फकीरुल्ला सैफखाँ ने जैसा कि कहा जा चुका है, 'राग्दर्पण' नाम से किया था।

---

१ श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रहालय के सं० १६९६ में उन रे गये गुटके में यह रचना लिखी हुई है जो अगरचन्द नाहटा द्वारा प्राप्त प्रति 'मैनासत' के परिष्ठ ३ में पृष्ठ २०६–२१३ पर प्रकाशित। विद्यामंदिर मुरार (ग्वालियर) में उपलब्ध।

२ सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ १७१

३ वही, परिशिष्ट पृष्ठ ४०८ (छीहल बावनी छप्पय १५)

'मान कुतूहल' में दस सर्ग हैं।[1] प्रथम सर्ग में – पुस्तक रचने के कारण के विषय में, द्वितीय सर्ग–रागो के विषय में तथा तृतीय सर्ग–विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न रागो को स्थिर करने के सम्बन्ध में लिखा गया है। साथ ही इसमे उन अक्षरों का भी उल्लेख है, जिनका प्रयोग गीत रचना के प्रारम्भ में नहीं करना चाहिये और "ग्राम" स्थिर करने का भी वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग–स्वरो की जानकारी तथा गीतों के बोलो के विषय में, पंचम सर्ग–वाद्यो की जानकारी तथा नायक–नायिकाओ और सखी के विषय में, षष्टम सर्ग–गायकों के दोषों के विषय में, सप्तम सर्ग–स्वरो की पहिचान तथा कंठ के विषय में, अष्टम सर्ग–गायनाचार्यों के विषय में, नवम–सर्ग गीत की उडान और उनके लाभों के विषय में तथा दशम सर्ग–उन गायको और वादको के विषय में जो रचयिता के समय में हैं व थे– लिखा गया है।

'मानकुतूहल' के अनुवाद 'राग दर्पण' से यह भी पता चलता है कि नायक गोपाल अमीर खुसरो की (संगीत) विद्या की ख्याति सुनकर 'डडा बाधकर' आया था। 'डंडा बाधना' एक प्रकार के घुंघरू होते हैं जो पगडो में एक गहने की तरह पहिने जाते हैं जो कोई इन्हें बाधता है उसे मुकाबला करना पडता है और हकीम मोअनी के एक शेर के अनुसार गायको की लडाई वास्तव में गाने की होड है। अमीर खुसरो ने सुलतान अलाउद्दीन खिलजी से स्वीकार किया था कि गोपाल नायक अद्वितीय है उसके १२०० शिष्य हैं जो सिंहासन को कहारो के स्थान पर उठाते हैं।[2]

ग्वालियर में संगीत की परम्परा औरंगजेब के काल तक चलती रही।

ऋतुओं में राग तथा रागिनियां व पुत्रों के गाने का स्थिरीकरण :—

फकीरुल्ला के अनुसार मानकुतूहल में तृतीय सर्ग में[3] यह भी निर्देश है कि संगीत विद्या को देवताओ ने उत्पन्न किया और एक वर्ष में षट् ऋतुओं को स्थिर किया। एक एक ऋतु दो-दो महीने की होती है इन ऋतुओं के ऊपर षट्राग स्थिर किए। एक ऋतु में एक राग अपनी रागिनी तथा पुत्रो सहित गाया जाता है। प्रत्येक ऋतु तथा समय के एक-एक ग्राम स्थिर किये जाते हैं।

देवताओ ने यह श्रम नायको द्वारा किया। इन नायको में बैजू नायक और गोपाल नायक के समान नायक सम्मिलित हैं।

---

१. मानसिंह–मानकुतूहल, पृष्ठ १२
२. वही पृष्ठ ६४–६५.
३. मानसिंह मानकुतूहल, पृष्ठ ८३–८४–८५।

फकीरुल्ला द्वारा मानसिंह की संगीत-देन के लिए प्रशस्ति —[1]

"मानसिंह के इस अद्‌भुत अविष्कार के लिये गायन शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा। आज लगभग दो सौ वर्ष हो चुके हैं, कदाचित आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिंह के समान गायन शास्त्र में प्रवीण हो तो परमात्मा की अपार लीला से ध्रुपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके। परंन्तु मस्तिष्क में अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना असंभव है। इस बात का मेरा प्रमाण यह है कि मार्गी की भाषा संस्कृत है और ध्रुपद की देशी।"

फकीरुल्ला ने मानकुतूहल के दशम सर्ग के अपने अनुवाद में उन गायकों एवं वादकों की भी चर्चा की है जो उसके समकालीन थे।[2]

शेख बहाउद्दीन ने दक्षिण में संगीत विद्या सीखी थी ५६ वर्ष की आयु में ये बरनावा वर्तमान मेरठ की एक तहसील के अपने गांव में लौट आए। मार्गी प्राचीन गीत की कला में दक्षिण में वे अद्वितीय माने जाते थे। कवित्त ध्रुपद का ख्याल और तराने में इनकी रचनाएं अच्छी थी। शेख पीर मुहम्मद भी इनकी महानता का हाल सुनकर साधु होकर इनके पास रहते थे। इनकी उम्र ११७ वर्ष रही।

शेख नसीरुद्दीन का स्थान उस समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञों में अग्रगण्य था। उन्होंने सुलतान हुसेन शर्की की गायन व्यवस्था को नवजीवन दिया था। यद्यपि सुलतान शर्की का स्थान ऊंचा था।

मियां दामू ढाढी ध्रुपद गाने वाला अच्छा था। लालखां कलावन्त की शादी तानसेन ने अपने लड़के विलासखां की लड़की से करदी थी ये उच्च कोटि के गायक थे।

जगन्नाथ कविराय को तानसेन अपने बाद ध्रुपद रचना में द्वितीय श्रेणी का मानते थे और कहते थे कि मेरा स्थान ध्रुपद रचना में ये ही ग्रहण करेगा। इनकी १०० वर्ष की आयु में मृत्यु हुई थी।

"एक और अद्वितीय वादक सोनागिरि का था और शाहजहां के छोटे बेटे के साथ रहता था।"[3]

काव्य का संगीत से घनिष्ठ संबंध :—

फकीरुल्ला की दी हुई सूची के कलाकार पीछे इस आशय से उद्‌धृत किये गए कि देश के कोने-कोने के गायक जो एकत्रित थे उनमें अधिकांश पद रचना करते थे और

१. वही, पृ० ६१
२. मानसिंह-मानकुतूहल, पृष्ठ १३१-१३८.
३. मानसिंह-मानकुतूहल, पृष्ठ १३६-१४४.

पद रचना आवश्यक समझी जाती थी। क्योंकि उस समय काव्य का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध था। रासो गेय काव्य थे, संतो के पद गाने के लिए, संकीर्तन के लिए लिखे जाते थे। सूफी संतो की रचनाएं जनता को गाकर सुनाई जाती थीं, ब्रज का पद साहित्य संगीत को आधार बनाकर चला। उस समय संगीत के पद, भाषा का निर्माण और परिमार्जन कर रहे थे पद-लेखक की प्रतिभा के अनुसार साहित्य का सृजन हो रहा था।

पन्द्रवी शताब्दी के ग्वालियर में संगीत अपने पूर्ण विकास पर था। यह परम्परा मानसिंह तोमर के राज्यकाल में अपनी चरम सीमा पर पहुंची। इस समय के प्रामाणिक संगीत ग्रन्थ 'मान कुतूहल' के अनुसार संगीत शास्त्री को पद रचना में दक्ष होना आवश्यक था। फकीरुल्ला के अनुसार स्वयं मानसिंह ने प्रचुर पद रचना की। उनके दरबार में अनेक संगीताचार्य थे जो पद रचना करते थे। पदों का यह संग्रह अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। बैजू नायक, बख्शू, तानसेन के पद ही कुछ उपलब्ध हैं। संगीत के माध्यम से यह भाषा रचना उस समय जौनपुर, माडू, दिल्ली, मेवाड़, गुजरात तक प्रचलित हो गई थी क्योंकि वहां भी संगीत के केन्द्र बने और संगीत की स्वरलहरी शब्दों के आधार को लेकर आगे बढ़ी। उस समय के तवरों के ग्वालियर में सांस्कृतिक नेतृत्व झलकता है।[१]

तवरों के काल में जैन साधुओं एवं विद्वानों का भी ग्वालियर गढ़ पर आवागमन रहा। इन आयोजनों में तोमर राजाओं की राजसभाओं में भी उनको आदर मिला और साथ ही जैन विद्वानों एवं आचार्यों का सम्पर्क भी रहा। इन सबने ग्वालियर को सांस्कृतिक केन्द्र बनाने में सहायता मिली।

संगीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् भारतीय संगीत में एक क्रान्ति हुई। भारत का संगीत उतना ही प्राचीन है जितनी प्राचीन भारतीय संस्कृति।

तेरहवीं शताब्दी ईस्वी के (अबुल हसन) अमीर खुसरो द्वारा भारतीय और ईरानी संगीत के मिश्रण का कार्य हुआ। भारतीय संगीत अपनी प्राचीन परम्पराओं में चलकर भी समाज की नवीन आवश्यकताओं के अनुसार नवीन मार्गों को भी खोज करना चाहता था। यह क्रान्तिकारी कार्य महाराजा मानसिंह तोमर ने किया। उन्होंने उत्तर भारत के प्रसिद्ध गायकों को एकत्रित कर "भरत मत" प्राचीन संगीत के अनुसार संगीत शास्त्र के सिद्धान्त, रागों की संख्या, प्रकार आदि की व्याख्या करके "मान कुतूहल" में लिपिबद्ध कराये, दूसरी ओर उन्होंने संगीत को शास्त्रीय रूढियों से मुक्त कर नवीन रागों की कल्पना की। लोक रुचि और लोक भावना के अनुरूप संगीत में परिवर्तन हुआ।

१. मानसिंह मानकुतूहल १५८-१६०

संगीत के बोल संस्कृत के बजाय हिन्दी में बने और ध्रुपद जैसी नवीन गायन शैली प्रतिष्ठित हुई और इस नवीन गायन शैली के अनुरूप हिन्दी भाषा में पद रचना हुई। मार्गी संगीत के स्थान पर "फकीरुल्ला" के अनुसार ध्रुपद प्रणाली का प्रारम्भ ग्वालियर में हुआ।[1]

मानसिंह तोमर के काल में ध्रुपद गायकी के माध्यम से हिन्दी भाषा में पद साहित्य, मानमंदिर, गूजरी महल जैसी भव्य स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला भारतीय संस्कृति के उन्नयन में विनम्र योगदान के आधार हैं।[2]

गोविन्द स्वामी :—

श्री गोविन्द स्वामी के बारे में वार्ता-साहित्य में इस प्रकार उल्लेख आये हैं—

वार्ता प्रथम

—"*सो (वे) प्रथम आंतरी (ग्राम) में रहते (सो) तहां (वे) गोविन्द स्वामी कहावते और आप सेवक करते। परि गोविन्द स्वामी परम भगवद् भक्त हते, सो (वे) गोविन्द स्वामी आंतरी तें व्रज को आए, सो महावन में आइ रहे। काहे तें जो-(यह) व्रजधाम है, इहां श्री भगवान के चरणारविंद की प्राप्ति (कैसे न ?) होइगी ?*

सो गोविन्द स्वामी कवि हते, (सो) आप पद करते।[3]

\+ \+ \+

—"*सो पहले गोविन्द स्वामी आंतरी में सेवक करते सो उहां गोविन्द स्वामी कहावते। आंतरी में इनके सेवक बहुत हते।*"[4]

"*सो गोविन्द स्वामी कवीश्वर हते सो आप पद करत*"[5]

"*गोविन्द स्वामी भक्त, उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ एक सिद्ध गवैये थे। गान विद्या में इतने निपुण थे कि वल्लभ सम्प्रदाय में आने के पहिले ही इनके अनेक शिष्य हो गए थे जिन्होंने इन्हें स्वामी पद से विभूषित किया था।*[6]

---

१. मानसिंह-मानकुतूहल, पृष्ठ १६४
२. *श्री भास्कर भट्ट-"ग्वालियर का हिन्दी भाषी क्षेत्र में योगदान (३) पृष्ठ १२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान* २१ अगस्त १९६६ तथा संगीत सम्राट तानसेन (सं० २०१० प्रथम संस्करण)-लेखक प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ १२।
३. अष्टछाप (सं० १६६७ की वार्ता और भाव प्रकाश) सं० श्री० कण्ठमणि शास्त्री (सं० २००६ संस्करण) कांकरौली पृष्ठ ६२३।
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय-डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ २६७ (पाद टिप्पणी-अष्ट सखान की वार्ता)।
५. अष्टछाप कांकरौली पृष्ठ २६४
६. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ २७१ (२५२ वैष्णवन वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ २१७)

—"सो गोविन्दास भैरव राग अलाप्यो सो गोविन्ददास को गरो बहोत आछो हतो और आप गावत ही बहोत आछे हते सो भैरव राग ऐसो जाम्यो जो कछु कहिवे में नही आवे।"[1]

—"गोविन्द स्वामी के प्रभाव से गोकुल में आकर आंतरी ग्राम में जो इनके शिष्य हो गये थे। वे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये।"[2]

डॉ० दीनदयालु गुप्त का कथन है कि गोविन्द स्वामी सं० १५९२ (१५३५ ई०) में गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण में आ। तब इनका विवाह भी हो गया था और संतान भी थी, शरणागति के समय आयु ३० वर्ष की कम से कम होगी।[3] इस प्रकार जन्म संवत् इनका १५६२ (सन् १५०५ ई०) आता है। संवत् १६२८ विक्रमी (१५-७१ ई०) तक गो० विट्ठलनाथ के पुत्र की बधाई गाने के कारण ये जीवित माने जाते हैं।[4] अतएव इनका निधन काल गो० विट्ठलनाथजी के समय ही १५८५ ई० (सं० १६४२) माना गया है।

डॉ० दीनदयालु गुप्त ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के चार अष्टछापी सेवकों के जीवन-वृत्त के लिए काकरोली विद्या विभाग के 'वार्ता रहस्य' नामक संस्करण को ही अन्य पूर्व प्रकाशित वार्ताओं की अपेक्षा प्रमाणित माना है।[5]

ग्वालियर में विक्रमादित्य तोमर (१५२६ ई०) के अन्तिम काल तक संगीत और पद रचना की परम्परा लगभग १०० वर्ष पूर्व से चली आ रही थी। संस्कृति का नवोन्मेष वहां हो रहा था। ग्वालियर के अलावा किसी और आंतरी के पास, कवि कर्म की ओर रुचि उत्पन्न करने वाला ऐसा समाज तथा संगीत शिक्षा की सुविधा होना तत्कालीन इतिहास में नहीं बताया गया और न इस बात के जानने के कारण हैं कि गोविन्द स्वामी कवीश्वर और सिद्ध गायक बनकर दीक्षित होने समय वहां से पहुंच गए थे। कथित आन्तरी ग्वालियर में ही स्थित है। ग्वालियर में ही संगीत शिक्षा का साधन था। वहां पर विद्वानों का देश के कोने-कोने से जमघट था अतएव इन परिस्थितियों में यह अनुमान सत्य के अधिक निकट होना प्रतीत होता है कि गोविन्द-स्वामी आंतरी (ग्वालियर) के ही निवासी थे।

---

१. अष्टछाप कांकरोली, पृष्ठ २८१

२. अष्टछाप कांकरोली पृष्ठ २६८

३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डॉ० दीनदयालु गुप्त) पृष्ठ २७२

४. वही, पृष्ठ १०५, कीर्तन संग्रह भाग २ लल्लू भाई, छगनलाल देसाई ■ २१० (पुत्र घनश्याम की बधाई गायी)।

५. वही, पृष्ठ १४० (क्रमांक १)

एक बात और भी इस अनुमान को बल देती है कि आसकरन कछवाहा नरवरगढ़ (ग्वालियर) तथा तानसेन (बेहट-ग्वालियर) पड़ौस के गावों के समकालीन थे और तानसेन ने स्वयं संगीत कला में गोविन्दस्वामी से पूर्णता प्राप्त की तथा नरवर कुछ दिनों रहकर राजा आसकरन कछवाहा को भी गोविन्दस्वामी से मिलकर संगीत शिक्षा दिलाई।[1]

श्री मीतल ने गोविन्द दास की बेटी के मिलने की घटना को लेकर आतरी ब्रज के समीप अनुमान की है। वार्ता नवम नीचे उद्धृत की जा रही है जिसके विचार करने से यह अनुमान लगाने के कोई कारण नहीं पाये जाते।

"और एक समै गोविन्ददास की बेटी आतरी तें आई, सो थोड़े से दिन रही। परि गोविन्ददास ने तो कबहूं वासों संभाषन न करयो, यों न पूछी जो—कब आई ?"

(सो-कान्हबाई गोविन्द दास की बहिन हती, ताने कही जो गोविन्द दास। तू कबहू बेटी सो बोलतही नाही। कबहुं कछु कहत ही नाही यो हू न पूछे जो-तू कब आई है ? सो यह कहा ?)

इस भाव का कुछ अंश १६६७ वाली वार्ता में लेखक प्रमाद से छूट गया है अन्यथा सम्बन्ध नहीं मिलता। यह टिप्पणी दृष्टव्य है।[2]

इस वार्ता में यह प्रमाण नहीं है कि आतरी ब्रज के निकट स्थित है अथवा लड़की अकेले ही आई गई ? यह भी इस बात का असंदिग्ध प्रमाण नहीं कि वह ब्रज के निकट ही होना चाहिये। जबकि उस काल में यात्राएं खास तौर से समूहों के रूप में होती थी। उस काल में यातायात के आज की तरह साधन न थे यात्रा समुदाय के रूप में होती थी।

गोविन्द स्वामी के पदों के संग्रह की प्रतिलिपियां कांकरोली विद्या विभाग में भी हैं तथा 'नाथद्वारे' के निज पुस्तकालय में है। प्रतिलिपियां अठारहवीं शताब्दी की कही जाती हैं। किसी प्रति में २५६, २७५ पद भी हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त का कथन है कि भाषा शैली के आधार पर उन पदों को प्रक्षिप्त कहना कठिन है।[3]

गोविन्दस्वामी के विष्णुपद :—

राग सारंग

कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रंग
बल बल बल त्रिभंगी युवतिन सुखदाई ॥

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—पृष्ठ २७०-२७१ (२५२ वैष्णवन वार्ता (आसकरण) वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ १६२)।

२. अष्टछाप कांकरोली, पृष्ठ ६४७ पाद टिप्पणी, कोष्टक की इबारत सम्पादक ने अनुमान से जोड़ी है।

३. वही, पृष्ठ ३८८, ३८६.

ललित गती विलास हास दपंति मन अति उल्हास
विकसित कच सुमनदाम स्फुटत कुसुम निकर तैसी है सरद रैन जुन्हाई ॥१॥

नव निकुंज मधुप गुंज कोकिल कल कूजत पुंज
सीतल सुगंध मंद बहत पवन अति सुहाई ॥
गोविन्द प्रभु सरस जोरि नवकिशोर नव किशोरी
निरख मदन फौज मोरी छैल छबीले नवल कुंवर व्रज भूपकुल मनिराई ।२।[1]

+ + +

राग मल्हार

आई जु स्याम जलद घटा ओल्हर चहु दिस तें घनघोर ।
दपंति परस्पर बाहो जोटी विरहन कुसुम चीनत कालिंदी तटा ॥
बड़ी बड़ी बूंदन बरषन लाग्यो तैसी लहेकत बीज छटा ।
गोविंद प्रभु पीय प्यारी उठ चले ओढे लाल पट दौर लिए जाय बसी बटा ॥[2]

विष्णु पद-साहित्य की पूर्व परम्परा का विकास :—

विष्णुदास ने विष्णुपदों की रचना की जो परम्परा १४३५ ई० में स्थापित की थी उसे गोविन्दस्वामी ने आगे बढ़ाया और भाषा का विशेष परिमार्जित रूप निखरा। सूर ने इसी भाषा को पल्लवित एवं पुष्पित किया।

संगीत सम्राट मियां तानसेन, बेहट (ग्वालियर) :—

ग्वालियर में यह एक ऐसी विभूति उपजी थी कि जिसने ग्वालियर के संगीत की कीर्ति देश और विदेशों में फैलादी। यद्यपि इसके उस्तादों का नाम दब गया। इसका कारण यह हो सकता है कि इसका सम्बन्ध ग्वालियर मूरि शासक, बघेल शासक और फिर सम्राट अकबर आदि के दरबारों से-साधु सन्तो, फकीरों और भारत के प्रसिद्ध व्रज धाम से रहा जिससे समस्त देश में इसकी तान गूंज गई। देश को यह जीवन और आनन्द देता रहा और उसके देहावसान के बाद, सैकड़ों वर्षों पूर्व ग्वालियर में उसकी समाधि प्रतिष्ठित हो चुकी। श्री प्रभुदयालु मीतल ने अपनी पुस्तक 'संगीत सम्राट तानसेन' में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

"ग्वालियर में किले के नीचे दो मशहूर मकबरे बने हुए हैं। इनमें से एक गौस मुहम्मद का और दूसरा तानसेन का बतलाया जाता है। हम लिख चुके हैं, अकबर-नामा के उल्लेख से ऐसा संकेत मिलता है कि तानसेन की मृत्यु आगरा में हुई थी। उनका अन्तिम संस्कार कहाँ हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता है, तथापि अकबरनामा

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता-गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास संस्करण—पृष्ठ १६६
२. वहीं, पृ० १६४.

के कथन से ऐसी ध्वनि निकलती है कि सम्भवतः तानसेन का अन्तिम संस्कार भी आगरा में ही हुआ था।"

श्री मीतल ने अपने कथन के प्रमाण में अकबरनामा (एच–बीवरिज कृत अनुवाद, जिल्द २, पृष्ठ ८८०) का उल्लेख किया है। इस उद्धरण का आशय यह कदापि प्रकट नहीं होता कि तानसेन के शव को आगरा या वृन्दावन में दफनाया गया या वहां समाधियां निर्मित हुई।

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव मध्ययुगीन इतिहास के विद्वान लेखक ने तानसेन की मृत्यु और उसके दाह के सम्बन्ध में यह निर्धारित किया है—

"२६ अप्रैल १५८६ के दो दिन पूर्व अकबर काश्मीर यात्रा पर चल पड़ा था कि २६ अप्रैल १५८६ ई० को लाहौर में मियां तानसेन की मृत्यु की घटना घटित हो गई। उसके शव को सम्राट की आज्ञा से राजकीय सम्मान एवं ख्यातिप्राप्त संगीतज्ञों के साथ जुलूस के रूप में समाधि स्थल तक ले जाया गया।[1]

आगे डॉ० आशीर्वादीलाल ने निर्धारित किया है कि—"तानसेन को लाहौर में दफनाया गया किन्तु उसके शव को पीछे से ग्वालियर ले जाया गया तथा मुस्लिम संत शेख मुहम्मद गौस के मकबरे के पास उसे प्रतिष्ठित कर दिया गया और अकबर ने उस पर एक भव्य समाधि बनवायी वही पवित्र स्थल भारत के संगीतज्ञों का तीर्थ बन गया।"[2]

इस प्रकार जहां तक तानसेन के शव को ग्वालियर में समाधिस्थ करने का प्रश्न है प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ का समर्थन ही डॉ० आशीर्वादीलाल ने किया है। श्री स्मिथ ने 'अकबरनामा' के अनुवाद 'अकबर दी ग्रेट मुगल' में लिखा है[3]

"तानसेन मुसलमान हो गया था अथवा उसे मिर्जा की उपाधि दी गई थी, उसे ग्वालियर की मुस्लिम पाक जगह पर समाधिस्थ किया गया था।"[4]

तानसेन का धर्म परिवर्तन.—

तानसेन को मुसलमानी घेरे में पड़ने का कारण धन का प्रलोभन, धर्म विशेष की श्रेष्ठता या शासन का भय ये तीनों नहीं हैं। अकबर की धर्म सहिष्णुता के काल में

---

१. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६०, अकबरनामा जिल्द ३ [redacted] ४१६ ४१७ (अबुल फजल)।
२ वही, पृष्ठ ३६१ (अकबर दी ग्रेट–डॉ० आशीर्वादीलाल) (मुन्तखबुत्तवारीख, जिल्द २, पृष्ठ ३११ पाद टिप्पणी)।
३. अकबर दी ग्रेट मुगल—श्री स्मिथ, पृष्ठ १२३।
४. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल) पृष्ठ १०२ की पाद टिप्पणी (२) पर 'अकबर दी ग्रेट मुगल' पृष्ठ १२३ उद्धृत।

तानसेन का मुसलमान होना आश्चर्यजनक अवश्य है। तानसेन की कोई मुस्लिम प्रेयसी होना माना जाता है।[1]

तानसेन के धर्म परिवर्तन की कथित घटना में शेख गौस मुहम्मद का प्रभाव सर्वोपरि हो सकता है और यह भी सम्भव है कि मुसलमानी वातावरण में अकबरी दरबार में रहने के कारण अधिक सम्पर्क एवं रहन-सहन, खानपान की घनिष्ठता हो जाने के कारण हिन्दू समाज ने ऐसी स्थिति में तानसेन को विधर्मी की दृष्टि से देखा हो और एक कलाकार धर्म की संकीर्ण परिधियों को तोड़कर इस्लाम के घेरे में भी अपने आप को समझने लग गया हो और इस प्रकार से वह मियाँ तानसेन कहलाने लगा हो। इसका संकेत हिन्दी साहित्य के इतिहासकार भी देते हैं।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि राजा रामचन्द्र रीवा नरेश के यहाँ तानसेन हिन्दू ही रहे उसके बाद ये मियाँ तानसेन बने फिर मुसलमान होने के बाद भी गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा महात्मा सूरदास, गोविन्दस्वामी आदि के प्रभाव से ये वैष्णव बन गए। इनके वंशजों ने हिन्दू धर्म नहीं अपनाया। मृत्यु पर्यन्त ये दरबार में ही रहे थे, इसलिए इनकी कब्र ही बनाई गई, समाधि नहीं। यह भी अचरज की बात है कि तानसेन के मुसलमान होने का विवरण तत्कालीन कवि अथवा इतिहासकार ने नहीं दिया।[3] बुंदेल वैभव में शाही घराने की कन्या से विवाह कर लेने के कारण मुसलमान हो जाना बताया गया है।[4]

तानसेन का जन्मकाल एवं स्थान:—

तानसेन ग्वालियर से २८ मील दूर एक ग्राम बेहट में ब्राह्मण घराने में उत्पन्न हुए।[5] पिता का नाम मकरन्द पांडे तथा इनके बचपन का नाम किंवदंतियों के अनुसार तन्ना, त्रिलोचन, तनसुख अथवा रामतनु कहा जाता है। तानसेन इनका नाम नहीं था, एक उपाधि थी जो इन्हें संगीत कला के उच्च कलाकार होने के सम्मान में प्रदान की गई थी। यह उपाधि इनके नाम पर छा गई और तानसेन इनके नाम का पर्याय बन गया।[6]

---

१ अमर कलाकार तानसेन, विशेषांक अंक, संगीत कला, पृष्ठ ६० एवं संगीत सम्राट तानसेन पृष्ठ १० (श्री प्रभुदयाल मीतल)।

२ मिश्र बन्धु विनोद भाग १, पृष्ठ २८२, २८३

३ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ १०३ (डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल)

४. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १८३ (श्री गौरीशंकर)

५. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ २६० तथा संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ४

६. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ १०

इनके जन्मकाल के विषय में लेखकों के विभिन्न अनुमान हैं। श्री प्रभुदयालु मीतल[१] श्री चन्द्रशेखर पंत,[२] श्री रामचरन सिंह तोमर,[३] तानसेन का जन्म सन् १५०६ (सं० १५६३) मानते हैं। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी १५२० ई० मानते हैं।[४] श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र १५३२ ई० मानते हैं।[५] श्री शिवसिंह सेंगर ने सं० १५८८ (१५३१ ई०) माना है।[६] डॉ० सुनीति चाटुर्ज्या ने सं० १५७८ (१५२१ ई०) माना है।[७] श्री बाबूलाल गोस्वामी ने (१५३१-३२ ई०) माना है।[८]

किन्तु तानसेन के जन्म को १५०६ ई० (सं० १५६३) के पूर्व ही मानना चाहिये इसके कारण निम्नलिखित हैं —

(१) डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ये मानते है कि "तानसेन ने निश्चयात्मक रूप से अपनी प्रारम्भिक संगीत शिक्षा राजा मानसिंह (१४८६–१५१८ ई०) द्वारा स्थापित संगीत विद्यालय, ग्वालियर में प्राप्त की थी और वह संगीत विद्यालय में गायन शिक्षा काफी अर्से तक जारी रही इसके बाद भी कि ग्वालियर मुगलों द्वारा विजित कर लिया गया था।[९]

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री स्मिथ ने लिखा है कि तानसेन सूरदास के घनिष्ठ मित्र थे और अपनी अधिकांश शिक्षा इन्होंने राजा मानसिंह द्वारा स्थापित संगीत-विद्यालय में प्राप्त की थी।[१०] किन्तु ज्ञात होता है कि उनकी शिक्षा अधूरी ही रही थी क्योंकि उनका संगीत-ज्ञान अष्टछापी कुछ भक्त कवियों के बराबर न था। स्वामी विट्ठलनाथ ने तानसेन के संगीत सुनने पर दस हजार रुपये और एक कौड़ी दी। रुपये इसलिये दिए कि एक दरबारी कलावन्त के सम्मान में दिये जाना उचित थे और कौड़ी इसलिए कि उनका संगीत वल्लभ सम्प्रदाय के संगीतकारों के समक्ष मूल्य रहित था। गोविन्द स्वामी के पद सुनकर तानसेन उनके सेवक हुए और उनसे गान विद्या सीखी।[११] तानसेन ने निम्नलिखित पद में अपने विशेष गुरु के प्रति आदर व्यक्त किया है :—

---

१. वही,
२. भारती, जून १९५६, पृष्ठ ३१२ में प्रकाशित लेख
३ हिन्दी टाइम्स, दिल्ली, ७ मार्च १९६४ में प्रकाशित लेख
४ मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ८६, ११२
५. मध्यभारत सन्देश, ३ मार्च १९५६ में लेख
६ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४२९
७. सम्मेलन पत्रिका (ज्येष्ठ-आषाढ़ सं० २००३) में प्रकाशित लेख
८. कादम्बिनी, फरवरी १९६६ में प्रकाशित लेख
९. अकबर दी ग्रेट पृष्ठ ३६०
१०. अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ४३२
११. दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, गुसाईं जी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, पृष्ठ ४७२।४७६

ब्रह्म गत अपरम्पार न पाऊ
पृथ्वी पार पताल धरा और गगन लो धाऊ
जो लो न होय सृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊ
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रिवेणी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊ
भागीरथी गौतमी और गया तानसेन गावे हरिदास कराऊ ॥[1]

(२) आचार्य वृहस्पति ने अकबरकालीन फजल अली कव्वाल कृत 'कुल्लियात ग्वालियर' का हवाला देते हुए यह बतलाया है कि तानसेन की उपाधि ग्वालियर के राजा मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत तोमर से तानसेन को प्राप्त हुई थी।[2] श्री बी० एम० सिंघोले का मत है कि बाघवगढ के राजा रामचन्द्र ने उन्हें तानसेन की उपाधि दी थी।[3] यह बात सहज ही समझ में आ जाने योग्य है कि जिन तोमरवंशी नरेशों ने संगीत कला के प्रोत्साहन के लिये देश के सुदूर प्रान्तों के गवैयों को प्रोत्साहित किया और एक विद्यालय ही स्थापित किया, उनके प्रतिभाशाली विद्यार्थी की प्रतिभा को मानसिंह के संगीत शिक्षक न पहचानते और अपने विद्यार्थी को अपने विद्यालय से ही उपाधि न देते ?

इसके अतिरिक्त अकबरकालीन कव्वाल 'फजल अली' का लिखना इस सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिक है जिसे अत्यन्त निकट से एक सहयोगी कलाकार की जीवनी ज्ञात करने का अवसर मिला उसकी अपेक्षा जो कि घटनाओं की समीक्षा में अनुमान से काम ले रहा हो। यह उपाधि १५२६ ई० में २१ अप्रैल के पूर्व (प्रथम पानीपत युद्ध में जाने से पूर्व) ग्वालियर में–विक्रमाजीत द्वारा दी गई होगी।[4]

तानसेन के गुरु .—

शेख मुहम्मद गौस एवं स्वामी हरिदास तानसेन के संगीत गुरु नहीं थे। तानसेन ने मुहम्मद गौस का भी पैगम्बरों की वन्दना के पद में नामोल्लेख किया है। वे केवल तानसेन के श्रद्धाभाजन थे।

आचार्य वृहस्पति का कथन है कि तानसेन ने स्वामी हरिदास से संगीत में कुछ तभी सीखा होगा जब ग्वालियर में विक्रमाजीत (१५२६ ई०) का अधिपत्य हटा होगा।[5]

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग, तानसेन के ध्रुपद का संख्या १७८
२. संगीत (फरवरी, १९५९) और धर्मयुग (२७ दिसम्बर १९५९ ई०) में प्रकाशित लेख।
३ यु० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी के जनरल (जिल्द २१, भाग १-२ में प्रकाशित ए नोट आन तानसेन' नाम लेख।
४. मुगलकालीन भारत, पृष्ठ २२ (डा० आशीर्वादिलाल)
५ संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ २०-२१, संगीत (हरिदास अंक) पृष्ठ ११.

स्वामी हरिदास तथा हरिदास डागुर दो भिन्न २ व्यक्ति थे। अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदासपुर स्थान के निवासी स्वामी हरिदासजी हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हुए।[1] श्री हरिदास डागुर का तानसेन और घोंधो कवि के परवर्ती होने का प्रमाण मिलता है श्री डॉ० एन० निगम ने शाहजहां के दरबारी गायक जगन्नाथ कवि-राय का एक ध्रुपद उद्धृत किया है जिसमें कालक्रमानुसार हरिदास डागुर को तानसेन का परवर्ती बतलाया है।[2]

तानसेन शेरशाह सूरी के वंशज के पास रहे। मृत्यु के पश्चात् रीवा नरेश राजा रामचन्द्र के यहां चले गए।[3] रीवा राज्य द्वारा प्रकाशित माधव कृत—"वीर भानूदय काव्यम्" में राजा रामचन्द्र के आश्रित कलाकार तानसेन का पर्याप्त परिचय मिलता है।[4]

चित्रकारों ने अपनी तूलिका द्वारा अकबरी दरबार और तानसेन के प्रवेश होने का दृश्य चित्रित किया।[5] तत्कालीन चित्र में तानसेन कुछ संगीतज्ञों के साथ अकबर के सम्मुख नीचे बायीं ओर खड़े दिखाये गए हैं।[6]

तानसेन द्वारा एक रचित पद :—

तानसेन की दो रचनाएं "संगीत सार" और 'राग माला' में उसके पदों का संग्रह है जिन्हें श्री कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' भाग १,२ में अन्य पदों की खोज करके संग्रहीत किया है। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने इसी पद संग्रह को दो भागों में अलग-अलग प्रस्तुत किया है।

तानसेन ने, वह जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में रहा, उन व्यक्तियों एवं आश्रयदाताओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। एक पद राजा मानसिंह तोमर के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का भी स्पष्ट है उसे भी विवादास्पद कहा जा रहा है। तानसेन का निर्धारित जन्मकाल अब तक प्रामाणिक नहीं है, बल्कि प्रामाणिक है—अन्तर्साक्ष्य में उसका रचित पद।

राग बिहाग, चौताल

[7] छत्रपति मान राजा, तुम चिरजीव रहो, जो लौं ध्रुव मेरु तारो
चहुँ देस तें गुनी जन आवत तुम पैं धावत,

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (डा० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ ६६ Growse-Mittra Memoir PP 219.
२. सांगीत (हरिदास अंक) पृष्ठ ३० ।
३. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ५८
४ वीरभानूदय काव्यम् दशम सर्ग, पृष्ठ १२१, १२२ (माधव कृत०)
५. अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९-२८० (१५६२ ई० दरबार में प्रवेश का समय)
६ इंडिया पेन्टिंग्स अण्डर दी मुगल्स, पृष्ठ ४६-४७
७ संगीत सम्राट तानसेन, (श्री प्रभुदयालु मीतल [illegible] ६, ८१ (पद संख्या ६०) राजा मान-सिंह-राज प्रशंसा ।

पावत मन इच्छा, सबहि को जग उजियारो
तुमसे जो नहीं और कासे जाय कहू दौर,
वही आजिज कीरत करें मो पै रच्छा करन हारो
देत करोरन, गुनी जनन को अजाचक किये, 'तानसेन' प्रति पारो ॥

उपर्युक्त पद राग कल्पद्रुम भाग १ (पृष्ठ ३२१) पर श्री कृष्णानन्द व्यास ने इसी रूप मे स्वीकृत किया है। सगीतज्ञ कवियो की हिन्दी रचनाएं 'पुस्तक मे पहले स्वय नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'पाठ' को इसी रूप मे स्वीकृत किया फिर 'कवि तानसेन और उनका काव्य' (पृष्ठ १०८) पर "छत्रपति मान राजा" का पाठांतर "छत्रपति राजा-राम" छापा गया है। इसका आधार कुछ भी नहीं बताया गया।

मूल पद जिस स्वरूप मे है वह प्रामाणिक है इसके पाठांतर करने मे सम्भवत. सम्पादक महोदय की यह धारणा रही कि जन्मकाल की दृष्टि से यह पद तानसेन ने मानसिंह तोमर के (१४८६-१५१८ ई०)[1] काल मे नहीं रचा होगा। जबकि भाषा मे उसके राज्यकाल मे ही रचा जाना चाहिये। जन्मतिथि इस पद की उपस्थिति मे १५०६ ई० से पीछे मानी जानी चाहिये जबकि पद अपनी जगह ठीक है।

(५) एक तर्क यह हो सकता है कि क्या तानसेन बुढ़ापे मे अकबरी दरबार मे लगभग ६०-६२ वर्ष की आयु मे गया होगा? फकीरुल्ला की साक्षी के अनुसार 'राग-दर्पण' मे अकबरी दरबार और मुगल दरबार के गायकों, वादकों आदि कलाकारों की औसत आयु ९०, १०० वर्ष रही है और अन्तिम समय तक वे कलाकार सक्रिय रहे। अकबर सम्राट के दरबारी नौ रत्नों में से तानसेन एक रत्न तब ही बनाया गया जब उसकी कला अपनी चरम सीमा पर पहुच गई। कलाकार जीवनपर्यन्त स्वय को कला का साधक मानता है। उसकी जिज्ञासा प्रबल रहती है कि ज्ञानार्जन होता रहे। इस दृष्टि से तानसेन ने सगीत कलाविदों के पास शास्त्रीय वादन सीखते रहना आजीवन पसन्द किया। कलाकार तानसेन सामान्यत: क्यों न लम्बी आयु का भोक्ता रहा होगा, अष्टछापी कवियो मे कितने ही लम्बी आयु के भोक्ता माने गए और वे आजीवन सकीर्तनकार रहे। अतएव राजा मानसिंह के प्रति जो पद श्रद्धाजलि के रूप मे तानसेन ने रचा है उससे इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि होती है कि तानसेन ने मानसिंह के सगीत विद्यालय मे सगीत सीखा और उस संस्था के संस्थापक के प्रति श्रद्धा सुमन भेंट किए। सामान्यत किसी भी प्रतिभाशाली, असाधारण व्यक्ति की प्रतिभा किशोरावस्था मे ही प्रस्फुटित होती है। तानसेन का यह पद उसकी लगभग २० वर्ष की आयु मे रचा जाना अस्वाभाविक नहीं।[2]

---

१. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६०
२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल) पृष्ठ १९६

तानसेन द्वारा संगीत में क्रान्ति :—

तानसेन ने ज्ञानार्जन के पश्चात् संगीत के क्षेत्र में नई खोज की थी।[1] निम्नलिखित छंद द्वारा तानसेन की संगीत-कला पर प्रकाश पड़ता है—

> खरज साधे गाऊ मे श्रवणन सुनहुँ सुनाऊ
> वेद पढ़ाऊ जोई सोई कहे सोई सोई उचराऊ
> भैरव मालकोश हिन्डोल दीपक श्री राग मेघ सुरहि ले आऊ
> तानसेन कहे सुनो हो सुघर नर यह विद्या पार नहिं पाऊ॥[2]

तानसेन की संगीत कला के विषय मे डॉ० आशीर्वादीलाल का कथन है—

"तानसेन विशेषतः ध्रुपद गायन मे दक्ष था और ध्रुपद तथा दीपक राग की गायन शैली का उसने चरम विकास किया था। उसने कुछ रागों मे परिवर्तन भी किया था और १२ नये राग उसके द्वारा आविष्कृत कहे जाते हैं। वह एक अच्छा कवि भी था और उसके द्वारा हिन्दू देवताओं, देवियों तथा मुस्लिम संतो की स्तुति मे बहुत से गीत रचे गए और राजा रामचन्द्र तथा अकबर की भी उसने प्रशंसा की। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि तानसेन ने हिन्दुस्तानी संगीत को एक नई दिशा दी और संगीत को सर्वोत्तम रूप दिया।"[3]

श्री मीतल ने लिखा है कि "उन्होंने (तानसेन ने) प्राचीन रागों मे परिवर्तन कर नये रागो का प्रचलन किया था। इससे उनका गायन रोचक होने के साथ ही साथ लोक-प्रसिद्ध भी हुआ, किन्तु इसके कारण भारत की परम्परागत संगीत पद्धति को बड़ी क्षति पहुँची थी। परम्परा प्रिय संगीतज्ञों ने इसके लिए उनका विरोध भी किया था, किन्तु उन्हें सफलता नही मिली तानसेन द्वारा प्रचलित नये रागों 'दरबारी कानड़ा' और 'मियां की मलार' विशेष प्रसिद्ध है।[4]

तानसेन के पदों को तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है। उनके द्वारा आश्रयदाताओं की की गई प्रशस्ति एवं देवताओं की स्तुति-वन्दना पहले भाग मे रखी जा सकती है तथा दूसरा भाग उनकी प्रौढ़ावस्था के ध्रुपदों का है जिसमें संगीत कला का विवेचन और नायिकाओं के रूप सौन्दर्य का वर्णन है। तीसरा भाग उनकी वृद्धावस्था के ध्रुपदों का हो सकता है जिसमे श्रीकृष्ण की मनहर लीलाओं का कथन किया गया है। तानसेन की रचनाओं के ये तीनों विभाग काव्य की दृष्टि से उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण

---

१. अकबर दी ग्रेट मुगल, पृष्ठ ६०
२. अकबरी दरबार [redacted] हिन्दी कवि, परिशिष्ट भाग तानसेन के ध्रुपद छंद संख्या १५७
३. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६१।
४. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ३७

है । इस प्रकार नायिका भेद और श्रीकृष्ण लीला से संबंधित ध्रुपद ही उनकी सर्वोत्तम काव्य रचनाएं कही जा सकती हैं ।

तानसेन के ग्रन्थों की समीक्षा : —

तानसेन के ग्रंथो मे (१) सगीतसार, (२) रागमाला हस्तलिखित और मुद्रित रूप मे उपलब्ध हैं किन्तु 'गणेश स्तोत्र' कथित तानसेन कृत रचना अप्राप्य है ।

सगीतसार की एक हस्तलिखित प्रति दरबार पुस्तकालय, रीवा के सरस्वती भडार में सुरक्षित है । इसमे ८२ पृष्ठ है । इसका लिपिकाल स० १८८८ है और इसे किसी हेठासिंह ने लिपिबद्ध किया था । इसकी ग्रंथ सख्या १२ और बस्ता सख्या ११४ है । इसका कुछ भाग श्री कृष्णानद व्यास ने सर्वप्रथम स० १८९८ मे अपने सुप्रसिद्ध सगीत ग्रंथ 'रागकल्पद्रुम' मे प्रकाशित किया था । 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' के परिशिष्ट मे इसे पूर्ण रूप मे छाप दिया गया है । इसी को बाद मे 'कवि तानसेन और उनका काव्य' मे प्रकाशित किया गया है ।

इस ग्रंथ की रचना दोहो मे हुई है जिनकी सख्या १८४ है । इनके अतिरिक्त इसमे १ कवित्त तथा १ सवैया भी है । इस ग्रंथ मे संगीत के विविध अंग नाद, तान, स्वर, राग, वाद्य और ताल का विवेचन किया गया है । तान के अन्तर्गत शुद्धतान, कूट तान, ग्राम और औडव षाडव आदि का तथा राग के अन्तर्गत श्रुति मूर्च्छना, अलंकार, स्वर, आलाप आदि का वर्णन है । इस ग्रंथ का सबसे बड़ा अंश ताल विषयक है, जिसमें ताल मात्रा, ताल स्वरूप, ताल-भेद और गमक का कथन करने के अनन्तर देशी और चच्चुट के अन्तर्गत अनेक तालो का विस्तृत विवेचन नाम तथा लक्षण सहित किया है ।

रागमाला :—

यह ग्रन्थ गो० गोवर्धनलाल द्वारा सम्पादित होकर लहरी प्रेस, काशी से प्रकाशित हुआ था । इसे बाद मे नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है । इसके दोहों की सख्या २०८ है ।

सगीत लक्षण, संगीत भेद, नाद ताल और स्वर दोनो का विवेचन 'संगीत सार' और 'रागमाला' में एकसा मिलता है ।

'रागमाला' मे पहले सगीत और नाद के लक्षण तथा भेद बतलाने के बाद नाडी, तान, ग्राम, स्वर, श्रुति, मूर्च्छना, राग, आलाप, गमक, गान विद्या के गुण दोष, गान-भेद और वर्ण-भेद का वर्णन किया गया है । फिर प्रबंध गीताध्याय शीर्षक मे प्रबंध, गण-विचार और वर्ण-विचार का कथन कर राग-सकीर्णाध्याय मे विविध राग-रागनियों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है ।

ग्रंथ के प्रारंभ मे तानसेन ने संगीत के विषय मे लिखा है :—

सुरि मुनि को परनाम करि, सुगम कियौ संगीत ।
'तानसेन' रस सहित हित, जानें गायन प्रीति ॥१॥

गीत वाद्य अरु निरत कौ, कह्यो नाम संगीत ।
'तानसेन' रस सहित गनि, भरत मतहिं मन मीत ॥२॥

ईं प्रकार संगीत है, मारग देसी जान ।
मारग ब्रह्मादिक कह्यो, देसी देसि समान ॥३॥

गीत वाद्य और अरु नृत्य के, रस सर्बस गुन जोय ।
तानसेन' उपजत नहीं, सो संगीत न होय ॥४॥

—(संगीत सार)[1]

फकीरुल्ला ने 'तानसेन' को 'अताई' लिखा है ।[2] जिसका आशय है कि संगीत-ज्ञान सैद्धान्तिक न होकर केवल व्यवहारिक हो किन्तु इसी सैद्धान्तिक ज्ञान के लिये उन्होंने 'गोविन्दस्वामी' से शिक्षा प्राप्त की थी और उनके प्रस्तुत ग्रन्थों के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें सैद्धान्तिक ज्ञान संगीत के विषय मे बिलकुल न था यह नहीं कहा जा सकता । तानसेन के ध्रुपद-संग्रह में से कुछ नमूने के तौर पर प्रस्तुत किये जाते हैं । तानसेन गणेशजी से क्या चाहते हैं :—

'राग भैरव, चौताल'—ए गनराजा, महाराजा गजानन, जै विद्या जगदीश ।

सप्त स्वर सो गाऊ, सब राग-रागिनी, पुत्रवधून सहित छत्तीस
बाईस सुरति, इकईस मूर्च्छना, उनचास कूट तान आवें, जै महेस ।
'तानसेन' कौं दीजै छै राग, छत्तीस रागिनी—
ताल-लय संगीत मत सौं होय कठ प्रवेस ॥"[3]

तानसेन 'सब की मणि' अल्लाह को मानता था और खुदाई को बडी मणि, ज्योति की मणि 'नूर' को समझता था । भाषा की मणि अरबी, जाति की मणि ब्राह्मण और धर्म की मणि ईमान जानता था । उसके शब्दों मे देखिये—रागिनी मालश्री, ताल सुर फाक्ता पद सं० ८८

सर्व मनि अल्ला, बडेन मनि खुदाई, जोत मनि नूर,

× × ×

---

१. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ३० पर उद्धृत ।
२. मानसिंह-मानकुतूहल, पृष्ठ १२६-१३०.
३. संगीत सम्राट तानसेन [illegible] २४, पद संख्या (८)

पुरान मनि भागवत, भाषा मनि अरबी,
वनन मनि वृन्दावन
+ + +
जात मनि ब्राह्मण, धर्म मनि ईमान,
तानन मनि 'तानसेन' अखिल मनि भगवान ॥[१]

तानसेन के एक पद में उनकी 'रीझ' भी मिल जाती है—

शब्द चित्र ही उनका मनमोहक है। कवि की सर्व्य सुन्दरि के कच बिथुरे हैं जैसे-नव जलधर उमगे हों। दसनावलि दामिनि सी दरसती है, जिसे देखकर कवि का स्वर फूट पड़ा और स्पष्ट अपनी रीझ प्रकट कर डाली—(राग विलावल)

—"तेरे कच बिथुरे री, मानो जलधर उनिआये,
दसन ज्योति दामिनि दरसानी
भौंहे धनुष वृन्द, सायक स्त्रम-कन बरसत पानी
अलकावलि चित्त हरत मनोहर,
सुमन-माल चीनी, बीन बोलत अमृत-बानी।
या छवि पर रीझे 'तानसेन' पिय,
अंग अंग सरमानी ॥"[२]
+ + +

रागिनि मुलतानी धनाश्री, चौताल

इन्दु से वदन, नैन खंजन से, कंठ कोकिल वचन सुहाई।
नासा कीर, अधर विद्रुम, दाडिम दसन दमकाई॥
श्रीफल उरोज, ग्रीव कपोत, वैनी नाग सी भुवी सुखदाई।
कटि केहरि, कदली जंघ, पदसरोज, पद्मा सी,
'तानसेन' ऐसी पै बलि बलि जाई ॥"[३]

जिस पर कवि सर्वस्व न्यौछावर को प्रस्तुत है वह छवि देखिये—

सोहत सीने वार, चन्द्र वदन, धनक सी बनी-ठनी,
श्रवन कुंडल, सीस फूल, कपोल-लोचन रतनारे।
नैन कमल, नासिका सुन्दर, अधर विद्रुम, दसन दाडिम,
चिबुक सुन्दर सुघर, कंठ कोकिला के सब्द सों प्यारे ॥

---

१. संगीत सम्राट तानसेन पृष्ठ ८७, पद संख्या ८८
२. वही, पृष्ठ १०४, पद संख्या (१६१)
३. वही, पृष्ठ १०४, पद संख्या (१६६)

भुजभाय ऐसे उतारे, कुच कचन के बनाये, सांचे मे ढारे ।
उदर अनूप, लक छीनि, कटि केहरि, कदली जघ,
'तानसेन' ऐसी प्यारी पर सर्वस वारि डारे ॥[1]

यह घेरदार घूघट मे चन्द्रवदनि कौनसी है ? तानसेन बतला रहे हैं—

धन धन रूप तेरो बिरचु गुह रच्यो, घेरदार घूघट में चद्रवदन,
घूमि घूमि पग धर चलत गज-गति धरन कौं ।
घटाटोप घूघट, गरें सोहे मुक्तमाल, कटि किंकिनी,
सुन्दर बरनी, घायल होत लागत कुच कठोर श्रीफल से,
जघ कदली मन मोहन सबरन कौं ।
घिर आई चहू ओर सभी सहेली रभा सी,
लागत भुज मृनाल मग नैनी मानो निसकर-करन कौं ॥
'तानसेन' प्रभु मन हर लीनो, घायल करत रसिकन कौं,
राजा-महाराजा बस कर लीनो गिरिधरन को ॥[2]

यह घेरदार घूघट वाली और घूघट भी घटाटोप के समान धारण करने वाली तथा उसके आसपास अप्सराओ के समान सहेलियो की भीड लगने वाली बाला से आशय सभवत. किसी मुस्लिम बाला से ही है । उसके बुरके (घेरदार घटाटोप घूघट) से कभी उसका प्रकाश मे आता मुख देखकर चद्रवदनि की छवि का कवि ने शब्द-चित्र कैसा सजीव दिया है ? त्रिलोचन पाडे तानसेन उपाधि प्राप्त ने 'मियां' किसी ऐसी ही खातिर मे शब्द ग्रहण न कर लिया हो ?

तानसेन के द्वारा मासल प्रेम का वर्णन ही हुआ है, प्रेमी प्रेयसी से एक पल भी दूर रहने का अन्तर नही सह सकता, प्रेयसी के चरणो मे रहने तैयार है, उसके वचन सुनकर प्रेमी का मन और प्राण आन्दोलित होने लगते हैं और दूसरी दिशा में प्रेमी की दूसरी पत्नी अथवा स्त्रीगण इस प्रणय पर मुह सिकोडती हैं ।

—"दीदार पुर नूर ऐसो, जाके दरसन कौं तरसत
नैना मेरे लुब्ध रहे, जैसें चद्र-किरन पर चकोर ।
एक पल अन्तर सहि न सकौं, रहौं तुव पायन समीप,
तन-मन-धन जोवन दे कोर ॥
जाको अमृत वचन श्रवन सुख होत, मेरे प्रान लेत झकोर ।
ऐस जो है 'तानसेन' प्रभु, सो दिन दिन सौतिन मुह बकोर ॥[3]

१. वही, [illegible] १०३, पद सख्या १२७
२. वही, पृष्ठ १०२, पद सख्या १२४
३. वही, [illegible] १११, पद सख्या १८०

तानसेन ने सगीताचार्य बैजू का भी अपने ध्रुपद मे उल्लेख किया है। श्री मीतल के अनुसार "बैजू, बक्सू, कर्ण और महमूद जैसे ग्वालियर के विख्यात संगीताचार्य तथा अन्य गायक गणो से तानसेन को सगीत की आरंभिक शिक्षा राजा मानसिंहकालीन ग्वालियर सगीत कला के विख्यात केन्द्र पर हुई थी।"[१]

—"नाद-समुद्र को पार न पायो सुनियत गुनी कहायो।
प्रबंध-छंद, धारु धुरपद, मार्गी-देसी द्वै विधि गायो॥
ब्रह्मा वेद उचरायो, सारद बौरायो, भरत मत–
कलियनाथ-हनुमत मत, सप्ताध्याय गायो।
अनेक सृष्टि रचि-पचि गये ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र,
महामुनि प्रसन्न भये, सारद बौरायो॥
सप्त प्रगट सप्त गुप्त, नायक गोपाल ध्यायो।
'तानसेन' ताको बैजू पाषान पिघलायो॥[२]

तानसेन का काव्य-महत्व :—

डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तानसेन के काव्य-महत्व की भी निम्नलिखित शब्दो मे प्रशसा की है —

"प्राचीन और मध्ययुग के हिंदू काव्य, ज्ञान, योग और भक्ति का मानो मथन करके जो नवनीत निकला, वह तानसेन के पदो के स्वर्ण कटोरे मे धर दिया गया है।"[३] यह प्रशंसा उसी प्रकार अत्युक्तिपूर्ण है जिस प्रकार अबुल फजल ने तथा माधव कवि ने अपने 'वीर भानूदय काव्यम्' मे तानसेन की, की थी। फिर भी काव्य की दृष्टि से ध्रुपद हिन्दी साहित्य मे उतने उपेक्षणीय नहीं हैं जितना कि उन्हे समझा गया है। उनके कतिपय ध्रुपदो मे उत्तम काव्य के गुण मिल जाते हैं।

तानसेन अपने गायन के लिए ध्रुपद रचते थे। निश्चय ही उनके सुदीर्घ जीवन मे बहुत बडी सख्या मे ध्रुपद रचे गए होंगे। वे सबके सब उपलब्ध होंगे इसकी आशा धूमिल है। तानसेन जिन ध्रुपदो की रचना करके गाते थे उन्हें उनके शिष्यो, वंशजों एवं प्रशसको ने कण्ठस्थ कर लिये थे। उनमे से कुछ बाद मे लिपिबद्ध किये गए होंगे जो विविध सगीत ग्रयों मे उपलब्ध होते है किन्तु ऐसे भी कुछ ध्रुपद हैं जो लिपिबद्ध नही हुए उन्हें केवल परपरागत गायकों के घरानो में और कृतविद्य कलाकारों के कण्ठों मे सुरक्षित हैं। बहुत-सी पद रचनाएं उनकी काल प्रवाह मे नष्ट हो गईं।

१. वही, पृष्ठ ३०
२ वही पृष्ठ ६७, ६८, पद सख्या १४२
३. सगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ४० पर (सम्मेलन पत्रिका, चैत्र-वैशाख स० २००१ मे प्रकाशित लेख) उद्धृत।

तानसेन ने ग्वालियर के ध्रुपद शैली को गायन कला को प्रतिष्ठित करने स्वयं ध्रुपदों की संगीत सिद्धान्त की दृष्टि से अनेक राग-रागिनियों में रचना की और इस प्रकार हिन्दी साहित्य को महत्वपूर्ण पद-साहित्य अर्पित किया। तानसेन के समकालीन सूरदास, जायसी, तुलसीराम, रहीम जैसे विख्यात कवि थे। सूरदास और तानसेन की मैत्री बताई जाती है और आपस में चर्चा भी इस प्रकार होने की जनश्रुति है जिसे हिन्दी लेखकों ने माना है।[1]

किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो, तन-मन धुनत सरीर॥

तानसेन द्वारा इस प्रशंसा पर सूर ने तानसेन का गौरव बढ़ाते हुए यह दोहा कहा —

बिधना यह जिय जानिके, सेर्षाहं दिये न कान।
धरा-मेरु सब डोलते, तानसेन की तान॥

प० सुदर्शनाचार्य ने 'संगीत सुदर्शन' भूमिका पृष्ठ ५६ पर तानसेन और उनके ज्येष्ठ पुत्र तानतरंगखां की वंशावली अपने संगीत गुरु अमृतसेन तक दी है। तानसेन के दौहित्र वंशजों में सदारंग उपनाम नियामत खां 'ख्याल' के प्रसिद्ध गायक हुए तथा एक खुसरो (अमीर खुसरो नहीं) सितार के आविष्कारक हुए।[2] तानसेन के पुत्रों की परम्परा में ध्रुपद गायकी तथा उनकी पुत्री की परम्परा में बीणावादक होने का नियम है। तानसेन के वंशज सेनिया कहलाते हैं। बाद में बीनकार और रबाबी नाम से दो शाखायें हुईं। बीनकारों का घराना सुरतसेन से जिसे तानसेन को हिन्दू पत्नी की सन्तान कही जाती है और जिसका फकीरुल्ला के 'रागदर्पण' में भी विख्यात गायक होने का उल्लेख है- और रबाबियों को बिलासखां से सम्बन्धित बतलाया जाता है। वे लोग जयपुर, रामपुर, अलवर आदि रियासतों में बसे हुए हैं। इन लोगों के कारण हिन्दुस्तानी संगीत का बहुत प्रचार हुआ है।

अमृतसेन तानसेन के २३ वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। 'संगीत सुदर्शन' ग्रंथ के रचयिता पंजाबी विद्वान श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री संगीत विद्या में अमृतसेन के शिष्य थे। सितारवादन में अद्वितीय थे। जयपुर महाराज के आश्रित थे इनकी स्याति (१८१३ ई०–१८६३ ई०) तक बताई जाती है। ध्रुपदियों के सुप्रसिद्ध ४ गोत्रों में अमृतसेन का 'गुबरहार' गोत्र था।[3] जो ग्वालियर की गायकी के विशिष्ट 'गुबरहार बानी' के गायक वर्ग का सूचक था। तानसेन का ध्रुपद गायकी ग्वालियर का गोत्र 'गुबरहार' स्थान विशेष के कलाकार होने का सूचक है।

१. (अ) शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४२८ (ब) अकबर दी ग्रेट मुगल, III ४२२ (थी स्मिथ)
२ संगीत सुदर्शन, भूमिका पृष्ठ २६
३. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ४७ (वंशपरम्परा अमृतसेन) श्री प्रभुदयालु मीतल।

नरवरगढ़ और नरवरपति राजा आसकरन : शासनकाल (१५४८-१६०५ ई०)

ग्वालियर से ३० मील दक्षिण-पश्चिम और शिवपुरी से २० मील उत्तर-पूर्व आगरा बम्बई मार्ग पर स्थित सतनवाड़ा से १६ मील दूर 'नरवरगढ़' स्थित है। कई मध्यकालीन शिलालेखों, स्तम्भ लेखों आदि में इसे नलपुर बताया गया है।[1] और जनश्रुति के अनुसार ये राजा नल से सम्बन्धित है।

इसी नलपुर (नरवरगढ़) मे पसरदेवी का मन्दिर है मूर्ति देवी की खड़ी थी। कहा जाता है कि राजा नल के नरवर छोड़ते समय किले के दुल्हा (ढोला) द्वार के कंगूरों की एक पंक्ति राजा के सम्मान में झुक गयी, ढोला महाना, उरवाहीं द्वार मौजूद है, कटोराताल के निकट पसरदेवी राजा नल के जाते ही जनश्रुति के अनुसार पसर गईं (लेटी हुई मूर्ति है) यह मूर्ति १४ फीट लम्बे भैंसे पर सवार है। मकरध्वज तालाब में ८ कुएं ६ बावड़ी हैं। ग्वालियर के कवि सुन्दरदास की पत्नी की समाधि है और आल्हा ऊदल फूलकुमारी के परिणय की स्मृति का स्तम्भ भी नरवरगढ़ में मौजूद है।[2] फूलकुमारी के परिणय की स्मृति के स्तम्भ से महोबा और नरवरगढ़ का प्राचीन सम्बन्ध प्रतीत होता है। पीछे महोबा के चन्देल और नरवर के चाहड़ वंशी गोपालदेव से युद्ध हुआ जिसका अभिलेख पीछे उद्धृत किया गया है।

श्री स्मिथ के मत को उद्धृत करते हुए नरवरगढ़ और नरवरपति राजा आसकरन के लेख के लेखक श्री सुखदेव ने यह बताया है, "कि महोबा खंड के ६वीं शती शासक गहड़वार राजपूत राजा नल के वंशज थे और वे नलपुर (ग्वालियर के निकटस्थ नरवर) से काशी आये थे।" आसकरण राजा नरवर (ग्वालियर) बुन्देल-वैभव में लिखा है।[3]

राजा आसकरन को अबुल फजल ने प्रभावशाली सामंतों तथा राजाओं की सूची में उल्लेख किया है। 'शिवसिंह सरोज' में इनका जन्म १६१५ वि० (१५५८ ई०) बताया है।[4] मिश्र बंधुओं ने इनका रचनाकाल स १६०६ वि० (१५४६ ई०) बताया

---

१. ग्वा० राज्य के अभिलेख क्रमांक १३३ सप्तम १४१, पृष्ठ २२, २३, सं० वि० १३३८ के ७ अभिलेख ग्राम बगला में तथा १३३८, १३३६ सं० वि० के २ नरवर में प्राप्त। नलपुर के यज्व व पेल चाहड़ के वंशज राजा गोपालदेव का उल्लेख तथा बुन्देलखण्ड के चन्देल राजा वीरवर्मन से कनुआ (वरधा) नदी के किनारे युद्ध।

२. कुशवाहा वंश परिचय—(नारायनसिंह कुशवाहा) नरवरगढ़, पृष्ठ २१

३. नरवरगढ़ और नरवरपति राजा आसकरन (श्री सुखदेव) मध्यप्रदेश सन्देश २६ फरवरी १९६७ ई० पृष्ठ (८)। बुन्देल वैभव, पृष्ठ १९५।

४. शिवसिंह सरोज पृष्ठ ३०१-३०२, हाथि बबरी भाग १, पृष्ठ २३१

है।[1] इनका विरचित कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके स्फुट पदों का ही उल्लेख किया है। हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत' के पंचम अध्याय में हस्तलिखित तथा छपे रूप में उपलब्ध पदों का उल्लेख हुआ है।[2] भक्तमाल में इन्हें कील्हदेव (गलता-आमेर) का शिष्य बताया गया है। 'मिश्र बंधु विनोद' में दिये गये राजा आसकरन के पद रचनाकाल का समय लगभग ठीक है। 'शिवसिंह सरोज' में दिये गये जन्मकाल से ऐतिहासिक घटनाएं जिनका विवेचन हो चुका है सब गलत हो जावेगी अतएव यह मान्य नहीं है। राजा आसकरण को आमेर (जयपुर) से लाया गया था और ये नरवर की गद्दी पर लगभग १५४८ ई० में विराजमान हुए।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार तानसेन से 'गोविन्दस्वामी' के गायन की प्रशंसा सुनकर राजा आसकरण भी तानसेन के साथ गोकुल गए और संगीत सीखने के लिए गोविन्दस्वामी के शिष्य हुए और उनसे संगीत शिक्षा आसकरण ने सीखी।[3] आसकरण की गुणग्राहकता का परिचय ले पाकर तानसेन आसकरण के यहां दस-पन्द्रह दिन रहे और अपने साथ आसकरण को गोकुल ले गए थे।[4] तानसेन ने आसकरण को वल्लभ सम्प्रदायी गोस्वामी विट्ठलनाथजी से जाकर मिलाया था।[5]

आसकरन कछवाहा का मुगल पक्ष :—

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तानसेन अकबरी दरबार में १५६२ ई० में रीवां नरेश राजा रामचन्द्र के यहां से बुला लिये गये और १५८६ ई० की २६ अप्रैल तक अकबर के नौ रत्नों में से एक रहे।[6]

सन् १५६२ ई० के बाद ही तानसेन आसकरन के पास नरवरगढ़ गये और दस-पन्द्रह दिन ठहरकर आसकरन को साथ लेकर गोकुल गये। 'राजा आसकरन की वार्ता'[7] से प्रकट है कि तानसेन राजा आसकरण की गुणग्राहकता का परिचय पाकर उनसे मिले और उनके सम्मुख पद गाया। राजा आसकरण इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने

१. मिश्र बन्धु विनोद, भाग १ पृष्ठ ३५६ कवि संख्या १०२
२. डॉ० ऊषा गुप्ता—'हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत' पंचम अध्याय, (आसकरन के पद) (सं० २०१६) लखनऊ वि० वि०
३ २५२ वैष्णवन वार्ता, पृष्ठ १५८, १५६, भक्तमाल, पृष्ठ ८८४
४. वही, राजा आसकरन की वार्ता, पृष्ठ १६१, १६१ तथा अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० १११
५. मिश्र बन्धु विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२
६. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६०
७ दो सौ वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरन की वार्ता, पृष्ठ १६१-१६३

वल्लम सम्प्रदायी गोविन्दस्वामी से तानसेन के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की । तानसेन वल्लभ सम्प्रदाय के सम्पर्क मे आ चुके थे ।[1]

आसकरन का पद साहित्य [2]—

राग गौरी

मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गायन सग मधुर बजावत बैना ॥१॥
ग्वाल मडली मध्य विराजत सुन्दरता को ऐना ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारौं कोटिक मैना ॥२॥

राग विभास

नन्दकिशोर वह मोहनी करन न पाई ।
गोरस के मिस रसहि ढढोरत मोहन मीठी तानन गाई ॥१॥
गोरस मेरे घरहि बिके है क्यो वृन्दावन जाय ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय ॥२॥

उपर्युक्त पदो मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का स्वाभाविक वर्णन हुआ है । इसी सन्दर्भ मे एक पद यह भी दृष्टव्य है—

उठो मेरे लाल लाड़िले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर ।
घर घर दधि मथिनिया घूमे अरु द्विज करत वेदकी घोर ॥
घरि कलेऊ दधि ओदन मिश्री बाटि परोसो ओर ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारो तुम पर प्राण अकोर ॥[3]

कृष्ण की रूप-छटा भी निम्नांकित पद मे देखिये—

गोप मडली मध्य मनोहर अति राजत नन्द को नन्दा ।
शोभित अधिक शरद की रजनी उडगन मानो पूरण चन्दा ।
व्रज युवती निरख मुख ठाडी मानत सुन्दर आनन्द कन्दा ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गिरधर नव रग रसिक गोविन्दा ॥[4]

कृष्ण के प्रति यशोदा का ममत्व गहरा है वह चाहती है कि उसका बेटा दूध पाले वह कृष्ण को उसकी चोटी बढने का बहाना बनाती है—

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ १११, ११२
२. दो सौ वैष्णवन की वार्ता ; गंगा विष्णु श्री कृष्णदास संस्करण, पृष्ठ २०३, २
३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरन वार्ता, पृष्ठ २०८
४. वही, पृष्ठ २११

कीजै पान लला रे ओट्यो दूध लाई जशोदा मैया।
कनक कटोरा भरि पीजै व्रज वाल लाडिले
तेरी वेनी बढैगी मैया॥
ओट्यो नीको मधुरो अछूतो रुचि सो करी लीजै कन्हैया।
आसकरण प्रभु मोहन नागर पय पीजै सुख दीजै
प्रात करोगी मैया ॥[1]

कृष्ण का नटखटपन गोपियों को हृदय से तो भाता है किन्तु उपालम्भ के ब्याज से वे मधुर अनुभूति को चौगुना करना चाहती हैं। यशोदा के पास ऊपर से कृत्रिम उलाहना देती हैं। यह चित्र मनोहारी है—

कव को भयो रे ढोटा दधिदानी।
मटुकी फोरत बाँह मरोरत, यह बात कित ठानी॥
नन्दराय की कानि करत हो सुनि हो यशोदा रानी।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गुणसागर अभिमानी॥[2]

आसकरण का साहित्यिक महत्व :—

आसकरण सूरदास, तानसेन, गोविन्दस्वामी, रहीम का समकालीन है। संगीत मे इसे रुचि थी जिसके कारण इसकी पद रचना मे प्रवृत्त होना पड़ा। आसकरन के द्वारा रचित पद भी विभिन्न रागो मे है जिससे इसके संगीत ज्ञान का पता चलता है। यद्यपि आसकरन न तो सगीत का आचार्य ही था और न इतना विशेषज्ञ, जितना कि अष्टछापी कवि तथा तानसेन थे। फिर भी सगीत मे रुचि रखता था और सगीतकारो, कलाप्रेमियों को आश्रय देता था जैसाकि वार्ता मे प्रकट है। तानसेन इसी आधार पर इस सामंत की ओर आकृष्ट हुए थे।

आसकरन के बाल लीलाओं के पदो मे सहज स्वाभाविक चित्रण है तथा बाल सुलभ चेष्टा, गोपी प्रेम एवं यशोदा माता का वात्सल्य अच्छा उभरा है। इन्ही भावनाओं को जिस रूप मे भाषा का परिवेश इन कवियो द्वारा मिला है उसका विकसित रूप सूरदास मे है।

आसकरण के पदो मे वात्सल्य भाव की प्रधानता ही दृष्टिगत होती है। इन सभी पदों में भावों के अनुकूल सरस और सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

कवयित्री प्रवीणराय पातुर (१५९४ ई०) :—

ऐसी पातुर पर हजार सतियां न्यौछावर हैं जिसने अपना एक बार पति जिसे

१. वही, पृष्ठ ३११
२. कीर्तन संग्रह भाग १, पृष्ठ १४८

माना उसके व्रत के सहारे मुगल सम्राट अकबर जैसी प्रभुसत्ता को भी निष्प्रभ और निरुत्तर कर दिया। जिसको जीवन में काव्य और संगीत कला की सेवा करने का अवसर मिला जिसे उसने निष्ठापूर्वक ग्रहण किया।

ओरछा के मधुकरशाह बुन्देला (१५५४–१५९२ ई०) के स्वर्गवास के पश्चात् गद्दी ज्येष्ठ पुत्र रामशाह बुन्देला को मिली किन्तु कार्यवाहक राजा इन्द्रजीतसिंह छोटे भाई ही रहे इन्हें कछौवा का दुर्ग दिया गया था जो कछौवा (पिछोर) कहलाता है।

—"तिनतें इन्द्रजीत लघु लसें, सों गढ दुर्ग कछौवा बसें" ॥४५॥
—वीरसिंह देव चरित[1]

इन्द्रजीतसिंह ने आचार्य केशव को प्रवीणराय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने नियुक्त किया। महाकवि केशव ने कविप्रिया प्रवीणराय को काव्य शास्त्र में निपुण करने के हेतु रची —

सविता जू कविता दई, ता कह परम प्रकास।
ताके काज कवि प्रिया कीन्ही केसवदास ॥[2]

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में ग्वालियर की सांस्कृतिक निष्ठा सजीव रूप धारण कर रही थी। तोमरकालीन संगीत एवं काव्य शास्त्र की रचना का कार्य द्रुत गति से पूरक के रूप में बुन्देला राजाओं के आश्रय में होना आ रहा था।

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में बालक-बालिकाएं तथा अन्य बालाएं काव्य शास्त्र का अनुशीलन करने लगी जिनमें प्रवीणराय बुद्धिमान एवं प्रतिभाशालिनी छात्रा थी:—

समुझें बाला-बालकनि बरनन पथ अगाध।
कवि प्रिया केशव करी छमि जो बुध अपराध ॥[3]

बालाओं एवं बालकों में अनेक बालाएं केशवदास के शिष्यत्व में थीं :—

बालबहि क्रम बाल सब रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि सरयौ अवरोध पट पातुर परम प्रसिद्ध ॥

छै पातुरें उस समय संगीत एवं काव्य के अध्ययन में रत थी :—

'राय प्रवीन' प्रवीन अति, नवरंग राय सुवेस।
अति विचित्र नयना निपुन लोचन ललित सुदेस ॥

1. वीरसिंहदेव चरित, पृष्ठ ४० पद संख्या ४५, बुन्देलवैभव, पृष्ठ २०३
2. कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ६१
3. कविप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द १

सोहति सागर राग की 'तानतरग' तरग ।
रगराय रग चलित गति 'रग मूरति' अग अग ॥[1]

इन छै पातुरों और अन्य छात्र-छात्राओं का एक सास्कृतिक दल जब सगीत के अनुशासनबद्ध होकर दरबारी अखाडे मे जमता था तब इंद्रजीत इन्द्र के समान देखा जाता था :—

करयौ अखारौ राज के सासन सब सगीत ।
ताको देखत इद्र ज्यो इन्द्रजीत रन-जीत ।। (कविप्रिया)[2]

इस अखाड़े की प्रसिद्ध गायिकाए और नर्तकिया छै थी जिनमे (१) नवरगराय (२) विचित्र नयना (३) तानतरग (४) रगराय (५) रंगमूरति (६) प्रवीणराय की गणना है ।[3]

इन छै पातुरो की प्रशसा मे कहे गये छन्दो की अपेक्षा प्रवीनराय के प्रति कुछ विशेष छन्दो मे कथन किया गया है :—

नाचति गावति पढति सब, सबै बजावति बीन ।
तिनमे करति कवित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन ।।
रत्नाकर लालित सदा परमानदहि लीन ।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन ।।
राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि रजित अग ।
वीना-पुस्तक धारिनी, राजहस सुत सग ।।
वृषभवाहिनी अगयुत, वासुकि लसत प्रवीन ।
सिव सग सोहे सर्वदा सिवा कि राय प्रवीन ॥[4]

छै पातुरो मे केशवदास की साखी अनुसार केवल प्रवीनराय ही कविता करती थी। उसे "शिवा, रमा और शारदा" की उपमा से विभूषित किया गया है।

राय प्रवीण की विशुद्ध वाणी गगाजल के समान पवित्र थी और ऐसी निर्मला, निष्कलक, सुन्दर वर्ण वाली, मनहरण देवी केशवदास ने अन्य न देखी थी :—

जिस ऐश्वर्यसम्पन्न, पावन चरित्रवती राय प्रवीन की प्रशसा हिन्दू धर्म एव संस्कृति के निष्ठावान साधक आचार्य केशवदास ने की है उसके प्रति हिन्दी साहित्यकार

१. कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ४२, ४३, ४४
२. वही छन्द ४१
३. मध्यप्रदेश सन्देश, ५ दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १०
४. कवि प्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ५७–६० तथा केशवदास और उनका साहित्य (डॉ० विजयपाल सिंह) पृष्ठ ३६–४०

अथवा तथाकथित समीक्षकों ने उसे वेश्या समझकर ही उपेक्षाभाव रखा है। यह उसके प्रति अन्याय हुआ है। जबकि सत्यता यह है कि वह शरीर को बेचने वाली सामान्या न थी बल्कि शुद्ध कला की सेविका नर्तकी थी और जिसका गान्धर्व रीति से इन्द्रजीत सिंह से परिणय सम्पन्न होना भी पीछे टिप्पणी में उद्धृत लेख में श्री सिलाकारी ने लिखा है :—

सुन्दर ललित गति वलित सुवास अति, सरस सुवृत्त मति मेरे मन मानी है।
अमल अदूषित सुभूषननि भूषित, सुबरन हरन मन सुर सुखदानी है॥
अंग-अंग गूढ़ भाव के प्रभाव जानें को, सुभाव ही की भाव रचि पचि पहिचानी है।
केसोदास देवी कोऊ देखी तुम, नाहीं राज, प्रगट प्रवीन रायजू की यह बानी है॥[1]

इन्द्रजीत ने राय प्रवीन को पत्नी बनाकर रखा था। उसके बाग का वर्णन केशवदास ने किया है :—

सहित सुदरसन करुना कलित, कमलासन विलास मधुवन भीत मानिये।
सोहियें अपर्ना रूपमंजरी पैं नीलकण्ठ, केसोदास प्रगट असोक उर आनिये॥
रंभा ज्यों सदन कोमैं मञ्जुघोषा उरबसी, हस पूर्ने सुमन सु सब सुखदान पैं॥
देव की दिवान सी प्रवीनराय जू को बाग, इन्द्र के समान तहां इन्द्रजीत मानिये॥[2]

(कवि प्रिया)

प्रवीनराय का उचित आदर था और उसकी उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्धि थी। काव्य रचना के साथ २ संगीत की योग्यता तथा नृत्य की अनुपम कला तत्काल गुणियों में प्रशंसनीय थी। सम्राट अकबर ने दरबार में तानसेन को तो बुलवा ही लिया था, प्रवीनराय को भी अपने दरबार की गौरव वृद्धि के हेतु भेजे जाने के लिये ओरछा में आदेश भेजा।

यह कसौटी थी उस प्रेम की जो प्रवीनराय और इन्द्रजीतसिंह के बीच एक निष्ठा का था।

इंद्रजीतसिंह असमंजस में पड़ गए कि मुगल सम्राट का फरमान कैसे ठुकराया जाये ? प्रवीनराय इस नाजुक घड़ी में स्वयं आ पहुंची और क्षात्रधर्म को ललकारा। प्रवीनराय ने यह अनुभूति कराई कि वह केवल दरबारी नर्तकी नहीं है जिसे राजनैतिक लाभ-हानि सोचकर सत्ताधारी और अधीनस्थ के बीच विनिमय की वस्तु बनाई जा सके। इन्द्रजीतसिंह बुन्देला ओरछा की यह नर्तकी नहीं वरन् उसकी परिणीता बुलाई जा रही है, अब तक चित्तौड़ और बुन्देले, तोमरों ने मुगल सम्राट की राजनीति के सामने

1.— मध्यप्रदेश सन्देश, १ दिसम्बर १९६४ से उद्धृत, पृष्ठ ६–१२
२ वही,

समर्पण नहीं किया। अनेकों राजपूतानियाँ और राजपूत बलिदान हो गए। अतएव ऐसा कार्य कीजिये जिससे पतिव्रत भंग न हो और आपके यश को अक्षुण्ण रखा जा सके :—

> आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज स्वासन सों सिगरी मति गोई।
> देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिये न लजौं लजि है सब कोई।।
> स्वारथ और परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
> जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।।[1]

इसे सुन इन्द्रजीत ने निश्चय किया कि अनाचार के सामने झुका न जाय। अकबर ने एक करोड़ रुपया जुर्माना किया। प्रवीणराय अन्त में केशवदास को साथ लेकर स्वयं अकबर से सामना करने बुन्देली वीरांगना के रूप में जा खड़ी हुई। बीरबल ने जुर्माना माफ करा दिया। पातुर प्रवीणराय अकबरी दरबार में कला प्रदर्शन हेतु उपस्थित हुई। इस समय अकबर और प्रवीणराय में वार्ता हुई। एक अधीनस्थ राजा की कथित दरबारी वैश्या तत्कालीन सर्व प्रमुख सम्पन्न अधिनायक को व्यंग्यात्मक भाषा में फटकारते हुए बोली :—

> विनती राय प्रवीन की, सुनियो साह सुजान।
> जूठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान।।[2]

सम्राट अकबर निरुत्तर हो गया, उसने व्यंग्य को समझा और मन ही मन वह तिलमिला उठा। अकबर ने 'पतिव्रता पातुर प्रवीणराय' इन्द्रजीतसिंह ओरछा को सादर लौटादी। इस जनश्रुति का सभी साहित्यकारों ने उल्लेख किया है।[3]

सामान्य वैश्या को वैभव-विलास, प्रचुर सम्पत्ति, गौरव-गर्व के अवसर उपेक्षणीय नहीं होते हैं किन्तु प्रवीणराय भारतीय धर्म और संस्कृति की एकनिष्ठ कलासाधिका थी। उसके नारी-सुलभ प्यार का केन्द्र इन्द्रजीतसिंह था। उसको उसके प्रति पतिभक्ति थी। इस सत का बल उसकी पावन आत्मा में अटूट भरा था। आध्यात्मिक बल के आगे कोई भी कामुक शक्ति टिक नहीं सकती थी। भारतीय इतिहास में अनेक संगीत-कलाधिष्ठात्री पातुरों ने स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े हैं।

महाकवि केशवदास ने प्रवीणराय की सरस्वती-आराधना और महान् कला प्रेम को प्रशंसनीय समझा उसका आधार सत्य ही है।

---

१. बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, पृष्ठ २४८ (तृतीय खण्ड)
२. बुन्देल वैभव प्रथम भाग (तृतीय खण्ड) पृष्ठ २४६। राधाकृष्ण ग्रन्थावली (१) पृ २१२
३. शिवसिंह सरोज, पृ० सं० ३८४, ३८६, मिश्र बन्धु विनोद प्रथम भाग, [illegible] २७४ हिन्दी नवरत्न पृ० ४५३/४५४ (मिश्र बन्धु), केशवदास (डॉ० विजयपालसिंह), पृ० २२, २३।

प्रवीणराय का काव्य :—

प्रवीणराय के किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। यत्र तत्र स्फुट रूप मे कुछ पद ही उपलब्ध हैं। 'बुन्देल वैभव' प्रथम भाग टीकमगढ़ मे सम्वत् १९९० मे प्रकाशित हुआ था जिसके लेखक गौरीशंकर द्विवेदी तालबेहट (झासी) हैं। प्रस्तुत पुस्तक अब अप्राप्य है उसके लेखक की प्रति ही उपलब्ध हो सकी जिसमें प्रवीणराय रचित दोहा और छप्पय मनोहर एवं सरस दिए हैं तथा केशवदास की काव्य शिक्षा का मान प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण मे स्फुट रचना इस प्रकार है '—

दोहा लाल कह्यो सुनो, चित दै नारि नवीन।
नाको आधो बिन्दु जुत, उत्तर दियो प्रवीन॥[1]

(छप्पय)

कमल कोष श्रीफल मजीर कलधौत कलस हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नील धर॥
सर बर सर बन हेम मेरु कैलास प्रकाशन
निशि-वासर तरवरहिं शात कुन्दन दृढ़ आसन॥[2]
इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अवधि भजत तिय गौरि सम।
कलि ललित उरज उलटे सलिल, इन्दु शीश इमि उरज ढंग॥

संयोग-सुख मे प्रवीणराय रात्रि को व्यतीत होने नहीं देखना चाहती, उसे 'मुर्गे की बांग' की चिन्ता है, साथ ही चिड़ियों की चुहचहाहट की। इनसे उषाकाल का आभास मिल जाता है। इन दोनो व्यवधानकारी जीवों का प्रबन्ध करने का उसने विचार किया है। प्रवीणराय चाहती है कि मुर्गे को अनेक कोठों की भीतरी कोठरी मे बन्द करके किवाड़ लगा दिये जाय और चिड़ियों को जालो मे बन्द करके चुन दिया जाय। रात्रि मे मद्धिम सुखद प्रकाश के लिए वह अपने वस्त्र को दीपक की भेंट करती जायगी जिससे ज्योति स्थिर रह सकेगी। जब उसे निशापति का ध्यान आया वह चन्द्र से हाथ जोड़कर विनती करती है कि सरोज की सम्पुटित कलियो मे कोई बन्द है।

इस प्रेम की पाश मे बन्दी को उन्मुक्त करके प्रभात मत कर देना। यह बन्दी ऐसा है कि कारागार मे स्वयं ही सदा रहना चाहता है। प्रेम की पाश मे, आलिंगन में आबद्ध रहना चाहता है इस संयोग सुख मे व्यवधान उपस्थित मत करना। प्रवीणराय उस बन्दी (अपने भ्रमर) की ओर इंगित करती है कि आज मुझे "इन्द्रजीत" धैर्यवान नरेश मिले हैं अतएव चन्द्र तुम जरा चाल धीमी ही रखना ये भाव मधुर एवं

---

१. बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २४९

२. वही, २४९-२५० (तृतीय खड)

कोमलकान्त पदावलि मे ललित बन पडे हैं, शब्द शिल्प इतना अनूठा है कि बरबस हृदय आकृष्ट कर लेता है, प्रवीनराय के शब्दो मे उसकी निर्दोष मनुहार देखिये—

कुक्कुट को कोट कोट कोठरी किवार राखो, चुन दै चिरैयन की मूद राखो जलियो ।
सारग तें सारग मिलाय हो 'प्रवीनराय', सारग दे सारग की जोति करो थलियो ॥
तारापति तुमसो कहत कर जोर जोर, भोर मत कीजियो सरोज मुद कलियो ।
मोहि मिलो इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्रराज, ऐहो चन्द्र आज नेक मन्दगति चलियो ॥[1]

इसका कला पक्ष भी सुन्दर है । अलकार सहज मे आ गये हैं । भाव पक्ष मे सुकुमारता सरसरता एव सजीवता है । 'इन्द्रजीत' नायक का नाम भी 'श्लेष' युक्त है और साथ ही 'धीरज' । प्रवीनराय कहती है कि मुझे भाग्य से नर भी मिला तो 'इन्द्रजीत' ? नारी सुलभ कामना पूरी करने इन्द्रियो को जीतनेवाले पति से कैसे बनेगी, रति के समय रभा सी चेष्टा करने वाली कामिनी ने जैसे-तैसे उसको अपनी पलिकाओ मे पाश-बद्ध किया है, वह इसके कायल भी नही कि यह रात्रि व्यतीत न हो क्योकि वह धैर्यवान नरेन्द्र (पुरुषोत्तम) है अतएव प्रवीनराय ऐसे धैर्यवान इन्द्रजीत को आज की रात्रि पाकर इस रात्रि को समाप्त नही होने देना चाहती ।

न जाने ऐसे कितने सरस छप्पय प्रवीन राय ने लिखे होंगे ?

दूसरा भाव भी एक रचना मे प्रवीनराय का अनूठा है । वह नायक से मिलने की तैयारी कर रही है । वह अपने मन-मुकुर को निर्मल बना रही है साथ ही विविध उबटन, चन्दन आदि के मज्जन एव त्रिविध बयार से देह को सुवासित और अमल कर रही है । मन ही मन उस घडी की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है जब वह अपनी 'तपन' नायक के मिलने पर केवल उतार सकेगी (बुझा या शान्त नहीं कर सकेगी) कुछ कम कर सकेगी जो विषम ताप है । 'काम ज्वर' को उतार सकेगी । इसके पूर्व कि वह नायक से मिले, अपने अगो सेवको से जो दिन रात उसकी मनोरम साधना मे अथक् तपस्या करते रहते हैं उन सेवको मे से अपने 'वाम नेत्र' से एक वचन हारती है कि यदि मैंने नायक को अभी अपेक्षित घडी पर अपनी ठौर (अभिसार स्थल) पर कदाचित न पाया तो अपने दाहिने नेत्र को मूद ही लूगी अर्थात कृपा-कोर सदा को बन्द कर लूगी और केवल बाये नेत्र से ही देखा करूगी जब भी भविष्य मे इन्द्रजीत मिले तो ? नायिका उनसे वाम नेत्र से देखते रहने पर कुपित ही रहेगी ? बडे ही सरस भाव अत्यन्त मार्मिक एव मधुर हैं । रीतिकालीन साहित्य का उद्गम और स्वस्थ सरसता इस रचना मे देखी जा सकती है—

सीतल समीर ढार, मजन के घनसार, अमल अगौछे आछे मन से सुधारिहो ।
देहो ना पलक एक, लागन पलक पर, मिलि अभिराम आछो, तपनि उतारिहो ॥

१. बुन्देल वैभव प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २२०

कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय, सुन बाम नैन या वचन प्रतिपारिहौं।
जबही मिलेंगे मोहि इन्द्रजीत प्रान प्यारे, दाहिनो नयन मूंदि तोही सों निहारिहौं॥[1]

प्रवीनराय का रचना-काल :—

केशवदास की प्रथम रचना रतन बावनी ई० १५८० के बाद ही हुई क्योंकि रतनसेन की मृत्यु १५८० ई० में गौड़ (बंगाल) क्षेत्र के युद्ध में मानी गई है।[2] प्रवीनराय का जन्म सं० १६३० वि० (१५७३ ई०) 'बुन्देल वैभव' में दिया हुआ है तथा कविताकाल सं १६६० (१६०३ ई०) बताया गया है। कविप्रिया का रचनाकाल सं १६५८ (१६०१) है।

लेखक के मत से रचनाकाल १५९४ ई० के आसपास होना चाहिये क्योंकि मधुकरशाह बुन्देला की मृत्यु १५९२ ई० में हुई और इन्द्रजीतसिंह कार्यवाहक राजा बने जिनकी प्रेयसी यह प्रवीनराय थी। प्रवीनराय चातुर नर्तकी की अवस्था २१ वर्ष की १५९४ ई० के समय आती है जन्म की तिथि १५७३ ई० ठीक प्रतीत होती है। पूर्ण षोडशी जो किशोर अवस्था में पग रख रही है वह इन्द्रजीत के चित्त चढ़ी होगी। कविता का प्रारम्भ १५९४ ई० में ही २१ वर्ष की आयु में किया होगा क्योंकि संगीत की दृष्टि से ऐसा किया जाना आवश्यक था। केशवदास गुरु की अवस्था उस समय ३३ वर्ष की होगी केशवदास (१५६१-१६२३ ई०) ओरछा में उपस्थित थे।[3] ओरछा को १५३१ ई० में महाराजा बुन्देला रुद्रप्रताप ने राजधानी बनाया था। केशवदास के पितामह (कृष्णदत्त मिश्र) को पुरान वृत्ति दी थी। कृष्णदत्त मिश्र के पिता हरिनाथ मिश्र, मानसिंह-विक्रमादित्य तोमर का विद्वानों के प्रश्रय का अखाड़ा उजड़ने पर ग्वालियर से ओरछा चले आए थे।[4] श्री पुरुषोत्तम शर्मा ने प्रवीनराय का जन्म संवत् १६४० (१५८३ ई० ही) माना है[5] किन्तु अकबर मिलन की घटना सभी साहित्य के इतिहास लेखकों ने मानी है इस दृष्टि से यह भेंट १६०२ ई० के पूर्व ही होना चाहिये क्योंकि १६०२ ई० में अबुल फजल वध हुआ और वीरसिंहदेव गृहयुद्ध में संलग्न थे। रामशाह-वीरसिंहदेव भाईयों में गृहयुद्ध चल रहा था जिसमें अकबर रामशाह का पक्षपाती था। १६०५ ई० में अकबर का निधन हुआ। इन्द्रजीतसिंह के राजा बनने के बाद और गृहयुद्ध छिड़ने के पहिले यह भेंट प्रवीनराय-अकबर की होना चाहिये। यह समय १५९२ ई० से १५९८ ई० तक आता है। १५९९ ई० से गृहयुद्ध ओरछा में

१ बुन्देल वैभव प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २५१
२. बुन्देल वैभव, पृष्ठ २४३, तृतीय खण्ड, प्रथम भाग तथा प्रथम खण्ड, पृष्ठ १३०
३. केशवदास और उनका साहित्य (डॉ० विजयपालसिंह, पृष्ठ १२, प्रथम परिच्छेद
४. वही, प्रथम परिच्छेद ८,९,१०, (कविप्रिया), द्वितीय प्रभाव, छं० ८—१३
५. विन्ध्यभारती खण्ड ८, अंक १, ई० २०२४, पृष्ठ ५६-६४

छिडा। अतएव १२ वर्ष की आयु की लड़की दरबार में नहीं गई होगी, १५७३ ई० ही जन्म काल ठीक है।

प्रवीणराय का साहित्यिक महत्व :—

हिन्दी साहित्य में गेय-पद साहित्य के विकास क्रम का अध्ययन करने के लिये प्रवीणराय के एकमात्र उपलब्ध इन पदों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी इन पदों से प्रकाश पड़ता है। रीतिकालीन साहित्य का उद्गम स्रोत प्रवीणराय की रचना में देखा जा सकता है। प्रवीणराय का भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सुन्दर समन्वय जिन छन्दों में हुआ है उन्हें उद्धृत किया गया है। भाषा मधुर, सरस एवं सजीव है। पदों में भावों के अनुकूल सुन्दर निर्वाह हुआ है। बेतवा की इस भूमि की रज से लेखकों को बल मिला। इस भूमि की कलाकार प्रवीणराय की पुण्य परम्परा में सतत प्रवहमान कला-निष्ठा अत्यन्त प्राणवन्त रही है।

* * *

खण्ड २

अध्याय ७

अध्ययन सामग्री
(विवादग्रस्त काल एवं स्थान)

- लखनसेन पदमावती रास (१४५९ ई०)
- दामोदर कृत विल्हण चरित्र (१४८० ई०)
- चतुर्भुजदास निगम – 'मधुमालती वार्ता' १५०० ई० पूर्व (एवं माधव शर्मा कृत रूपान्तर)
- हितोपदेश (गद्य) अज्ञात
- सूरदास – 'साहित्यलहरी'
- छिताई चरित — नारायनदास रतनरंग
- अथवा छिताई वार्ता — देवचन्द्र ई० १४८६-१५१६

कवि दामो कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती रास (१४५९ ई०) :—

कवि 'दामो' का पता नही चलता कि यह कवि किस प्रदेश का था। इसने लक्ष्मण-सेन को नायक के रूप में लेकर लौकिक आख्यान काव्य की रचना की है। ईस्वी सन् १९०० के नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सचालित हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज मे कवि दामो की लक्ष्मणसेन पदमावती कथा का पता चला।[1] खोज रिपोर्ट में इस प्रति का लिपिकाल सवत् १६६९ दिया हुआ है। अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री वीर कथा लषमसेन पद्मावती सम्पूर्ण समाप्ता सवत १६६९ वर्षे भाद्र सुदि सप्तमी लिखित फूल पेटा मध्ये।"

1. खोज रिपोर्ट, सन् १९००, नम्बर ८८, पृष्ठ ४५.

दूसरी प्रति श्री अगरचंद नाहटा के पास सुरक्षित है और जिसकी प्रतिलिपि विद्या मंदिर मुरार (ग्वालियर) में लेखक ने देखी है। प्रस्तुत प्रति के आधार पर श्री उदयशंकर शास्त्री ने 'त्रिपथगा'[1] में लेख लिखा था इसकी अन्तिम पुष्पिका खोज रिपोर्ट से मिलती है। खोज रिपोर्ट की प्रति में सूचना लेखक ने उद्‌वृत्त की मधि करके लिखा है। श्री नाहटा की प्रति में उद्‌वृत्त यथावत हैं।

कथा का पूर्वाधार :—

कवि धोयी ने अपने 'पवनदूत' में युवराज लक्ष्मणसेन को कल्पना नायक के रूप में की है। जल्हणदेव की 'सुभाषितावलि' में धोयी कवि का नाम है। धोयी लक्ष्मणसेन के पंचरत्नों में से एक थे।[2] निम्नलिखित श्लोक से प्रकट है —

> "गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापति ।
> कविराजश्च रत्नानि समतौ लक्ष्मणस्यच ॥"[3]

पवनदूत खण्डकाव्य (संस्कृत) की भूमिका भी संस्कृत में लिखी गई है उसमें इस प्रकार उल्लेख हुआ है —

"विक्रमादित्यस्य इव गौडाधिपस्य परमेश्वर—परम भट्टारक परम वैष्णव महाराजाधिराजस्य कविवरस्य श्रीमतो लक्ष्मणसेनस्यापि सभा मण्डप रत्नभूतेपंडित प्रकाण्डै विभूषित आसीदिति विदितचर मेवानेकेयाम् ॥"[4]

इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मणसेन गौड देश के अधिपति थे जिनकी सभा में धोयी कवि था।[5]

कवि दामो ने लक्ष्मणसेन को ही अपने काव्य का नायक चुना है। पद्मावती नायिका का नाम कामशास्त्र में वर्णित स्त्री जाति पर ही रखा जाना प्रतीत होता है। इस काव्य में अन्य नाम अजयपाल, विनयचन्द्र, हरपाल, हमीर सामंत, गंगेय, सुलक्षण, मैलोचन, मंडिपाल, रिसालू, चंद्रपाल, चंद्रसेन, धरपाल, डडेपाल, सहनपाल, द्रोण, हंसराय, आये हैं।

राजशेखर सूरि कृत प्रबन्ध कोश में अजयपाल का प्रसंग श्री वस्तुपाल प्रबन्ध में आया है। अजयपाल के शासन काल में 'पाटण' ग्वालियर से नर्मदा तक विस्तृत था।

---

1. त्रिपथगा अंक, १० जुलाई १९५६, पृष्ठ ५३-५८
2. 'पवनदूतम् आव धोयी' सम्पादित श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती, संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता, प्रस्तावना [illegible] २,४।
3. वही, भूमिका (संस्कृत) पृष्ठ ३३ पर उद्धृत
4. पवनदूतम् – कवि धोयी कृत, संस्कृत साहित्य परिषद, कलकत्ता, मुद्रक विशोदय प्रेस, १७ राधानाथ बोस लेन, कलकत्ता, भूमिका (संस्कृत) पृष्ठ ३३।
5. वही, पाठ (श्लोक १०१), पृष्ठ ३४

मालवा भी उसके अन्तर्गत था। अजयपाल की मृत्यु विदिशा (मालवा) में होना कही जाती है। विदिशा भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में जिला था।

श्री उदयशंकर शास्त्री प्रस्तुत कथा अर्धमागधी की कड़ी में होने का अनुमान करते हैं। प० परशुराम चतुर्वेदी भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा में इसे मानते हैं तथा डा० सुकुमार सेन के इस मत से सहमत हैं कि यह कथा किसी अपभ्रंश की प्रेम कहानी पर आधारित है क्योंकि इसमें वैसी ही परम्परा का पालन संस्कृत श्लोक या प्राकृत गाथाओं के सम्मिश्रण द्वारा किया गया है। प्रस्तुत कथा के चमत्कारिक अंश पर "नाथ प्रभाव" स्पष्ट है।

सिद्धनाथ योगी का नाम पुराणों में आता है, ठीक उसी प्रकार जैसे मत्स्येन्द्रनाथ, मीननाथ के नाम आते हैं। सिद्धनाथ नाम का प्रयोग ज्ञानेश्वरी ने 'ज्ञानदीप' में किया है।

गौड़ देश की राजधानी लखनौती और वहां के इतिहास प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन को नायक के रूप में अंकित कर लखनसेन पदमावती रास में कवि दामो ने अपने गौड़ वासी होने का अप्रत्यक्ष संकेत दिया है। प्रस्तुत काव्य के रचना स्थल का पता नहीं चलता। यह हिन्दी का सुनिश्चित सर्वप्रथम पूर्णतः प्राप्त तिथियुक्त लौकिक आख्यान काव्य है और असूफी प्रेमाख्यानों में सर्वाधिक प्राचीन है।

कथा सार:—

प्रस्तुत काव्य के कथानक में कौतूहल अधिक मात्रा में है। तत्कालीन राजनैतिक इतिहास एवं सामाजिक विश्वास की झलक भी इसमें प्राप्त हो जाती है। कथा इस प्रकार है—

"पाटण नगर के सिद्धनाथ योगी दंड, खप्पर, काती लिये सिद्धि बल से नौ खण्डों में घूमता है और सामोरगढ के हंस राजा से उसकी पुत्री पद्मावती के बारे में पूछता है कि वह किससे ब्याह करेगी? उत्तर में राजकुमारी का प्रण उसे बताया गया कि जो १०१ राजाओं को मार सकेगा वही उसे ब्याह सकेगा। योगी ने कुए के मार्ग में सुरंग बनाई। ९९ राजा बन्दी किये गये और लखनौती के राजा लक्ष्मणसेन के यहां पहुंचा, उसे अपनी ओर आकृष्ट करके एक बिजौरा भेंट किया जिसे वानर ने फोड़ा तो उसमें से एक रत्न निकला। राजा ने प्रभावित होकर करामाती योगी को फिर खोज लिया। अब योगी ने लक्ष्मणसेन को भी कुएँ में धकेल दिया। योगी के बाहर आते ही राजा लक्ष्मणसेन ने सब बन्दी मुक्त कर दिये। लौटते ही योगी ने समझकर ५२ हाथ की शिला कुए पर रखदी। लक्ष्मणसेन पश्चाताप करने लगा। आत्मघात की चेष्टा में रत लक्ष्मणसेन को कुएं की ईंट हाथ में आ गई कि उसी टूटी हुई ईंट के छिद्र से आगे स्फटिक मणियों से निर्मित सरोवर दिखा। तट पर पोढ़री

जल भर रही थी। वे बालाएं लक्ष्मणसेन को देखकर मुग्ध हो गईं और जलकुम्भ उठाना उन्हें कठिन हो गया।

लक्ष्मणसेन छद्म वेष में ब्राह्मण बन ब्राह्मणी के यहां पहुँचा। ब्राह्मणी ने राजा को राजपुरोहित बनवा दिया और स्वयं उसकी मां कहलाने लगी। राजकुमारी पद्मावती को राजसभा से लौटकर नायक को देखने का अवसर मिला कि देखते ही अचेत हो गयी तथा रानी को यह विदित हुआ कि स्वयंवर रचाया गया।

पद्मावती स्वयंवर में पधारी तथा ब्राह्मणवेशी लक्ष्मणसेन के कंठ में जयमाला पहिनादी। राजा हंस ने 'वर' को 'सिंह' से समाप्त कराना चाहा किन्तु 'सिंह' ही समाप्त कर दिया गया।

लक्ष्मणसेन ने हंस राजा को प्रसन्न कर लिया उसके अधीनस्थ करद शासक वीरपाल को उपस्थित कर दिया जो कर नहीं देता था। वीरसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन का परिणय राजा हंस ने करा दिया और 'हयमेधा' में आधा राज्य दे दिया।

आगे द्वितीय खण्ड में जादू टोने का वर्णन है। वीर भैरवानंद का स्मरण कर वीर रस पूर्ण कथानक प्रारंभ हुआ। योगी स्वप्न में लक्ष्मणसेन से मिला और पानी मगाकर राजा से पद्मावती का गर्भ मांग लिया। राजा वचनबद्ध हो गया किन्तु खिन्न हो गया।

पद्मावती ने कहा कि योगी गर्भ के चार टुकड़े करेगा। उन खंडों में से पहिले खंड से धनुषबाण राज्य सम्मान कारक, तलवार, धोती यथेष्ट स्थान पर ले जाने वाली और सुन्दरी क्रमशः निकलेगी तुम इन्हें प्राप्त कर योगी को समाप्त कर देना। खड्ग और सुन्दरी योगी के हाथ लगी। विरह में राजा दुःखी हुआ। बीच में कपूरधारा की राजकुमारी चन्द्रावती से प्रणय होकर परिणय हो गया।

गर्भ के चौथे खण्ड में से उत्पन्न सुन्दरी स्वयं पद्मावती थी जिसकी खोज में नायक था। योगी से सुन्दरी ने कहा कि तू पिता समान है मुझे पति से मिला दे अन्यथा आत्मघात कर लूंगी। योगी ने वचन दे दिया। सुन्दरी ने उसके करामाती हथियार कपूरधारा में सेमल के पेड़ पर रखवा दिये। योगी सुन्दरी के साथ उस स्थान पर पहुंचा जहां भवन में नायक और चन्द्रावती पासे फेंक रहे थे। पद्मावती ने नायक को पहिचान कर संकेत में करामाती हथियार बता दिये कि नायक योगी से संघर्ष कर पद्मावती को पा सका। दोनों पत्नियां प्रेमपूर्वक मिली सामोरगढ़ में राजा हंस ने नायक का स्वागत किया फिर लखनौती पहुंचे प्रजा सुख विभोर हुई। इस कथानक में बीसलदेव रासो का साम्य है। यह लक्ष्मणसेन पद्मावती रास भी गाने के लिये लिखा गया था।

प्रस्तुत रास की भाषा:—

यह काव्य मारु सोरठ गुजरात महाराष्ट्र एव सुदूर पूर्व के प्रभाव को लिये हुये है।

रचनाकाल:—ज्येष्ठ वदी ■ बुधवार स० १५१६ (सन् १४५६ ई०) में यह काव्य लिखा गया और इसकी खोज १६०० सन् में खोज रिपोर्ट के आधार पर हुई। इसका प्रतिलिपि काल स० १६६६ (सन् १६१२ ई०) है।

महत्व—दामो हरिविराट पर्व, महाभारत पद्यानुवाद की शालीनता, चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती और साधन के मैनासत के काव्य सौष्ठव को भले ही न पा सका हो किन्तु दामो का हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्य धारा के सर्व प्रथम कवि के रूप मे सराहनीय एव महत्वपूर्ण स्थान है। यह रास राजस्थान और बुन्देलखण्ड की सीमा पर सुनाया गया उसके छन्द बन्ध इस प्रकार की सम्भावना प्रकट करते हैं—

पौ फाटी मिनुसारो भयौ
सुनउ कथा रस लीन विनासा, पोर्यो मरन राय वनवासा
पद्मावती बहुत दुख सहई, मेलो करि कवि दामो कहई,
नमू गनेश कुंजर सेस, मूसा वाहन हाथ फरेस,
सवत पनरई सोलूतरा मझारि, जेष्ट वदी नवमी बुधवारि
सरस विलास नाम रस भाव, जादु दरपि मनहि कु उछाह
कहियत कीरत दामो सचेत, पद्मावती कथा चहुं देस
कथा स्वयवर भयो प्रमाण जे नर सुनइ तें गगा न्हाण
चतुर होइ ते मन गह गहई, वाहूडि कथा चित्त दे रहई
मूरख तेने हासी करई, पमू समान ते कलि मह फिरई।

दामो कवि, विल्हणचरित, माधवानल कथा का भी दल्ह-दामोदर नाम से लेखक या रचनाकार है इसका तारतम्य अगले अध्याय मे वर्णित है। यह रास किस स्थान पर रचा गया यह प्रस्तुत रचना से पता नहीं चलता।

गोपाचलवासी दामोदर (गौड़वंशी विप्र) का "विल्हण चरित" (१४८० ई०)

'विल्हण चरित' मे 'दामोदर' ने इस प्रकार सूचना दी है—

गवड वश गोपाचल वास, विप्र दामोदर गुणह निवास।
अनुदित होय वसहि जगुमाद सुमिरत बुद्धि देइ बहु माइ॥

दामोदर विप्र गौर वंशी गोपाचलवासी है जिसके हृदय में शारदा का निवास है जिसके स्मरण से उसे बुद्धि प्राप्त होती है। कवि दामोदर रचनाकाल की सूचना देता है—

है।[१] इनका विरचित कोई ग्रंथ उपलब्ध नही है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने इनके स्फुट पदो का ही उल्लेख किया है। 'हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत' के पंचम अध्याय मे हस्तलिखित तथा छपे रूप मे उपलब्ध पदो का उल्लेख हुआ है।[२] भक्तमाल मे इन्हे कील्हदेव (गलता-आमेर) का शिष्य बताया गया है। 'मिश्र बंधु विनोद' मे दिये गये राजा आसकरन के पद रचनाकाल का समय लगभग ठीक है। 'शिवसिंह सरोज' मे दिये गये जन्मकाल से ऐतहासिक घटनाएं जिनका विवेचन हो चुका है सब गलत हो जावेगी अतएव यह मान्य नही है। राजा आसकरण को आमेर (जयपुर) से लाया गया था और ये नरवर की गद्दी पर लगभग १५४८ ई० मे विराजमान हुए।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार तानसेन ने 'गोविन्दस्वामी' के गायन की प्रशंसा सुनकर राजा आसकरण भी तानसेन के साथ गोकुल गए और संगीत सीखने के लिए गोविन्दस्वामी के शिष्य हुए और उनसे संगीत विद्या आसकरण ने सीखी।[३] आसकरण की गुणग्राहकता का परिचय पाकर तानसेन आसकरण के यहां दस-पन्द्रह दिन रहे और अपने साथ आसकरण को गोकुल ले गए थे।[४] तानसेन ने आसकरण को वल्लभ सम्प्रदायी गोस्वामी विट्ठलनाथजी से जाकर मिलाया था।[५]

आसकरन कछवाहा का युगल पक्ष :—

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तानसेन अकबरी दरबार में १५६२ ई० मे रीवा नरेश राजा रामचन्द्र के यहां से बुला लिये गये और १५८६ ई० की २६ अप्रैल तक अकबर के नौ रत्नों मे से एक रहे।[६]

सन् १५६२ ई० के बाद ही तानसेन आसकरन के पास नरवरगढ गये और दस-पन्द्रह दिन ठहरकर आसकरन को साथ लेकर गोकुल गये। 'राजा आसकरन की वार्ता'[७] से प्रकट है कि तानसेन राजा आसकरण की गुणग्राहकता का परिचय पाकर उनसे मिले और उनके सम्मुख पद गाया। राजा आसकरण इतने प्रभावित हुए कि उन्होने

---

१. मिश्र बन्धु विनोद, भाग १ पृष्ठ ३२६ कवि संख्या १०२

२. डॉ० ऊषा गुप्ता—'हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में संगीत' पंचम अध्याय, (आसकरन के पद) (सं० २०१६) लखनऊ वि० वि०

३ २५२ वैष्णवन वार्ता, पृष्ठ १२८, १२६, भक्तमाल, पृष्ठ ८८४

४. वही, राजा आसकरन की वार्ता, पृष्ठ १६१, १६३ तथा अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, [illegible] ११२

५. मिश्र बन्धु विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

६. अकबर दी ग्रेट (डॉ० आशीर्वादीलाल) पृष्ठ ३६०

७ दो सौ वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरन की वार्ता, पृष्ठ १६१-१६३

वल्लभ सम्प्रदायी गोविन्दस्वामी से तानसेन के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की। तानसेन वल्लभ सम्प्रदाय के सम्पर्क में आ चुके थे।[१]

आसकरन का पद साहित्य [२]—

राग गौरी

मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गायन सग मधुर बजावत बैना ॥१॥
ग्वाल मडली मध्य विराजत सुन्दरता को ऐना।
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारौं कोटिक मैना ॥२॥

राग विभास

नन्दकिशोर यह वोहनी करन न पाई।
गोरस के मिस रमहि खटोरत मोहन मीठी तानन गाई ॥१॥
गोरस मेरे घरहि बिके है क्यों वृन्दावन जाय।
आसकरन प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय ॥२॥

उपर्युक्त पदो मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का स्वाभाविक वर्णन हुआ है। इसी सन्दर्भ मे एक पद यह भी द्रष्टव्य है—

उठो मेरे लाल लाडिले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर।
घर घर दधि मथिनिया घूमे अरु द्विज करत वेदकी घोर॥
करि कलेऊ दधि ओदन मिश्री बाटि परोसी ओर।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारो तुम पर प्राण अकोर ॥[३]

कृष्ण की रूप-छटा भी निम्नांकित पद मे देखिये—

गोप मडली मध्य मनोहर अति राजत नन्द को नन्दा।
सोभित अधिक शरद की रजनी उडगन मानो पूरण चन्दा॥
ब्रज युवती निरख मुख ठाढी मानत सुन्दर आनन्द कन्दा।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गिरधर नव रस रसिक गोविन्दा ॥[४]

कृष्ण के प्रति यशोदा का ममत्व गहरा है वह चाहती है कि उसका बेटा दूध पीये वह कृष्ण को उसकी चोटी बढ़ने का बहाना बनाती है—

---

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ १११, ११२

२. दो सौ बैष्णवन की वार्ता : गंगा विष्णु श्री कृष्णदास संस्करण, पृष्ठ २०३, २१०

३. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरन वार्ता, पृष्ठ २०८

४. वही, पृष्ठ २११

कीजै पान लला रे ओट्यो दूध लाई जशोदा मैया।
कनक कटोरा भरि पीजै ब्रज बाल लाडिले
तेरी वेनी बढ़ैगी मैया ॥
ओट्यो नीको मधुरो अछूतो रुचि सो करी लीजै कन्हैया।
आसकरण प्रभु मोहन नागर पय पीजै सुख दीजै
प्रात करोगी मैया ॥[1]

कृष्ण का नटखटपन गोपियो को हृदय मे तो भाता है किन्तु उपालम्भ के व्याज से वे मधुर अनुभूति को चोगुना करना चाहती हैं। यशोदा के पास ऊपर से कृत्रिम उलाहना देती हैं। यह चित्र मनोहारी है—

ब्रज को भयो रे ढोटा दधिदानी।
मटुकी फोरत बाँह मरोरत, यह बात किन ठानी ॥
नन्दराय की कानि करत हों सुनि हो यशोदा रानी।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गुणसागर अभिमानी ॥[2]

आसकरण का साहित्यिक महत्व :—

आसकरण सूरदास, तानसेन, गोविन्दस्वामी, रहीम का समकालीन है। संगीत मे इसे रुचि थी जिसके कारण इसको पद रचना मे प्रवृत्त होना पड़ा। आसकरन के द्वारा रचित पद भी विभिन्न रागो मे हैं जिससे इसके संगीत ज्ञान का पता चलता है। यद्यपि आसकरन न तो संगीत का आचार्य ही था और न इतना विशेषज्ञ, जितना कि अष्टछापी कवि तथा तानसेन थे। फिर भी संगीत मे रुचि रखता था और संगीतकारों, कलावन्तों को आश्रय देता था जैसाकि वार्ता से प्रकट है। तानसेन इसी आधार पर इस सामंत की ओर आकृष्ट हुए थे।

आसकरन के बाल लीलाओ के पदो मे सहज स्वाभाविक चित्रण है तथा बाल सुलभ चेष्टा, गोपी प्रेम एवं यशोदा माता का वात्सल्य अच्छा उभरा है। इन्ही भावनाओं को जिस रूप में भाषा का परिवेश इन कवियो द्वारा मिला है उसका विकसित रूप सूरदास मे है।

आसकरण के पदों में वात्सल्य भाव की प्रधानता ही दृष्टिगत होती है। इन सभी पदो में भावो के अनुकूल सरस और सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

कवयित्री प्रवीणराय पातुर (१५९४ ई०) :—

ऐसी पातुर पर हजार सतिया न्योछावर हैं जिसने अपना एक बार पति जिसे

1. वही, पृष्ठ २११
2. कीर्तन संग्रह भाग १, पृष्ठ १४३

माना उसके व्रत के सहारे मुगल सम्राट अकबर जैसी प्रभुसत्ता को भी निष्प्रभ और निरुत्तर कर दिया। जिसको जीवन में काव्य और संगीत कला की सेवा करने का अवसर मिला जिसे उसने निष्ठापूर्वक ग्रहण किया।

ओरछा के मधुकरशाह बुन्देला (१५५४–१५९२ ई०) के स्वर्गवास के पश्चात् गद्दी ज्येष्ठ पुत्र रामशाह बुन्देला को मिली किन्तु कार्यवाहक राजा इन्द्रजीतसिंह छोटे भाई ही रहे इन्हें कछौवा का दुर्ग दिया गया था जो कछौवा (पिछोर) कहलाता है।

—"तिनतें इन्द्रजीत लघु लसें, सो गढ़ दुर्ग कछौवा बसें" ॥४५॥
—वीरसिंह देव चरित [1]

इन्द्रजीतसिंह ने आचार्य केशव को प्रवीणराय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने नियुक्त किया। महाकवि केशव ने कविप्रिया प्रवीणराय को काव्य शास्त्र में निपुण करने के हेतु रची —

सविता जू कविता दई, ता कहं परम प्रकास।
ताके काज कवि प्रिया कीन्हीं केसवदास ॥[2]

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में ग्वालियर की सांस्कृतिक निष्ठा सजीव रूप धारण कर रही थी। तोमरकालीन संगीत एवं काव्य शास्त्र की रचना का कार्य द्रुत गति से पूरक के रूप में बुन्देला राजाओं के आश्रय में होता आ रहा था।

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में बालक-बालिकाएं तथा अन्य बालाएं काव्य शास्त्र का अनुशीलन करने लगीं जिनमें प्रवीणराय बुद्धिमान एवं प्रतिभाशालिनी छात्रा थी —

समुझें बाला-बालकनि बरनन पंथ अगाध।
कवि प्रिया केशव करी छमि जो बुध अपराध ॥[3]

बालाओं एवं बालकों में अनेक बालाएं केशवदास के शिष्यत्व में थीं —

बानवहि क्रम बाल सब रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि मरयो अवरोध पट पातुर परम प्रसिद्ध ॥

छै पातुरें उस समय संगीत एवं काव्य के अध्ययन में रत थीं —

'राय प्रवीन' प्रवीन अति, नवरंग राय सुवेस।
अति विचित्र नयना निपुन लोचन ललित सुदेस ॥

---

१. वीरसिंहदेव चरित, पृष्ठ ४० पद संख्या ४५, बुन्देलवैभव, पृष्ठ २०३
२. कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ६१
३. कविप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द ५

सोहति साधर राग को 'तानतरग' तरग ।
रगराय रग चलित गति 'रग मूरति' अग अग ॥[१]

इन छै पातुरों और अन्य छात्र-छात्राओ का एक सास्कृतिक दल जब संगीत अनुशासनबद्ध होकर दरबारी अखाडे मे जमता था तब इंद्रजीत इन्द्र के समान देखा जाता था :—

कर्‌यो अखारो राज के सासन सब संगीत ।
ताको देखत इंद्र ज्यों इन्द्रजीत रन-जीत ।। (कविप्रिया)[२]

इस अखाड़े की प्रसिद्ध गायिकाए और नर्तकियां छै थी जिनमे (१) नवरगराय (२) विचित्र नयना (३) तानतरग (४) रगराय (५) रगमूरति (६) प्रवीणराय की गणना है।[३]

इन छै पातुरो की प्रशसा मे कहे गये छन्दो की अपेक्षा प्रवीनराय के प्रति कुछ विशेष छन्दों मे कथन किया गया है :—

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति बीन ।
तिनमे करति कवित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन ।।
रत्नाकर लालित सदा, परमानदहि लीन ।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन ।।
राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि रजित अग ।
बीना-पुस्तक धारिनी, राजहस सुत सग ।।
वृषभवाहिनी अगयुत, बासुकि लसत प्रवीन ।
सिव सग सोहै सर्वदा सिवा कि राय प्रवीन ।।[४]

छै पातुरों मे केशवदास की साक्षी अनुसार केवल प्रवीनराय ही कविता करती थी। उसे "शिवा, रमा और शारदा" की उपमा से विभूषित किया गया है।

राय प्रवीण की विशुद्ध वाणी गगाजल के समान पवित्र थी और ऐसी निर्मला, निष्कलक, सुन्दर वर्ण वाली, मनहरण देवी केशवदास ने अन्य न देखी थी :—

जिस ऐश्वर्यसम्पन्न, पावन चरित्रवती राय प्रवीन की प्रशंसा हिन्दू धर्म एव संस्कृति के निष्ठावान साधक आचार्य केशवदास ने की है उसके प्रति हिन्दी साहित्यकार

१. कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ४२, ४३, ४४
२. वही छन्द ४१
३. मध्यप्रदेश सन्देश, ३ दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १०
४. कवि प्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ५७–६० तथा केशवदास और उनका साहित्य (डॉ० विजयपाल सिंह) पृष्ठ ३६–४०

अथवा तथाकथित समीक्षकों ने उसे वेश्या समझकर ही उपेक्षाभाव रखा है। यह उसके प्रति अन्याय हुआ है। जबकि सत्यता यह है कि वह शरीर को बेचने वाली सामान्या न थी बल्कि शुद्ध कला की सेविका नर्तकी थी और जिसका गान्धर्व रीति से इन्द्रजीत सिंह से परिणय सम्पन्न होना भी पीछे टिप्पणी में उद्धृत लेख में श्री सितारकारी ने लिखा है :—

सुन्दर ललित गति वलित सुवास अति, सरस सुवृत मति मेरे मन मानी है।
अमल अदूषित सुभूषननि भूषित, सुबरन हरन मन सुर सुखदानी है।।
अंग-अंग गूढ़ भाव के प्रभाव जानें को, सुभाव ही को भाव रचि पचि पहिचानी है।
केशोदास देवी कोऊ देखी सुम, नाहीं राज, प्रगट प्रवीन रायजू की यह बानी है।।[1]

इन्द्रजीत ने राय प्रवीन को पत्नी बनाकर रखा था। उसके बाग का वर्णन केशवदास ने दिया है :—

सहित सुदरसन करना कलित, कमलासन विलास मधुवन मीत मानिये।
मोहियै अपर्नी रूपमंजरी पै नीलकण्ठ, केसोदास प्रगट असोक उर आनिये।।
रंभा ज्यों मदन बोनै मंजुघोषा उरवसी, इन्द्र फूलैं सुमन सु सब सुखदान पै।।
देव को दिवाल सो प्रवीनराय जू को बाग, इन्द्र के समान वहां इन्द्रजीत मानिये।।[2]

(कवि प्रिया)

प्रवीणराय का उचित आदर था और उसकी उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्धि थी। काव्य रचना के साथ २ संगीत की योग्यता तथा नृत्य की अनुपम कला तत्काल गुणियों में प्रशंसनीय थी। सम्राट अकबर ने दरबार में तानसेन को तो बुलवाही लिया था, प्रवीणराय को भी अपने दरबार की गौरव वृद्धि के हेतु भेजे जाने के लिये ओरछा मे आदेश भेजा।

यह कसौटी थी उस प्रेम की जो प्रवीनराय और इन्द्रजीतसिंह के बीच एक निष्ठा का था।

इद्रजीतसिंह असमंजस में पड़ गए कि मुगल सम्राट का फरमान कैसे ठुकराया जाये? प्रवीनराय इस नाजुक घड़ी में स्वयं आ पहुंची और क्षात्रधर्म को ललकारा। प्रवीनराय ने यह अनुभूति कराई कि वह केवल दरबारी नर्तकी नहीं है जिसे राजनैतिक लाभ-हानि सोचकर सत्ताधारी और अधीनस्थ के बीच विनिमय की वस्तु बनाई जा सके। इद्रजीतसिंह बुन्देला ओरछा की यह नर्तकी नहीं वरन् उसकी परिणीता बुलाई जा रही है, अब तक चित्तौड और बुन्देले, तोमरों ने मुगल सम्राट की राजनीति के सामने

१. मध्यप्रदेश सन्देश, १ दिसम्बर १६६४ से उद्धृत, पृष्ठ ६–१२
२. वही,

समर्पण नहीं किया। अनेकों राजपूतानियाँ और राजपूत बलिदान हो गए। अतएव ऐसा कार्य कीजिये जिससे पतिव्रत भंग न हो और आपके यश को अक्षुण्ण रखा जा सके :—

> *आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज शासन सौं सिगरी मति गोई।*
> *देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिये न लजौं लजि है सब कोई॥*
> *स्वारथ और परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।*
> *जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥*[1]

इसे सुन इन्द्रजीत ने निश्चय किया कि अनाचार के सामने झुका न जाय। अकबर ने एक करोड़ रुपया जुर्माना किया। प्रवीणराय अन्त में केशवदास को साथ लेकर स्वयं अकबर से सामना करने बुन्देली वीरांगना के रूप में जा खड़ी हुई। बीरबल ने जुर्माना माफ करा दिया। पातुर प्रवीणराय अकबरी दरबार में कला प्रदर्शन हेतु उपस्थित हुई। *इस समय अकबर और प्रवीणराय में वार्ता हुई। एक अधीनस्थ राजा की* कथित दरबारी वैश्या तत्कालीन सर्व प्रभुत्व सम्पन्न अधिनायक को व्यंग्यात्मक भाषा में फटकारते हुए बोली :—

> विनती राय प्रवीन की, सुनियो साह सुजान।
> जूठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान॥[2]

सम्राट अकबर निरुत्तर हो *गया, उसने व्यंग्य को समझा और मन ही मन वह तिलमिला उठा। अकबर ने* 'पतिव्रता पातुर प्रवीणराय' इन्द्रजीतसिंह ओरछा को सादर लौटादी। इस जनश्रुति का सभी साहित्यकारों ने उल्लेख किया है।[3]

सामान्य वैश्या को वैभव-विलास, प्रचुर सम्पत्ति, गौरव-गर्व के अवसर उपेक्षणीय नहीं होते हैं किन्तु प्रवीणराय भारतीय धर्म और संस्कृति की एकनिष्ठ कलासाधिका थी। उसके नारी-सुलभ प्यार का केन्द्र इन्द्रजीतसिंह था। उसकी उसके प्रति पति-भक्ति थी। इस सत का बल उसकी पावन आत्मा में अटूट भरा था। आध्यात्मिक बल के आगे कोई भी कामुक शक्ति टिक नहीं सकती थी। भारतीय इतिहास में अनेक संगीत-कलाविज्ञों पातुरों ने स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े हैं।

महाकवि केशवदास ने प्रवीणराय की सरस्वती-आराधना और महान् कला प्रेम की प्रशंसनीय समझा उसका आधार सत्य ही है।

---

१. बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, पृष्ठ २४८ (तृतीय खण्ड)
२. बुन्देल वैभव प्रथम भाग (तृतीय खण्ड) पृष्ठ २४६। राधाकृष्ण ग्रन्थावली (१) पृ २१२
३. शिवसिंह सरोज, पृ० सं० ३८२, ३८६, मिश्र बन्धु विनोद प्रथम भाग, [illegible] २७४ हिन्दी नवरत्न पृ० ४५३/४५४ (मिश्र बन्धु), केशवदास (डॉ० विजयपालसिंह), पृ० २२, २३।

प्रवीणराय का काव्य :—

प्रवीणराय के किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। यत्र तत्र स्फुट रूप में कुछ पद ही उपलब्ध हैं। 'बुन्देल वैभव' प्रथम भाग टीकमगढ़ से सम्वत् १९९० मे प्रकाशित हुआ था जिसके लेखक गौरीशंकर द्विवेदी तालवेहट (झांसी) हैं। प्रस्तुत पुस्तक अब अप्राप्य है उसके लेखक की प्रति ही उपलब्ध हो सकी जिसमें प्रवीणराय रचित दोहा और छप्पय मनोहर एवं सरस दिए हैं तथा केशवदास की काव्य शिक्षा का मान प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण मे स्फुट रचना इस प्रकार है :—

दोहा लाल कह्यो सुनो, चित दै नारि नवीन।
ताको आधो बिन्दु जुत, उत्तर दियो प्रवीन ॥[1]

(छप्पय)

कमल कोक श्रीफल मजीर कलधौत कलस हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु व्यस्त नील धर ॥
सर वर सर वन हेम मेरु कैलास प्रकाशन
निशि-वासर तरवरहि काम कुन्दन दृढ़ आसन ॥[2]
इमि कहि प्रवीन जल यम मधुक अवधि भजत तिय गौरि संग।
कनि खनित उरज उलटे समिल, इन्दु शीश इमि उरज उग ॥

संयोग-सुख में प्रवीणराय रात्रि को व्यतीत होते नहीं देखना चाहती, उसे 'मुर्गे की बाँग' की चिन्ता है, साथ ही चिड़ियों की चुहचुहाहट की। इनसे उषाकाल का आभास मिल जाता है। इन दोनों व्यवधानकारी जीवों का प्रबन्ध करने का उसने विचार किया है। प्रवीणराय चाहती है कि मुर्गे को अनेक कोठों की भीतरी कोठरी मे बन्द करके किवाड़ लगा दिये जाय और चिड़ियों को खातों में बन्द करके चुन दिया जाय। रात्रि में मद्धिम सुखद प्रकाश के लिए वह अपने वस्त्र को दीपक की भेंट करती जायगी जिसमे ज्योति स्थिर रख सकेगी। जब उसे निशापति का ध्यान आया वह चन्द्र से हाथ जोड़कर विनती करती है कि सरोज की सम्पुटित कलियों में कोई बन्द है।

इस प्रेम की पाश से बन्दी को उन्मुक्त करने प्रभात मत कर देना। यह बन्दी ऐसा है कि कारागार मे स्वयं ही पड़ा रहना चाहता है। प्रेम की पाश मे, आलिंगन में आबद्ध रहना चाहता है इस संयोग सुख मे व्यवधान उपस्थित मत करना। प्रवीणराय-उस बन्दी (अपने भ्रमर) की ओर इंगित करती है कि आज मुझे "इन्द्रजीत" धैर्यवान नरेश मिले हैं अतएव चन्द्र तुम जरा चाल धीमी ही रखना ये भाव मधुर एवं

1. बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, पृष्ठ २४९
2. वही, २४९-२५० (तृतीय खंड)

माधवकृत माधवानल कामकंदला रचना की दूसरी प्रति डॉ० शिवगोपाल मिश्र को एकडला (फतेहपुर) मे मिली जो सं० १७०४ वि० की प्रतिलिपि है। उक्त प्रतिलिपि में भी इसका रचनाकाल सं० १६०० ही दिया गया। डॉ० मिश्र ने पीछे उद्धृत 'भारती मे अपने लेख मे १६५६ ई० मे इस रचना के अन्तिम अंश का उदाहरण दिया था —

> माधवानल की यह कथा विरह महारस केलि।
> जैसे षट्‌रस मधुर रस अति लागत वेहि मेलि।
> माधव कामा मर्ज चौपई, नेह रीति जाके मन थई
> जेहि ना सदा मनोरथ मलै, मन वांछित सुख सम्पत्ति मिलै
> संवत सोलह सै बरसि, जैसलमेर मझारि।
> फागुन मास सुहावनो, करी बात विस्तारि॥

इति श्री माधवानल कामकन्दला रस विलास सम्पूर्ण, संवत् १७०४ असाढ सुदी १५ लिखित जैराम। इस खंडित प्रति मे २१६ दोहे से ४३६ दोहे तक की पंक्तियां वर्तमान हैं।

माधव शर्मा की इस सूचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके द्वारा अपना 'टाट का जोड' लगाने मे अधिक समय न लगा होगा। माधवानल कामकन्दला की रचना उसने 'वार्ता' मे संशोधन करने के उपरांत ही की होगी। इस अनुमान का आधार यह है कि जिस प्रति सं० १७०७ वि० मे यह रचना माधवकृत संशोधित मधुमालती वार्ता तथा 'माधवानल कामकन्दला' प्राप्त हुई है उसकी प्रतिलिपि भी मूल लिपिकार के हस्तलिखित ग्रन्थ से अजिम्स ही हुई होगी। मूल लेखक ने माधवानल कामकन्दला मे ही रचना तिथि दी है और संशोधित मधुमालती वार्ता के संशोधन की तिथि नहीं दी इसका अर्थ यह है कि संशोधन करने के तारतम्य मे ही उसने माधवानल कामकन्दला की रचना की। उसकी एक ही प्रति मे संयुक्त कृतियां और अंत की प्रति मे रचना तिथि देने से यही अनुमान होता है।

अतएव सं० १६०० (१५४३ ई०) से पहिले ही मधुमालती वार्ता मे माधव शर्मा ने संशोधन किया था। इस संशोधन को यदि ५ वर्ष पूर्व ही मान लिया जाय जो कम से कम समय है तो माधव शर्मा कृत मधुमालती वार्ता के संशोधित रूप का रचनाकाल सन् १५३८ ई० (१५६५ सं०) आता है। इससे चतुर्भुजदास की रचना मधुमालती वार्ता के इतने पूर्व हो चुकी थी कि वह मारु देश में 'काम रस' सम्बन्धी 'रसिकों के रस की बात' के रचयिता के रूप मे चतुर्भुज का नाम विख्यात कर चुकी थी। रचना की इस ख्याति के लिए कम से कम २५ वर्ष ही १५३८ ई० के पूर्व समझ लिये जायें तो लेखक के अनुमान मे यह रचना १५१३ ई० के लगभग चतुर्भुजदास निगम कायस्थ ने की होगी।

रचना का स्थान. रचनाकाल की भांति ही रचना का स्थान 'मधुमालती वार्ता का विवादग्रस्त है अब इसका निर्धारण भी अनुमानित है। 'मधुमालती वार्ता' के रचना काल का स्थान जानने के लिये उपर्युक्त माधव शर्मा ने संशोधित रूप में यह कथन किया है—

कायथ नाम चत्रभुज जाको, मारु देसि भयो यह ताको ॥

चतुर्भुजदास निगम का गूढ़ 'मारु देसि भयो' वाक्य से लेखक का अनुमान है कि चतुर्भुजदास का 'मारु देस में' गृह बाद में हुआ। पहिले कहीं और रहते थे जहां कि उन्होंने अपनी रचना की और रचना के उपरांत उन्हें प्रस्थान मारु देस की ओर करना पड़ा जहां कि उनकी रचना गाई गई और रसिकों में विख्यात हुई। अनुमान यह होता है कि चतुर्भुजदास कायस्थ की यह रचना भी अन्य समकालीन कायस्थ आख्यानकारों के रचनास्थल पर ही हुई होगी। समकालीन अन्य कायस्थ आख्यानकारों की शृंखला इस प्रकार है जिन्होंने ठीक इसी प्रकार अपने परिचय दिये हैं—

समकालीन कायस्थ आख्यानकारों की शृंखला:—

पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी के आख्यानकार पद्मनाभ कायस्थ और मानिक कायस्थ ने क्रमश १४०२ ई०, १४८९ ई० में वीरमदेव और मानसिंह तोमर के काल में अपनी अपनी जाति का परिचय इसी प्रकार दिया है—

कायस्थ पद्मनाभेन, रचितः पूर्व सुकृतः
—(पद्मनाभ कायस्थ)

कायथ जाति अनुप्या वासु, अमऊ माऊ कविन कौ दासु।
कथा पचीस कही वेताल पोहचो जाइ कवि के पाताल ॥
ताके वस पायई माउ, आदि कथन सौं मानिक भाउ ॥
(मानिक कायस्थ)

+ + +

१६ वीं शताब्दी ईस्वी में काशी से दिल्ली आये हुए ईश्वरदास कायस्थ ने तथा माण्डू में गणपति कायस्थ ने जाति परिचय इसी प्रकार दिया—

ईसरदास कहै कायथ सीतापति रघुनंद। ईसरदास कहै कायथ मोरे बरनि न जाई ॥
(ईश्वरदास कायस्थ)

+ + +

कवि कायस्थ कथा कहई नरगा सुत गणपति। मध्यदेस मही नर्मदा, जलकूंणि जलरासि ॥
(गणपति कायस्थ)

पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी मे कायस्थ आख्यानकार विद्याव्यसनी संस्कृतज्ञ, लोक भाषा में दक्ष थे और सर्व साधारण को जानने योग्य हिन्दी फारसी के निकट आ रहे थे। 'छिताई चरित' के संयुक्त कवि अन्तिम देवचन्द्र के आश्रयदाता दामोदर कायस्थ थे। १५१७ ई० के बाद मे जबसे गोपाचल (ग्वालियर गढ) से तोमरो का अधिकार छिन रहा था ग्वालियर मे एकत्रित तथा ग्वालियर वासी अनेक भक्त कवि कलावत, चित्रकार ग्वालियर से अनेक दिशाओ मे फतहपुर सीकरी, गोकुल, बान्धवगढ, ओरछा, गुजरात आदि स्थलो मे पहुँचे जहा उन्हें प्रश्रय मिला।

चतुर्भुजदास इन्ही आख्यानकारो की परम्परा के कायस्थ आख्यानकार प्रतीत होते हैं और समवतः इन्होने अन्य कायस्थ आख्यानकारो के साथ ही गोपाचल में रचना की हो।

'मधुमालती'—चतुर्भुजदास की रचना तिथि लगभग १५१३ ई० के आसपास होने का अनुमान दूसरे कारणो से भी पुष्ट होता है—जो इस प्रकार है।

(१) जायसी के पदमावत मे किस मधुमालती की चर्चा है? इस तथ्य पर विचार होने से चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती वार्ता' सन् १५२१ ई० के पूर्व की रचना ही अनुमानित होती है।

(२) मझन कृत मधुमालती सन् १५४५ ई० की रचना है।

(३) माधव कृत मधुमालती का सशोधित रूप १५४३ ई० मे रचा गया।

अतएव मझन एव माधव की रचनाए जायसी के बाद की है। केवल जायसी के ग्रन्थ मे उल्लिखित मधुमालती पर विचार करना होगा। जायसी ने कथा प्रसग में दिया है[1]—

विक्रम धसा प्रेम के बारा, सपनावति कह गयउ पतारा।
मधूपाछ मुगुधावति लागी गगन पूरि होइ गा बैरागी॥
राजकुवर कचनपुर गयऊ, मिरिगावति कह जोगी भयऊ॥
साधा कुवर खडावत जोगू, मधुमालति कर कीन्ह वियोगू?

जायसी ने भारतीय अनुश्रुतियो के अपने ज्ञान के आधार पर पूर्व प्रचलित हिंदुओ के कथा तत्वों को पद्मावत में उदाहरणार्थ दे दिया यद्यपि उनकी सगति नही है। क्योकि विक्रमादित्य पर—दुखभजन में प्रवृत्त रहे वे स्वय प्रणय व्यापार मे पाताल तक कभी नही गए। किसी मृगावती रचना मे राजकुअर नाम नही आया किन्तु जायसी ने राजकुअर नाम दे डाला।

---

१. जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ३ से उद्धृत।

चतुर्भुजदास की रचना में नायक का नाम मधु है और नायिका का नाम मालती है किन्तु जायसी ने इन्हें दोनों को एक ही समझकर मधुमालती को ही नायिका समझ लिया और नायक का नाम 'कुंअर" रख दिया। जायसी से यह विरासत मंझन ने ली। जायसी को कदाचित् यह भ्रम चतुर्भुजदास की निम्नलिखित चौपाई से हुआ होगा:—

चातुर चित हित सहित रिझाऊ। मधुमालति मनोहर गाऊं।[1]

'मधुमालती वार्ता' में चौपई इस प्रकार दी गई है :—

चातुर हेत सहित रिझाऊ, सरस मालती मनोहर गाऊ।[2]

जायसी की उक्त अर्धाली इस प्रकार भी देखी गई है :—

माधा कुंअर मनोहर जोगू, मधुमालति कह कीन्ह वियोगू ?

जायसी को 'मधुमालती' केवल नायिका का नाम है, यह भ्रम चतुर्भुजदास की उक्त चौपाई से हुआ है। मंझन ने 'मनोहर' को नायक बनाकर "मधुमालती" संयुक्त समास नाम रूप को नायिका बना दिया। कदाचित जायसी ने नियम चतुर्भुजदास के और भाव भी रचना के रूपान्तरित किये हैं जिसका आभास निम्नलिखित उद्धरण से मिलता है :—

चतुर्भुजदास— कबहू मैल काजि बन फिरै, मालती बिना न मनसा थिरै ॥
इह प्रीति आनु लहि कोई, पाडल फूल भवर वह होई ॥३३१॥

जायसी— भनु हौं सोई भवर औ भोगू, लेत फिरौं मालति कर खोजू।
हौं उहि बास जीय बलि देऊ, और फूल के बास न लेऊं।
जहां पाव मालति कर बासू, बारने जीव देह होइ दासू।
पीठ पानि कवला अस तपा, निसमा सूर समुद महं छपा।

चतुर्भुजदास–(जैनमाल का प्रश्न)

नख-सिख कटक ताहि, मीत प्रीत के गुन निहा।
कहु न परस्यो जाय, भवर बिलबै कौन गुन ?

मधु का उत्तर (मधु वाक्य) –(३२६)

सर पिंजर सेज्या रची, तन बेधन के हेतु।
कटाइत मधुकर भये, प्रीति जानि कै लेत ॥

1. चतुर्भुजदास कृत मधुमालती की हस्तलिखित प्रति विद्यामंदिर मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है।
2. मधुमालती वार्ता, पाठ पृष्ठ १

इस प्रश्नोत्तर का रूपान्तर जायसी में इस प्रकार मिलता है :—

जायसी— भवर मालती पँ चढे काट न आवै डीठि।
मोह भाल छाय हिय पँ फिरि देय न पीठि

चतुर्भुजदास— नौखण्ड सपन दीप लौं भटकी। निसि बासर कहू नेक न अटकी ॥३६६॥

इस नायिका द्वारा भारतीय प्रेमाख्यान में नायक की खोज करने के प्रसंग को सूफी आख्यान शैली में नायक द्वारा खोज कराकर रूपान्तरित कर दिया।

अब परवर्ती मंझन द्वारा भी चतुर्भुजदास की मधुमालती के भाव और शब्दों का रूपान्तर द्रष्टव्य है।

चतुर्भुजदास— उतपति एक मयूर प्रीति हेतु दुइ तन धरे
सु भयो पूरब लौं भव अपनो, (३६४)
मानहु आगि देखि के सपनो (५७६)
मधुमालति नाहि नर देही
एक प्रान प्रगटे तन दोही — (६२८)

निगम ने पूर्व भव की प्रीति तथा द्वापर की स्मृति में उपर्युक्त छन्द कहे थे। मंझन ने यह कथा पूर्व भव की प्रीति तथा द्वापर कथा अप्रासंगिक एवं असम्बद्ध रूप ली है।—

मंझन— आदि कथा द्वापर मो भई कलिजुग मौ भाखा जो गाई
+ + +
मोहि तोहि पूर्व प्रीति विधि सारी
+ + +
पूर्व दिनन सो जानो तो हमी प्रीति क नीव
मोहि माटी विधि मानिकै तो एह नए सरीर।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि चतुर्भुजदास की 'मधुमालती वार्ता' जायसी के पद्मावत रचना के आरम्भकाल १५२१ ई० से पूर्व की रचना है जिसमें जायसी ने प्रेम कथा के नायक-नायिका के अपनी समझ से उद्धरण दिये और मंझन ने जायसी का इस सन्दर्भ में अनुकरण किया। कायस्थ चतुर्भुजदास निगम ने संभवतः भवभूति के 'मालती माधव' पूर्वाधार के रूप में अपनी कथा के लिये पात्र चुने। मंझन माधव, नन्ददास, जान, जटमल ने इसी परम्परा में साम्प्रदायिक

१. अप्रकाशित प्रति मधुमालती, विद्या मंदिर घुरर के प्रतिलिपि से उद्धरण दिये हैं तथा क्रमांक प्रकाशित 'मधुमालती वार्ता' के उनके आगे डाला है कि ये पाठ मान्य हैं।

कृतियां निर्मित कीं और अनुसरण किया। सुदूर बंगाल और गुजरात में अनेक लौकिक आख्यान काव्यों को अनुप्राणित किया।

विवादग्रस्त काल एवं रचना स्थान
'छिताई वार्ता अथवा छिताई चरित'

'छिताई चरित' नामक ग्रन्थ की पहली सूचना हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की १९४१-४२ की रिपोर्ट में प्रस्तुत की गई। उक्त प्रति प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित है जिसका लिपिकाल १९८२ विक्रमी है। खोज रिपोर्ट में छिताई चरित के लेखक श्री रतनरंग बताये गये हैं। रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। १९४२ ईस्वी में 'विशाल भारत' के मई अंक में नाहटा-बन्धु ने 'छिताई वार्ता' की सूचना प्रकाशित की और बताया कि उक्त रचना के लेखक कवि नारायनदास हैं। प्रति का प्रतिलिपि काल १६४७ विक्रमी है। ईस्वी सन १९४६ में श्री वटे कृष्ण ने एक निबन्ध में इस ग्रन्थ की ऐतहासिकता पर विचार किया।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने दोनों प्रतियों का निरीक्षण कर 'छिताई वार्ता'—'रचयिता और रचनाकाल' निबंध में अपने विचार प्रकट किये।[2]

श्री नाहटा बंधुओं द्वारा संकलित प्रति उन्हीं के 'अभय जैन पुस्तकालय'—बीकानेर, में सुरक्षित है जिसके आरंभिक पाँच पत्र त्रुटित हैं। पुस्तक के अन्त में यह पुष्पिका दी गई है।

'छिताई वार्ता समाप्त श्री संवत् १६४७ वर्षे माघ वदी ६ दिने लिखित चेला करममी, साहराम जी पठनार्थ। शुभम भवतु। इस प्रति में नरायनदास-भणिता से युक्त पंक्तियां मिलती हैं। 'कवियन कहै नरायनदास' यह अर्धाली कई बार प्रयुक्त हुई है। इसी प्रकार कई पंक्तियों में कवि के रूप में रतनरंग शब्द का प्रयोग भी हुआ है—

रतनरंग कवियन बुधि लई सबो विचारि कथा वर्नई।
गुनियन गुनी नरायनदास तामहि रतन कियो परगास।।२०४।।

दोनों ही प्रतियों में छन्द १२८, १४३, २४२, ६६०, ७४६ आदि में तथा ३४४, ५०२ में नारायनदास 'कवि नारायनदास वाव' का नाम दिया हुआ है। साथ ही छन्द १६०, ३६८, ५०४, ५२२, ३६६ में ग्रन्थकर्ता के रूप में 'रतनरंग' का नाम आता है। दोनों प्रतियों के प्रथम लगभग ६८९ छन्दों में नारायणदास की रचना के साथ-साथ उसमें किये हुए रतनरंग के सुधार भी समान रूप से मिलते हैं। छिताई वार्ता के छन्द

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००१, वैशाख [redacted] ११४-१२१, माघ, पृष्ठ १३७-१४७
२. त्रैमासिक आलोचना, अंक १६, नवम्बर १९५५, पृष्ठ ६७-७३

(३६८) में भी 'रतनरग कवि' ज्ञात होता है—'रतनरग गुनियन गुन गुनी'। छद ३५६ ५०४ में 'रतनरग वाच' नाम आता है।

इन उल्लेखो से पता चलता है कि 'कविजन' अथवा 'गुणीजन' (नारायणदास) से बुद्धि और कल्पना लेकर रतनरग ने उसको विकसित किया। इन उद्धरणो मे आये हुए 'कवियन' और 'गुनियन' शब्द नारायणदास के लिये प्रयुक्त हुए है। नारायनदास रतनरंग के अपनी-अपनी छाप के अतिरिक्त शेष छन्द कितने किसके हैं यह भी नहीं कहा जा सकता।

वृहत् खरतर गच्छीय ज्ञान भडार, बीकानेर की प्रति जिसकी पुष्पिका ऊपर उद्धृत की जा चुकी है। इसका प्रतिलिपिकर्ता कोई 'करम सी' है—'चेला' इस प्रति मे प्रारम्भ मे छद ६१ तक तथा छद २६६ के उत्तरार्ध से छद २८१ के पूर्वार्द्ध तक छद ३८८ के उत्तरार्ध से छद ४५४ तक नहीं है। अक्षर तथा चरण तक छूटे हुए हैं। छद सख्याए देने मे भूल हुई है। इसे 'क' प्रति छिताई वार्ता में कहा गया है।

प्रति 'श्री०' इलाहाबाद म्युनिसिपेलिटी के म्युजियम प्रयाग-सग्रहालय की है जो १६८२ स० की है। इसके प्रतिलिपिकार 'श्रीराम काइथ' हैं। ये दोनो प्रतिया किसी किसी सामान्य पूर्वज की सन्तानें है। श्री० प्रति के अनुसार 'चरित छिताई आयौ छेड़' (७६०) रचना का नाम छिताई चरित है किन्तु इसकी पुष्पिका मे 'छिताई कथा' लिखा गया है। रचना के प्रारभिक ६१ छन्द दोनो प्रतियो मे नहीं है। इन दोनो प्रतियो के अन्तिम ८०-८५ छद परस्पर सर्वथा भिन्न हैं।

इस बीच एक और प्रति श्री अगरचद नाहटा को उपलब्ध हुई जिसके आधार पर श्री नाहटा ने लेख[2] लिखा तथा श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने भी लिखा। इन लेखो के आधार पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'छिताई वार्ता की एक नव प्राप्त प्रति' शीर्षक से सपादित ग्रन्थ की प्रस्तावना मे विचार प्रकट किए। नव प्राप्त प्रति के छद १०२१-१०२२ का उद्धरण प्रयाग सग्रहालय की प्रति मे छद ७५५ के पूर्वार्द्ध तथा ७५७-७६० के रूप मे आता है। प्रयाग सग्रहालय की प्रति का छद क्रमाक ७२६ इस नव प्राप्त प्रति में छूटा हुआ है—

त्यो बिनु कलम कथा आरम्भ। लोनी बरणि कथा नवि रग।

नव प्राप्त प्रति मे चतुष्पदी के प्राय: सभी चरन १६ मात्राओ के हैं जबकि प्रयाग की प्रति मे वे १५ मात्राओ के हैं तथा ७६० छदों पर समाप्त होती/ति किन्तु नव

१. छिताई वार्ता, छद ५०४, पृ० ८४, भूमिका पृ० २२
२. श्री अगरचद नाहटा - मध्यप्रदेश सदेश, १६ अप्रैल १९५८

प्राप्त प्रति मे १०२२ छंद हैं ये अधिक ७६२ छंद किन कारणों से बढ़े इसके समाधान में किसी देवचन्द द्वारा रचना को और अधिक पूर्ण बनाने के लिये पाठ-वृद्धि को जाना ज्ञात हुआ। नवप्राप्त प्रति को प्रयाग की प्रति की परम्परा मे बहुत नीचे की पीढ़ी मे माना गया है। देवचन्द ने यह कहा है[1]—(छंद २६६ से २७२ तक)

आधी कथा सुननि सुख भइयो। हँसि दिउचन्द कवि बूझन लइयो।
कहि कविदास ही धरि भाउ। जिसउ छिताई केरीउ उपाउ॥
मरम कथा मेरे जिय रहई। कीनि चलइ दमोदर कहई॥२६७॥
कायथ वंश तमोरी जाता। गोबर गिरी तिनकी उतपाता।
तिनको बध्यो दिउचदु माहीं। कही कथा सुख उपनो ताही॥२६८॥
धर्म नीति मारग विउपरही। बहुत भगति विप्रन की करही।
देवी सुत कवि दिउचदु नामु। जन्म भूमि गोपाचल गाऊ॥२६९॥
जैसी सुनी खेमचद पासा। तैसो कवियन कही प्रयासा।
प्रथम नवनि गनपति कह होई। मुनि चउपही हसउ जानि कोई॥२७०॥
जहा होइ पदु अछर हानि। गुनो चतुर तुम लीजहु वानी॥
आधी कथा नराइन कही। सम्पूर्ण दिउचदु उचारी॥२७१॥
जसु पनह कीरति लिख लेहु। पढवे करहु गुनिजन देहु॥२७२॥

किसी देवचद ने दामोदर कायस्थ की प्रेरणा से कथा कही। दामोदर कायस्थ वंश तमोली जाति के थे जिनकी गोबरगिरि मे उत्पत्ति हुई थी। देवचंद देवी के पुत्र थे जिनकी जन्मभूमि गोपाचल (ग्वालियर) थी।[2] इन देवचंद ने कथा खेमचंद से सुनी थी। देवचंद के अनुसार नारायणदास ने कथा आधी ही कही थी और देवचंद ने उसे सम्पूर्ण रूप से कहा। 'आधी' का आशय डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने 'अपर्याप्त विस्तार' मे लिया है। रतनरंग के बाद जो पाठ-वृद्धि हुई उसके कर्ता देवचन्द्र प्रकट होते हैं। दामोदर और देवचद का सवाद छंद २७३, २७४, २७५ में आता है। इन तीनों प्रतियो के आधार पर 'छिताई वार्ता' तथा 'छिताई चरित' का सपादन किया गया है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'छिताई चरितम्' अथवा 'छिताई वार्ता' का मूल लेखक नारायणदास कवि था। रतनरंग ने 'अनमिती मिलाई' यही प्रकट किया है कि रतनरंग का योगदान कुछ संशोधन में है। कथा विस्तार देवचद ने किया है।

नारायणदास कवि के आत्मोल्लेख के कारण रचनाकाल पर कुछ प्रकाश पड़ता है।[3]

१. श्री हरिहरनिवास द्विवेदी : मध्यप्रदेश संदेश, १० मई १९५८
१. छिताई वार्ता, प्रस्तावना, पृष्ठ ७ से उद्धृत।
२. छिताई वार्ता, प्रस्तावना, पृष्ठ ८
३. वही, प्रस्तावना, पृष्ठ १०

देस मारवो कचन खाना । लोग सुजानु विवेकी दाना ॥
महानगर सारगपुरि भलो । तिह पुरि सलहदीन जागलो ।
खाण्डे दान इमरउ करनू । विक्रम जिउ दुख दारिद हरनू ॥
दुरगावती तासु वामगु । जनु रति कामदेव कर सगु ॥
तिहि पुर कवि दयोहरिउ भयो । कथा करन मन उद्यम भयो ॥
हरिपुरिसलह भयो हुलासू । विरसिंघ बश नारायणदासु ।
पदरह सइम तेरासी माता । कछुवक सुनी पाछिली वाता ।
सुदि असाढ सानइ तिथि भऐ । कथा छिताई अरन लई ।
करुणा नीति वीर विसतरई । अद्भुत रूप भयानक करई ।
अरु सिगु करऊ वीर सिंगार । नव रस कथा करइ विसतार ।
जपइ विष्णु नारायणदासु । मरइ पूल ओवइ दिन वासू ॥[1]

आशय यह है कि सवत १५८३ मे नारायणदास ने छिताई की पिछली वार्ता सुनी और तब उक्त सवत की आपाढ शुक्ला ७ को छिताई की कथा कहना अगीकार की। इस कथा मे करुणा नीति, वीर रस, भयानक, शृगार आदि नवरसो का समावेश किया। यह कथा नारायणदास ने यह जानकर प्रस्तुत की कि इसके द्वारा उनकी कीर्ति रूपी सुगध शेष रहेगी भले ही उसका पुष्प रूप शरीर कालान्तर मे नष्ट हो जाय।

सारगपुर मे 'सलहदीन जागला' था वहा दैवी विपत्ति मे कवि गया था। छिताई वार्ता मे इसी प्रसग मे डा० माताप्रसाद गुप्त ने यह लिखा—'उस सारगपुर मे कवि दयोहरि (दैवी विपत्ति ?) मे गया-उसका मूल निवास स्थान कही और था—और वहा कथा-रचना की उसे इच्छा हुई। कवि का नाम नारायणदास था और वह वीरसिंह के वश मे उत्पन्न था।'

ऐतिहासिक सूत्र से पता चलता है कि सलहदी (शिलादित्य तोमर) तॅवर बाबर-नामा के अनुसार ग्वालियर वासी था। यह राणा सागा का रिश्तेदार एव सामन्त भी था और सारगपुर, रायसेन का शासक था इसके पूर्वज 'कुरु जागल' के रहे होंगे जिससे यह 'जागला' कहलाया।

सन १५२६ ईस्वी मे गोपाचल (ग्वालियर) के वीरसिंह तोमर के वशज विक्रमादित्य तोमर ने राजपूतो को एकत्रित कर प्रथम पानीपत के युद्ध मे बलिदानी रण कंकण पहिना। राजपूत मेदिनीराय चन्देरी मे सलहदी का मित्र था हो जो स्वय इस युद्ध मे शरीक हुआ था। इस प्रकार नारायणदास, वीरसिंह तोमर सस्थापक, तोमर राजवंश-का—'दास', आश्रित कवि था। विरसिंह बश नरायण 'दासु' मे 'दासु' श्लेष है। इससे पूरी ऐतिहासिकता से अर्द्धाली की सगति बैठ जाती है।

1. छिताई वार्ता, प्रस्तावना, पृष्ठ ११, १२

कवि के रूप में (तोमर) वीरसिंह के वंशजों के आश्रय के कारण उसे उस वंश का दास भले ही माना जाय। 'कवि नारायण' (दास) का मूल निवास स्थान वीरसिंह (तोमर) के वंशज मानसिंह तोमर के आश्रय में गोपाचल गढ़ ही था जिसका शासक विक्रमाजीत (विक्रमादित्य तोमर) प्रस्तुत कथा कहने की तिथि आषाढ़ सुदि सप्तमी १५८३ वि० (रविवार, १७ जून १५२६ ई०)[1] के पूर्व २१ अप्रेल १५२६ ई० को ही (लगभग दो माह पूर्व) वीरगति पा गया था। अन्तिम रूप से आसरा नष्ट हो जाने पर कवि नारायणदास इसी दैवी विपत्ति में सारंगपुर ग्वालियर वासी (शिलादित्य तोमर) सलहदी तवर[2] के शासन सारंगपुर में आश्रय खोजने पहुंचा।

इस प्रकार नारायणदास तथा देवचन्द्र अंतिम कवि गोपाचल निवासी ही थे और देवचंद्र ने तो स्पष्ट ही गोपाचल गढ़ पर प्रस्तुत रचना में वृद्धि की है।

अनुमान यह है कि नारायणदास इस दैवी विपत्ति में सारंगपुर में रचना को क्या करते? रचना तो वह मानसिंह तोमरकाल में ही कर चुके होंगे। इस दृष्टि से छिताई चरित या नारायणदास का रचनाकाल इन ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से १४८६-१४९१ ई० तक अनुमानित है।

डॉ० राजाराम जैन ने अपने लेख "ग्वालियर के तोमरवंश राजाओं का साहित्य एवं कला प्रेम" में इस प्रकार कथन किया है -'जिस रइधू की चर्चा ऊपर हो चुकी है उसने कीर्तिसिंह से राज्याश्रय प्राप्त किया एवं अपभ्रंश में 'सावयचरिउ' नामक एक विशाल ग्रन्थ का प्रणयन किया कवि नारायणदास ने भी इसी समय छिताई चरित की रचना की। यद्यपि असामयिक मृत्यु के कारण वह उसे पूर्ण न कर सके। लेकिन रतनरंग एवं देवचन्द्र नामक उनके दो सुयोग्य शिष्यों ने उसे पूर्ण किया।[3]

रतनरंग ने तो कोई मुख्य रचना नहीं की, देवचंद्र ने भी अधिक से अधिक १५१९ ई० के पूर्व ही छिताई चरित में अपनी कथा-वृद्धि करदी होगी। ऐसा अनुमान है।

विवादग्रस्त लेखक, काल एवं स्थान :—

हितोपदेश ग्रन्थ का गद्यानुवाद :—

नीति कथाओं में हितोपदेश का पंचतंत्र के बाद नाम आता है। इसके रचयिता नारायण पंडित थे। जिनके आश्रयदाता बंगाल के राजा धवलचन्द्र थे।[4] हितोपदेश

१. छिताई चरित, व्याख्या, पृष्ठ १६२ टिप्पणी (१)
२. रायसेन का शासक सलहदी तवर—लेखक डॉ० रघुबीरसिंह सीतामऊ-मालवा, परिशिष्ट ५, छिताई चरित पृष्ठ ४२७-४२६ तथा बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास-गोरेलाल पृष्ठ ८६
३. मध्यप्रदेश संदेश, १८ मार्च १९६० पृष्ठ ६
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास-पृष्ठ ४२६ (१९६२ ई०) सातवा संस्करण (बलदेव उपाध्याय)

ग्रन्थ का गद्यानुवाद 'मध्यदेशीया भाषा' पुस्तक में प्रकाशित हुआ है जिसकी पुष्पिका में यह उल्लेख है :—

> "इति श्री हितोपदेश ग्रन्थ ग्वालेरी भाषा लवध
> प्रगासेन नाम पचमो आख्यान हितोपदेश सम्पूर्ण"[1]

इसका अनुवाद अनेक आख्यानों में प्रथक २ अध्यायों में किया गया है।[2]

श्री नाहटाजी इस गद्यानुवाद कारचनाकाल १७वी एव १८वी शताब्दी का कहते हैं। श्री हरिहरनिवासजी का मत है कि प्रस्तुत 'हितोपदेश' का गद्यानुवाद १५ वी शताब्दी के अत तथा १६ वी शताब्दी के प्रारभ का है।

विवादग्रस्त साहित्य लहरी के दो पद :—
सूरदास का गोपाचल से सबंध ? —

सूर पर अनेको टीकायें निकल गई किन्तु सूर का जीवन चरित्र तथा उनकी साहित्य लहरी के दो पद अभी भी विवादास्पद बने हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में सूर का गोपाचल से सबध सास्कृतिक रहा अथवा नहीं इस सदर्भ में-केवल साहित्य लहरी वाले वश परिचय के पद की परीक्षा करना है तथा उस सम्बन्ध में अब तक विद्वानो के क्या विचार हैं ? उन पर वास्तविक तथ्यो के प्रकाश मे अपने विचार प्रकट करना है।

मिश्र बन्धुओ ने साहित्य लहरी सूर कृत माना है।[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[4] ने सूर की जन्मभूमि रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाव मानी है जो मथुरा से आगरा जाने वाली सडक पर है। वार्ता के अनुसार सारस्वत ब्राह्मण पिता रामदास नामक थे। किन्तु स० १६६७ के सस्करण मे सूर के ग्रन्थो मे साहित्य लहरी का भी हवाला दिया गया है और जन्मभूमि रुनकता नहीं लिखी।[5]

सूर के साहित्य लहरी वाले पद के बारे मे डॉ० दीनदयालु गुप्त ने कहा है कि यह पद किसी टीकाकार या लिपिकार ने मिलाया था।[6]

श्री प्रभुदयालु मीतल ने 'सूर निर्णय' मे कुछ पदो को प्रामाणिक तथा कुछ को अप्रामाणिक माना है।[7] डॉ० वृजेश्वर वर्मा ने अन्तसाक्ष्य के रूप मे उपस्थित पद

१. मध्यदेशीया भाषा परिशिष्ट पृष्ठ २०४
२. वही, पृष्ठ १६३ लगायत २०४
३. हिन्दी नवरत्न, पृ० २२६ (मिश्र बन्धु)
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास स० १६६० सस्करण, पृष्ठ १५२
५. वही, स० १६६७ का सस्करण, पृष्ठ १६३ (आचार्य शुक्ल)
६. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ ६२
७. सूर निर्णय, पृष्ठ ३,६

जीवन की सामग्री के लिये प्रक्षिप्त माना है। सूर का जन्म और निधन सम्वत क्रमश. स० १५३५-१६३८ स० आयु १०३ वर्ष (१४७८ ई०-१५८१ ई०) मानी गई है। किन्तु श्री प्रभुदयालु मीतल स० १६२३ (१५६६ ई०) मे सूरदास और अकबर की भेंट मथुरा मे होना बताते हैं।[1]

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि अकबर और सूर की भेंट हुई थी।[2] डॉ० दीनदयालु गुप्त अकबर और सूर की भेंट १५७६ ई० मे अजमेर यात्रा से फतेहपुर सीकरी को लौटते हुए रास्ते मे मथुरा मे होना मानते हैं।[3]

हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता पर लिखी गई 'भावप्रकाश विवृति' मे इस प्रकार चर्चा है—"सो सूरदास दिल्ली के पास चारि कोस उरे मे एक सीही ग्राम है सो ता ग्राम मे एक सारस्वत ब्राह्मण के यहा प्रकटे"।[4]

प्रथम तो वार्ता साहित्य ही असंदिग्ध नही है। गोकुलनाथ जी का समय (१५५१-१६४० ई०,) हरिराय जी का समय (१५६०-१७१५ ई०) बताया गया है।[5]

हरिराय जी सूर के समकालीन नही थे १५८१ ई० मे सूर का स्वर्गवास हो गया था और हरिराय जी का जन्म ही नही हुआ था। सुने सुनाये आधार पर कितनी बात प्रामाणिक लिखी गई या लिखी जा सकी, कितनी स्मृति समय पर स्थिर रह सकी ? ये बात सन्देह से परे नही। वार्ता साहित्य जो डायरी या रोजनामचे की तरह समकालीन व्यक्ति द्वारा नही लिखा गया, केवल अन्य साक्ष्य एवं परिस्थितियों के साथ ही विचारणीय है।

—"वास्तव मे देखा जाय तो श्री हरिराय जी-कृत टिप्पण का नाम 'भावप्रकाश' मौलिक रूप मे नही मिलता (इसे स० १७५२ वाली वार्ता प्रति 'ख' से सबोधित किया गया है वक्तव्य पृष्ठ ४) "ताको भाव कहत है" "तहां सदेह होत है," "ताको हेतु यह है "आदि शब्दों से प्रारभ होने वाले वाक्यो को भाव प्रकाश समझा जाता है। वार्ता मे कई स्थलो पर लिखा मिलता है—"ताको भाव श्री हरिरायजी आज्ञा करत है "यह वाक्य ऐसा है जो न तो मूल वार्ता का ही हो सकता है और न श्री हरिराय जी का हो।"[6]

---

१. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयालु मीतल पृष्ठ १२८, १३६ एवम् सूर निर्णय [illegible] ९१
२. अष्टसखान की वार्ता, पृष्ठ ११५, अष्टछाप कांकरोली पृष्ठ २४, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय —डॉ० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ २०२।
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० गुप्त, पृष्ठ २१६
४. अष्टछाप (कांकरोली) [illegible] २, डॉ० गुप्त, पृष्ठ १६७
५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० गुप्त पृष्ठ ७८
६. अष्टछाप (कांकरोली) वक्तव्य पृष्ठ ४, ६

वस्तव्य मे आगे यह भी बताया गया है कि 'भावप्रकाश' की रचना सं० १७३५ (१६७८ ई०) के लगभग हुई है स० १७२६ (१६७२ ई०) तक भावप्रकाश नहीं रचा गया क्योंकि हरिरायजी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट ने 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम मे हरिरायजी कृत ग्रन्थो की सूची दी है जिसमे भावप्रकाश का नाम नहीं मिलता।[१] इस भाव प्रकाश की रचना सूर के १०० वर्ष बाद हुई है। उससे पहले वार्ता साहित्य में सूर के जीवन की ओर कोई सकेत नहीं है। हो सकता है कि उनको जो सूचनाए मिली हों कुछ अतिरजित अथवा भ्रान्तिपूर्ण हो परन्तु अन्य पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इतने से ही सन्तोष करना पड़ता है।[२]

डॉ० हरिवशलाल ने कवि मियासिंह कृत 'भक्त विनोद' मे सूर की जन्मभूमि के विषय मे यह पक्ति मानकर सीही' की छाप लगादी है :—

"मथुरा प्रान्त विप्र कर गेहा, सो उत्पन्न भक्त हरिनेहा"

इस पक्ति मे कही भी ग्राम की चर्चा नहीं कि किस ग्राम में सूर कहा उत्पन्न हुए ? 'भक्त विनोद' मे सभवत सूर को किसी यादववंशी का मित्र कहा गया है, तोमर राजवश यादव वशी ही था।[३]

इससे स्पष्ट है कि सूर का जन्म न तो रुनकता मे हुआ और न 'सीही' में लगभग १०० साल बाद की रचना के मुकाबले मे समकालीन इतिहासकार अधिक विश्वसनीय है। कवि मिया सिंह की पंक्ति से सूर का जन्मस्थान निश्चित नही किया जा सकता। केवल अन्त,साक्ष्य पर ही विश्वास किया जा सकता है।

साहित्य लहरी का "मुनि पुनि रसन के रस लेख"—"दसन गौरी नन्द को मुत सुवल सम्वत पेखि" से डॉ० मुशीराम शर्मा के अनुसार (१५७० ई०) वृषभ सवत[४] स १६२७ वैसाख सुक्ल तृतीया कृति का नक्षत्र रविवार सुकर्म योग, आता है जिस दिन यह सम्वत् पड़ता है इससे भी सुबल सम्वत और कौनसा हो सकता है ? अतएव सं० १६२७ (१५७० ई०) साहित्य लहरी की रचना तिथि समीचीन है।

सूर की 'साहित्य लहरी' जिसे सूर की कृति तो अधिकांश वे विद्वान भी मानते हैं जो वश परिचय वाले पद को प्रक्षिप्त मानते हैं-मैं उसी वश परिचय वाले पद पर विचार करते समय समीक्षकों की मुख्य आपत्तियो पर अपना अभिमत प्रकट करना है- पद इस प्रकार है :—

४. वही, पृष्ठ ८

१. सूर और उनका साहित्य-डॉ० हरवशलाल शर्मा, पृष्ठ ३२, सशोधित सस्करण

२. टाड-एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान, पृष्ठ ६३

२. सूरदास का काव्य वैभव-डॉ० मुन्शीराम शर्मा, पृष्ठ १० सन १९६९ प्रथम प्रकाशन कानपुर।

प्रथम ही प्रभु यज्ञ तें भे प्रकट अद्भुत रूप
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप
पान पय देवी दयो सिव आदि सुर सुख पाय
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय

पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन, तासु बंश प्रसंस मे भौ चंद चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हो तिन्हें ज्वाला देस, तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस।
दूसरे गुनचन्द तासुत सीलचन्द स्वरूप, वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रणथौर हमीर भूपत संग खेलत जाय। तासु बंश अनूप भो हरिचंद अति विख्याय॥
आगरे रहि गोपचल मे रह्यो ता सुत वीर। पुत्र जनमे सात ताके महाभट गम्भीर॥
कृष्णचंद उदारचन्द जो रूपचन्द सुभाइ। बुद्धिचन्द प्रकाश चौथे चंद मे सुखदाइ॥
देवचंद प्रबोध षष्टमचंद्र ताको नाम। भयो सप्तम नाम सूरजचंद मन्द निकाम॥
सो समर कर साहि से सब गये विधि के लोक। रहो सूरजचंद दृग से हीन भरवर शोक॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार। सातवें दिन आई यदुपति कियो आप उधार॥
दिव्य चख दे कही शिशु सुन योगवर जो चाइ। है कही प्रभु भगति, चाहत शत्रुनाश स्वभाइ॥
दूसरो ना रूप देखे देख राधा श्याम। सुनत करुणा सिन्धु भाखी एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वै है नास। अखिल बुद्धि विचार विद्यामान माने मास॥
नाम राखे है सु सूरजदास, सूर सुश्याम। भये अन्तरधान बीते पाछली निशि याम॥
मोहि मनसा इहै ब्रज की बसी सुख चित थाप। थी गुसाई करी मेरी आठ मध्ये छाप॥
विप्र प्रथ ते जगा को है भाव सूर निकाम। सूर है नन्द नन्दजू को लियो मोल गुलाम॥[1]

(साहित्य लहरी, सूरदास)

आचार्य शुक्ल ने-'प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते सत्रु ह्वै है नास' का अर्थ यह लिया है कि इससे पेशवाओं की ओर संकेत है।[2] किन्तु यह संकेत है सूर का गोदावरी तट से पधारने वाले वल्लभाचार्य की ओर। शत्रु भी मुगल नहीं है। शत्रु है मानसिक विकार जो महाप्रभु के स्पर्शमात्र से नष्ट हो गये थे और जिनके लिए यह वरदान मांगा गया है "है कही प्रभु भगति, चाहत शत्रु नास सुभाई"। कृष्ण भगवान ने 'एवमस्तु' कहा और वरदान दिया "प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते, शत्रु ह्वै है नास"। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू राधाकृष्णदास, डॉ० मुंशीराम शर्मा,[3] डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ० ऊषा गुप्ता,[4] श्री प्रभुदयाल मीतल, ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने इसे सूरकृत ही माना

१. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ९९-१००
२. रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १५१
३. डॉ० मुंशी शर्मा-सूर-सौरभ, पृष्ठ १८, १९
४ डा० ऊषा गुप्ता-कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, पृष्ठ २६८

है। किन्तु डॉ० मुंशीराम शर्मा गोपाचल और गऊघाट को अभिन्न मानते हैं गोपाचल और गऊ घाट में एक दूसरे का नाम साम्य, अर्थ साम्य, अथवा इतिहास का साम्य भी नहीं है। 'गोपाचल' मध्ययुगीन लौकिक आख्यान काव्यों में केवल ग्वालियर गढ के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

डॉ० दीनदयालु गुप्त की एक आपत्ति यह है[1] कि सूर की शरणागति के समय विट्ठलनाथ का जन्म ही नहीं हुआ था अतएव 'आठ मध्ये छाप' असंगत है। किन्तु सूरदास की अष्टछाप में गणना की जाती है यह सर्वसम्मत है, दूसरी बात यह भी सर्वसम्मत है कि 'अष्टछाप' की स्थापना विट्ठलनाथ गुसाईं ने की जो वल्लभाचार्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे।[2] अब रहा सवाल शरणागति के समय विट्ठलनाथ के जन्म न लेने का, ये प्रश्न 'अष्टछाप' में गणना करने से असम्बंधित है। 'सूर' की शरणागति आचार्य वल्लभ के चरणों में हुई। आचार्य वल्लभ के चार शिष्य तथा चार विट्ठलनाथजी के स्वयं के शिष्य थे आठों मिलाकर विट्ठलनाथजी ने अपने जीवन में श्रीनाथ मंदिर में संकीर्तन हेतु संकीर्तनकार नियत किये थे जो 'अष्टछाप' कहलाते हैं। अतएव 'सूर' का आत्म परिचय अपनी जगह इस आपत्ति को बाधक नहीं बनने देता।

मध्ययुगीन समस्त भक्त कवियों, संगीताचार्यों ने अपने काव्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से अपना अथवा अपने पूर्वजों का परिचय दिया है। सूर ने प्राकृत जनों का गुणगान नहीं किया किन्तु अपने पूर्वजों को कोई भी कवि या भक्त असाधारण ही मानता है उन्हे देव समझता है। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार पुत्र पर कर्तव्य होता है कि वह अपने पूर्वजों का श्राद्ध करे, पूर्वजों के प्रति श्रद्धा ही उनका श्राद्ध है। सूर भक्त होने के बाद भी इस नैतिक कर्तव्य से च्युत नहीं हो सकते थे। अतएव यह आपत्ति "कि सूर अपना वंश परिचय क्यों देते" निर्बल हो जाती है।

एक आपत्ति यह भी है कि ८४ वार्ता में 'सारस्वत' लिखा है। इस पद में यह भट्ट या राव कहे गये हैं। ८४ वार्ता की सूर सम्बन्धी जन्मस्थान वाली बात के अनुसार 'स्थान' ही अस्तित्व में नहीं है। ८४ वार्ता ही कितनी संदेहजनक है उसे देखते हुए स्वयं 'सूर' की अन्तःसाक्ष्य क्यों नहीं मानी जाय? ८४ वार्ता में सूर के आत्म परिचय के छन्द को उद्धृत करने की भी आवश्यकता नहीं थी। तुलसी, कबीर जब अपने परिचय को ठीक नहीं दे सके तो उन्हें सूर के वंश परिचय देने की क्या आवश्यकता थी? डॉ० मुंशीराम शर्मा के अनुसार चन्दबरदाई ने स्वयं अपने को सारस्वत लिखा है।[3]

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त-अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय, [illegible] ६२
२. अष्टछाप (कांकरोली) पृष्ठ १४.
३. सूरदास का काव्य वैभव-डॉ० मुन्शीराम शर्मा सोम, भूमिका पृष्ठ 'च'

सूर के नामों के विवाद पर सम्यक विचार किया जाने से नामो में भी भिन्नता नही रहती। 'अष्टछाप' कवियों में सूर के नाम के सम्बन्ध में भी 'भावप्रकाश' में वर्णित विचार कृपया उन विद्वानों को विचारणीय हैं जो 'भावप्रकाश, ८४ वार्त्ता को संदिग्ध मानते हुए भी मानने पर विवश हैं।' ८४ वार्ता-गोकुलनाथ में सूर की जाति नही है। भावप्रकाश १०८ पत्र १३ पंक्ति के अन्तर भावप्रकाश की भाषा इस प्रकार है[1] —

"सो इन सूरदासजी के चारि नाम हैं। श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होई सो रण में सों पाछो पाव नाही देय, जो सबसो आगे चले। तैसेई सूरदास जी की भक्ति दिन दिन चढ़ती दिशा भई। तासों श्री आचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्री गुसाई आप 'सूरदास, कहते। सो दास-भाव में कबहू घटे नाही। ज्यों-ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यो-त्यो सूरदास जी को दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी को कबहू अहंकार मद नाही भयो। सो 'सूरदास' इनको नाम कहे।"

इस उद्धरण "भावप्रकाश" से ही सूर के चारनाम सूर, सूरदास, सूरजदास, सूर-श्याम होना प्रामाणिक है तथा 'सूर' शब्द अन्धत्व का द्योतक भी नही बल्कि वार्त्ता के अनुसार भक्ति में शूरता का द्योतक है। आचार्य वल्लभ के 'सूर' भक्ति में शूर होकर भी दीन थे अतएव उन्हे विट्ठलनाथ गुसाई ने 'सूरदास' कहा।

आगे यही वार्त्ता कहती है—"और तीसरो इनको नाम 'सूरजदास' है जो-श्री स्वामिनी जी के ७ हजार पद सूरदास जी ने किये हैं, तामें अलौकिक भाव वर्णन किये हैं। तासों श्री स्वामिनी जी कहते जो-ये सूरज हैं। जैसे सूरज सो जगत मे प्रकाश होय सो या प्रकार स्वरूप को प्रकाश कियो। सो अब श्री स्वामिनी जी 'सूरदास' नाम धरयो, तब सूरजदास जी ने बोहोत कीर्तनन में 'सूरज' भोग धरे और श्री गोवर्धननाथजी ने पचीस हजार कीर्तन आयु सूरदासजी को करि दिये। तामें 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदासजी के कीर्तन में यो चारो 'भोग' कहे हैं।"

इस प्रकार ये आपत्तियां कि उनके अन्य नामो के कारण ये पद प्रक्षिप्त हैं अपने आपमे निरर्थक हो जाती है क्योंकि इनका समाधान उसी 'भावास्यविवृति' में है।

यह उल्लेखनीय है कि सं० १६९७ वाली मूल प्रति में केवल ये शब्द हैं—

(१) श्री सूरदास जी

'अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जो तिनके पद गाइयत हैं सो गऊघाट ऊपर रहते, तिनकी वार्ता"—

---

१. अष्टछाप (सं० १६९७ की वार्ता और भावप्रकाश) प्राचीन वार्ता रहस्य द्वि० भाग, सं पो० कण्ठमणि शास्त्री, सं० २००६ संस्करण, कांकरोली, भावप्रकाश, पृ० १३)।

इस मूल प्रति स० १६६७ वाली में "सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सीही गाम है तहां रहते" ये शब्द नहीं है। ये शब्द भावप्रकाश (स० १६६८ विद्या विभाग कांकरोली से प्रकाशित) में हैं। वार्ता की मूल प्रति स० १६६७ वाली तथा भावप्रकाश दोनों को मिलाकर संयुक्त पुस्तक स० २००६ के संस्करण में कांकरोली से प्रकाशित हुई है।

जब सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य थे तब मूल वार्ता की प्रति स० १६६७ वाली में सूरदासकी जाति व स्थान का उल्लेख क्यों नहीं हुआ। भावार्थविवृत्ति में ही उल्लेख होने का अर्थ ही यह है कि केवल सम्प्रदाय महिमा, ब्रज महिमा प्रकट करने की दृष्टि वार्ताकारों की रही और किसी भी तथ्य को महत्वपूर्ण मानना तथा किसी भी तथ्य को महत्वहीन समझकर उल्लेखनीय न समझना यह उनके स्वयं की रुचि तथा विवेक पर निर्भर था।

"भावप्रकाश" पर विचार करने से सूर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में यह वार्ता सोद्देश्य गढ़ी हुई प्रतीत होती है। उदाहरण देखिये—

'संयुक्त वार्ता' स० २००६ के कांकरोली के पृष्ठ ५, ६, ८ द्रष्टव्य हैं। इनके अनुसार ६ वर्ष का बालक एक तालाब के पास पीपल के नीचे पहुंचा। जमींदार ने झोपड़ी डलवादी वहीं सूर १८ वर्ष की आयु तक रहे—(१)—"ता पाछें वा जमींदार ने सब पास जने के आगे बात करी जो—फलाने को—बेटा 'सूरदास'। बड़ो ज्ञानी है + + जो —अरे तू फलाने सारस्वत को बेटा है . या प्रकार सूरदास तालाब मे पीपर के वृक्ष के नीचे बरस अठारे के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास को वैराग्य भायो।"

सो ऐसे करत सवारो भयो। तब एक सेवक कों पठाय माता पिता को बुलाय सब घर उनको सोंपिदयो।"

(२)—"सो यह विचारिके सूरदास मथुरा के और आगरे के बीचो बीच गऊघाट है तहां आइके श्री यमुनाजी के तीरस्थल बनाइके रहे।"

(३)—"सूरदास को कठ बहोत सुन्दर हतो सो गान विद्या मे चतुर और सगुन बताइवे में चतुर। सो उहां हू बहोत लोग सूरदासजी के पास आवते।"

"उहां हू सेवक बहोत भये सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये"

६ वर्षीय बालक को 'सीही' से चार कोस ऊपर एक ग्राम, तालाब ग्राम के बाहर पीपल के नीचे किसने "गान विद्या" सिखाई? केवल गाना ही नहीं-वार्ता में "गान विद्या" है। ये शास्त्रीय सगीत सूर ने कहां व कैसे सीखा? जन्म के बाद लगभग १५१० ई० में ३१, ३२ वर्ष की आयु मे आचार्य वल्लभ के चरणों में शरणागति सूर को प्राप्त होना कही जाती है। उस समय मे वे 'पद' बनाते थे।

'कृष्ण भक्ति काव्य में संगीत' विषय पर शोध ग्रन्थ में डॉ० ऊषा गुप्ता ने इस पर स्वयं भी आश्चर्य प्रकट किया है कि सूरदास के संगीत गुरु कौन थे ? संगीत की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ ग्रहण की ? इस विषय में ग्रन्थ में कोई उल्लेख नहीं है डॉ० ऊषा गुप्ता ने यह भी लिखा है कि वल्लभाचार्य से प्रथम भेंट होने पर सूरदास ने उन्हें विनय के पद गाकर सुनाये थे । वल्लभ सम्प्रदाय में प्रवेश करने से पूर्व ही सूरदास गंधर्व विद्या में पारगत हो गये थे ।"[1]

सूरदास ने देसाधिपति (अकबर) के आगे जो पद राग विलावल सुनाया । --"सो भगवदिच्छा ते सूरदास जी मिले सो सूरदास सौं कह्यो देसाधिपति ने जो सूरदास जी मैं सुन्यो है जो तुमने विसन पद बहुत कीये हैं—तातें तुमही कछु गावो । तब सूरदास ने देसाधिपति के आगे कीर्तन गायो । सो पद राग विलावल । 'मना रे तू करि माधो सें प्रीति ।"[2]

इस प्रकार 'वार्ता साहित्य' से सूर के विष्णुपद रचने और गंधर्व विद्या मे पारगत होने के तथ्य का समाधान नहीं होता । दूसरी ओर तथ्यों से मेल खाता हुआ तथा ऐतिहासिक प्रमाण यह भी उपलब्ध होता है कि सूरदास चंद के वंशधरों की नागौरी शाखा के वर्तमान प्रतिनिधि पंडित नानूराम भट्ट के पूर्वज थे । डॉ० हरवंशलाल ने इसका उद्धरण दिया है । महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री ने इसकी पुष्टि की उन्होंने यह वंशवृक्ष प्राप्त किया जिसमे सूरदास का नाम है तथा साहित्यलहरी में वर्णित वंशवृक्ष से साम्य रखता है । सूरदास के पिता का नाम इस वंशवृक्ष मे रामचन्द दिया हुआ है ।[3] डॉ० मुंशीराम शर्मा ने रामचन्द को वैष्णव भक्ति के अनुसार 'रामदास' बन जाना बताया है ।[4] 'सूरदास जीवन सामग्री' डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादक –डॉ० भागीरथ मिश्र)[5] मे बड़थ्वाल ने इस वंशवृक्ष को पुष्ट किया है । डॉ० वृजेश्वर वर्मा ने सूर को ब्राह्मणेतर सिद्ध करने में, अन्तःसाक्ष्य के पदों का वैसा आशय निकाला है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यलहरी के वंशपरिचय वाले पद पर विचार करते समय सूर की वंश परम्परा निश्चित, की थी[6] —

उपर्युक्त पद से स्पष्ट है कि सूरदास चन्दबरदाई के वंशक्रम मे थे तथा वे ब्रह्म भट्ट थे । इस पद के अनुसार सूरदास के प्रपिता का नाम हरचन्द है । इन हरचन्द के

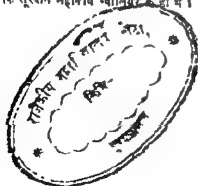
१ डॉ० ऊषा गुप्ता "कृष्ण भक्ति काव्य मे संगीत", पृष्ठ १६
२. ८४ वैष्णव न वार्ता पृष्ठ. २७६, २८०
३. सूरदास और उनका साहित्य—डॉ० हरवंशलाल, पृष्ठ २२
४. सूर सौरभ—डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ २०
५. सूरदास जीवन सामग्री—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सं० डॉ० भागीरथ मिश्र) प्रकाश पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित है ।
६. वही, क्रमांक (१) से उद्धृत ।

पुत्र पहिले आगरा मे रहे और फिर गोपाचल चले गए। उनके सात पुत्र हुए जिनमें मे छै पुत्र शाह से युद्ध करते हुए मारे गये अकेले सूरदास बच रहे। इस पद की साक्षी मे सूरदास का जन्म ग्वालियर ही हुआ था। सूरदास के जन्म के समय (वल्लभ दिग्विजय पृष्ठ ७) सन् १४७७-७८ ई० में ग्वालियर पर तत्कालीन राजा कीर्तिसिंह तोमर (१४५५-१४७६ ई०) का राज्य था। वह युद्ध जिसमे सूरदास के छै बड़े भाई मरे वह मानसिंह तोमर काल (१४८६-१५१७ ई०) में सूरदास के जन्म के १७, १८ वर्ष बाद हुआ होगा और सम्भावना यह है कि सूरदास ने अपने पिता रामदास के साथ ग्वालियर मे ही—३१, ३२ वर्ष की आयु में १५१० ई० में शरणागति के पूर्व, लगभग २५ वर्ष की आयु तक संगीत शिक्षा प्राप्त की। 'रामदास' थेघनाथ के गुरु ग्वालियर मे उस काल मे अवस्थित भी थे।

तोमर मानसिंह के दरबार में अवस्थित 'रामदास को'[1] थेघनाथ ने अपनी रचना "भगवद्गीता भाषा" (सन १५०० ई०) मे अपना गुरु माना है।[2]

"मारद कहू बदो करि जोर पुनि सुमिरों तेतीस करोर।
रामदास गुरु ध्याऊ पाइ। जा प्रसाद यह कवितु सिराइ॥"

ग्वालियर के यह 'रामदास गुरु' कृष्ण भक्त स्पष्ट प्रतीत होते हैं जिनकी प्रेरणा से गीता पद्यानुवाद "थेघनाथ" ने रचा। समव है इन्हीं रामदास से सूरदास का पिता-पुत्र का सम्बन्ध हो और पिता की कृष्णभक्ति की परम्परा को लेकर सूर ने कृष्ण को आराध्य बनाया हो। यह रामदास गोपाचल के, आईने अकबरी के ग्वालियरी रामदास से भिन्न हैं। यह 'रामदास गुरु' मानसिंह तोमर के दरबार में थे। अतएव, संभावना यही है कि सूरदास महाकवि ग्वालियर के ही थे।



१. अकबर दी ग्रेट मुगल, पृ० ४३२, तथा अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १०२
२. मध्यदेशीय भाषा, पृ० १०२



खण्ड ३

अध्याय ८

प्रबन्ध काव्य

पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी ईस्वी का युग, मध्यकाल का ऐसा अन्धकार युग अब तक माना जाता रहा कि जिसमे ईस्वी ग्यारहवी एव बारहवी शताब्दी के पश्चात् और तुलसी, सूर के बीच, कबीर आदि दो एक कवियो को छोडकर, साहित्यिक रचनाओं का अभाव रहा, किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इस युग मे जन भाषा मे लौकिक आख्यान काव्य की विविध धाराए प्रवाहित हुई हैं जिनका सगम रूप रामचरित मानस है।

विभिन्न धाराओ के रूप मे पौराणिक कथाए-अद्भुत और अप्राकृतिक शृ गार परक कौतूहलपूर्ण, नीतिसम्पन्न काम-निर्देशक, प्रेम में आध्यात्मिक तत्त्व-दर्शक एव शास्त्रीयतापूर्ण, हिन्दी भाषा एव साहित्य के क्षेत्र मे प्रचलित हुई। उन सबमे परवर्ती प्रबन्धकारों ने अवगाहन किया एव मानस-मन्थन के रूप मे युग का प्रतिनिधि तुलसी का अमर काव्य प्रणीत हो सका। इसका श्रेय पन्द्रहवी एवं सोलहवीं शताब्दी ईस्वी के उन कवियो एव लेखको को और उनके आश्रयदाताओ को सास्कृतिक-पीठो को है जिनके सहारे इस तथाकथित अन्धकार युग मे भी दिव्य प्रकाश के दर्शन होते हैं। यह युग हिन्दी भाषा के विकास का था जिसमे हिन्दी देशव्यापी परिनिष्ठित काव्य भाषा के रूप में मान्य थी। मध्यकाल के कवि ने अपने विचार एव भाषा को बोलियो के भेद मे नही भटकाया। कथित नामधारिणी ब्रज, राजस्थानी, अवधी, बुन्देली, कन्नौजी, मैथिली अथवा भोजपुरी काव्य भाषा रूपों में एक ही मध्यदेशीय रूप देखा और देशव्यापी हिन्दी को—उसने अपनी रचना की अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रहण किया।

ईस्वी चौदहवी-पन्द्रहवी एव सोलहवीं शताब्दियों में जनता मे जैसी रुचि साहित्य के प्रति दिखाई देती है वैसी पश्चात्वर्ती शताब्दियो मे कम ही दिखाई देती है। आगे की शताब्दियों में हिन्दी साहित्य लोक विमुख होकर राजसभाओं, धर्म सभाओ एवं

पंडित समाजों में सीमित होता गया। इन दो तीन शताब्दियों में लिखित रचनाएं जन-जन के मन-रंजन के लिये गायी जाती थीं और लोकाश्रय ही उनके रचयिताओं का प्रधान ध्येय था। रचनाकार अपनी रचनाओं को 'काम कथा', 'रस कथा', आदि अभिधान देते थे, जिनका लक्ष्य था संसार में रस लेकर सुखपूर्वक जीवन-यापन का संदेश। इन रचनाओं में धर्म और रीति से बंधा नीति एवं शास्त्र का स्वरूप नहीं, वरन मानव का अपना विशुद्ध जीवन-साहित्य है।

इस युग के काव्य-कथाकारों पर तत्कालीन परिस्थितियों एवं राजनीतिक उथल पुथल का भी प्रभाव पड़ा है।

महाकवि विष्णुदास अपने आश्रयदाता डूगरेन्द्रसिंह को राजनीति एवं धर्म की शिक्षा, साथ ही दानवी शक्तियों पर विजय की प्रेरणा देना चाहते थे। उन्होंने महाभारत' पुराण कथा की काव्यमय रचना की और अपनी कल्पना से मानव जीवन के विविध अंगों के विषय में नवीन उद्‌भावनाएं कीं। दतिया राजकीय पुस्तकालय में प्राप्त एक गुटके की प्रतिलिपि विद्या मंदिर मुरार (ग्वालियर) में है उसके अनुसार विवरण यह है—

विष्णुदास की कृति महाभारत में आदि पर्व, सभा पर्व, वन पर्व, विराट पर्व एवं उद्योग पर्व लिखे गये हैं और 'पितामह पर्व' लिखे जाने की भी सूचना दी गई है किन्तु उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रति अपूर्ण प्राप्त हुई है। प्रत्येक पर्व में अध्याय, चौपाई तथा दोहा इस प्रकार है:— :

१ आदि पर्व	—	१४ अध्याय	—	१५२६ चौपाई	—	५६ दोहे
२ सभापर्व	—	३ अध्याय	—	५०४ चौपाई	—	१२ दोहे
३ वनपर्व	—	२ अध्याय	—	३७० चौपाई	—	२४ दोहे
४ विराट पर्व	—	६ अध्याय	—	६५० चौपाई	—	२८ दोहे
५ उद्योग पर्व	—	१ अध्याय	—	१०६ चौपाई	—	३ दोहे

विष्णुदास ने अध्याय, दोहे, चौपाईयों में कोई क्रम नहीं रखा और अत्यन्त स्वतन्त्रता से काम लिया है। प्रतिलिपिकाल श्री संवत १७६५ पौष शुक्ल २ रविवासरे दिया गया है। दूसरी प्रतिलिपि दतिया राजकीय पुस्तकालय में प्राप्त सम्पूर्ण है।

प्रस्तुत भाषा महाभारत में महाकवि विष्णुदास ने अनेक मार्मिक स्थलों को छुआ है और उनका काव्यमय उद्घाटन करके अपने काल के भारतीय समाज का सफल चित्रांकण किया है। इसमें युद्ध वर्णन अत्यन्त सजीव है। इसमें हम ऐसे काल और वातावरण में पहुंच जाते हैं कि जिस युग एवं परिस्थितियों में एक समुदाय के लिये एक ही नारी उपभोग्य रहती थी। वह क्रय-विक्रय की वस्तु थी। द्रौपदी के पांच पति

हैं। द्रौपदी का अपमान कीचक ने किया, वह अपने प्रत्येक पति से उसकी पुकार (फ़रियाद) करती है, किन्तु सभी 'युधिष्ठिर' की आज्ञा पाने पर ही कुद्ध कर सकने को कहकर उसे समझाते जाते हैं। एक भी उनमे से ऐसा नही सोच पाता कि उसकी पत्नी का अपमान हुआ है। इसका समाधान अनुशासनबद्ध कुटुम्ब के नाम पर ही दिया जा सकता है, नारी की इसी विडम्बना पर रचनाकार ने नया प्रकाश डाला है।

भीम के पौरुष और वीरोचित भावना ने द्रौपदी को कुछ सान्त्वना दी। नीति शास्त्र की भी प्रस्तुत ग्रंथ मे झलक है।

इसमे जन विश्वासो की भी अनूठी झांकी है, जैसे 'भूत' की उत्पत्ति ग्राम्य जीवन की सहज स्वाभाविक धारणा है। जादू टोना मे भी उनकी आस्था है। यही कारण है कि 'पूरब का देस' पाडवो के लिए न जाने योग्य ठहराया गया क्योंकि वहा की नारिया इन्हे पथभ्रष्ट कर सकती हैं। इस ग्रंथ में कौतूहल की भी सृष्टि की गई है। प्रसग यह है कि व्यास की सीख पर पाण्डव वनवास छोड विराट के देश पहुँचने चले और अस्त्रो को 'नकुल' के सुझाव पर रखने की विशेष व्यवस्था की। गोपाल-ग्वाल 'बरेदिया' जन अपनी जिज्ञासा शान्त न की जाने की दशा में हथियारो की व्यवस्था ही मिटा देने को तत्पर हो गए। पहिले तो पाडव बटोही हँसे। पीछे 'नकुल' को इगित देकर बरेदिया जन को समझाने-बुझाने का यत्न किया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी महाकवि विष्णुदास की प्रबन्ध पटुता साकार हो जाती है। पौराणिक आख्यान मे केवल इतिवृत्तात्मकता ही नही वरन विष्णुदास ने उसमें रसात्मकता सपुटित की है।

अब ऐसे स्थलो मे भाषा ने भावो को कहा तक ढोया, यह दृष्टव्य है। चित्रागदा का रूप वर्णन करते हुए विष्णुदास कहते हैं:—

> ता राजा गृह धीय कुमारी, चित्रांगदा नाम सुकुमारी
> जोबन वैस आदि सुहिमाला, सब ही अंग बनी सुभबाला
> हंस गवनि सोहै मृगनैनी, रूप मनोहर कोकिल बैनी।

स्वयवर मे द्रौपदी जब आती है तब उसकी छवि का वर्णन करते हुए काव्य मे निखार आया है:—

> द्रौवे कुवर करै सिंगार, कसि कंचुकी उर मौतिन हारु
> अति रातौ दच्छिन को चीरु, मानहु भीजहु दूध सिंदूरु
> गहुरे केस गुहैं पटियारा, दुतिया ससि हनु उपै लिलारा
> बैनी दड तीसौ सोहनू कनकु खभ जनु नाग चढतू
> ऊची नीक आहि तिलतूला, जन मन हे ले तिल को फूला।
> [illegible]ख निर्मल नन्हो आगुरिया, ता कुच करने जनि कुमुदरिया

जनु ऊपर दे भंवर बईठे, बोले वचन सुहाऐ मींठे
झीनु लंक ता मूठि समाई, गहरी नाभ न बरनी जाई
त्रिवलि रेखाति सोहति तीनो मानहु काम नसैनी दीनो
तासु नितब आदि तिहिलूला, जघर जनकु कदलि के भूला
कर ककन गज मोतिन जरिया सोहति अधिबचनी मुंदरिया
सरलदिष्टि मन कपट न जानैं, बाहत मनहु मदन सर तानैं
नाता गोत पिता महतारी होमकुण्ड ते उपजी नारी
लछिन बतीस रूप गुनकारी, द्रुपद राई गृह भई कुमारी
जेते राह तहाँ है आए मोहे जनु ठगु लडुआ खाए।
फिरै कुंवरि मगल चढ़ी, हाथ लए जैमाल। राहु वेदु जो करहिगो, सो ब्याहै यह बाल।

वचन की रक्षा करने पर बल देते हुए विष्णुदास कहते हैं:—

जो हो य है वचन तें टरऊ, कुँभी नर्क पाप सौ परऊ
अनुदिन करउ जननि की सेवा, राज लोभु मन धरौ न देवा।

नारी के लिये पति की इच्छा के विपरीत एवं पति की विद्यमानता मे किसी भी व्रत या उपवास की आवश्यकता नहीं है:—

सब व्रत नारि अकारथ करही, पुरुष भक्ति जे हिये न धरही
जे अहिवाती करै उपासू, तिन कह कोय नरक महु बासू।

माद्री एवं कुन्ती पाण्डु की दो पत्नियों में सपत्नीक भाव का आदर्श विष्णुदास के शब्दो मे देखते ही बनता है.—

माद्रिकीति दोउ सुहिनाला, पतिव्रति पालें दोउ बाला
सहधो नकुल न हो ही मेरे, ऐ पाँचो है कौंता तेरे

\+ + +

पारिवारिक विपत्तियों के प्रति भी शील एवं मर्यादा पालन का कुन्ती बच्चो से आग्रह करती है:—

हरखें बोली कौंतारानी जिर जोधन की कीजे कानी
वाहि न करवो ऊतरु दीजे, राजा जानि सेवा कीजे
बाट आपनी आवहु जाहू बोल वचन जिन दुख बहु काहू।

कुन्ती अनिष्ट होने पर आत्म समीक्षा करती है:—

कै मैं दुखए ब्राह्मन देवा, कै मैं करी न गुर की सेवा
कै मैं पूलत काटी जाई, कै मैं चरन बिडारी गाई
कै मैं करयो गर्वरि व्रत भंगू, तीरथ चलत नवारयो संगू।

विष्णुदास पुरुष के लिये 'स्त्री' जीवनसंगिनी के रूप में अनिवार्य मानते हैं:—

धर्म मत्र तप तीरथ न्हानू, त्रिय बिनु पुरुष होइ अपमानू।
त्रियबिनु राज योग सब सूनू त्रिय बिनु होय न एको पूतू
त्रिय तें दुःख दारिद्र न होई, त्रिय तें क्रिया धर्म सब कोई।

नारी गर्भाधान के समय जैसा विकल्प मन में करती है उसी के अनुसार संतति होती है:—

जो विकल्पु मन धरि है नारी, व्हैं है पुत बरन उनहारी

बालक के जन्म पर नान्दी-मुख श्राद्ध भी होता है.—

कुरपति जनमत आइयो, विदुर पिता मह राउ। नदी मुखह सिराधु कर, जिरजोधन धरि नाउ।

द्यूत-क्रीडा के विरोध मे विष्णुदास का कथन है.—

मत्र दयो गुरु विदुर ने और पितामह तासु।
जुवा परिहरो राउ सुनि व्हैं है मूल बिनासु॥

नीति सम्मत उपदेश देते हुए विष्णुदास ने कहा है:—

बधु विरोध जुवा ते नासू, नल तजि राज लियो बनवासू
विनसै धर्मु कियो पाखडू, विनसे नेह् नारि परिचडू
विनसै राजु कुमत्री चाहे, विनसै धनिकुल बेच्यो चाहे
विनसै नारि जो पुरुष उदासी, विनसै प्रीति होई अति हाँसी
विनसै विप्र तजै षट कर्मू, विनसै बोध प्रगासे कर्मू
विनसै कन्या कुठाकुर सेवा, विनसै गलका पूजे देवा
विनसै छत्री भाजै हूनू, विनसै नटु जु कला गुन हीनू।

एक स्थल पर वन्य जीवो का वर्णन देखिये:—

सिंह बाघ बन हिरन सिंगारा, रहहित जरहि अगिन की झारा।
चटक परेवा अनु कठकूटा, बगरा बाज कुही के बूटा।
झाँझहि गोचर मोर चकोरा, दपका टूका अनुबड मोरा।

वनश्री वनस्पतियो और औषधियो का वर्णन भी अनूठा है.—

'कोहा' 'ऊमरि' काँके सोरी, हरे नारियर 'धनी मकोरी'
हररा चार लोध बन दोर्य, आलि रसैनी बोद मजीठे
'महुआ' 'सेमर' सेहुंड भिंडू, बरनल मूरो अमिया अड्ड

तह अकोल 'मुहिजनौ' दीठा, सहुंड जामुन अनु विरहोठा
पीपर लोंग मिरच सयतिजिया, सुम्हो 'बिरहुत' मलसिल असियां
'सेम' करेठु कंघु कंदूरी, सैमा 'सैमि' और वनचूरी
खिरी छुहारी पिंडखजूरी, वन बावरी रही भरपूरी
कोद्र कद 'ककोरनि' वेलो, सघन रूख ते चढी 'करेली'

उपर्युक्त वृक्षादिक तथा वनस्पति पौधे आदि के वर्णन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विष्णुदास बुन्देलखण्ड के ही वासी थे और बुन्देलखण्ड की वन-सम्पदा को उन्होंने निकट से देखा और उसका यथार्थ चित्रण किया है।

कवि होने के नाते विष्णुदास ने पर्यटन भी किया। उन्हे अतिथि सत्कार के अपने अनुभव थे और इसी आशय से उन्होंने इंगित किया है कि 'पश्चिम दिशा' में सरल व्यवहार एव सत्कार अच्छा होता है:—

राजा कहै सुनै सतिभाऊ पश्चिम दिसि विराट सु राऊ
मौरो देसु न कछुवे जाने मेरो कह्यो राउ परवाने
आन पान धन पूरो जोगू अतिथि धर्म प्रतिपालै लोगू
परदेसी को आदर कीजै, भूखो देखि मया मन दीजै।

'पूरब' के देश मे 'टोना' (जादू) तथा दक्षिण मे स्त्रियो का भाव कटाक्ष बताकर पांडवों को वह दिशा गतव्य नही बताई:—

कहै व्यास तुम सुनो नरेसा, तुम न दुरहु पूरब के देसा
टोना टामन बहुत समानू, तुम तिहि देस न पावहु थानू
भोरे नारि तहां की लैहैं चार्‌यो वीर हाथ ते जैहैं
मेरो कह्यो राई जो कोजे, तो पूरब दिसि पांव न दीजे
दक्षिण गीत नाद को भाऊ, तिहि रस लागे दुरहु न काऊ
भाऊ कटाक्ष नारि सब जानें, मोहु धनुष लोइन सर तानें

व्यास पीठ पर आसीन विष्णुदास के द्वारा विपत्ति के समय "काल यापन" की की सीख स्वाभाविक है।

त्यो रहियो ज्यों लखे न कोई, कहूँ दुर्दिष्टिल को जहु सोई
मान परेखो चित्त न धरो जो, रिस के वीर न उत्तरु दीजो

"भीम" बुन्देलखण्डी पाक परंपरा के अनुसार, 'बैराट' के घर को 'पाकशाला' में बनी वस्तुएं पाते हैं:—

पुनि 'लोचई आदि, रस 'खाजे', 'फैनी' देखि सराहे राजे

'गूझा' मोल 'दहोरी' सेवा, बहुत भाँति करि जानौ देवा
पुनि बेढई आदि रस 'भाडे', ता गुन स्वादु सराहै पाडे ।।

'बरदिया' तथा पाण्डवों का मनोविनोद वनखण्ड मे हुआ है। 'बरदिया' (बरेदिया) शब्द केवल बुन्देलखण्ड का है। इसी क्षेत्र के लोग इसे जानते हैं कि पशुओं को मासिक पारिश्रमिक लेकर जो व्यक्ति जगल मे चराने ले जाने व ले आने का धन्धा करते हैं उन्हे 'बरेदिया' कहा जाता है। विष्णुदास ने इस शब्द का प्रयोग करके बुन्देलखण्ड से विशेष नाता प्रकट किया है। विष्णुदास के 'बुन्देली' के 'जन कवि' होने मे कोई सन्देह नही है।

ग्वाल 'बरदिया' पहुचे आई, पडव बिलखानें बौराई
तब ग्वालन पूछ्यो हठ लागो, मन्यो धम्यो किमि दीनो आगो
कहा लकरियन मास बिठाई, मन्यो धम्यो तुम एक चढाई
याके उत्तर देऊ बिचारी, तातर हम डार है उतारी
पडव सुन ग्वालन के बैना, पोचो हसै दुराऐ नैना ।।
नकुल 'बरदिया' बरजि रहाऐ, बात सम्हार कही समुझाऐ
म्है कुबर यह मुनरें माई, बरस बीस ज्यो दहन न आई
भूलें कोऊ छुवे जु याही, मर्‌यो भूत म्है लागे ताही
बारह मास जाहि जब बीती, तब हम करि हैं याकी रीती

प्रश्नकर्त्ता के देहाती स्तर से ही उत्तर दिलाकर बाधा निवारण की चेष्टा कौतूहलपूर्ण है और जन विश्वास की झाकी भी मिलती है।

द्रौपदी की अपमानजनित अवस्था और उसके द्वारा बारी-बारी से अपने पतिदेवों से फरियाद करने पर उनके द्वारा तत्काल प्रतिशोध न लेने पर नारी का मानसिक—उत्पीडन विष्णुदास के शब्दो मे देखिये —

नारि बात कहि सकै न कासू, हियँ रुधि आवै न उसासू
नैननि चीनु ढरे असरारा, जनु टूटहि मौतिन के हारा
मुहि कुम्हिलानो भई बनाहा, मानो चद मिल्यो है राहा
तिलकु लिलार दूह कलमलियो, नीनु नैन कज्जल मिलि टरियो
फाट्यो कचू छूटे केसा, दिसो द्रौपदी विपरति भेसा
इकु कपे अनुराते नैना, मूधो बात न आवे बैना
+ + +
चौहू पहो पास पुकारी, चार्‌यो वीर भए सत हारी
जो तुम भीम न सकहौ मारो, म्है है कीचकु घर ब्यौहारी

कै विसु पीवहु लोठा वारी मरौं कि कहूं करारो मारी
कै मरिहौं जो हर दैं सपा, सहि न सकौं कीचक की कपा
+ + +
छत्री बाहु लेई हथियारु ता कहु मारन मरन सिगारु
+ + +

भीम का पौरुष नारी की वेदना पर जाग उठा और अपने जन के अपमान पर तिलमिला उठा। वह 'प्रतिशोध', की भावना में आवावेश में क्रोधातुर हो उठा। इसकी सशक्त अभिव्यक्ति विष्णुदास की वाणी में ओजपूर्ण है :—

इतनो सुनति भीम 'परजरियो', जनु घृत विसादर में परियो
मन विसमाहु न करिये नारी, अब पालो कीचक सधारी
रोस भयौ सो लेई उसासा, आजु पठाऊ जमपुर पासा
दादुल बैठ्यो फनपति सीमा, करै स्यार सिंघ सौं रीसा
ससु मार्यो तो मँगलु ठेले, चूकड छू छू चरन सौं खेलें
हेरी बाह गही जो रानी, मीच हकारि आपु कहि आनी
करै भीमु ओठ थरहरियो, जन हूँ नैन सिंदूरह भरियो

भीम का क्रोधावेश, शरीर में कंपन, दोनों नैन ऐसे लाल हो गए हैं जैसे सिंदूर भर दिया हो और ओष्ठ थरथरा रहे हैं। युधिष्ठिर ने कुसमय जानकर धैर्य रखने का आग्रह किया था। वे द्रौपदी से कहते हैं कि यदि कौरवों को यह बात ज्ञात हो गई तो वे तेरह बरस का बनवास और भी दे देंगे, भीम पर इसको मथकर प्रतिक्रिया होगी, वह कीचक का वध कर बैठेगा, अतएव सयानापन इसी में है कि अकुलाहट को धीरज से शान्त रखो। यदि गवार दो गाली भी देंत तो उसे टालना ही चाहिये। इन भावों का दिग्दर्शन विष्णुदास के शब्दों में द्रष्टव्य है:—

काजु आपने जै जै टारीं, जो रे गंवारु देहि दै गारी
रावन सिया हरी हो जेहो रामु बहुत दिन विरमे तेहीं
काजु बिनासैं अति अकुलाने, ता लखि धीर होंहिं सयाने
भीमु न परिहसु हकि है टारो, सब कीचक पालेहि संघारी
जब यह सुधि कौरव पह जैहै, तेरह बरस बहुरि बन दहै है।

उद्योग पर्व में 'विष्णुदास' ने युद्ध वर्णन अत्यन्त सजीव किया है अठारह अक्षोहिणी सेना का कुरुक्षेत्र के रणांगण में घोर संग्राम चित्रित हो उठा। छन्द-चित्रों के घोड़ों में पवन के समान वेग है। उन पर सवार योद्धा क्रोधित हो अरिदल पर टूट रहे हैं। उन्हें बागडोर की भी सुध नहीं है। घोड़े एड़ी मारते ही अखाड़े में भिड़ रहे हैं :—

दोउ दल साजे समुहाई, चले बहुत ते राना राई
दलु दीसै जनु सायर सेतू, जूझन दुहुनि बढ्यो कुरु खेतू

दोहरा

सैंन चली दुहुराज की, साहनु गन्यौं न जाई
मिली अठारह छोहिनी, भूरि गगन रहि छाई

+ + +

तिस महं रहे न साथेहि बागा, दिड असवार चाहिजे रागा

+ + +

चरन अगिले छुवे न धरणी, मानहु ध्रुवा नचावे नटुनी

घोडो के अगले पैर धरती पर नही पड रहे हैं। मारकाट मे योद्धा की एडी के सकेत पर अपने शरीर को गतिमान किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि घोडा सवार के इगित पर 'ध्रुवा' नाच रहा हो। घोडो के अलग अलग प्रकार हैं और जलवायु की दृष्टि से उनकी शरीर रचना मे भी भेद है :—

बहुत तुरी दीसै कुबरिया, पवन वेग हाथी सम करिया

कई घोडो मे पवन सा वेग है, कोई हाथी के समान होते हुए भी काले साप जैसी फनफनाहट दिखा रहे हैं और उनके बगल में वृक्ष टूटकर उखडते आते हैं :—

तरवर टूटे जिनिके बाई
जे बालका देस निर्वाना, उडत पख तैं देहि न आना
परबत माल सूढ बावना, तिनके चलत न पूजै आना
खुरासान ते भले ततारी, बहडे मूछ पूछ तिन भारी
अवनि न जानै तिनके पाई, धावत भूमि न होई अघाई

खुरासान के घोडो के सिर बडे तथा भारी पूछ है और दोडने मे वो भूमि पर पैर नही रखते और थकते भी नही हैं। उनकी श्वसोच्छ्वासा से आकाश तक धूल उडती है :—

छप्पन सहस चले रथ जोरी, धनु हर धाईक अगनित फोरी
बाजे तबल हने निसाना सुरपति भवनि सबे अकुलाना
सिगी भेरि सख बाजता, घने तिमुहर सबै विहयता
ऐकति सकति सेल्ह सर साजहि, धनु हर धनिच मेघ ज्यो गाजहि
करीकटारो सासन छुरिया, मुदिगर फास चक्र तरवरिया
गोफनि गजा पासि चुकमारा, अक वती सन बहुत कुठारह

+ +

रोस भरे दोउ दल उमडे मानौ पावस के घनु घुमड़े
पढौ भांतनि कौरव ग्यारह, दोउ मिलि कवि कहे अठारह
बीती रैन भयो भिनसारो, भयौ टकोर धनुसनि टकारौ
द्रुपदपुत पढव यप्यो, कौरव थप्यो गंगेउ
नारायेन नारथ रच्यो, कोउ लहै न भेउ
उद्दिमुपर्व भयो परवाना, छूटो पितामह पर्वबखाना।

"पितामह पर्व" की शेष रचना दूसरी प्रति में उपलब्ध है।

महाभारत का संक्षिप्त रूप श्रीमद्भगवद्गीता है। महाभारत में कौरव-पाण्डवों का धर्मयुद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ, जिसमें आसुरी सम्पदा प्राप्त कौरवों की पराजय तथा दैवी सम्पदा प्राप्त अल्पसंख्यक पांडवों की अत्याचारी कौरवों पर विजय बताई गई है। विष्णुदास ने अपने काव्य में मानव जीवन के विविध व्यापारों का दिग्दर्शन कराया है और सहज स्वभाविक कथन किया है।

रचना के प्रारम्भ में श्लोकादि में ईश्वर स्तुति, गुरु ब्रह्मा एवं हरि ईश्वर का ध्यान करके कथा का श्रीगणेश हुआ है। हिन्दुओं के तीर्थ, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, गंगा, ऋषि, नवग्रह राशि, कुबेर, यक्ष, अग्नि, वरुण, कन्दर्प, सनक-सनन्दन, वसु, सत्यवती, पाराशर व्यास आदि अनेक रूपों में श्रीमन् एवं ऊर्जस्वित विभूतियों का स्मरण काव्यकार की प्रबन्ध पटुता का परिचायक है।

प्रस्तुत महाभारत भाषा-काव्य को 'प्रबन्ध' की शास्त्रीय संज्ञा भले ही न दी जा सके किन्तु १४३५ ई० में इस प्रकार की प्रबन्धात्मकता स्वयं में एक दिव्य रचना है। जिससे परवर्ती कवियों को मार्गदर्शन मिला है। अधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं का यथासाध्य निर्वाह हुआ है। इतिवृत्तात्मकता में वर्णन की सजीवता, रोचकता एवं यथार्थ चित्रण ने रस की सृष्टि की है। रसात्मकता का मणि काचन संयोग विष्णुदास जैसे प्रारम्भिक महाकवि की अद्वितीय सफलता है। विष्णुदास ने तत्कालीन परिस्थिति में ग्वालियर गढ के तोमर राजा डूंगरेन्द्रसिंह को राज्य के शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के लिए क्षात्र धर्म की प्रेरणा दी तथा काव्य-रचना में भाव पक्ष एवं कलापक्ष दोनों दृष्टि से उपयोगी कार्य किया है।

विष्णुदास की 'रामायण' भी रचित कही जाती है किन्तु वह उपलब्ध नहीं हो सकी। इससे विष्णुदास के महाकवित्व पर भी अधिक प्रकाश पड़ता। किन्तु, उपलब्ध साहित्य में भी उसके 'महाकवि' होने में सन्देह नहीं रह जाता।

विष्णुदास के प्रसंग में इतना कहना पर्याप्त होगा कि तुलसी का रामचरित-मानस जिन अंगों में सुडौल, सुगठित एवं सुपुष्ट हुआ है उन अंगों को पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी ईसवी के मध्यकालीन कवियों ने अपने आख्यान काव्यों में ढाल दिया है, और

कुल के सयोजन मे एक विशिष्ट एवं महान युग-प्रतिनिधि-काव्य देने मे तुलसी समर्थ हुए। हिमालय स्वय मे महान् है किन्तु उसकी वह महानता उन कणो मे निहित है जिनके मिलने से वह बना है। विष्णुदास की भाषा एव शैली ने इस निराधार विश्वास का खण्डन किया है कि भारतीय लौकिक आख्यान काव्यो की भाषा शैली का आधार सूफी काव्य हैं। विष्णुदास स्वय आधार है और आधार हैं—वे ग्रथ, जो 'लखनसैनी' इसी भाषा-शैली मे लिख चुका था। प्रबन्धात्मकता मे इस युग के सबसे प्रथम कवि उपलब्ध साहित्य के आधार पर "विष्णुदास" ही माने जा सकते हैं।

लखमसैन पद्मावती रास (१४५६ ई०) :—

लखनसैन पद्मावती रास लौकिक आख्यान काव्य-धारा की पन्द्रहवी शताब्दी की उन विशिष्ट रचनाओं मे से है, जिसका रचनाकाल निश्चित है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह रचना बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। तत्कालीन भाषा, काव्य रूप एव लोक जीवन तथा लोक विश्वासो पर इसके द्वारा सम्यक् प्रकाश पड़ता है। इसके रचयिता 'दामोदर' की उपलब्ध तीन रचनाओ की दृष्टि से हिन्दी के प्रारम्भ की शताब्दियो मे उनका अध्ययन और भी आवश्यक है। बीसलदेव रास के पश्चात 'रास काव्य रूप' के नाम पर रचित यह दूसरी रचना है। सन् १६०० मे हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज मे इसका पता चला।[१] श्री नाहटा द्वारा जयपुर सग्रहालय से प्रेषित प्रति का पाठ श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने 'अन्वय' पूर्वक तैयार किया।

प्रस्तुत पाठ का आधार 'फूलमेड़ा' स्थान की प्रतिलिपि सवत १६६१ वि० की है। ऐसा प्रतीत होता है कि ५७ छद के कलेवर का एक पृष्ठ मूल प्रतिलिपि का खो गया। इसका अनुमान कवि द्वारा दी गई 'उक्ति' से होता है :—

इगुणीस विस्वा एक नराच, रचइ कवित कवि दामउ साच

यह 'प्रहेलिका' छद सख्या से सम्बन्धित है। इगुणीस विस्वा १६ + ५० + एक =३८१ दोहे हैं। ३८१ छद के स्थान पर वर्तमान पाठ मे ३२४ (३/२) छद तथा ७१८ पक्तियां हैं। पक्ति संख्या ५५२-५५३ के बीच कथानक छूटा हुआ प्रतीत होता है। हरिया सेठ लखनसेन से बात कराते सहसा वैराग्य और कपूरधारा की राजकुमारी की चर्चा प्रारम्भ हो जाती है। श्री नाहटा ने प्रस्तुत काव्य के द्वितीय खण्ड की समाप्ति पर कथा को त्रुटिपूर्ण होना विचारा है।

'लखनसेन पद्मावती रास' मे प्रतिलिपिकार ने 'लखनसेन' शब्द का प्रयोग किया है जिसे 'लखनसेन' ग्रहण किया गया है। और छद सख्या भी क्रमबद्ध की गई है। इस प्रकार ईस्वी पन्द्रहवी शताब्दी तथा उसके पूर्ववर्ती शताब्दियो के हिन्दी साहित्य

१. भारतीय १६५८ पृ० १२२ श्री नाहटा का लेख।

की रचनाएं बहुत थोड़े अंश में असमीक्षित रूप में उपलब्ध हुई हैं। सम्प्रदायों से सम्बन्धित अथवा राज्याश्रित रचनाएं ही मिल सकी हैं।

नृत्य के साथ गाये जाने के उद्देश्य से रास-काव्य रूप में अनेक आख्यान काव्य लिखे गये। कालक्रम में उनका सम्बन्ध केवल कृष्णलीला से ही नहीं रह गया और 'रास' का अर्थ 'चरित' माना गया। इस प्रकार 'रास' 'नृत्य' से अलग 'रासकसंज्ञक चरित' अथवा आख्यान काव्यों की परम्परा भी आगे दिखाई दी। 'रतन रासो', 'कायम रासो', 'हमीर रासो' आदि के साथ 'प्रयुक्त रास' इसी अर्थ की निष्पत्ति करता है। रामलीला के प्रादुर्भाव के कारण साहित्य के क्षेत्र में 'रास' का मूल 'मण्डली' नृत्य का स्वरूप लुप्त हो गया और कृष्ण चरित्र के अभिनय के साथ किये जाने वाले नृत्य तक रासलीला सीमित हो गई। और 'रास' रह गया केवल चरित्र।

'रास' की कथावस्तु के विन्यास में चार खण्डों का प्रयोग उस समय प्रचलित था यह लखनसेन पद्मावती रास में भी प्रगट होता है। बीसलदेव रास और लखनसेन पद्मावती रास के कथानक चारों खण्डों के विभाजन के तुलनात्मक अध्ययन से ये स्पष्ट हो जाता है।

'नरपति' ने 'रसायण' खण्डों के अर्थ में कहा है। 'दामोदर' ने पहिले, दूजो, तीजो, चौथो खण्ड कहा है। प्रथम खण्ड को स्वयंवर खण्ड कहा है। दूसरे खण्ड को वीररस भाव की कथा कही है। बीसलदेवरास में नायक-नायिका के वियोग का कारण उनका गृह-कलह बना था। लखनसेन पद्मावती रास में कथानक के विकास के लिये उपद्रव 'लखनसेन' सिद्ध ने प्रस्तुत किया है। नर-नायक की प्रधानता रखकर 'नरखण्ड' का निर्वाह 'दामोदर' ने अवश्य किया है।

कथा सयवर भयो प्रमाण, जे नर सुणइ ते गंगा न्हाण ॥४२७॥
सुकवि दामउ करइ बखाण, प्रथम खण्ड चल्यो परमाण ॥४२८॥
दूजौ खण्ड तणी आरम, सुणउ साहु ते होई अचंभ ॥४३२॥

+ + +

बीजउ खण्ड वीररस भाउ, सिधिनाथ ते रच्यौ उपाउ

तीसरे खण्ड का नामकरण न करते हुए 'दामो' ने नायक द्वारा चन्द्रावती के साथ रंगरेलियां कराकर बीसलदेव रासो की परम्परा के पालन का प्रयास किया है।

लखनसेन मड रहइ सुचंग, चन्द्रावती बोलती सुरंग ॥६०७॥
इह कथा इण थानिक रही, वाहुडि कथा पद्मावती गई ॥६०८॥

तीजउ खड चढ्यउ परमाण, चौथउ खड सुणउ चतुर सुजाण ॥६०६॥
खड खड नव नवौ विचार, सांभलता होइ हरख अपार ॥६१०॥

चौथे खण्ड के अन्त मे बीसलदेव रास मे 'अमृत रसायण' नाम का प्रयोग किया है। लखनसेन पद्मावती रास मे उसको 'परिमल भोग' नाम दिया है :—

लखनराय तणउ सयोग सुणउ कथा या परिमल भोग ॥७०८॥

नरपति ने 'चार रसायनों' के सयोग से बीसलदेव रास रूपी आनन्ददायक मानसिक भोग प्रस्तुत किया था और 'दामोदर' ने चार सुवासित खण्डो के चूर्ण से यह अत्यन्त सुगन्धित 'परिमल भोग' प्रस्तुत किया है।

शृगार, वीर, अद्भुत और रौद्र, चार मूल रसो का 'अयन' निवास, 'रसायन' है। और इन रसायनो के श्रवन (चूने) से अर्थात् टपकने से रस समूह के सयुक्त रूप 'रास' का निर्माण होता है। 'रसानो समूहो रासः' से इस चार खण्डो मे विभाजित 'रास' का आशय स्पष्ट हो जाता है। बीसलदेव रास मे इन चार रसों का अभाव सा ही है। किन्तु 'लखनसेन पद्मावती रास' मे इन चारो रसो का समावेश दिखाई देता है।

दामोदर ने 'लखनसेन पद्मावती रास' को 'सरस विलास काम रस भाव' की कथा कहा है। और पहली पक्ति मे 'सुणउ कथा रस लील विलास' कहता है। 'नरपति व्यास' बीसलदेव रास के विभिन्न खण्डों—'रसायनो' की लीला विलास की रसायन कहता है—' गावो रसायन लीला विलास'' (३-३८-१) 'सहज सुन्दर' भी रतनकुमार रास मे रतन कुमार की लीला विलास और परिणीती नारियो का वर्णन कर अपने श्रोताओ की लीला विलास प्राप्त करने का वर देता है।

यह 'काम रस भाव' और 'लीला विलास कथा' मे वात्स्यायन के काम सूत्र तथा भरत के 'नाट्यशास्त्र' की परम्पराएँ दृष्टिगोचर होता हैं और वे भी मूल मे लोक व्याप्त एव लोकगृहीत रूप मे मिलती हैं। इनमे रुद्रट, कैयट, मम्मट अथवा दण्डी आदि के साहित्य शास्त्र के विवेचन की छाया नहीं है।

'रास' सज्ञक रचनाओ मे 'काम रस भाव' के मूल का एक स्रोत 'लोकनृत्य रास' तथा "हल्लीसक" के साथ गाये जाने वाले वे गीत हैं जिनमें स्त्री पुरुष के बीच प्रणय निवेदन की भावना प्रधान रहती थी जिनमें सयोग और वियोग की मार्मिक अभिव्यजनाएं की जाती थी। इन रचनाओ का दूसरा स्रोत कामशास्त्र है जिसका प्रभाव इन रचाओ पर सर्वाधिक है।

साहित्य शास्त्र में नायक-नायिकाओ के भेदोपभेद वर्गीकृत हो चुके थे किन्तु वे कुछ बहुपठित समुदाय का ही मनरजन कर सकते थे। सर्वसाधारण, लोक समुदाय तक पहुँच 'काम रस भाव, लीला विलास' से ही सम्भव थी। इसीलिए मध्ययुगीन

हिन्दी के लौकिक आख्यानकारों ने शास्त्रीय वर्गीकरण एवं परिभाषाओं की उपेक्षा की। लखनसेन पद्मावती रास में नायिकाओं का विभाजन 'कामशास्त्र' के अनुसार किया गया है और उसकी नायिका का नाम इसी वर्गीकरण के अनुसार 'पद्मावती' है। दामोदर ने चतुर्विध नारी वर्ग की परिभाषा भी दे दी है—

नारी वरण कवि दामउ कहै, साभलि चतुर होर्यै गहगहै ॥२२६॥

'दामोदर' का नायक भी 'काम' का अवतार है। जिसे देखकर 'साभोर' की सुन्दरियाँ स्तब्ध रह जाती हैं :—

ठिठ नरवइ ठिठ नरवइ जंपइ सा नारि
+ × ×
एक पाणी भ्यातर रही कुंभ न भरणउ जाय
एक भूली भूई गति गई पुरुष देखि नयणाय

'कामशास्त्र' का साहित्य में प्रवेश बहुत प्राचीन है। ईसा पूर्व तीन शताब्दि में मौर्यकालीन लेखक 'भद्रबाहु' ने 'वसुदेवहिण्डी' में बताया था कि समाज की चित्त-वृत्ति कामकथाओं के कारण विकृत गई है। वह शुद्ध आध्यात्मिक भावना का पोषण करने वाली धर्मकथा को ग्रहण करने के लिए उत्सुक नहीं है। 'भद्रबाहु' के इस संकेत से 'कामकथाओं' की लम्बी परम्परा प्रतीत होती है। प्राचीन काल में आख्यान काव्यों का विभाजन काम कथा, राज कथा एवं धर्म कथा के रूप में होता था। हिन्दी के 'राम काव्य', 'काम कथा काव्य' अर्थात् लौकिक आख्यान काव्य धारा की ही रचनाएँ हैं।

इन कामकथाओं का उद्देश्य जन-साधारण का स्वस्थ मनोरंजन करना था। इनमें व्यष्टि और समष्टि की मंगल कामना निहित थी। समाज व्यवस्था के प्रति निष्ठा थी। नायक-नायिका के बीच उद्दाम प्रेम का उदय और उसका विकास सदा समाज सम्मत 'परिणय' में होता था। प्रेमियों के मार्ग में खलनायक या बाधक परिस्थितियाँ द्वारा अवरोध उपस्थित किया जाता था किन्तु नायक की वीरता तथा नायिका की दृढ़ निष्ठा उन पर विजय पाती थी। इसी मोटे ढांचे पर लौकिक आख्यान काव्यों के सूत्र जोड़े गये हैं। इन काम कथाओं का मूलरस 'शृंगार' होता था किन्तु साथ में वीर रस' अनिवार्यतः उपस्थित रहता था। कायर का शृंगार समाज को संग्राह्य नहीं रहा। इसी कारण नायक की समर शूरता तथा नायिका की सतीत्व की अडिग साधना का गुंफन हुआ।

'कामकथाओं' के नीति सम्मत काम में वर्णित प्रेम लोकधर्म के विरुद्ध नहीं है। मुल्ला दाउद की 'चन्दायन' तथा नन्ददास की 'रूपमंजरी' में वासना का विकृत रूप उभरा है। 'चन्दायन' की नायिका चन्दा, नायक की प्रेयसी है और अन्य व्यक्ति

की परिणीता है। नायक द्वारा रणक्षेत्र मे पति का संहार होने पर नायिका पतिघाती नायक से वासनाजन्य प्रेम के कारण ही प्रेम-विवाह करती है। रूपमंजरी भी अन्य व्यक्ति की परिणीता है वह जारभिव भगवान कृष्ण से अनुरक्त होती है। यह "जार-भिव प्रेम साधना" का औचित्य 'विशेष धर्म' कहकर भले ही ठहराया जाय किन्तु समाज मे विद्रूपता फैलाने का कारण अवश्य बनती है भारतीय चिन्तन मे धर्म और अर्थ (नय नीति) से आबद्ध 'काम' ही 'शिवता' को लिए हुए 'सुन्दर' है। 'काम' की अपराजेय एव अदम्य धारा को 'लोक धारण' की दिशा मे प्रवाहित किये जाने का प्रयास हुआ है। 'काम' के पूर्ण 'शमन' या 'दमन' का मार्ग असम्भव एव अव्यवहारिक भी था इसमे अपवाद की गणना नगण्य है। 'काम' का संयमन नियामको ने श्रेयस्कर समझा। 'रास' के लोकतत्व का स्पष्टीकरण अब्दुल रहमान के 'संदेश रासक', से हो जाता है–उसके अनुसार मध्यम वर्ग (मज्झयार) ही रासक काव्य सुनने का पात्र है।

'ललनसेन पद्मावती रास' मे मगलाचरण के पूर्व ही श्रोताओ को कथानक का आभास करा दिया गया है। हिन्दी रास नाट्यशास्त्रो मे परिभाषित उपरूपको की परम्परा मे थे। 'विष्कम्भक' कथावस्तु के संकेत का वाचक है सरस्वती वदना एव राजपूतो के समस्त कुलो के प्रधान पुरुषो के एकत्रित करने की यह भावना रूढि पालन के रूप में ही मिलती है। 'दामोदर' ने उनका सम्मिलन 'योगी के कुँए' में कराया है जो 'ललनसेन' को छोड़कर भाग खड़े होते हैं।

प्रेम निरूपण :—

काव्य की दृष्टि से 'ललनसेन पद्मावती' बहुत उच्च कोटि की रचना नही है। वह मध्यमवर्गीय जन समाज के मनोरंजन के लिये गाया गया लौकिक आख्यान काव्य है जिसका प्रमुख तत्व 'नीति सम्मत काम' की अभिव्यक्ति अर्थात प्रेम-निरूपण है जो विशेष रूप से आकर्षक है।

जन्मान्तर से पुष्ट प्रेम इन काम कथाओं की मूलप्रेरक भावना है लखनसेन पदमावती रास में प्रथम दर्शन पर ही अनुराग के प्रादुर्भाव होने मे यही भावना व्यक्त की गई है :—

दिष्टइ दिष्ट मिलावउ भयउ, नयण कटाक्ष बाण उर हयो ॥२४८॥

इस 'रास' मे प्रेम के 'अशरीरी' होने के विषय मे जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे अन्य लौकिक आख्यान काव्यो मे प्राप्त नही होते। केवल नयनो के प्रेम को कवि ने श्रेष्ठ बताया है :—

"नयणा केरी प्रीतड़ी जे कर जाणइ कोई,
जे रस नयणां उपजइ ते से अडो न होइ" ॥२५१॥

परन्तु वास्तव में कवि का आशय यह प्रतीत होता है कि केवल शारीरिक सान्निध्य ही 'प्रेम' की पूर्णता के लिए पर्याप्त नहीं है। उसके साथ हार्दिक प्रेम की आवश्यकता है।—

नयणां करे तो नेह करि, नहीं तर नयण तोवारि
मूका लाकड भमर जिमि हाडे वेह न पाडि (२५६–२५७)

यह विवाहोन्मुख प्रेमांकुर विवाह के रूप में पल्लवित होकर दोनों को एक रूप कर देता है। 'मधुमालती' में इसका विशद वर्णन है। परन्तु दामोदर ने भी अत्यन्त सक्षेप में उस भाव को व्यक्त कर दिया है :—

एक सुरता, दूजइ दातार, दुइजन मौलिया एकइ तार
दुइ सुजाण दुई चतुर वीवेक, दुई मुख देठि मिल्यां मनि एक
+ + +
लखनसेन पदमावति नारि, दोई सरीखा मोलीया संसारि
खोम ज्य जिमि कापड मिलइ, सुकविदास कवि 'दामउ' कहई
एक हुग कोई मुब माहे रहई

भारतीय विवाह की भावना अनेक उपमाओं के पश्चात दो कुंड में रहने वाले एक हंस की उपमा द्वारा व्यक्त की गई है। विवाह के पश्चात् दोनों शरीरों का प्राण (हंस) एक हो जाता है। चतुर्भुजदास द्वारा भी इस भाव की अभिव्यक्ति की गई है। यथा:—

"उतपति एक मयूर प्रीति हेत दुई तन धरे"

युद्ध वर्णन :—

दामोदर ने दो प्रकार का युद्ध वर्णन किया है। जहाँ वह माया युद्ध का वर्णन करता है वहाँ 'वीर' के बजाय 'अद्भुत' का समावेश अधिक है। 'दामोदर' अपने आपको 'वीर रस' का सुकवि कहता है। वास्तव में सरोवर वर्णन के पश्चात् यदि उसका कोई वर्णन सर्वाधिक प्रभावशाली है तो वह युद्ध वर्णन ही है। तुलनात्मक दृष्टि से 'दामोदर' 'छिताई चरित' तथा 'मधुमालती' के युद्ध वर्णन से अच्छा वर्णन नहीं कर सका। किन्तु, उसके काव्य की सीमा देखते हुए युद्ध वर्णन अच्छा है।

सरोवर वर्णन :—

'सरोवर वर्णन' मधुमालती–निगम द्वारा प्रणीत में भी इसी परम्परा में मिलता है। 'दामोदर' ने सरोवर के स्फटिक के बांध, उसमें क्रीड़ा करने वाले जल पक्षी, चकवा, चकवी, सारस, हंस, सरोवर के पुष्प, कुमोदिनी, कमल, जलचर, जीव, मगर, मछली तथा घास के वन, चातक और मोर आदि का वर्णन करके उसके तीर पर बने हुए मंदिरों का भी उल्लेख किया है। शिवमंदिर में तो स्वर्ग की अप्सराएं भी पूजन को आती हैं। बहुत से जीव उसका पानी पीते हैं। फूलों पर भ्रमर गुन्जार

करते हैं। ऋषिगण सन्ध्यावंदन करते हैं, ब्राह्मण धोती धोते हैं और गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। उसके पश्चात् वह उन पनहारिनों का वर्णन करता है जो चन्द्रमा जैसी द्युति से युक्त है और तीर पर बैठे राजा को देखकर स्तम्भित रह जाती हैं।

लखनसेन पद्मावती रास की कथावस्तु में लोककथा का भोलापन और सरलता है। उसमें अनेक ऐसी मार्मिक उक्तियां भी यत्र तत्र पाई जाती हैं जो लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित होने की क्षमता रखती हैं तथा जिनमें दोहे की ध्वजक शक्ति के दर्शन होते हैं :—

पर दुक्खइ ते दुखीया पर सुख हरख करत
पर कज्जइ सूरा सुहड ते विरला मरहुन
पर दुक्खइ सुख उपजई पर सुख दुक्ख धरत
पर कज्जइ कायर पुरुष धरि धरि बार फिरत
मीह सीचाणो सापुरिस पडि पडि फेरि उठत
गय गदर कुंभ कापुरिस पड़े न बहुरि उठत

इसमें लोक भाषा अपने प्रकृत रूप में काव्य भाषा बनने के लिये अग्रसर दिखाई देती है।

लखनसेन पद्मावती रास :—

हिन्दी भाषा का लोक व्यवहृत रूप एवं काव्य की भाषा बनने की दिशा में इसका अवदान स्तुत्य है एवं 'श्रावक' समाज के मनोरंजन को दृष्टि में रखते हुए गाये जाने के उद्देश्य से रचित 'रास' सफल काव्य है। प्रस्तुत ग्रंथ में 'अद्भुत और अप्राकृतिक' तत्व का समावेश आख्यानकार की निजी विशेषता है जिसे परवर्ती प्रबन्धकारों ने ग्रहण किया है।

बिल्हण चरित्र (१४८० ई०) :—

'दामोदर' के 'बिल्हण चरित्र' के कथानक, पात्र एवं काव्यत्व की तुलना चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती से करने का साधन नहीं है क्योंकि यह 'कामरस भाव' तथा लीला विलास कथा में यही परम्पराएं ज्ञात होती हैं। उसका प्राप्त अंश पिछले अध्याय में उद्धृत हो चुका है। मधुमालती और बिल्हण चरित्र के कथानक की काम्य-रूढ़ि समान है। बिल्हण अध्यापक बने हैं और राजकुमारी शशिकला शिष्या। राजा ने उनके बीच पर्दा डालकर अध्ययन की व्यवस्था की है। परन्तु मधुमालती ने गुरु शिष्या के प्रेम व्यापार को उचित नहीं समझा। अतः प्रथम बदला हुआ है।

बिल्हण चरित्र' में जन समाज परम वैष्णव, ब्राह्मणों का भक्त तथा हरि एवं देवी का उपासक है। जिस प्रकार यह समाज दामोदर, चेपनाथ, मानिक, लखनसेनी और ईश्वरदास की रचनाओं में अंकित है उसी रूप में मधुमालती में चित्रित किया

गया है। विषय भेद का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं है। दामोदर की इन रचना में 'विल्हण चरित्र' में गोरखनाथ के प्रति जो अगाध श्रद्धा दिखाई देती है। अपने आश्रय-दाता राजा कल्याणमल तोमर के लिये वह लिखता है कि उसका नाम नवोखण्ड में उसी प्रकार फैला हुआ है जिस प्रकार गोरखनाथ का। ग्वालियर में नाथ पंथी योगियों का बहुत प्रभाव था। मानसिंह तोमर ने अपने मान कुतूहल में गोरखनाथ के संगीत का उल्लेख आदर के साथ किया है।

पूर्वाधार :—

'विल्हण' का समय ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है। उसके जीवन की किसी सरस घटना को कथाबीज बनाकर सरस आख्यान काव्य रचना भारतीय मस्तिष्क की तरल कल्पना शक्ति की विशिष्टता है। विल्हण और दामोदर के बीच लगभग चार शताब्दियों का अन्तर है परन्तु विल्हण विषयक आख्यान दामोदर के बहुत पहिले लिखे जा चुके थे। ऐसा उसके कथन से ही ज्ञात होता है —

आदि कथा सकट मैं रही। तालय दस्ह सुमति कर कही।

दामोदर ने इस आख्यान को विस्मृति के गर्त में जाने से बचाकर पुनरुद्धार किया। 'विल्हण' की 'चौर पचाशिका' अथवा 'शशिकला पचाशिका' अथवा 'विल्हण-पचाशिका' की रचना अनुश्रुति में ही आख्यान के तत्व थे। उसे पल्लवित कर संस्कृत में उसको आख्यान रूप दिया गया था और वही परम्परा फिर हिन्दी में आई। काश्मीरी कवि विल्हण की इस घटना ने गुजरात से बंगाल तक के आख्यान साहित्य को प्रभावित किया था। संस्कृत के पश्चात् दामोदर का विल्हण चरित्र ही प्राचीनतम है। उसके पश्चात् ज्ञानाचार्य ने सन् १२६६ ई० में 'विल्हण पचाशिका' लिखी और सन् १५८२ ई० में सारंग ने 'विल्हण पंचाशिका' चौपाई लिखी थी।

कवि विल्हण और उनकी शिष्या शशिकला कुछ शताब्दियों में लौकिक आख्यान काव्य लेखकों के कथा बीज बन गये उनके साथ परम्परागत कथा रूढ़ियाँ गुम्फित कर आख्यानकारों ने सरस, कौतूहलवर्द्धक और मनोरंजक कथानक का रूप दे दिया और उसमें अनेक रसों का समावेश भी कर दिया। दामोदर ने लिखा है :—

अति सिंगार वीररस दाट्यो। करुणा रौद्र भयानक भयो।

इस उद्धरण से अति श्रृंगार और करुणा के बीज तो कथावस्तु में हैं ही। रौद्र और भयानक रसों को भी सम्मिलित किया गया है। यह तब तक ज्ञात नहीं हो सकता जब तक कि दामोदर के 'विल्हण चरित्र' का पूर्ण पाठ उपलब्ध न हो जाय। परन्तु इसी कवि का 'लखमसेन पद्मावती रास' देखकर 'विल्हण चरित' के रचयिता की प्रतिभा में सन्देह नहीं रह जाता।

प्रबन्ध :—

विल्हण चरित में अति शृंगार करुणा, रौद्र एवं भयानक रसों की अवतारणा हुई है। इससे अनुमान होता है कि कथानक सुपुष्ट गठित एवं 'प्रबन्ध' के अनुसार विविध मानवीय व्यापारों का उद्घाटक यदि नहीं है तो 'अति शृंगार' के वर्णन में शृंगार तत्व का विवेचक अवश्य है। "दामोदर" का महत्व इसलिये अधिक है कि वह हिन्दी के सर्वप्रथम लौकिक आख्यान काव्यकार की आसन पर सुशोभित किया जा सकने योग्य है। उसकी आख्यान कथन की क्षमता तथा भाषा का प्रवाह अत्यन्त श्रेष्ठ है। "विष्णुदास" ने पौराणिक आख्यान काव्य में सर्वप्रथम प्रबन्ध पटुता दिखाई है। "दामोदर" के कुछ दोहे ज्यों के त्यों 'मधुमालती' में मिलते हैं। सम्भव है ये किसी प्रतिलिपिकार ने उसमें जोड़ दिये हों परन्तु इसकी अन्य सामग्री का उपयोग "निगम" ने 'मधुमालती' में किया है यह स्पष्ट है। "कुशललाभ" उससे अनुप्राणित है। उसकी भाषा पर "विष्णुदास" का प्रभाव अधिक है। परन्तु उसने देशज शब्दों का सुन्दर प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। यह अवश्य है कि इसकी रचना में फारसी के शब्द दिखाई नहीं देते। लखनसेन पद्मावती रास में केवल एक स्थान पर सिपाहियों के लिये 'खान' शब्द आया है और 'हम्मीर' व्यक्ति वाचक है न कि अमीर के अर्थ में। "दामोदर" ने हिन्दी का परिष्कार भी प्रारम्भ किया और "निगम" ने परिष्कार का कार्य भली भाँति हाथ में लिया।

'विल्हण चरित' के 'शृंगार' का तत्व हिन्दी आख्यान काव्यों के शृंगार के लिये तथा युग के प्रतिनिधि काव्यों के लिये वरदान सिद्ध हुआ।

बैताल पच्चीसी (१४८६ ई०) :—

विक्रम आख्यान की 'वैताल पंचविंशति' पर आधारित 'बैताल पच्चीसी' है जिसको मानिक कवि ने १४८६ ई० में लिखा था। वह मूलग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है। जितना कुछ प्रसंग प्राप्त है उसका वर्णन पिछले अध्यायों में हो चुका है। 'कथाबीज' में कौतूहल तत्व मध्यकालीन आख्यानकार की निधि के रूप में 'मानिक' की अपनी सम्पत्ति है जिसने उसे काव्य रूढ़ि के रूप में आगे के आख्यानकारों को सौंपदी।

इसमें अनेक कथाबीज, काव्य रूढ़ियां हैं। कथा परम्परा के विकास क्रम को बढ़ाने के लिए कौतूहल पूर्ण ढंग से गठित हुई है। जिसको लेकर आगे के आख्यानकारों ने अपने कथानकों को चमत्कृत किया है एवं सुपुष्ट किया है इस दृष्टि से "मानिक" का स्थान भी महत्वपूर्ण है।

मधुमालती-चतुर्भुजदास निगम :—

ईशावास्योपनिषद में मनुष्यत्व के अभिमानी के लिए सौ वर्ष जीने की इच्छा रखते हुए कर्म करने का प्रावधान किया है। आत्मचिन्तन द्वारा 'विद्या' की प्राप्ति

वरणीय है तथा 'अविद्या' घोर अन्धकार मे प्रवेश करने के समान त्याज्य है। विद्या-अविद्या को तत्व मे जानने वाला ही अमरत्व को प्राप्त करता है।

इसी प्रसग मे विद्या और अविद्या के जानने के लिए चार आश्रम एव चार पुरुषार्थ माने गए हैं "वात्स्यायन" ने उस 'अविद्या' की व्याख्या की है। ससार के विषय को लेकर अर्थ, धर्म और काम इन तीनो को ही प्रमुखता दी। इन तीनो मे काम को 'लक्ष्य' रखा एव उसके हेतु रूप मे धर्म तथा अर्थ निर्धारित किये। व्यवहार मे काम से अधिक महत्व 'अर्थ' को दिया जाता है और अर्थ से अधिक महत्व धर्म को दिया जाता है। 'वात्स्यायन सूत्र' मे निर्दिष्ट किया गया है—"इस प्रकार धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील पुरुष इहलोक तथा परलोक दोनो में सुख प्राप्त करता है परन्तु वह इनकी प्राप्ति इस प्रकार करे कि एक पुरुषार्थ दूसरे का बाधक न हो अर्थ प्राप्ति इस प्रकार करे कि धर्म का भी पालन हो और काम की प्राप्ति करने मे धर्म तथा अर्थ की उपेक्षा न हो।"[१] अर्थ का प्रयोग अर्थशास्त्र के रूप मे हुआ है जिसमे राजनीति नयनीति और लोक व्यवहार सम्मिलित हैं।

'काम' के इसी रूप को ध्यान मे रखकर चतुर्भुजदास निगम ने अपनी "कामकथा" मे लिखा है :—

राजनीति की या में भाखी, पयाख्यान बुद्धि एह भाषी।
चरनायक चातुरी बताई, थोरी थोरी सब ही आई।
फुनि बसन्त राजरस गायो, जामे ईश्वर काम दसायो।

काम के उद्भव और विकास का अत्यन्त पुष्ट विवेचन भारतीय वाङ्मय मे हुआ है। काम को ऋग्वेद मे मनस का चित्त का, जीवन का, ससार का, रेतस, बीज, काम, निष्काम परमात्मा के हृदय मे सदा सबसे आगे वर्तमान होना लिखा है। इसके सत् का सगा बन्धु असत माना गया है और उसका निवास हृदयस्थ परमात्मा के समीप माना गया है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथम यदासीत्
सतो बंधुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।
(ऋग्वेद, १०/१२६/४)[२]

अथर्ववेद मे भी काम की अभिवन्दना इस प्रकार की गई है :—

हे काम, तू सबसे पहिले उत्पन्न हुआ है। देव, पितर, और मर्त्य सबको समान रूप से प्राप्त हुआ है तुझमे कोई बचा नही है इस कारण विश्व में तू सबसे महान् है, मैं तो सम्मुख सिर झुकाता हू, तुझे नमस्कार करता हू।

---

१. हिन्दी काम सूत्र, पृष्ठ २ सगावन ७।
२. हिन्दी कामसूत्र (जयमगला टीका सहित) श्री देवदत्त शास्त्री, १९६४ ई०, पृष्ठ ११ टिप्पणी १।

कामोजज्ञे प्रथम नैन देवा, आयु. पितरो न मर्त्या.
ततस्त्वमसि ज्यायान विश्व हा महात्मे
काम. नमः इति कुराणोमि ॥

काम की इस उदात्त परिकल्पना को चतुर्भुजदास निगम ने समझा था और उसका अत्यन्त सटीक विवेचन भी किया है। उसने लिखा.—

जीवन रूप जिहा लूं होई। सो प्रतिव्यव काम को सोई ॥६२७॥

राजा चन्द्रसेन ने मनोहर, मधु से काम के स्वरूप के सम्बन्ध में मधुमालती में कुछ प्रश्न किये हैं और मधु ने उनका उत्तर दिया है। चन्द्रसेन ने पूछा कि शरीर, अस्थि, चर्म, मास, रक्त, केश और नख जैसे पदार्थों से निर्मित है इसमें 'काम' का वास कहा रहता है ?

इस प्रश्न का उत्तर 'मधु' द्वारा निगम ने दिलाया है :—

जा दिन ते पुहमी रची जीव जन्म जग आन
भवन मध्यदीपक मनो, त्यों घट भीतर काम ॥६४५॥
देही में जागृत सदा जग की उत्पत्ति काम
जो खोजै तो पाइये प्राण सभी पै काम

और आगे लिखा: —

गोरस में नवनीत ज्यों काष्ठ मध्य ज्यों आग।
देह मथन लै पाइये, प्राण काम इक लाग ॥६४८॥

'काम' सृष्टि का मूल है। 'बृहदारण्यकोपनिषद' के अनुसार 'काम' पुरुषाकार 'आत्मा' था उसने 'अहमास्मि' कहा। प्रजापति का रूप धारण कर एक से अनेक होने की कामना उत्पन्न हुई। एकाकी रूप में पुरुष रति का अनुभव नहीं कर सकता। उसने अपनी देह के ही दो भाग कर डाले उससे पति और पत्नी हुए। 'द्विदल' अन्न के पृथक-पृथक 'दल' के समान। उसने स्त्री की सृष्टि की जिससे 'शतरूपा' का प्रादुर्भाव हुआ। प्रजापति और शतरूपा के द्वारा समस्त सृष्टि की रचना हुई जिसमें मूल आत्मा की कामना तथा उसके हृदयस्थ 'काम' का ही परिणाम था।

मधुमालती में चतुर्भुजदास निगम ने भी इसी उपनिषद के द्विदल अन्न के दो दलों के समान एक तत्व से ही पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका के उद्भव की सुन्दर कल्पना की है :—

उतपति एक मयूर प्रीत हेतु दोई तनधरें ॥३६७॥

'एक मयूर' से दो तन की उत्पत्ति हुई है यह भाव इसी ग्रंथ में निगम ने और भी स्पष्ट किया है :—

हम भोगी रस भवर हैं, कहूं कहा लौं अंग
महादेव धन्धो कियो तब ही दह्यो अनग ॥६२६॥
एक देह के तीन तन आधे को मधुमार।
आधे तन को दुई हूँ तिया, जैतमाल ती नार ॥६३०॥

और आगे चन्द्रसेन ने कहा :—

जैतमाल मधु मालती एक प्राण मन तीन ॥६३१॥

नीति अविरुद्ध काम —

वात्स्यायन ने 'काम' को नीति और धर्म के बन्धनों से युक्त प्रतिपादित किया है। काम ईश्वर का अंश है, ईश्वर ही है परन्तु ऐसा काम जो धर्म-अविरुद्ध है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"हे अर्जुन इस संसार मे धर्म-अविरुद्ध 'काम' मैं ही हूँ—"धर्मा अविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।" इसी की पुष्टि निगम ने 'मधुमालती' में की है।

अगिनि काठ महि तेल तेल अगमद अंग ही माहि
त्यों तो मैं तेरो प्रभू तो कूं सूझत नाहि ॥६५४॥
ज्या को खोजहो देहुरो ताहि को यह देव
वाके हैं वामें नही चतुर समुझि यह भेव ॥६५५॥

ससि उद्योग मरण ही जाने। इहा जलकुंभ सहस महि आने
सब ही मे प्रतिबिंब प्रकासे। यूं प्रभु जोति पिंड में भासे ॥६५६॥
उत देखो तो एकहि इदा। इत देखो तो सहसक चदा
छिपे न छिपे सब जग मे व्यापै। अलख निरंजन आपो आपै ॥६५७॥

काम की व्यापकता की दृष्टि से आत्मा और काम, सत और असत, विद्या और अविद्या एक ही तत्व तथा उसके सिक्का के दो रूप हैं। आत्मा, मन, और विद्या मोक्ष के विषय हैं। मोक्ष 'मृत्यु' का विषय है मृत्यु का पार्थिव संसार से रागात्मक सम्बन्ध नहीं है। पार्थिव संसार का सम्बन्ध 'काम' से है किन्तु उस 'काम' से जो धर्म और अर्थ से समन्वित है। यह 'काम' हिन्दू दर्शन मे विश्व को मूल प्रेरक शक्ति माना गया है जिसका आकर्षण सृष्टि के कण-कण मे परिलक्षित है। सृष्टि का प्रत्येक कार्य मनुस्मृति के अनुसार 'काम' की प्रेरणा से सचालित होता है :—

अकामस्य क्रिया काचिन् दृश्यते नेहकर्हिचित
यद्यद्धिकुरुते जंतुस्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता
काम्योहि वेदाधिगमः कर्म योगश्च वैदिकः

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्य परलोकताम्
यथा सकल्पिताश्चेह सर्वान्कामन् समश्नुते ॥

अर्थात् सभी क्रियाओं के मूल में काम है। जो कुछ भी किया जाता है काम की ही चेष्टा है। वेदों का स्वाध्याय वैदिक कर्म सभी भी 'काम' की प्रेरणा है। बुद्धिमान व्यक्ति अति काम तथा काम मग्नता से अपने आपको बचाता है। उचित मात्रा और प्रकार से व्यवस्थापित धर्म के अनुसार जो काम सेवन करता है वह सब सुखों को पाता है। काम की अप्रतिहत शक्ति का निरूपण 'मधुमालती' में निगम द्वारा हुआ है :—

तीन लोक सगरे इन जीते, ऐसे ख्याल बहुत दिन बीते
सुर मुनि असुर नाग नर जोई व्यापै सकल रहै नही कोई ॥६२३॥
जोगी होइ जिन्हु मन मारो। इन उनहू केरा तप टोरो।
ससि सराप याके गुन पाये। इन्द्र सहस भग अग लगाये।
गौतम नारि सिला इन कीनी। जालन्धर छल वृन्दा लीनी।
करि उपाय कीचक मरवाये। इन सगरे जग खेल खिलाये।
इनके गुन कीलन भई गोरी। चूके ध्यान लगे हर डोरी।
इनही बाण काम हर मारे। पार्वती न जरत उबारे।
जोबन रूप जहा लू होई। सो प्रतिबिम्ब काम को सोई।

'मदन' ने 'सहार के देवता' को अपने कुसुम सायक के पचबाणों का लक्ष्य बनाया परन्तु वह उसकी भूमि नही थी। अत. रुद्र के तीसरे नेत्र ने उसे भस्म कर दिया। निगम ने कहा है :—

महादेव जब काम प्रजारयो, भसम अगार झारि करि डारयो।

किन्तु आख्यान के पात्र 'मदन' की चिता से उत्पन्न हुए :—

जरि बरि काम भयो जग जाहर भसम अगार रहे उहि ठाहर
पाडल भगर तास के कीने करता की गति कोऊ न चीने

भस्मी से पाडल भई कोयला भुजे अगार, ताके यह मधुकर भये कारे येह बिचार।

बिगहि वृक्ष सैवँमी केरो, सो अवतार आन्हि मधु मेरो
पाडल भवर ऐही तुम दोऊ, बिधि के लेख न जाने कोऊ ॥३५८॥

इस प्रकार मधुमालती और जैतमाल को इस काम भ्रमर का सूत्रपात हुआ।

चतुर्भुजदास निगम का प्रधान लक्ष्य काम को 'वात्स्यायन' के अनुसार धर्म की रज्जु मे बाधना रहा है। चतुर्भुजदास ने मालती के रूप मे सर्वांग सुन्दरी 'पूर्ण तरुणी' की अवतारणा की है। ऐसी युवती को नायक मधु लोक व्यवहार एवं लोक धर्म के नियमो के कारण कामान्ध अथवा विषयासक्त होकर स्वीकार नहीं करता।

तरुण पुरुष गहि वेद विधि तो तूं करहि सयान
जो तूं उर भेदे नहि जिय द्रिग वारिज वान ॥४३८॥

जब तक वेद विधि से 'कर' न गह ले तब तक नायक मधु के हृदय में नायिका के 'द्रग वारिज वान' प्रभाव नहीं कर सके। मालती कितनी मोहक है :—

तीन लोक में भई न होई जैसी कुअरि मालती होई।

मालती को सम्पूर्ण समर्पण के भाव सहित सामने देखकर भी वह कहता है :—

बाढे सगति सनेह मृग मिथुनी जैसे भई
मधु जप्यय गति ऐह समुझि देख मन मालती

मधु इस अदम्य प्रणय याचना का निर्भय होकर उत्तर देता है :—

ऐसे वचन नाहि चित धरिहूं, फुनि कबहू बिचार न करिहू
लिखते भाग न तजि हो मेरो, करिहौ जैस कहा तू केरो ॥४८६॥

जैतमाल ने मार्ग वेद-विधि का निकाला। गान्धर्व विवाह की व्यवस्था की :—

देखन में बीती सोई कीजै, मेरी वचन सत्त सुन लीजै
उषा अनिरुद्ध भद है ज्योंहीं, गान्धर्व व्याह करहु तुम त्योंही

उसके पश्चात् वेदविधि से विवाह होता है।

नीति विरुद्ध और लोक विरुद्ध काम को चतुर्भुजदास ने व्यभिचार माना है। उसकी स्थान स्थान पर निंदा की है :—

तिय की तनक दृसारनि पावै, नर लगचाय स्वान ज्यूं आवै

अनमेल व्याह को नीति-सम्मत नहीं माना :—

नई नारि और पुरुष पुरानो तामें कौन अनपको जानो
जैरी गाठ जुराहि नहि पाते, भैसा बैल बहल हो जोते
मैं जानू मेरो घर बसौ, त्रिया कूं काम काल हुई डसौ
हूं तो अधिक बैस को बौरो, बूढो व्याह करै सो बोरो

'काम' का धर्म उसके 'एकनिष्ठ' होने में है। मध्यकालीन परिस्थितियों के कारण पति के लिये एक-पत्नीव्रत का विधान नहीं हो सका, यद्यपि एक पत्नीव्रती राम को भारत ने पुरुषोत्तम माना था। मध्यकालीन परिस्थितियों में नियम ने पुरुष के लिये बहु विवाह की व्यवस्था की है। भारतीय समाज ने नारी के प्रेम की एक निष्ठा के अत्यन्त भव्य रूप की कल्पना की है। इस कल्पना में परम सत्त तथा शील माना गया है। सती माहात्म्य को लेकर अपार साहित्य लिखा गया है। हिन्दी के रूप निर्माण काल में

ही उसमे नारी की एकनिष्ठा का अत्यन्त विशाल और हृदयग्राही निरूपण हुआ है। पार्वती, सीता, सावित्री, दमयन्ती की पावन प्रतिमाएँ हिन्दी साहित्य को परवर्ती साहित्य से मिलीं, परन्तु, कुछ नवीन मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। मारुवणी, मालवणी, सत्यवती, मैनावती, कामकन्दला और मालती नारी के एकनिष्ठ प्रेम की अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिमाएँ हैं जिनका रूप निर्माण हिन्दी के कुशल लौकिक आख्यानकारों द्वारा ईस्वी पन्द्रहवी शताब्दी तक हो चुका था। चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती मे नारी के इस रूप मे चित्रण अत्यन्त उच्चकोटि का हुआ है। प्रेमिका की एकनिष्ठता की तीव्रता और उसके स्वच्छ दर्प का ऐसा अकन अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है।

पवनदेव साक्षी देते हैं प्रेमी-प्रेमिका की अनन्यनिष्ठा की :—

मालती सम नहिं प्रेम मधुकर सम प्रीतम नही
को निवहिं नेम मनमा वाचा कर्मणा ॥४०७॥

नयनीति और व्यवहारकुशलता :—

वात्स्यायन द्वारा निरूपित काम का दूसरा अथवा अर्थ नीतिशास्त्र और लोकव्यवहार की कुशलता है। यही कारण है कि लौकिक आख्यान काव्य नयनीति और लोकव्यवहार की सूक्तियों तथा तत्सम्बन्धी अवान्तर कथाओं के भण्डार हैं। संस्कृत और अपभ्रंश के आख्यान काव्यों के माध्यम से मनु बृहस्पति, शुक्र, व्यास, पराशर, चाणक्य आदि के जीवन पर आधारित सूक्तियो का तथा वृहत्कथा, पचतंत्र आदि से उपाख्यानो का अक्षय भण्डार इन लौकिक आख्यानोंकारों को प्राप्त हुआ है। लोक मस्तिष्क द्वारा निर्मित लोकोक्तियों का भी कोष इनके उपभोग के लिये खुला रहता है।

रूप और यौवन : —

साहित्यशास्त्री शृंगार रस का स्थायी भाव रति मानते है। अभीष्ट प्राप्ति की कामना 'काम' है और अभीष्ट की लब्धि से उद्‌भूत क्रीडा 'रति' है। काम-प्रबन्ध का निर्माण रति भाव को रति के रूप तक पहुँचाने मे होता है, अतएव उसकी कामना से उसकी प्राप्ति तक के व्यापारो के सफल चित्रण द्वारा। इसी अर्थ मे निगम ने अपने काम प्रबन्ध को रस कथा कहा है। काम प्रबन्ध के मुख्य साधन रूप और यौवन है। सभी लौकिक आख्यान काव्यो के नायक और नायिका अद्‌भुत और अनुपम रूप लावण्य से युक्त युवक और युवतियाँ है। चतुर्भुजदास ने यौवन और रूप को काम का प्रतिबिम्ब कहा है। उसके नायक और नायिका काम के ही अवतार हैं उनमे अपार सौन्दर्य है। उनके सौन्दर्य का अकन मधुमालती की रचना का एक विशेष कौशल है। मधु की रूपमाधुरी दृष्टव्य है —

अवला केतिक पानी भरें चितवन कुंभ सीस तें ढरें
रीते कलस हाथ तें परें। मुनि कामिनी बिन मृत मरें

जौ लौं मधु अपने ग्रह रहे, केतिक नारि आसरी रहै
उनके सजन बन्धु वधु कहे, केतिक भली बुरी सब सहे
मनकी काहू कहे न सुनावें, ज्यो चातिक स्वाति कूं धावें

'मधु' की इस रूप राशि को चटसाल में पटल परेच के छिद्र से, जब 'मालती' ने देखा तब यह स्वाभाविक था:—

भई विरह बस बाल मधु मूरति निरखें जई
मनहुं कोवरी जाल, गिर है मीन ज्यो मालती ॥५५॥

और —

चितवन हूं चुहुं नैन मनहुं मदन सर उर लियो
प्रगटे पूरण मैन प्रीत हेतु मधु मालती ॥५७॥

चतुर्भुजदास निगम ने अपने आख्यान की नायिका का रूप वर्णन नायक की अपेक्षा और अधिक सुन्दर किया। मालती के रूप वर्णन मे उसका काव्य वैभव तथा कल्पना शक्ति अत्यन्त उच्चकोटि के दिखाई देते हैं। उपमानों द्वारा तथा रूपमाधुरी के प्रभाव प्रदर्शन दोनो के सहारे उसने सौन्दर्य का अकन किया है। मालती का रूप वर्णन करते हुए उर्वशी, गज, कपोत, हरि, बिंब, प्रवाल, मृगी, मधुकर, मीन, मराल, कदली, कनक और पिक आदि उपमानो का नामोल्लेख करके तथा "ऐसी विधना और न गढ़ै" कहकर वह लिखता है :—

जा देखे चित चलें महेशा, भूलै ससि डोलें अहि देसा
देखत धरनी डारें शेषा, सूरज भूल फिरें अनदेसा

राम सरोवर के तट पर स्वच्छन्द वातावरण मे मालती की छविराशि देखते ही बिजली सी चमक गई :—

औचक आनि दामिनी कोंधी, निरखत नैन भई चकचौंधी
तब परेच झकत मुख देख्यो, अबकहि रूप नख सिख पेख्यो
उपमा कौन पटन्तर को है ? सुर नर नाग लोक सब मोहे ॥४४५॥

चिबुक का वर्णन करते लिखा है :—

मृग मद बिन्दु किधों तिल बाढ़े, अलि के कज कोरि के काढ़े

चिबुक पर लगा मृदमद का टीका ऐसा लगता है मानो तिल बड़ा हो गया हो; अथवा कमल को भ्रमर ने कुरेद डाला और उसमें से वह अपना मुख दिखा रहा है। अत में लिखा है :—

गहनो और स्वरूप सब सुन्दरि सुन्दर लगें
वह रमनी को रूप गहनो को गहनो भयो

काठ बनाय संभारिये सो फुनि सोभा होय
बिनु भूषन तन राज हीं साची सोभा सोय
मालति-भूषन सोभा साजै, देखत इन्दु वधू मन लाजै
तीन लोक मह भई न होई, जैसी कुवरि मालती होई ॥४६८॥

चन्द्रमा घट घट कर बढ़ता है और मालती के मुख की आभा सदा बढ़ती ही रहती है अतएव चन्द्र की उपमा उपयुक्त प्रतीत नहीं हुई। चन्द सूर्य के सामने निस्तेज हो जाता है और मालती का मुख देखकर सूर्य स्वयं निस्तेज हो जाता है :—

ससि देखौ कै बार रवि के ढिग फीकौ भयौ
मालती बदन निहार तेज हीन दिनकर भयौ ॥२५१॥

कहीं छवि वर्णन मे अतिरेक भी हुआ है मधु के वरवेश को देखकर विमोहित स्त्रिया अटपटे काम करने लगती हैं। नन्ददास की रूपमंजरी तभी स्नान कर सकी जब उसके मुख कमल के कारण भौंरों की एकत्रित भीड़ पर काबू पाया जा सका।

अन्य रसों का समावेश :—

'काम' उद्योग एवं पराक्रम का प्रेरक है। प्रेम भी एक वीरत्व है। प्रेमी पर आंच आने के पूर्व उसके इष्ट रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग की भावना इस कथा का जीवन-प्राण है। मृग-सिंहनी प्रसंग मे यह उदात्त भावना आयी है :—

है मरिबौ एक बार हू जिव को लालच करू
यह न होय करतार जो मृग पहिले ना मरू ?

\+ \+ \+

मधु करवौ एक बार और बड़े के सिर बड़े
सबद रहौ संसार मृग पहिली सिंघनि मुई ॥१५८॥

\+ \+ \+

इह उह प्रीत न होय स्यार सियारिन जो परै
सिंघनि कीनो सोय फुनि सिंघनि होय सोई करै ॥१६०॥

इसी भावना के सहारे 'मधु' प्रेयसी की रक्षा के निमित्त चन्द्रसेन की अपार सेना से जूझ बैठता है। मालती के पलायन के परामर्श को ठुकरा देता है, उसके हृदय मे पराक्रम का उदय होता है।

लौकिक आख्यान काव्य में सब ही रस होते हैं लेकिन नवों रसों का पूर्ण परिपाक उसकी सीमाओं के कारण नहीं हो पाता क्योंकि वह महाकाव्य नहीं होता, वह कुछ सीमा मे गाया जा सकने वाला 'खण्डकाव्य' होता है।

'काम' का आदर्श जो निगम की मधुमालती में है उसका अंकन 'प्रसाद की' कामायिनी में हुआ—'प्रसाद' ने लिखा था—

"काम मंगल से मंडित श्रेय"

लौकिक आख्यान काव्य होने के कारण उसके प्रेम निरूपण में स्वच्छन्दता दिखाई देती है परन्तु उच्छृंखलता का सर्वथा अभाव है। यह उस युग की रचना है जब कामशास्त्र का अध्ययन शिक्षा की पूर्ति के लिये आवश्यक समझा जाता था। अश्लीलता एक ओर तो कलाकार की अभिव्यंजना शैली और उद्देश्य में निहित होती है। दूसरी ओर वह भावक श्रोता अथवा पाठक की भाव भूमि पर ही आश्रित होती है। समाज में ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो पवित्रतम वस्तु में अश्लीलता की खोज कर लेते हैं परन्तु वह उनके स्वयं के भावभूमि की प्रतिच्छाया रहती है यदि कालिदास के महाकाव्य, जयदेव विद्यापति की सरस रचनाएँ अश्लील नहीं हैं तो मधुमालती भी अश्लील नहीं कही जा सकती। काम, अमंगल, अपवित्र और अनैतिक नहीं है। वह एक अदम्य और अद्‌भुत शक्ति स्रोत है। जिसको धर्म और अर्थ की रज्जुओं से बांधकर विश्व को शिवत्व प्रदान किया जा सकता है।

इन लौकिक आख्यान काव्यधारा में काम कथाएं एवं रसकथाएँ हैं। नायक-नायिकाएं काम और रति के अवतार हैं। आकर्षण असीम एवं उद्दाम हैं। परन्तु वे नैतिकता के बन्धन को नहीं तोड़ते। अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के लिए तथा उसकी रक्षा के लिए *नायक अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, प्राण दे देता है। प्रियतम की* प्राप्ति के लिये प्रेयसी सब कुछ छोड़ देती है और कामकन्दला अथवा मोहना के समान वन-वन भटकती है। उनके पात्र जीवित रहना चाहते हैं संसार में रस का ग्रहण करते हुए। इनकी नायिकाएँ वेगवती सरिताओं के तीव्र प्रवाह के समान आन्दोलित हैं जो अपने मार्ग में किसी भी बाधा पर विजय पाकर आगे बढ़ जाती हैं, परन्तु उनका मार्ग अनिश्चित है। वे अपने प्रियतम रूपी रत्नाकर की ओर ही अविराम गति से प्रवाहित हैं जो आलोड़ित और आन्दोलित बाहें फैलाकर उनकी ओर अप्रतिहत ज्वार में बढ़ता है, परन्तु कोई भी मर्यादा भंग नहीं करता और इसी कारण समाज पर इनके द्वारा कल्याण वर्षा ही होती है। उनसे जीवन प्राप्त होता है जीवित रहने की एवं उसके लिये उपकरण एकत्रित करते रहने की लालसा एवं शक्ति प्राप्त होती है।

निष्कर्ष :—

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्रस्तुत कामकथा 'कामप्रबन्ध' है और इसे शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाय तो इसमें मुख्यतः शृंगार तथा सहायक के तौर पर वीर रस का समावेश है। अन्य रस भी यथा प्रसंग हैं। किन्तु मुख्यतः कामकथा में 'रसराज' शृंगार का स्वच्छ रूप परिस्फुट हुआ है जो संसार की उत्पत्ति का हेतु है, समस्त

क्रियाओ के सचालन मे मूल रूप है। अतएव निगम ने वैदिक आधार पर 'काम' की जो व्याख्या की है, उसका जो विशदरूप प्रस्तुत किया है उससे साहित्य की समृद्धि एव परिष्कृति में महत्वपूर्ण योगदान हुआ है।

छिताई चरित :—

काव्य साहित्य को लोक भाषा मे प्रस्तुत करने की इच्छा ही हिन्दी के प्रारंभिक प्रबन्ध काव्यो के मूल मे रही है। इन रचनाओ में रामायण, महाभारत, श्री मद्-भागवत के छायानुवाद प्राप्त होते हैं। हिन्दी के साथ यह प्रवृत्ति मराठी, बगला एव गुजराती के विकास मे भी दिखाई देती है। हिन्दू रईसो का सम्पर्क मुस्लिम राजदरबारो से होने के कारण उनका बोध लोक भाषा तक गम्य था। कथावाचको को लोक भाषा मे रूपान्तरित सुनाना आवश्यक हो गया था। हिन्दू सैनिक, व्यापारी एव जन-साधारण की यही दशा थी। लखनसेनी, विष्णुदास, ईश्वरदास एव मेघनाथ ने पौराणिक कथाओं को लोक भाषा मे इन्ही परिस्थितियो मे रूपान्तरित किया। श्रोतावर्ग के मनोरंजन के लिये आख्यान काव्य बीसलदेव रास, लखनसेन पद्मावती रास, मधुमालती जैसे आख्यान भी रचे गये।

प्रस्तुत रचनायें शास्त्रीय लक्षणयुक्त महाकाव्य लिखने की दृष्टि से नही लिखी गईं, वरन् गाकर सुनाने के लिए लोक साहित्य की रचना विधा के अनुरूप लिखी गईं। यही कारण है कि इन आख्यान काव्यो का कलेवर सक्षिप्त है एव इनमे गेयता है। कवि एव गायक अपने भावकों, श्रोताओ एव सामाजिको से सम्पर्क साधता चलता है और छिताई चरित के रचनाकारो के शब्दो मे उन्हे सुनने के लिये प्रेरित करता है :—

मोहि म हमहु सुनहु चउपही (पंक्ति १८)
+ + +
कथा छिताई जघन लई (पंक्ति २९)
+ + +
सुनहु सभा सब मनि धरि भाऊ। अहसी लागी होन उपाऊ (पंक्ति १००२)
+ + +
जो यह कथा सुनइ दै काना (पंक्ति २०८५)

श्रोतामण्डली के धैर्य को स्थिर रखने की दृष्टि से 'कलेवर' के विषय मे कहा गया

बाढ़ै कथा जु करउ बखाना (पंक्ति ५४४)
+ + +
बहुत बात को कहे बढ़ाई (पंक्ति ४७६)

निगम भी 'मधुमालती' रस कथा के कलेवर के विषय में कहता है :—

'थोरे माहि बहुत सुख होई। बहुत कहै मन फीको होई"

छिताई चरित' की तुलना में 'रामचन्द्रिका' परवर्ती काव्य को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि केशवदास की दृष्टि साहित्य शास्त्र की परिभाषा पर खरा उतरने वाला महाकाव्य लिखने की ओर थी। लोकरंजन के प्रधान लक्ष्य तक ही स्थिर रहते हुए आख्यान काव्य केवल पढ़ने के लिये लिखने की परिस्थिति 'छिताई-चरित' के समय तक उत्पन्न नहीं हुई थी। लोकभाषा के उदयकाल में लोकरंजन के लिये लोक साहित्य के विकास का युग था। वस्तुतः ये लोकमंच पर गेय 'रूपक' ही थे। इसी परम्परा के परिणामस्वरूप भारतीय नाटक के पात्र न केवल हर्ष वरन् शोक के अवसर पर भी गीत गा उठते हैं। जबकि समस्त मनोविकारों की अभिव्यक्ति लोकमंच पर गेय काव्यों द्वारा ही होती हो तब यह स्वभाविक ही है।

छिताई चरित का उद्देश्य लखनसेन पद्मावती रास, मधुमालती, विल्हण चरित, बैताल पच्चीसी अथवा सत्यवती के समान कोई कौतूहलवर्द्धक कथा लिख देने का नहीं है। निगम की मधुमालती के समान अन्तर्कथाओं की सृजन की प्रवृत्ति अथवा बार बार संस्कृत एवं प्राकृत सूक्तियों और उनका अनुवाद देने की प्रवृत्ति से छिताई चरित का रचनाकार ऊँचा उठा है। अलौकिक एव अप्राकृतिक घटनाओं का सहारा भी इस रचना में नहीं लिया गया है। लखनसेन पद्मावती रास तथा मधुमालती के मंत्रपूत अस्त्र-शस्त्र तथा देवी सहायता का भी इस रचना में अभाव है। कामशास्त्र को लक्ष्य बनाकर कामदेव और रति के अवतारों के रूप में प्रधान पात्रों की कल्पना कर विशुद्ध कामकथा लिखने की प्रवृत्ति को छिताई चरित में परिष्कृत किया गया है। विचार-प्रौढ़ता लाने का भी प्रयास है। यह दृष्टिकोण कथावस्तु के चयन, कथा युक्तियों एव रूढ़ियों के प्रयोग एव कथानक का सामाजिक एवं राजनैतिक पटल के विस्तृत होने में परिलक्षित है। रचनाकार ने अपने आख्यान को यथार्थ की ठोस धरती पर ला खड़ा किया है।

छिताई चरित लोक प्रचलित गेय आख्यान काव्य और परवर्ती शास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप रचित महाकाव्यों की बीच की कड़ी है। उसमें दोनों का ही समागम है।

लौकिक आख्यान :—

श्री बटे कृष्ण ने (ना० प्र० प० स० २००३ पृष्ठ १४०) छिताई चरित की ऐतिहासिकता पर बल देते हुए लिखा है कि 'यदि खुसरो की 'आशिकी' सत्य मानकर इतिहास में जोड़ी जा सकती है तो छिताई की कथा क्यों नहीं ?' हिन्दी काव्यों की कथाओं को कपोलकल्पित मान लेने से मुसलमानी इतिहास में अधूरापन रह गया है।

डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने लेख मे छिताई चरित की कथा को अनैतिहासिक माना और साथ ही यह भी कहा कि जो सम्मान अमीर खुसरो के ग्रन्थो को खोज के बाद उनका किया जा सकता है वह छिताई चरित का नही किया जा सकता। डॉ० दशरथ शर्मा ने छिताई चरित को जायसी के पद्मावत के आधार पर लिखा गया होना भी प्रस्थापित किया है।[1]

अमीर खुसरो इतिहास लेखक न होकर आख्यान लेखक था। उसकी कद्र अपने आश्रयदाता का इतिहास लिखने के क्रम मे ही की जा सकती है जबकि वह युग, अस्तित्व के लिए भयकर सघर्ष का था।

छिताई चरित नारायणदास के शब्दो मे नवरस कथा है जिसे उस युग का आख्या-नकार 'काम कथा' कहता था। अलाउद्दीन, रामदेव, रामसिह और छिताई कथा बीज मात्र है। राघव, चेतन, धनश्री, नाइन और मनमोहिनी मालिनी का प्रवेश कथा युक्तियो के रूप में हुआ है। समरसिह की वीणा के रूप मे माधवानल की वीणा अवतरित हुई है। अलाउद्दीन का चित्रकार, उसके द्वारा छिताई का उतारा हुआ चित्र और उस चित्र को देखकर अलाउद्दीन का आकर्षण भारतीय आख्यान काव्य की प्राचीन कथा युक्ति है। लौकिक आख्यान काव्य की रचना-विधा का अध्ययन इनके आधार पर हो सकता है। ऐतिहासिक कथा बीज को लेकर लिखे जाने वाले आख्यान काव्यो मे भी इतिहास का केवल आभास होता है। काव्यकार के सामने उसके स्मृति-पटल पर अनेक कथा पुरुष अकित हो जाते है। गोविन्दचन्द्र के पुरोहितस्यात पुरोहित पुत्र माधवानल की साधना को सम्पन्न करने के लिए कितने प्राचीन कथा पुरुष विक्रमादित्य को आविर्भूत किया गया और किसी 'बेताल' से नागलोक मे 'अमृत' मगाया गया। अतएव 'छिताई चरित' का अध्ययन 'काम कथा' के रूप मे करना ही समीचीन होगा।

जायसी से बहुत वर्षो-लगभग ५० वर्ष-पहिले नारायणदास तथा देवचन्द्र ने छिताई चरित लिखा था। छिताई चरित का उद्देश्य छिताई की अपने पति के प्रति अनन्य एकनिष्ठा और उसके परिणामस्वरूप अलाउद्दीन जैसे बर्बर, कामुक के भी झुक जाने और उसे अपनी पुत्री के रूप मे समरसिह को लौटा देने का अकन करना है। इस कथा द्वारा मुलतानो से मैत्री कभी सुखद नही रह सकती इसका भी सकेत धन, जन एव ललनाओ को भेंट मे देना बताकर किया गया है। यद्यपि तोमर सुलतानो से अनेक बार मैत्री स्थापित करते थे।

कथावस्तु :—

(१) देवगिरि (दक्षिण) के राजा रामदेव यादव को लूटने की इच्छा से अलाउद्दीन द्वारा अपना सेनापति निसुरतखा भेजा गया। मन्त्रियो के परामर्श से रामदेव अलाउ-

---

१—डॉ० दशरथ शर्मा—हिन्दुस्तानी, १९५७, पृष्ठ ८९।

दीन के पास दिल्ली पहुँचा और उसके भाई उलुगखां की मध्यस्थता से भेंट देकर संधि करली, 'नगर महल' में रामदेव को वास कराया गया जहां तीन वर्ष तक रहा।

(२) राजा रामदेव की कन्या विवाह योग्य हो गई। राजा ने सुदेश पाकर बादशाह से छुट्टी ली और साथ में एक चित्रकार भी उपहारस्वरूप भेजा गया। चित्रकार को नवीन प्रासाद निर्मित कराके दिया गया जहाँ उसने नवनिर्मित चित्रों की झांकी सजाई। संयोग से छिताई राजा की पुत्री देखने आई कि चित्रकार ने उसकी छवि भी अंकित करली। राजा ने ब्राह्मण द्वारा 'वर' की खोज कराकर ढोल समुन्द (द्वार समुद्र) के राजा भगवान नारायण के पुत्र सौरंसी (छिताई वार्ता में सुरसी नाम है) से छिताई का पाणिग्रहण कर दिया।

(३) सौरसी जामाता और पुत्री छिताई देवगिरि आये। सौरसी को आखेट का चाव बढ़ गया। छिताई भी यदा कदा साथ जाती थी। मृग की मृगया करने के प्रसंग में भर्तृहरि की समाधि भग हुई और आखेटक को आखेट से विरत रहने का उपदेश न मानने पर शाप दिया, "कि आखेटक सौरसी की स्त्री दूसरे के हाथ पड़ जायगी।"

(४) चित्रकार दिल्ली चार वर्ष के बाद पहुँचा। उसने छिताई के रूप एवं चित्र द्वारा बादशाह के मन में आकर्षण उत्पन्न किया। बादशाह उलुगखां को स्थानापन्न शासक नियुक्त कर स्वयं छह मास में संगठित सेना के साथ देवगिरि आ धमका और विध्वंस रचाया।

(५) सौरंसी देवगिरि की रक्षा के लिए अकेले ही 'ढोलसमुन्द' से संगठित सेना लेने और लौटने छिताई से अनुमति लेकर चल दिया, चिह्न स्वरूप कंठमाला, वस्त्र छोड़ गया जिन्हें धारण कर कुशासन पर कृपाण के साथ आत्मरक्षा में सन्नद्ध छिताई एकान्तवास करती शिव की उपासना में कालयापन करने लगी।

(६) राघव चेतन को छिताई की खोज लेने बादशाह द्वारा नियुक्त किया गया। उसने पूर्व पनघी नाइन और मनमोहिनी मालिनी दूतियां असफल रहीं जिनको राघव चेतन की सहायता को छोड़ा गया, सुलतान ने स्वयं दुर्ग की सैर की। रामसरोवर पर पहुँचा और पक्षियों पर गुलेल चलाने लगा। उधर विष्णु एवं शिव के मन्दिर में छिताई सखियों सहित शिवपूजन को जाती थी। छिताई ने छद्म वेष समझ मैनरेह (मदनरेखा) सखी को भेद लेने भेजा और स्वयं अन्य सखियों समेत मन्दिर के भीतर चली गई। मैनरेह (मदनरेखा) ने भेद पा लिया और बादशाह से किला छोड़ने का निश्चित वचन लिया। बादशाह कलारीहाट में राघव चेतन से मिला।

(७) राघव चेतन ने राजसभा में राजा रामदेव को बादशाह सुलतान अलाउद्दीन के प्रति आत्मसमर्पण करने व छिताई को सौंपने की प्रेरणा दी। वैरीसाल के कहने पर

राजा ने दूत राघव चेतन को अवध्य जानकर छोड़ दिया। इधर मैनरेह से भी राजा ने समाचार पाये। राजा ने उनमें भी अप्रसन्न होकर मैनसुख (मदन मुख) दासी के साथ सुलतान में वचन पालन कराने किले की दीवाल पर भेजा, किन्तु निष्फल रहा। सुलतान अलाउद्दीन के साथ की दो दूतियाँ सन्यासिनी वेष में छिताई के पास पहुँचकर म्लान मुख एवं कृशगात छिताई को यौवन का उपभोग करने की ओर प्रेरित करने लगी। छिताई की शंकित दृष्टि को भी उन्होंने परखा और विश्वास बनाये रखने की बातें बनाई। शिवजी के पूजन के स्थल का पता दूतियों ने लगाकर सुलतान अलाउद्दीन को ससैन्य भेजकर अपहरण करा लिया।

(८) कथाकार ने अपहृता छिताई के प्रति पाप दृष्टि हटाकर अलाउद्दीन द्वारा 'राघव चेतन' की चौकसी में दिल्ली में उसे रखे जाने एवं दैनिक व्यय की सुविधा तथा संगीत के अभ्यास के हेतु पचास पातुरें नियुक्त की जाने का विवरण दिया है।

(६) सौरसी पति अपनी पत्नी छिताई के अपहरण के समाचार से व्यथित हो योगी बना और चन्द्रगिरि में चन्द्रनाथ से दीक्षा ले गोपीचंद राजा की भांति विरक्त हो वीणा बजाते यमुना तट स्थित चन्दवार आ पहुंचा। मार्ग में अटाशकर-साधुओं से छिताई का पता चला। इसके वीणावादन में दिव्य शक्ति थी। छिताई ने अपनी वीणा दिल्ली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ,अनगोपाल नायक के यहां रखवादी थी। वह वीणा सौरसी को उसके घर अनायास पहुँचते मिल गई और इसकी तथा सौरसी के अवस्थित होने के विषय में सूचना मार्ग से उस समय गुजरती एक दासी द्वारा छिताई को मिल गई। राघव चेतन से भेंट होने पर सौरसी दरबार में उपस्थित कराया गया। सौरसी ने प्रथम दरबार, फिर जंगल में सुलतान एवं पशु-पक्षियों को चमत्कृत किया।

(१०) बादशाह के आग्रह से बेगमों के सामने वीणावादन सौरसी से कराया गया जिसमें छिताई की अश्रुधारा बादशाह के कन्धे पर गिरी। सुलतान ने सारा रहस्य जान सौरसी को छिताई लौटा दी और सम्मानित कर लौटाया।

(११) चन्द्रगिरि में चन्द्रनाथ गुरु से कृतज्ञता प्रकट की। आशीष लिया और पुत्र 'रावल' होने का भी वर मिला। देवगिरि में रामदेव ने स्वागत किया। कुछ दिन पश्चात सौरसी—छिताई दोनों पति-पत्नी ढोल समुन्द गये। वह पुन देवगिरि आकर स्वर्णतुला करके सुखपूर्वक राज्य भोगने लगा।

उपरोक्त कथानक में कथाबीज एवं कथा युक्तियां प्राचीन कथानकों से ग्रहण की गई हैं:—

१. चित्रकार के चित्र द्वारा बादशाह को आकर्षण और अनुरक्त बादशाह का छिताई पाने का प्रयास।

२. मृगया के सन्दर्भ में किसी ऋषि मुनि भरथरी योगी के आश्रम में तपस्या में व्याघात एवं शाप तथा उसका प्रतिफलित होना।

३. छिताई का पति के प्रवास काल में सात्विक जीवन बिताना एवं साध्वी रूप में जीवन की प्रतिष्ठा। मदनरेखा द्वारा गोले देते हुए बादशाह होने का अनुमान करना। स्थायी वियोग की कल्पना से प्राण त्याग एवं राघव चेतन द्वारा पुनः जीवन प्राप्ति।

४. दूतियों द्वारा भेद लेने की प्रवृत्ति। शिवपूजन या मंदिर में अपहरण आदि कथाबीज एवं कथायुक्तियां रामकृष्ण के आख्यान काव्यों एवं अन्य लौकिक काव्यों, रस कथा अथवा कामकथाओं में ग्रहण की गई हैं।

५. मौलिकता यह है कि छिताई का सतीत्व अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से कथाकार ने अलाउद्दीन के खलनायकत्व का विकास चरम सीमा पर नहीं किया वरन् उसमें छिताई के अपहरण काल में पाप दृष्टि बदलने तथा यथावत् सौरसी पति को सादर लौटाने की रचना करके सात्विक वृत्ति का भी उद्घाटन किया है जो भले ही अस्वाभाविक प्रतीत हो किन्तु 'छिताई' के आत्मगौरव का संरक्षण करती है। साथ ही यह सुलतान की पाशविक मनोवृत्ति में हृदय परिवर्तन का संकेत देती है जो किसी भी क्षण एक विचारक के लिये संभव भी है।

६. सौरसी वीर राजकुमार धीरोदात्त नायक है एवं नायिका राजकुमारी सती साध्वी है। राजकुमारी को शीलरक्षा में कोई जटिल संघर्ष नहीं करना पड़ा, उसका पिता संघर्ष जोहता रहा। अपहरण काल में भी संघर्ष नहीं हुआ। सीता के लिये रावण ने धमकियां तो दी थी, किन्तु इसे तो अभयदान देकर राघव चेतन की चौकसी में दे दिया गया। राघव चेतन द्वारा भी अपहृता के प्रति सत से डिगाने का प्रयास करना पाया नहीं जाता। सौरसी की वीणावादन नायक के कलावन्त होने का भी परिचायक है तथा कला के बल पर लक्ष्य साधन दिखाया गया है। यह वीणा अन्यत्र तो अभिसार के प्रसंग में चन्द्र को अवस्थित रखने के [illegible] में कथानकों के उपयोग में आई है। कला के बल पर लक्ष्य साधन में चन्दवरदाई द्वारा पृथ्वीराज की अचूक निशाने की प्रशंसा में मुहम्मद गोरी के मारने का लक्ष्य साधन आख्यान काव्य का अंग है।

७. प्रस्तुत आख्यान काव्य में 'प्रबन्ध' की दृष्टि वृत्तात्मकता एवं रसात्मकता का समन्वय करने का कथाकार का यद्यपि प्रयास हुआ है किन्तु वह उतना पुष्ट नहीं जितना कि प्रबन्ध को होना चाहिये। किन्तु जो संदेश कथाकार ने 'छिताई चरित' के माध्यम से दिया है वह महान् है, शाश्वत है, और एक पत्नीव्रत एवं पतिव्रत निष्ठा का अपूर्व संदेश है।

८. छिताई चरित का 'रामसरोवर' निगम की मधुमालती में भी आया है। वैसे 'सरोवर' लौकिक आख्यान काव्यों में प्रसंग का विषय रहा है। मृगया, जंगल, वन,

पर्वत, सरोवर, पशु, पक्षी, विवाह, लोकाचार, युद्ध, रात्रि, दिन आदि का वर्णन भी प्रस्तुत काव्य मे हुआ है एव मानव की विविध वृत्तियो का भी उद्घाटन हुआ है भले ही मार्मिक प्रसगो की उतनी उद्भावना न हो पाई हो जो 'प्रबन्ध पटुता' के लिये शास्त्रीय दृष्टि से अपेक्षित है किन्तु जिस युग की यह रचना है और रचना का जो मूल उद्देश्य 'वामकथा' कहने का है उसे देखते हुए यह रचना अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

छिताई चरित के लेखको ने अलाउद्दीन की सेना का उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण मे उत्तर लौटने के समय ग्वालियर गढ की सुरक्षा का ध्यान रक्खा है। सेना उसके पास तक नही पहुँच सकी :—

बढइ कथा जो पाटिल गनऊ, गोपाचल गढ दय दाहिनऊ
लागी फउजइ तुरत असेसू, घाटी चढी मारवइ देसु

देवचन्द्र लिखते हैं :—

सब मारवो धसिऊ सुलताना, आनि चन्देरी कियो मिलना
गोपाचल गढ बाए आनो कटक परिउ कोतलपुर आनी।

जायसी मे जैसे इसकी प्रतिक्रिया इस रूप मे हुई हो :—

डोले गढ गढपति सब काँपे, जीउ न पेट हाथ हिय चापे
काँपा रनथभउर हरि डोला, नरवर गएउ झुराइ न बोला
जूनागढ और चम्पानेरी, काँपा माडो लेत चदेरी
गढ ग्वालियर परीमथानी, औ खधार मठा होइ पानी
कालिजर यह परा भगाना, भाजि अजैगिरि रहा न थाना
काँपा बाधौ नर औ प्रानी, रोहितास बिजैगिरि मानी
काँप उदैगिरि देवगिरि डरा, तब सो छिताई अब केहि धरा
जीवत गढ गढपति सब काँपे औ डोले जस पात
का यह बोलि सोहंगा पातसाहि कर छात

जायसी ने 'ग्वालियर' के साथ अन्य किलो को भी सुलतान के अभियान मे आतंकित कर दिया। ग्वालियर गढ मे तो मथानी सी फिर गई। दुर्ग का स्कन्धावार रूपी मठा पानी-पानी हो गया।

पद्मावत मे सरजा दम्भ के साथ रतनसेन को अलाउद्दीन की अजेय शक्ति का परिचय देता है :—

बोलु न राजा आपु जनाई, लीन्ह उदैगिरि लीन्ह छिताई

रतनसेन कहता है :—

> जो छलि आने आइ छिताई। उन का स्मठ जो मुक्ख बनाई
> — छल कर पकरो ताकी धीया (पंक्ति १०३५)

इस प्रकार छिताई चरित का आख्यान पद्मावत में उद्भासित हुआ है एवं वही प्रतिक्रिया का स्वरूप भी प्रतिबिम्बित है।

देवचन्द[1] के युद्धवर्णनों से लगता है कि ये उसने स्वयं देखे हैं, जैसे सुलतानी सेना का वर्णन (५७७-६०२), सेना के पहुंचने पर देवगिरि की हलचल (६०३-६१५), मंत्रियों से मंत्रणा (६१६-६२६) गढ़ की सज्जा (६२७-६६२), अलाउद्दीन की आक्रमण की योजना (६६३-६८६), प्रथम दिवस का संग्राम (६८७-६६१), दूसरे दिवस का संग्राम (७४८-८१८), रामदेव-अलाउद्दीन सघर्ष (१३३५-१३८०), रणखेत रूपी सरोवर (१४११-१४१६)।

इन वर्णनो से देवचन्द हिन्दी के उन महाकवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हो जाता है जिन्होंने युद्ध के सजीव एवं सफल चित्रण किए हैं।

छिताई चरित के अनुसार 'हिन्दू-मुस्लिम' दोनों ही देश के राजनैतिक एवं सामाजिक प्रभुत्व के लिये दो पक्ष के रूप में संघर्षशील थे। अपने आदर्शों एवं विश्वासों की रक्षा के लिए देश के असिव्रतधारी योद्धा मरण त्योहार मना रहे थे। इस संघर्ष में सबसे अधिक दुर्दशा हिन्दू स्त्रियों की होती थी। 'शूर' 'साधु' एवं 'सती' के 'सत' की प्रतिष्ठा युग-साहित्य में विशेष रूप से हुई। मुसलमानी प्रतिरोध का दृढ़ केन्द्र असिजीवियों के समान ही गोरखनाथ के नेतृत्व में संगठित साधु समाज भी था। नारी के लिये सैनिक और साधु के समान 'सत' की साधना का आधार उपस्थित किया गया था। पति अथवा प्रेमी के प्रति एकनिष्ठा प्रतिपादित की गई :—

> "जैसे जती जोग अभ्यास। त्यो पतिव्रता कंत की दास।"
> (१०२७ छन्द संख्या सम्पादित छिताई चरित)

वाल्मीकि रामायण के कथानक से छिताई चरित में प्राप्त उपमाएं-रामकथा का प्रभाव स्पष्ट करती हैं :—

> अति सरूप सीता सम सती (३६)
> रावन सभु को पुहमी भयो (५०)
> मानपु रामायन चितरियो (२७६)
> अति स्वरूप सीता कउ हरना, अधिक विषय रावन कउ मरना (४७५)
> खिलची जु सुरंगी रावन जैसो (५२१)

1—छिताई वार्ता, प्रस्तावना पृष्ठ ८ (देवचन्द)।

बंधि समुद्रहि उतरहु पाटा, जिउ रावनहि राम कियो घाटा (८८७)
तिनके कारज पिथि चढ़ाहि जिउ हनुवतहि सुधि (११२३)
देखहि गढ़तल दिष्टि पसारी, मानहु सेतबंध की पारी (१३००)
चढ़हि मुगल जनु बन्दर लंका (१२५१)
सीता रामहि भयो वियोगु (१६७२)
मुंदरी लीए सीय मुख जइसें (१६५४)

यद्यपि रचना-विकास में रामदेव, अलाउद्दीन, समरसिंह के व्यक्तित्वों का भी योग है तथापि छिताई के व्यक्तित्व को ही काव्य का केन्द्र बनाकर समस्त काव्य विरचित हुआ है।

छिताई में एक ओर राजमती, कामकन्दला, मालती, मैना मारवणी पद्मावती की कमनीयता और उत्कट प्रेम भावना है जिसके कारण छिताई चरित, बीसलदेव रास, माधवानल कामकन्दला, मधुमालती (चतुर्भुजदास निगम कृत), मैनासत, सत्यवती कथा, ढोला मारु, लखनसेन पद्मावती रास जैसे लौकिक आख्यान काव्य की परम्परा की श्रेष्ठतम रचना है। दूसरी ओर छिताई चरित में रामचरित मानस जैसे समाज संस्थापक महाकाव्य का बीज छिताई के पातिव्रत तथा समरसिंह की एकपत्नीव्रत निष्ठा में प्राप्त होता है। यथा :—

बिन सौरसी पुरुष जे नाना, पिता पुत्र ते बन्धु समाना (१२६२)

इसी आदर्श का निर्वाह तुलसी की उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ नारियों के आदर्श की प्रस्थापना में हुआ है। किन्तु समरसिंह न राम के समान आख्यान के रावण पर सामरिक विजय प्राप्त कर सका न वैसा पराक्रम दिखा सका। किन्तु समरसिंह में एकपत्नीव्रत तथा राम का आदर्श चरित्र उद्भूत हुआ है :—

हाकउ गुन मउरसी सुजाना, मुद्रावत सो मदन प्रवाना
+ + +
सब गुन राजनीति व्योपरई, पर धन्नी परदिष्ट न धरई

एकपत्नीव्रत की कल्पना इन समकालीन लौकिक आख्यान काव्यों में प्राप्त नहीं होती। यह छिताई चरित की ही विशेषता है। अन्य नायक अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम अवश्य करते हैं परन्तु वे अन्य सुंदरियों को भी पत्नी रूप में ग्रहण कर लेते हैं। निगम का नायक मधुमालती के अतिरिक्त जैतमाल से विवाह कर लेता है। अन्य लौकिक आख्यान काव्यों में परकीया प्रसंग वर्जित है किन्तु बहु-विवाह वर्जित नहीं है।

छिताई चरित में अलाउद्दीन के हरम में जहां मलिकाओं का झुण्ड है, रामदेव के अन्तःपुर में ७०० रानियां हैं वहां समरसिंह के विषय में उल्लेख है :—

एक नारि नौतनु निकलंकु (१२६७)

गुरु चन्द्रनाथ से समरसिंह ने स्थिति स्पष्ट की :—

मेरे ग्रेह एक वर नारी (२००८)
अहिनिसि बसइ छिताई हिए। जिमे भुजगम रहइ मनि लीए

चन्दवार की सम्मोहक कामिनियों के बीच छिताई की रूपमाधुरी ने समरसिंह को बचाये रखा।

अधर सुधा सुन्दरि की पीए, बनिता एक सुहाइ न हीए (१६१३)

अलाउद्दीन को स्वयं कहना पड़ा —

भूलो नही तहा करतार, जइसी त्रिया नैनो भरतारा (१८७३)

वाल्मीकि के अतिरिक्त महाभारत, रघुवंश, हरिवंश पुराण में प्रचलित रामकथा ने छिताई चरित की वस्तुनिर्माण में योग दिया है। छिताई चरित ने मानस में योग दिया है। इस रामकथा के ढाँचे में रामदेव एवं अलाउद्दीन की अति निकट भूत की घटना को गुम्फित कर ऐतिहासिकता के साथ ही काव्यगत कल्पना का सम्मिश्रण किया है; किन्तु ऐतिहासिकता को आँच न आने देते हुए कल्पनाशक्ति के आधार पर छिताई चरित में सुलतान की उदारता एवं वचन पालन के गुणों का समावेश करना पड़ा। यद्यपि कामुकता एवं तुर्कों की नृशंसता भी चित्रित की गई है। पन्द्रहवीं शताब्दी में हिन्दू मुसलमानों में इतना द्वेष नहीं रह गया था जो ग्यारहवीं-बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में था। चिन्तन के क्षेत्र में "हिन्दू तुरक की राह एक है" की विचारधारा पनप रही थी।

इतिहास भी अलाउद्दीन को हिन्दी संस्कृत साहित्य भारतीय संगीत का आश्रय-दाता कहता है। सिक्कों पर देवनागरी को स्थान मिला था। केशवदास ने कविप्रिया में—"दिल्ली पति अल्लावद्दी कन्ही कृपा अपार" लिखकर प्रशस्ति की है। गोपाल नायक गायनाचार्य इसी के आश्रित था श्री राम के मन्दिर की मूर्ति अलाउद्दीन के सैनिक दिल्ली ले गये थे। दक्षिण की गायक मंडली मूर्ति लेने दिल्ली गई और संगीत पर मुग्ध हो मूर्ति लौटा दी गई थी।[1]

वाल्मीकि के रावण द्वारा अपहृता सीता के साथ सद्व्यवहार किये जाने का उदाहरण भी छिताई चरित के कवि के सामने था। अन्तर यही था कि रावण पराजित होकर युद्ध में मारा गया तब सीता-उद्धार हुआ। छिताई के उद्धार के लिए अलाउद्दीन
-गी मूर्ति को लौटा देने वाले संगीत प्रेमी के ऐतिहासिक तथ्य का उपयोग
भारत
अति स्वरूप की कथावस्तु के स्पष्टतः दो खण्ड हैं। पूर्वार्द्ध में छिताई हरण तक
खिलजी उत्तरार्द्ध में समरसिंह द्वारा छिताई प्राप्ति का वृत्तान्त है। प्रथम

—छिताई वार्ता, प्रस्तावना पृष्ठ ८ एवं हिस्ट्री आफ दी डेकन, पृ० १२८

खण्ड मे हिन्दुओ के पराक्रम और तुर्कों की अनैतिकता का निरूपण हुआ है। अला-उद्दीन का दुर्दमनीय पराक्रम और प्रचंड प्रताप भी प्रत्यक्ष सामने आ जाता है:—

दोली अलावदीन सुलताना, सौ तपु तपई जन दूजउ भाना
सौवे सुपम विपय सकेनु, चौनद छवयो तासु को चेनु
धन जोवन प्रभुता जँ विवेकू इन्ह चहूं माफ भयो नर एकू
अगनि जरो ग्रीपम उदाना प्रवरनि बरजइ कउन सुजाना
मदमातौ को गाहइ गयदू मत्रिन्ह भनउ न सुनइ नरिंदू
पूरव पछिम उत्तर देसू, भुमिया जैंते आहि नरेसू
छलि बलि बेटी मांगइ साही नाहो करइ हतइ सिर ताही (१०२-१०८)

गोस्वामी तुलसीदास के रावण की कल्पना पूर्णत इस चित्र मे प्राप्त होती है। पराक्रमी, प्रचड एव स्त्रैण शाह की सेना निर्मम तथा, क्रूर है —

धावई तुरक देस महि मारी, पर पाटन दीजहि परजारी
सुवसु बसहि जे गवई गाऊ, तिन्ह के खोज मिटावहि ठाऊ (१२६-१३०)
बमनि नगर पुर उत्तिम थाना खोद लेत कीन्हे मइदाना
मारहि तुरक भील मिउ भीती ढहहि देहुरे करहि मसीती (५४७-५४८)

छिताई का हरण छल-बल से हो गया किन्तु राजपूतो के शौर्य एवं बलिदान मे कमी नही थी। पराजय का कारण नीतिसम्मत युद्ध ही है।

छिताई के चारित्र्य बल ने अलाउद्दीन की, क्रूरता एव वासना को सुप्त कर दिया, अलाउद्दीन ने कहा:—

जिहि लगि मइ कीनी ठकुराई, सोउ बात न सीरय भई
सीलति माप छत्रधरि जइसे, भयो बखानो मोरहु तइसे
अति दुख सुनि सुलतानहि भयो पायो, रतन हाथ तइ गयो (१४०६-१४०८)

नारायनदास ने अलाउद्दीन की छिताई से अपने पिता तुल्य होने की मान्यता कराई साथ ही अलाउद्दीन के मन मे यह भय उत्पन्न कराया कि यदि उसे बलात् वासना के आधीन किया गया तो वह प्राण त्याग देगी। इस प्रकार परिस्थितिवश छिताई के 'सत' की रक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया गया। तुलसीदासजी ने 'भजन होइ नहि तामस देहा' के आधार से अपनी समस्या का समाधान किया। अला-उद्दीन ने सोचते समय विचारा:—

पाप दिस्ट छोडी नर नाथा सउपी राघो चेतन हाथा
बारह सहस टका दिन माना आपुन बध कियो सुलताना

देखिमि दखिन गुन कइ आमा, अनु सउपी पातुर पचासा
तिन संगीत सधावत रहइ विधना कर्म दियौ दुख सहई (१५०१-१५०४)

देवचन्द्र ने लिखा —

रहि भी पास हजूरी भई, यहु भइ तो वहु वाचा दई
चिता बहुत वियापहि घनी, भई हजूरी रहइ पदुमिनी (१४६६-१५००)

छिताई चरित के उत्तरार्द्ध (चतुर्थ खण्ड) में समरसिंह को छिताई प्राप्ति के लिये की गई एकान्त साधना का निरूपण किया गया है।

पद्मावत में सुग्गे के उपदेश पर रतनसेन का सिंहल की पद्मिनी के लिये किया गया प्रयास प्रस्तुत कथानक की दीपशिखा के आगे मद्धिम पड़ गया है। बैरागी समरसिंह अपनी साधना से प्रियतमा को प्राप्त करता है, दोनों का ही दुःख सहानुभूति एवं प्रशंसा प्राप्त करता है।

अलाउद्दीन के प्रति सहानुभूतिपूर्वक समरसिंह (सौरसी) से कवि ने कहलाया है :—

सिन्धु न भरउ नाइ अरुवारी, तुम नरपति वाचा प्रतिपारी (१८४८)

दिल्लीपति के प्रति भारतवासियों की श्रद्धा भावना तो रही ही है किन्तु ऐतिहासिक परिस्थितियां भी मुखरित हुई हैं। वीरसिंह तोमर तुगलक सुलतान के अस्पष्ट फरमान के आधार पर ग्वालियर गढ़ ले बैठा था। दिल्ली, कश्मीर, गुजरात, मालवा जौनपुर के बीच ग्वालियर का तोमर राज्य सन्धि-विग्रह की नीति के अनुसार अपने को टिकाये हुए था। उसकी आशाओं का सम्बल था राणा सांगा।

अलौकिक घटनाओं का सन्दर्भ :—

छिताई चरित में समकालीन रचनाओं की अपेक्षा अलौकिक घटनाएं कम ही हैं। मंत्रपूत हथियार, उड़नखटोलों की कथा रूढ़ि का अभाव ही है। निगम की मधुमालती, लखनसेन पद्मावती रास में माया युद्ध का आश्रय छिताई चरित में दिखाई नहीं देता। माया युद्ध की छाया तुलसीदासजी में भी है। राघव चेतन को हुमायूदा पद्मावती स्वप्न में ही युक्ति बतला जाती है। प्रत्यक्षतः केवल छिताई और समरसिंह को पुनः जीवित करने की एकमात्र घटना अलौकिक है, जो कि देवचन्द्र कवि की अपनी कल्पना है। मृगों के गले में माला डालकर संगीत-सम्मोहन द्वारा 'देवचन्द्र' ने ही बुलाया है। इन कथा युक्तियों में एवं कथा रूढ़ियों में लोक कथाओं की रचना विधा का इतिहास मिलता है।

ऐतिहासिक आधार :—

कथा बीज के रूप में छिताई चरित में देवगिरि के राजा रामदेव और अलाउद्दीन के इतिहास संमत युद्धों को आधार बनाया गया है। लौकिक आख्यानकारों ने अपने

कथाबीज अनुश्रुति और इतिहास दोनों से लिये हैं। रामकृष्ण, नल दमयन्ती, दुष्यन्त शकुन्तला आदि नाम अनुश्रुतियों से लिये हैं और विक्रमादित्य सातवाहन, उद्‌यन, वासवदत्ता, भोज, गोविन्दचन्द्र, लखनसेन, बिल्हण आदि नाम इतिहास से लेकर काव्यकार ने अपने रूपों मे प्रस्तुत किये हैं। इसी परम्परा मे छिताई चरित में अलाउद्दीन, नुसरतखाँ, उलूगखाँ, रामदेव, पीपा, परिगही, छिताई, राघव चेतन, मोल्हन, मलिक नेब (मलिक काफूर) पाण्डे देव शर्मा, समरसिंह, भगवान नारायण आदि इतिहास से कथाबीज के रूप मे ग्रहण किये गये हैं। उनके साथ अनेक काल्पनिक पात्र मदनरेखा, 'मनश्री,' 'धनश्री' सिवराम आदि लौकिक आख्यानों द्वारा नामांकित लोक कथा की सृष्टि है। ये समाज की विविधता के प्रतीक रूप में आये हैं।

कल्पना और तथ्यों के इस विश्लेषण को समझने से ही ऐतिहासिक तथ्यों का मूल्यांकन उचित हो सकता है।

जियाउद्दीन, 'बरनी,' खुसरो तथा 'एसामी' ये चारों अलाउद्दीन के समकालीन लेखक हैं। 'यहया' पश्चात्‌वर्ती का विवरण समकालीन अप्राप्य पुस्तकों पर निर्भर है तथा वस्साफ का 'यात्री मौलिक वार्ता' पर आधारित है।

'बरनी', अमीर खुसरो और यहया ने अलाउद्दीन को रामदेव द्वारा बेटी (छिताई) भेंट करना नहीं लिखा है। किन्तु 'ऐसामी' जो फिरदौसी के अनुकरण मे काव्य लिख रहा था, रामदेव की पुत्री का नाम 'छिताई' होना व उसका (छिताई का) पुत्र मलिक नायब अलाउद्दीन द्वारा बादशाह घोषित किया जाना लिखता है। 'यहया'—अलाउद्दीन के दूसरे आक्रमण (२४ मार्च १३०७ ई०) में अलाउद्दीन का स्वयं देवगिरि जाना लिखता है जबकि अन्य लेखक मलिक नायब के नेतृत्व में आक्रमण होना बताते हैं। 'एसामी' दूसरा आक्रमण रामदेव के राजकुमार की विद्रोही वृत्ति के विरुद्ध स्वयं रामदेव द्वारा कराया गया बताता है जबकि अन्य इतिहास लेखक रामदेव के ही विद्रोह को दूसरे अभियान का कारण बताते हैं। 'एसामी' के अनुसार जब आक्रमण रामदेव की ही प्रेरणा पर कराया जा रहा था तो रामदेव मुलतानी सेना देखकर क्यों घबरा गया? इसमें निरपेक्ष इतिहास नहीं है। 'प्रचार' का उद्देश्य लेकर दूसरे पक्ष की समुचित जानकारी लेने मे सतर्कता नहीं बरती गई। 'बरनी' ने गायकों की सूची में अलाउद्दीन ने राज्यकालीन गोपाल नायक का नाम नहीं दिया जिसका अस्तित्व सुनिश्चित है।

'छिताई चरित' में पहिला आक्रमण नुसरतखाँ के नेतृत्व में (१२९६ ई०) दक्षिणी नारी प्राप्त करने के उद्देश्य से कथन किया गया है। किन्तु उनमें 'छिताई' नहीं थी वरन सामान्य दासियों के रूप में ही तुर्क सन्तुष्ट हो गये थे। ऐसी दासियां दी गई थीं– 'एसामी' के अनुसार यही दो दासियां हो सकती हैं और सम्भवतः इन्हीं में राम-

देव की 'दुख्तर' (पुत्री) होना प्रसिद्ध कर दिया गया हो जिन्हें 'एनामी' तथा 'वस्साफ' ने लिख मारा :—

जे दायी दामिन महि बुरी, अइसी हुई दोन्ही छोकरी (पंक्ति १४८)

फतहपुर (जयपुर) के राजपूत वंशी नो-मुस्लिम जान 'कवि' शाहजहाँ-कालीन ने लगभग प्रचलित सभी आख्यानों को लिखा था : उनके आख्यानों (१६३६ ई०) में 'कथा छिताई' की भी लिखी गई है जिसमें रामदेव को 'देव' और समरसिंह को 'राम' सम्बोधित किया गया है और केवल एक ही आक्रमण बताकर शेष कथा छिताई चरित के समान ग्रहण की गई। उसमें भी 'देव' की पुत्री छिताई अलाउद्दीन को प्रथम आक्रमण के समय उसके वंश का सूबेदार होने की हैसियत से भेंट की गई होती तो 'जान' छत्रपति या पातशाह एक सूबेदार को न लिखता ? 'छिताई चरित' में रण-थम्भौर के अभियान वर्णन में अलाउद्दीन से अपना असफल रहना स्वीकार करते हुए देवगिरि में भी असफल होने की सम्भावना परिताप के रूप में व्यक्त करायी गई है।[1] यथा :—

रनथभोर देवल लगि गयो, मेरा काज न एको भयो।

इसकी पुष्टि नयचन्द्र सूरि के 'हम्मीर महाकाव्य' में होती है कि 'मोल्हण' द्वारा अलाउद्दीन को देवलदेवी भेंट किये जाने के आग्रह पर उसे नहीं दी गई और हम्मीरदेव के सारा करने के पूर्व राजकुमारी देवलदेवी अन्य राजपूत रमणियों के साथ जौहर की ज्वाला में भस्म हो गई। फारसी लेखक बतलाते हैं कि इसी खिज्रखाँ और देवल-देवी को लेकर अमीर खुसरो ने 'आशिकी' लिखी परन्तु 'छिताई चरित' का लेखक नारायणदास कहता है कि देवल (देवी) के लिए अलाउद्दीन रणथम्भौर गया लेकिन काम नहीं हुआ और इसी असफलता की पुनरावृत्ति की संभावना में अलाउद्दीन देव-गिरि में मन से पीड़ित हो रहा है। नारायणदास लिखते हैं :—

हउ बोलइ ढोली यउ धनी, मइ चीतौर सुनी पदुमिनी
कथ्यो रतनसेन मइ आई, मइगो बादिल ताहि छुड़ाई (८३६-८८६)

'नारायणदास' ने छिताई चरित में पद्मिनी 'भद्रा' कामशास्त्र में वर्णित विशेष स्त्री जाति को दी है किन्तु जायसी द्वारा चित्तौड़ की महारानी को दिया गया पद्मिनी नाम और उसकी कथा को श्री हरिहर निवास, जी[2] ने मिथ्या होना बतलाया है, किन्तु डॉ० आशीर्वादीलाल ने इसे ऐतिहासिक माना है जो युक्तियुक्त है।

1. ना० प्र० पत्रिका सवत् १९८४ पृष्ठ ८० : छिताई चरित से उद्धृत :
2. दाधनहान मैनासन, पृष्ठ ४७ तथा दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल, पृष्ठ १८१ मानसिंह और मानकुतूहल श्री हरिहर निवास द्विवेदी, पृष्ठ ६१ ना० प्र० प० वर्ष ६४, अंक १, पृष्ठ ६४.

छिताई चरित के संगीत का माहात्म्य, नृत्य एवं वाद्य की महिमा तथा अलाउद्दीन, रामदेव, छिताई एवं समरसिंह की संगीतप्रियता का उल्लेख मिलता है। इस काव्य के अनुसार गोपाल नायक दक्षिण का निवासी एवं अलाउद्दीन का आश्रित था और समरसिंह के साथ उसके दक्षिण लौट जाने का वृत्तान्त इतिहास सम्मत है।

सोल्हण और राघव चेतन दोनों ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। राघव चेतन की ऐतिहासिकता श्री नाहटा ने प्रमाणित की है। राजा रामदेव की सभा मे राघव चेतन दूत के रूप मे गया है और नयचन्द्र सूरि के काव्य मे 'सोल्हण' में जो वार्ता कराई है वही राघव चेतन की रामदेव से हुई है। राघव चेतन अलाउद्दीन के आश्रय मे मुहम्मद तुगलक के समय तक दिल्ली मे ही रहा। देवगिरि के दूसरे अभियान मे रामदेव के साथ राघव चेतन के होने का 'समासी' का कथन भ्रामक है। अलाउद्दीन के सेनापतियों मे नुसरतखां 'हम्मीर महाकाव्य' के अनुसार रणथम्भौर में मारा जा चुका था जो कि देवगिरि आक्रमण से पहले हो चुका था। अतएव 'छिताई चरित' मे, 'नारायणदास' का नुसरतखा को देवगिरि के दूसरे अभियान मे सम्मिलित करना 'भ्रम' ही है। उलुगखा दिल्ली रक्षा के लिये ही रह गया था। ईसफखा के विषय मे अलाउद्दीन कहता है :—

वायइ बली न दूजौ और याके बल तोरिउ चीनौरा (पंक्ति ७७१)

इस प्रकार 'छिताई चरित' मे प्रसगवश जिन ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख है उन्हे असत्य मानने का कोई कारण नही। केवल कथा युक्तियो या रूढियो में इतिहास की खोज व्यर्थ ही होगी।

प्रबन्ध काव्य की परम्परा :—

संस्कृत और अपभ्रंश में प्राप्त रस सामग्री की दृष्टि से छिताई चरित अपने युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। उसके प्रधान रस शृंगार और वीर हैं। परन्तु साथ ही करुण, रौद्र, भयानक, अद्भुत एवं शान्त रसों की सामग्री भी प्रस्तुत की गई है यही कारण है कि कवि ने—

'नवरस कथा करइ विस्तारु' कहकर लोक सस्थापक आनन्दमय 'काम' की प्रतिष्ठा की है। नायिका भेद का शास्त्रीय रूप न अपनाकर कामशास्त्र में वर्णित स्त्रियो के भेद एवं पुरुषो के भेद शश, मृग, वृष एवं अश्व के रूप मे स्वीकार किये गए हैं। परकीया प्रेम के आख्यान रचे जाना समाज विरोधी समझा जाता था। प्रस्तुत काव्य मे कामशास्त्र के चित्रों एवं सुहागरात के मासल वर्णन मे कवि को कोई सकोच नही हुआ है। यह तत्कालीन आख्यान काव्यो के प्रभाव का परिणाम है। छिताई चरित हिन्दी की उस सृजनधारा की रचना है जिसका लक्ष्य रस लेकर ससार

मे जीवनयापन का सन्देश देता है। जहाँ पूर्ववर्ती साहित्य की परम्परा का निर्वाह है वहां परवर्ती साहित्य की दिशा का सकेत भी है। तुलसी के लोक सस्थापक आदर्श का सकेत, केशव, बिहारी, मतिराम आदि के रस रीति अलकार का आधार तथा भाषा की सुपुष्ट पृष्ठभूमि, छिताई चरित मे निर्मित हुई है।

* * *

खण्ड ३

अध्याय ६

काव्यरूप एवं प्रतिपादित विषय

प्रबन्ध शैली :—

ईस्वी पन्द्रहवी शताब्दी तथा उसके पूर्ववर्ती शताब्दियो के हिन्दी साहित्य की सामग्री थोड़े अंशों मे प्राप्त है। कबीर की रचनाओ मे काव्य रूप रमैनी, शब्द, कहुरा, बसत, चाचर, बेलि, बिरहुली, हिंडोला, साखी, बारहमासा, मगल काव्य प्राप्त होता है। श्री विचारदास ने कबीर के बीजक को इन्ही काव्यरूपो के आधार पर विभाजित किया है।

लौकिक साहित्य मे काव्यरूपो मे पवाड़ा, चरित या कथा, रास, रासा, धमार, रसिया, बसत, फाग, बारहमासा, चाचर, बेलि, बिरहुली प्राप्त होती है। नाथ और सिद्धो ने साखी, सबदी एव रमैनी अपनाए थे जिन्हें कबीर ने ग्रहण किया था। इनमे 'रास' काव्य रूप मूलस्रोत रहा। इनका ध्येय गाने के लिये लिखा जाता था।

चरित कथा आदि 'प्रबध' अथवा 'मगलकाव्य' नाम से जो आख्यान प्रधान काव्य लिखे गये वे भी गाकर सुनाने के आशय से लिखे गये हैं। विष्णुदास मेघनाथ जैसे पौराणिक आख्यान काव्यकार इन्ही लयों मे अपने छायानुवाद प्रस्तुत कर रहे थे। परन्तु विष्णुदास की महाभारत या मेघनाथ का गीतानुवाद सगीत के उपकरण मे नहीं लिखे गये थे। वे गेय अवश्य थे। एक ओर तो गेय-पद रहे हैं, दूसरी ओर ये विस्तृत कृतियाँ हैं—जिनमे सगीत गौण है। इन दोनों के बीच की श्रेणी मे वे काव्य रूप आते हैं जो विभिन्न लोक मचो पर विभिन्न रूपो मे नृत्य और अभिनय के साथ सामूहिक रूप से अथवा एक व्यक्ति द्वारा गाये गये।

मगल काव्य उसी प्रकार का एक काव्य रूप था जो मांगलिक अवसरों पर विशेषत: विवाहोत्सव पर गाये जाने के लिये लिखा जाता था। "पृथ्वीराज रासो" मे सम्मिलित "विनय मगल" इसी प्रकार का काव्य रूप है। इसके पश्चात् भी

विष्णुदास का "रुक्मिणी मंगल" प्राप्त होता है। कबीर की लिखी हुई भी "आदि मंगल," "अनादि मंगल" और "अगाध मंगल" तीन रचनाएं कही जाती हैं। परन्तु कबीर ने उन्हें दूसरा आध्यात्मिक रूप दिया। कबीर की "बिरहुली" माया के विष के दमन के लिये है। वह, वियोग रूपी भुजग के विष के शमन के लिये नहीं है। तुलसी दासजी ने इन्हीं लोक प्रचलित मंगल काव्यों को अपनाते हुए जानकी मंगल, पार्वती मंगल की रचना की और भक्तिभाव के उद्‌बोधक काव्य गायन के लिये प्रस्तुत किये। बंगाल में "कालिका मंगल", "मनसा मंगल" बने। मूलतः यह काव्यरूप मध्यदेश का लोकगान है।

वसंत फाग, चाचर, धमार, रसिया, वेलि एवं हिंडोला आदि विशेष ऋतु पर्वों पर गाये जाने वाले काव्यरूप हैं। इनमें गीतिकाव्यों के नामों के मूल में राग-रागनियां हैं। वसंत, धमार, हिंडोल राग-रागनियों के नाम हैं। इनमें कुछ नामों पर नृत्यों के नाम भी प्राप्त होते हैं। वसंत, फाग, चाचर, धमार, रास, रसिया और भाग सभी सामूहिक नृत्यगान है। रास नामक एकमात्रिक छन्द अथवा छंद समूह भी है। इस दृष्टि से लखनसेन पद्मावती रास के रचनाकाल के आसपास हिन्दी में प्राप्त सभी काव्यरूप लोकगान के रूप में विरचित हुए थे।

इन काव्यरूपों में 'प्रबन्ध' की शैली को विष्णुदास ने 'महाभारत कथा' में दोहा चौपाई रूप में अपनाई। लखनसेनी का 'हरि विराट पर्व,' "परमानन्द का' ओपा हरण" भीम का "मदयवत्स" ईश्वरदास की "सत्यवती" कुतबन की "मृगावती" गणपति की "कामकन्दला" आलम की 'कामकन्दला' मंझन की "मधुमालती" निगम की मधुमालती, दामो के लखनसेन पद्मावती रास, दल्ह के विरहण चरित्र, नारायणदास के छिताई चरित, साधन कृत मैनासत में दोहा चौपाई की शैली अपनाई गई। विष्णुदास की महाभारत में आरम्भ में 'श्लोक' लिखे गये हैं जिनमें देव वन्दना की गई है। फिर दोहा चौपाईयों का एकसा नियम पालन नहीं हुआ। कितनी चौपाईयों के बाद 'कडवक' के रूप में दोहा दिया जाय ? ऐसा नियम पालन नहीं हुआ है। आदि पर्व के एकादश अध्याय में एक भी दोहा नहीं दिया गया। नवम अध्याय में दो दोहे अन्त में ही दिये गये हैं। द्वादश अध्याय में आरम्भ ही दोहों से हुआ है। त्रयोदश अध्याय में ३ दोहों में २ दोहे अन्त में है और ६० चौपाईयों के बीच में एक दोहा है। इस प्रकार दोहे चौपाईयों का नियम नहीं रखा गया। केवल लेखकों ने दोहा चौपाई को प्रबन्ध शैली के रूप में अपनाया है।

चौपाई (जैसे)—दोउ दल साजे सम्रुहाई, चले बहुत ले राजा राई
दनु दोमें जनु मायनु सेतू जूझन दुहूं निवरयो कुरुखेतू।

इतने के बाद ही 'दोहरा' दे दिया गया है।

दोहरा : —

मेन चलो दुद्दुराज को माहुतु पन्यो न जाई
मिलीं अठारह छोहिनी, धुरि गगन रहि छाई

लखनसेन पद्मावती राग में भी श्लोक दिये गये हैं। गाथा, नराच दोहा, वस्तु, चौपाई से कथानक को विस्तार दिया है।

साधन कृत मैनासत में इस प्रकार का सोरठा जैसी शैली भी है।

"धोऊँ हाथ उठाय—खाऊँ पीऊँ बिलमिये"

चौपाई— प्रीतम सो मेलौं सब कोई, आजु अकेलो कोउ न होइ।

दोहा— तेरं दुख मरत हूं, वोन वचन दे माहि
जिमि मालति को भवरा, आन मिलावहु वोहि

निगम की मधुमालती में सोरठे का रूप इस प्रकार है :—

जो प्रिय प्रीत न जाइ जोबन जाते ना डरू
मूखि रहे कुम्हलाइ, बहुरे जोबन प्रीति सौं

\+ \+ \+

करता जनम न देइ जौ जनमो तो नेम इह
कै मधुकर रस लेइ, कै धौ दामनि मालती

शैली चौपाई छिताई चरित में इस प्रकार है : —

कहई अलाउद्दीन समुझाई, छल बल धरहु छिताई आई।

कथित सूफी आख्यान काव्य के लेखक 'कुतवन' ने मृगावती में यही दोहा चौपाई की शैली प्रयोग की है—

गुन बिनु धनुक कहा यह साधा, हौ बिरमा जस हलेव बियाधा ॥

"मझन" के दोहे की शैली इस प्रकार है :—

सो सम कहो सुरस रस भाषी, सुनहु काम दे पैम अभिलाषी।

मझन के दोहे की शैली इस प्रकार है :—

सहज सलोने लाहले, निगम गोफ रह सुति
जहा न तें और कोऊ, सो एकौ करतूति।

निगम की मधुमालती की दोहा-शैली मजी हुई है :—

हम भोगी रस भवर हैं, कहू कहा सो अंग।
महादेव भस्मो कियो, तब हो रह्यो अनग ॥

विष्णुदास ने स्वर्गारोहण कथा को प्रारंभ करने में महाभारत की भांति श्लोक से प्रारंभ न करते हुये 'दोहरा' से प्रारंभ किया है।

गवरी नन्दन सुमति दे गननायक वरदान
स्वर्गारोहण ग्रंथ की वरणों तत्त्व बखान

और २६ चौपाइयों के बाद फिर दोहा दिया है।

"मानिक" ने बैताल पच्चीसी 'दोहरा' से प्रारंभ नहीं की।

चौपाई से प्रारंभ की है। गणेश की वन्दना जिसमें की गई है :—

सिर सिंदूर बरन मैमत, विकट दन्त कर फरसु गहन्त।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने जायसी की छंदों तथा दोहों की मात्राओं में स्वतन्त्रता बरतना माना है व प्रकट किया है कि इन आख्यानकारों ने शैली दोहा चौपाई अपनाते हुए ऐसा कोई नियम नहीं रखा कि जैसा नियम गोस्वामी तुलसीदास ने परवर्ती 'प्रबन्ध' रामचरित मानस में चौपाइयों के बाद नियत सख्या के बाद ही 'कडवक' देने का रक्खा है। कुतबन, मुल्लादाऊद जायसी मझन सभी में दोहों चौपाइयों की मात्राओं में भी स्वतन्त्रता है।

वैधनाथ की भगवतगीता भाषा में दोहरा के दर्शन नहीं होते। केवल चौपाई ही कथा शैली में अनुवाद के लिये अपनाई गई है :—

सारदा कहु बदौ करि जोर, पुनि सिमरौं तेतीस करोर

इस प्रकार ६४ चौपाई के बाद "सजय उवाच" लिखकर कथा का विस्तार किया है। इसके पश्चात् 'अर्जुन उवाच' से प्रारंभ करके ७ चौपाई के बाद फिर 'अर्जुन उवाच' लिख दिया है।

कौरो पांडव को दल जहाँ, मेरो रथ ले थापो तहा
+ + +
ए सब सहृदे हमारे देव, के रन जुडो विनवौं सेव

इसी काल के अज्ञात लेखक द्वारा 'हितोपदेश' का गद्यानुवाद किया गया जिसमें भी "दोहरा" से प्रारंभ किया गया है :—

श्री महादेव प्रताप तें सकल कार्य की सिद्ध।
चन्द्र सीस गंगा सहत, जानत लोक प्रसिद्ध॥

दोहा चौपाई की ये शैलियां प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त नहीं कही जा सकती। क्योंकि ये केवल आख्यान काव्य थे, जिन्हें दोहा चौपाइयों में ईस्वी १५ वी, १६ वीं शताब्दी के आख्यानकारों ने लिखा है।

१५-१६ वी शताब्दी ईस्वी मे गोविन्द स्वामी ने तथा विष्णुदास ने रुक्मिणी मगल मे तथा तानसेन, आसकरण, बैजू, बख्शू, मधुकरशाह बुन्देला, हरिराम व्यास ने 'पद' रचना की जिससे 'मुक्तक' एव 'गीति काव्य रूप' का कलेवर समृद्ध हुआ। गीति काव्य का विशद विवेचन अगले अध्याय मे किया जा रहा है। नाभादास के छप्पय सूर के पद भी समकालीन शैलियो मे है :—

इन काव्य रूपो के प्रतिपादित विषयो मे धार्मिक ग्रन्थो का अनुवाद रहा है तथा आख्यान काव्य एव ऐतिहासिक काव्य रचना रहा है। धार्मिक ग्रन्थो के अनुवाद मे— विष्णुदास की महाभारत, थेघनाथ का भगवद् गीता भाषानुवाद लिया जा सकता।

ऐसा काव्य रूप 'विरहुली भी प्राप्त हुआ है जो १५१७ ई० मे छीहल कवि द्वारा केवल दोहो मे 'पच सहेली' नाम से रचा गया है।

पन्द्रह सइ पचहत्तरई, पूनियम फागुण मास
पच सहेली वर्णई, कवि छीहल परगास
देख्या नगर सहावना अधिक सुचगा थानु
नाऊ चदेरी प्रगटा, जनु सुरलोक समानु
× × ×
चोली खोलि तबोलणी काढ्या गाति अपार
रग कीया बहु पीउ सं नयन मिलाई तार

ये शैली एक प्रकार की "विरहुली" गीतो के लिये 'मुक्तक' की प्रयुक्त हुई है।

आख्यान काव्यो मे म-लखनसेन पद्मावती रास, दल्ह दमोदर कृत विल्हण चरित्र, चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती तथा मझन की मधुमालती, छिताई चरित, बैताल पच्चीसी की गणना की जा सकती है।

ऐतिहासिक काव्यो मे लखनसेन पद्मावती रास का लखनसेन सभव है ऐतिहासिक व्यक्ति रहा हो। छिताई को देवगिरि की राजकुमारी कहा जाता है। बैताल पचीसी मे उज्जयिनी के विक्रमादित्य को कथाबीज के रूप मे लिया गया है। 'माधवानल' भी मकरन्द पुरोहित का लडका है। केशव ने जहांगीर जैसे चन्द्रिका एव वीरसिंह देव चरित विशिष्ट व्यक्तियो की प्रशस्ति मे लिखा, कविप्रिया—प्रवीणराय को काव्य सम्बन्धी शिक्षा देने रची। इस प्रकार इनमें ऐतिहासिक व्यक्तियो या घटनाओ को अवश्य कथा बीज रूप मे लिया गया किन्तु, इन लेखको का आशय ऐतिहासिक आख्यान लिखने का न था। उद्देश्य-भेद से उन्हें लौकिक आख्यान काव्य धारा के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है।

और इस प्रकार कहा जा सकता है कि पन्द्रहवी एव सोलहवीं शताब्दी ईस्वी में लौकिक आख्यान काव्यधारा की रचना के लिए प्रयुक्त शैलियाँ, दोहा चौपाई, केवल चौपाई एव पद, रूप मे प्रयुक्त हुईं जिसके द्वारा धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद किये गये तथा आख्यान काव्य रचे गये।

• • •

अध्याय १०

गेय पद-साहित्य

वाक्य प्रदीप के प्रणेता श्री भृर्तहरि ने सृष्टि को नाद का विवर्त माना है।[1] तान्त्रिकों का कथन है कि समस्त विश्व ब्रह्माण्ड नाद और बिन्दु का परिणाम है। और इस 'नाद' में तालयुक्त गति भी है। पं० ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार संगीत पृथ्वी का विषय नहीं है। शब्द आकाश का गुण है। आकाश की विशालता के अनुसार नाद (संगीत) अनादि है एवं विश्वव्यापी है। मिल्टन, स्टीवेंसन, ड्राईडन ने संगीत की सृजन एवं लय की शक्ति स्वीकार की है। भारतीय संगीत कला में गायन वादन तथा नर्तन तीनों ही अंगों का समावेश है। इन अंगों में गायन की क्रिया सर्वोपरि है।[2]

चेतन सृष्टि के अतिरिक्त जड़ सृष्टि भी संगीतमय है। कलियों की चिटकान, मलयानिल की सुकुमार गति, सरिताओं की कल-कल ध्वनि, अमावस्या की गहन निशा, समुद्र गर्जन, तारागणों की झिलमिलाहट में दिव्य संगीत है। भौंरों की गुंजार, बुलबुलों की चहचहाहट, पक्षियों के माध्यगीत, कोयल की मधुर पंचमतान और मोर की मादक गति में संगीत निहित है। मयूर षड्ज का, चातक ऋषभ का, बकरा-गांधार का, क्रौंच मध्यम का, कोकिला पंचम का, मेंढक धैवत का, हाथी निषाद-स्वर का उच्चारण करते हैं।

मानव समाज में प्रकृति की सुरम्य गोद में अरण्यवासियों से लेकर सभ्यता की गोद में पले मानवों तक संगीत का अस्तित्व मिलता है। शिशु के रोदन में स्वरों का आरोह-अवरोह है। उसके हाव भाव में नृत्य की मुद्राएं हैं। लोरियों के स्वरों में सुलाने की शक्ति है। लोकगीतों ने लोक-जीवन का निर्माण किया है। ग्रामवासियों का जीवन

---

१. 'विश्व स्फूर्ति शब्द'—भारतीय संगीत का विकास, ठाकुर जयदेवसिंह, पृष्ठ ७२७

२. (अ) संगीत पारिजात पृष्ठ ६, छन्द संख्या १०

(ब) 'संगीत शास्त्र'—पं० विष्णुनारायण भातखंडे प्रथम भाग, पृष्ठ २

और प्राण ही संगीत है। श्रमिकगण श्रम करते हुए अपनी विभिन्न 'तान' में थकान मिटाया करते हैं। सामवेद इसी 'गान' का वेद है। जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपना ही स्वरूप कहा है।

इसी संगीत के माध्यम से प्रत्येक प्राचीन भाषा ने अपना रूप सवारा है। आर्यों की बोली सामगान में सधकर संस्कृत काव्य भाषा बनी। परिनिष्ठित काव्यभाषा में लोकरंजन की शक्ति नहीं रहती। लोकजीवन का संगीत लोकभाषा के माध्यम की खोज करने लगता है, जिससे उसके हृदय की सहज आनन्दवृत्ति को उच्छ्वसित करने की एवं आह्लादित करने की शक्ति हो। नवीन गति, नवीन पद एवं नवीन छन्द, इस सरल, सुबोध लोकवाणी के आधार पर लोकभाषा के रूप में मुखरित होने लगते हैं। जब वह काव्य रचना के रूप में प्रयुक्त होती है, तो शताब्दियों में समृद्ध काव्य भाषा बन जाती है। भाषा विकास का यही मूल है।

ईस्वी पन्द्रहवीं शताब्दी में मध्यदेश के संगीत ने देशव्यापी रूप धारण किया जिसमे 'तान' 'ग्वालियर की और कमाल मुलतान की' जैसी उक्ति प्रचलित हुई। फकीरुल्ला[1] एवं 'भावभट्ट'[2] के कथनों से ग्वालियर के संगीत ने हिन्दी के रूप निर्माण में जो योगदान दिया था उस पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

ग्वालियरी ध्रुपद की संगीत लहरी जिस गेय पद साहित्य के आधार पर निःसृत हुई थी उसी ने मध्यदेशीय भाषा को नवीन परिष्कृत रूप दिया। यह संगीत पद परम्परा 'विष्णुदास' (१४३५ ई०) के 'रुक्मिणी मंगल' में रचित पद-साहित्य में प्राप्त होती है। डूंगरेन्द्रसिंह तोमरकालीन विष्णुदास के दरबार में बैजनाथ (बैजू बावरा)[3] बख्शू, महमूद कर्ण नायकगणों ने ध्रुपद गाया और बैजू बख्शू, तानसेन ने पद रचना की। 'ग्वालियर' की गायकी को ओरछा, रीवा, गुजरात, सीकरी, दिल्ली आदि राजदरबारों में स्थान मिला। विशेष रूप से ब्रजभूमि तथा अकबरी दरबार ने इसे अपनाया। गोकुल के पद संगीत पद साहित्य का प्रतिनिधित्व आंतरी (ग्वालियर) के श्री गोविन्द स्वामी ने किया। संभवतः महाकवि सूरदास ने भी शरणागति के पूर्व, पद रचना एवं संगीत साधना, गोपाचल (ग्वालियर) के अंचल में प्राप्त की थी। गोविन्दस्वामी ने कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में प्रचलित संगीत में पद रचना की।[4]

---

१. रागदर्पण-फारसी अनुवाद 'फकीरुल्ला' (मानसिंह और मानकुतूहल-श्री हरिहरनिवास द्विवेदी द्वारा में उद्धृत) पृष्ठ ५४-६७
२. भावभट्ट अनूप संगीत रत्नाकर (छन्द १६५-१६७)
३. मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा (बैजू बावरा का परिचय) पृष्ठ ६६, १००, ११७, १०७, २२१, २३७, २६२, (१९६२ ई० संस्करण)
४. कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत—डॉ० उषा गुप्ता, पृष्ठ १६२

राजा आसकरन, 'नरवर' (ग्वालियर) के कछवाहे ने पद रचना की।[1] कृष्णभक्ति कालीन कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई पदावली सामग्री की यदि समीक्षा की जाय तो समस्त संगीतमय काव्य में तीन ऐसी कोटि पाई जाती हैं जिनमें प्रथम कोटि में प्रचलित सामयिक संगीत रूपों में अभिव्यक्त राग-रागिनियों में रचित पद और द्वितीय कोटि में पूर्व स्वीकृत, किन्तु अप्रचलित राग-रागिनियों में आबद्ध पद साहित्य आता है। तीसरी कोटि ऐसे पद साहित्य की है कि जिसमें भक्त गायकों द्वारा देश के विशाल प्रांगण में रचित पदों में अनेक नवीन प्रयोगों से युक्त पद।

रागों में 'सूर सारंग' महाकवि सूर कृत, मीरा की 'मल्हार' प्रसिद्ध है। बिलावल कान्हरो, विहाग, भैरो, केदारो और सारंग, विभास, कल्याण, गौरी धनाश्री आदि प्रिय राग रहे हैं। गोविन्द स्वामी[2] ने 'शंकराभरण केदारो' हरिराम व्यास (ओरछा ग्वालियर) ने सोजिला, सोतिला, स्यामगूजरी, पूरबी सारंग, गान्धार का विशेष प्रयोग किया है। 'ईमन' राग पारसी तथा भारतीय रागों का सम्मिश्रण है।

राजा सर एम० एम० ठाकुर,[3] ने सर डब्ल्यू औसले को उद्धृत करते हुए राजा मानसिंह तोमर ग्वालियर के समय में प्रसिद्ध नायक बख्शू, तानसेन की चर्चा की है, बैजू बावरा 'मृगनयनी' को संगीत की शिक्षा देता रहा। श्री भातखण्डे[4] तथा 'आइने अकबरी' में 'बैजू' की चर्चा नहीं है। किन्तु 'दीगीके'[5] 'विल्लर्ड'[6] फारसी इतिहासकार आदि ने 'बैजू बावरा' को मानसिंह के राज्यकाल में ही अवस्थित होना माना है। श्री उमेश जोशी ने डॉ० अडनौर के इस कथन से कि 'बैजू' ही 'बख्शू' न बन गया हो इससे सहमति प्रकट की है। बख्शू के पदों की फिल्म डॉ० मोतीचन्द्र (बम्बई) के पास होने की सूचना मिलती है।

गेय पद साहित्य

बैजूबावरा :—आचार्य शुक्ल के अनुसार 'तानसेन' से पहले ही बैजू बावरा प्रसिद्ध गवैया की ख्याति देश में फैली हुई थी।[7] किन्तु, गोपाल नायक (देवगिरि) और बैजू बावरा की प्रतियोगिता की जनश्रुति का कोई अर्थ

---

१. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—(राजा आसकरन कछवाहे के पद) पृ० २०३-२१० (सम्पा विष्णु श्री कृष्णदास शास्त्री)
२. मध्यदेशीय भाषा-ग्वालियरी (श्री हरिहरनिवास द्विवेदी कृत) परिशिष्ट में दिये गये पद।
३. एस० एम० ठाकुर—हिन्दू म्यूजिक फ्राम वेरियस ऑथर्स पृष्ठ २११, १९०७।
४. श्री विष्णु नारायण भातखण्डे—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, भाग ४, पृष्ठ १२६-१३०, ४६।
५. Out line of India music—Deegike, Page 200
६. श्रीगुणप्रकाश विल्लर्ड—(भारतीय संगीत के इतिहास पृष्ठ, १९२)
७. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं० २००७ वि०)पृष्ठ १६८, आचार्य शुक्ल

नही। बैजू बावरा मानसिंह तोमर के ग्वालियर दरबार का प्रसिद्ध संगीताचार्य था [1] फकीरुल्ला की साक्ष्य से स्पष्ट है कि बैजू बावरा तथा बख्शू अलग-अलग व्यक्ति थे और ग्वालियर नरेश मानसिंह का दरबारी कवि बैजू बावरा गोपाल नायक का गुरु नही था। यह हो सकता है कि बैजू बावरा और अकबरकालीन गोपाललाल संगीतज्ञ की भेंट तथा विचारो का विनिमय होने का अवसर आया हो, क्योकि तानसेन और बैजू बावरा का शिष्य-गुरु का सम्बन्ध रहा। फकीरुल्ला के अनुसार मानसिंह तोमर के दरबारी गायक नायक बख्शू और कर्ण तथा महमूद थे। आईने अकबरी मे लिखा है कि राजा मानसिंह ने अपने तीन गायको से एक ऐसा संग्रह तैयार कराया था जिसमे प्रत्येक वर्ग के लोगो की रुचि के अनुसार पद संग्रहीत थे।[2]

बैजू बावरा का मानसिंह तोमर के ग्वालियर दरबार से सम्बन्धित होने का स्पष्ट आभास 'मृगनयनी' उपन्यास मे हो जाता है। मानसिंह तोमर, विजयसिंह, सिकन्दर लोदी, महमूद बेगड़ा (बघर्रा), गयासुद्दीन खिलजी माडू, मृगनयनी प्रेयसी पत्नी, (गूजरी) ग्वालियर एव बैजूबावरा, राजसिंह कछवाहा (आसकरन कछवाहा शासक नरवरगढ़ का पुत्र) आदि ऐतिहासिक पात्र है।

श्री वर्माजी ने लिखा है[3] कि बैजू का नाम बैजनाथ था। जाति का ब्राह्मण था। वह चन्देरी मे सूबेदार चन्देरी को सितार सुनाने व गायन कला प्रस्तुत करने दुर्ग मे जाता था। वह राजसिंह कछवाहा (नरवर) (जो उस समय राजनीति चक्र मे चन्देरी रह रहा था) के पास वाले मकान मे रहता था। बैजनाथ के सामने एक रूपवती युवती अविवाहित 'कला' रहती थी। जब राजसिंह कछवाहा को बैजू गाना सुनाता तो 'कला' तम्बूरा बजाती व आलाप करती। बैजनाथ इस 'कला' पर मुग्ध हो बावरे हो गए और "बैजू बावरा" बने हुए दिन रात संगीत मे मस्त रहते थे। राजसिंह कछवाहा के पिता आसकरन का राज्य डूगरेन्द्र तोमर ने नरवर मे विजित कर लिया था। इसलिये राजसिंह कछवाहा चन्देरी मे रहकर ग्वालियर पर आक्रमण कराने तथा नरवर को तोमरो की अधीनता मे मुक्त कराने के अवसर खोज रहा था, कही वह सिकन्दर लोदी को आमंत्रित कर रहा था, कही माडू के खिलजी को, कही महमूद बघर्रा को। किन्तु बैजू बावरा इस राजनीति से अलग थे।

बैजू बावरा को वही पता चला कि ग्वालियर मे राजा मानसिंह का दरबार भारत के श्रेष्ठ संगीतकारो को खुला है। मानसिंह तोमर के यहां तानसेन जैसे विद्यार्थी तथा

१ मानसिंह मानकुतूहल, ग्वालियर, पृष्ठ ६१

२. ब्लेहमिन · आईन अकबरी : पृष्ठ ७३०

३. मृगनयनी, (वृन्दावनलाल वर्मा) १९६२ संस्करण, पृष्ठ ९६, १००, १६७, १७०, २२१, २२६, २४७, ३६३.

अन्य महमूद, कर्ण पाडवीय नायकों को सुनकर चन्देरी में ये भी ग्वालियर पहुँचा किन्तु यह गायक बैजू, "बावरा" चन्देरी में हो हो गया था। वहां रूपवती लड़की 'कला' तम्बूरे पर साथ देती थी जब बैजनाथ गाता था। राजसिंह के मकान पर भी ये कार्यक्रम चलता था।[1] राजसिंह इस कला साधक को संगीतज्ञों की महत्ता में ग्वालियर पहुँचने में न रोक सका। संगीत का आचार्य बैजू किसी राजनीति में नहीं बंध सकता था। बैजू 'कला' के साथ ही 'बावरा' बना हुआ ग्वालियर पहुँचा, वहां तानसेन से भी प्रतियोगिताएं हुई। 'बैजू बावरा' आचार्य था। तानसेन को बैजू से लाभ ही हुआ,[2] जैसाकि तानसेन ने अपने ध्रुपद की प्रशस्ति में कहा है कि बैजू में पाषाण पिघलाने की शक्ति थी। बैजू को भी तानसेन का संगीत शिक्षक श्री प्रभुदयालु मीतल ने माना है और बैजू को बक्सू, कर्ण और महमूद जैसे संगीताचार्यों की श्रेणी में गिनते हुए ग्वालियर में इनका निवास स्वीकार किया है, साथ ही यह भी लिखा है कि राजा मानसिंह तोमर ने इन्हीं संगीताचार्यों की सहायता से ध्रुपद का आविष्कार और प्रचार किया था। तानसेन को इन्हीं आचार्यों से संगीत शिक्षा प्राप्त हुई थी।[3] बैजू बावरा के पद उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं:—

> आगन भीर भई व्रजपति के बाजे नन्द महोत्सव आनन्द भयो।
> हरद दूब दधि अक्षत रोरी ले छिरकत परस्पर गावत मंगलचार नयो॥
> ब्रह्मा ईस नारद सुर नर मुनि हरषित विमानन पुष्प बरस रग ठयो।
> धन धन बैजू मतन हित प्रकट नन्द जसोदा के सुख जो दयो।[4]

बैजू के पद 'रागकल्पद्रुम' तथा 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं' पुस्तक में एकत्र किये गये हैं। बैजू बावरा के निम्नलिखित पद उद्धृत किये जाते हैं:—

> "कहा कहूं उन बिन मन जरो जात है
> लगन बरनें कर मन कियो है बिगार।
> वह मूरत सूरत बिन देखे भावै न मोहे घर द्वार॥
> इत उत देखत कछू न सोहावत बिरथा लगत संसार।
> बैर करत हैं दुरजन सब बैजू न पावें मन पिय के
> अचरज भयो है ब्योहार।"

\+ \+ \+

---

१. वही, पृष्ठ १००, १०२, १०३, ३१८
२. संगीत सम्राट तानसेन, पृष्ठ ६७, पद संख्या १४२
३. वही, [illegible] ३०
४. व्रजभाषा के कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प–डॉ० सावित्री सिन्हा (१९६१ संस्करण भूमिका, पृष्ठ १३, १४

"बोलियो न डोलियो ले आऊ हू प्यारी को ।
सुन हो सुघर वर अबही मैं जाउ हू ।
मानिनी मनाय के तिहारे पास लियाय के
मधुर बुलाय के तो चरण गहाउ हू
सुन री सुन्दर नार काहे करत एती रार
मदन हारत पार चपल पत तुझाउ हू
मेरी सील मान कर मान न करो तुम
बैजू प्रभु प्यारे सों बहियां गहाउ हू"

बैजू बावरे की रचनाए संगीत शास्त्र के अनुकूल तो हैं ही किन्तु काव्य में भी उपेक्षणीय नही हैं ।

'मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन ते
गोपी रीझि रही रस, तानन सों सुध बुध सब बिसराई ।
धुनि सुन मन मोहे मगन भई देखत हरि आनन
जीव जन्तु पशु पक्षी सुर नर मुनि मोहे हरे सबके प्रानन
बैजू बनवारी बसी अधर धरि वृन्दावन-चन्द वस किये सुन ही कानन'[1]

बख्शू का पद :

बख्शू नायक भी मानसिंह तोमर के दरबार में संगीत के आचार्य थे । इनके पद उपलब्ध नही होते । पता चलता है कि इनके पद डॉ० मोतीचन्द्र के पास बम्बई में है । एक पद का उद्धरण मध्यदेशीय भाषा में ध्रुपद का मिला है जो इस प्रकार है :

राग सुहाइ उदय नव रग पगी, उत देख प्यारे कर दर्पण में ।
निरखि चहुं दिसि अलि नैनन अबही, प्यारी सजली भई ओर मगाई ॥

बख्शू का यह पद फकीरुल्ला के अनुवाद (रागकुतूहल) जो 'रागदर्पण' के रूप में फारसी लिपि में है ठीक-ठीक नही पढा जा सका केवल ये चार पंक्तियाँ ही मध्यदेशीय भाषा में दी गयी हैं ।[3]

तानसेन के पद

कौन भरम भूल्यो रे अज्ञानी
सीखत न राग रग तान अक्षर सुध वानी
और स्वारथ सो जनम गवायो विद्या बात अधिक सयानो

---

१. 'बैजू बावरा' के पद 'सूर पूर्व ब्रजभाषा' पृष्ठ २२३ से लिये गये हैं ।
२. मध्यदेशीय भाषा पृष्ठ ८२, ८३ से उद्धृत ।
३. मध्यदेशीय भाषा पृष्ठ ८३

जे साधु गुनी भए तिनको न गुन को मत ठानो
विलास के प्रभु को जो मलो चाहते तो मिल हो तानसेन गुरु ज्ञानो[1]

\+ \+ \+

जोवन के जोर तोर कैसे ममदाय राखूं
मेरा कह्यो मान प्यारी आज तेरो दावरी।
तन मन धन नौछावर करहू बीत गई रैन
तासों छूट गयो चाव री॥
लाल मनावत तू नहीं मानत, उठगो गवार
नार घने समझावरी।
तानसेन कहे प्रभु से तजो मान, हाथ से गवाय
लाल फेर पछतावेरी॥[2]

राजा आसकरण के पद :

(गौरी)

मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गायन सग, मधुर बजावत बैना
ग्वाल मडली मध्य विराजत, सुन्दरता को ऐना
आसकरण प्रभु मोहन नागर, वारो कोटिक मैना[3]

हरिराम (व्यास) ओरछा के पद :

(राग मल्हार)

मनो भाई कुंजन पावस आयो
स्याम घटा देखत उनमद हो, मोरन मोर मचायो
दामिनि दमकत चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायो
निसि अधियारी दिन नहि सूझति, काजु भयो मन-भायो
स्याम आस बबहो को पूबो, सरिता सिधु बढायो[4]

---

१. संगीतज्ञ कवियो की हिन्दी रचनाएँ—श्री नर्मदेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी से उद्धृत।
२. सगीत सम्राट तानसेन, सं० २०१७, पृष्ठ १२३,
३. मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ११९, २२०,
४. हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत–९१–उषा गुप्ता से उद्धृत। राग माला—हरीराम व्यास, स्टेट लायब्रेरी टीकमगढ़ में सुरक्षित है।

गोविन्द स्वामी (आंतरी–ग्वालियर) के पद

(विभास)

एक रसना कहा कहौं सखी री लालन की प्रीति अमोली
हसनि, खेलनि, चितवनि जु छबीली अमृत बचन मृदु बोली
अति रस भरे री मदन मोहन पिय अपन कर कमल खोलत बंद चोली
'गोविंद' प्रभु की जु बोहोत कहां लौं कहुं जे बातें कही अपुनो हृदो खोली[1]

(राग भैरो)

उठ गोपाल भयो प्रात देखों मुख तेरो, पाछे गृह काज करों नित नेम मेरो।[2]

\+ \+ \+

गोविंद प्रभु के जु सिथिल अंग सोउ विथकित कोटि मदन लाजे।

उपर्युक्त पद-साहित्य की भाषा "ग्वालियर" के "ध्रुपद" शैली की है। ये पद-साहित्य सूर, तुलसी के पद-साहित्य का पूर्वाधार प्रतीत होता है और 'मध्यदेशीया' हिन्दी का भाषा और साहित्य के क्षेत्र में विकास क्रम उपस्थित करता है।

'मध्यदेशीय भाषा' में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—"यह भी विदित होता है कि ग्वालियरी भाषा के सम्बन्ध में जो नई सामग्री यहां दी गई है वह भाषा और साहित्य के इतिहास की एक खोई हुई कड़ी यहां प्रस्तुत करती है। उनके प्रतिपादन से यह ज्ञात होता है कि सूर से पूर्वकालीन ब्रजभाषा का सूत्र ग्वालियरी भाषा के हाथ में था अतएव आगे के साहित्यिक इतिहास में ब्रजभाषा के साथ ग्वालियरी भाषा की सामग्री भी अपनाना आवश्यक पाया जायगा। "सूर की संगीत साधना और गेय काव्य की परम्परा दोनों का ही तथ्यात्मक उत्तर पहली बार हमें यहां प्राप्त होता है। मानसिंह तोमर के ग्वालियर में और ग्वालियरी भाषा के पद साहित्य में सूर की साहित्यिक साधना के सूत्रों को प्राप्त करके मन ऐसा आश्वस्त होता है मानो इतिहास की खोई हुई कड़ियां पहिचान में आ रही हैं"[3] आदि।

* * *

---

१. डॉ० दीनदयाल गुप्त के गोविन्द स्वामी के हस्तलिखित पद संग्रह एवं डॉ० ऊषा गुप्ता के ग्रन्थ से उद्धृत।

२ वही, (वल्लभ सम्प्रदायी शृंगार समय के सेवा पद संग्रह भाग १, २, ३)

३. मध्यदेशीय भाषा, [illegible] ६

खण्ड ३

अध्याय ११

भाषा का स्वरूप

प्राचीन मध्यदेश अनेक जनपदों मे बटा था। इनका अस्तित्व आज भी है और वह हिन्दी की प्रधान बोलियो की सीमाओ के रूप मे स्पष्टतया दिखलाई पड़ता है। यदि जनपदो की ऐसी भिन्नता संस्कृति के मूल क्षेत्र मे थी तो सहज अनुमेय है कि समस्त भारत मे जनपदो की विविधता और भी अधिक रही होगी। उन प्राचीन भाषाओ की सामग्री कुछ न कुछ आधुनिक भाषाओ मे भी सुरक्षित होनी चाहिये।[1]

प्रत्येक जनपदीय भाषाए बोलियो का समूह थी, परिनिष्ठित भाषा के रूप मे केवल संस्कृत विकसित हुई। अन्तर-जनपदीय व्यापार की प्रगति मे यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि व्याकरण द्वारा एक सामान्य व्यवहार की भाषा के रूप स्थिर किये जायें।[2]

प्राकृते संस्कृत की तुलना मे बोलचाल की भाषा से दूर थी। यही कारण है कि अनेक जैन और बौद्ध विद्वानो ने संस्कृत मे भी ग्रन्थ लिखे। सामन्ती युग के ह्रासकाल मे जब आधुनिक भाषाओ मे साहित्य रचा जाने लगा तब स्वभावत. साहित्यकारो ने प्राकृत या अपभ्रंश की तुलना मे संस्कृत का ही अधिक सहारा लिया इसका कारण इस्लाम की प्रतिक्रिया या हिन्दू नव जागरण मात्र न था, कारण था संस्कृत का साहित्यिक महत्त्व और बोलचाल की भाषाओ से उसका सम्बन्ध। इन भाषाओ ने जहां तद्भव रूपो को अपनाया है वहा अधिकतर अपभ्रंश के तद्भव निर्माण का मार्ग छोड़कर। संस्कृत से अनेक तत्त्वो के सामान्य होने हुए भी उनकी अपनी जातीय विशेषताए भी है।[3] जिस प्रदेश मे व्यापार के कारण खड़ी बोली का प्रसार हुआ उसका पुराना नाम 'हिन्दुस्तान' था। मुसलमान शासक इस प्रदेश की भाषा को हिंदी, हिंदवी

---

१. 'मध्यदेश'—डा० धीरेन्द्र वर्मा (बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद् पटना) पृष्ठ ११, १०।

२. भाषा और समाज—डा० रामविलास शर्मा, [illegible] २१०

३. वही, पृष्ठ २११

या हिंदुई कहते थे। यह सही है कि हिन्दुस्तान नामक प्रदेश की सीमाएं निश्चित नहीं थी और हिन्दी या हिन्दवी से हमेशा खड़ी बोली का बोध न होता था। इसमें आश्चर्य नहीं, क्योंकि हिंदी भाषी प्रदेश की सीमाएं आज भी निश्चित नहीं हैं।[१]

डॉ० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि—'हिन्दुस्तानी के मर्यादा न आ सकने का एक कारण यह था कि बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब आदि प्रान्तों की भांति हिन्दुस्तानी क्षेत्र (बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यभारत तथा अन्य प्रदेशों) की जनता राजनीतिक दृष्टि से जागृत न हुई थी।[२] भारत के हिन्दी भाषी प्रदेश में अन्य देशों की तरह व्यापार का विकास हुआ। इस प्रदेश का इतिहाससम्मत नाम हिन्दुस्तान है, उसकी भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी है। हिंदी का आधार दिल्ली और उसके निकटवर्ती प्रदेश की बोली—खड़ी बोली—बनी, क्योंकि दिल्ली राजनैतिक और आर्थिक जीवन का एक प्रमुख केन्द्र थी।"[३] दिल्ली या आगरे की जो बोली हिन्दी उर्दू के रूप में विकसित हुई वह पहिले एक छोटे से क्षेत्र में सीमित थी। जब वह अवध, बुन्देलखण्ड, भोजपुरी प्रदेशों की सम्मिलित भाषा बनी, तब उसका क्षेत्र व्यापक हो गया। वह हमारी जातीय भाषा बनी। जातीय भाषा की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये जब कोई बोली परिनिष्ठित भाषा के रूप में विकसित होती है तो उसके रूप में काफी परिवर्तन होता है।[४]

हिंदी—उर्दू का एक सामान्य—आधार है बोलचाल की खड़ी बोली। इस खड़ी बोली में अरबी-फारसी के कुछ या अधिक शब्द आ मिले तो इसमें एक नई भाषा उत्पन्न होना नहीं कही जा सकती। यह खड़ी बोली मुसलमानों के आने से पहिले भी थी, उनके शासन काल में रही और आज भी है। पुराने जमाने के उर्दू लेखकों की रचनाओं में अरबी, फारसी के शब्दों की खपत कम मिलती है। ज्यों-ज्यों हिन्दू-मुसलमानों का मेल बढ़ा हिन्दी—उर्दू का अलगाव बढ़ता गया। बाहर से जो मुसलमान आये वे अपने को तुर्क, पठान और मुगल कहते थे लेकिन यह पुरानी जातीयता की याद भर थी। जातीयता का मुख्य चिह्न—भाषा, उनसे बहुत जल्द छूट जाती थी। आक्रामक मुसलमान एक जाति या एक भाषा के न थे इसलिये वे हिन्दुस्तान की अग्रसर जातियों के मुकाबले में अपनी जातीयता की रक्षा न कर सके और उन्हीं में घुल मिल गए।[५] सैयद एहतिशाम हुसैन उर्दू साहित्य के इतिहास लेखक के अनुसार जो मुसलमान यहां आये वे तुर्की, अरबी, फारसी और दूसरी मध्यएशियाई भाषाएं बोलते

१. भाषा और समाज, पृष्ठ २८२
२. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—डा० चाटुर्ज्या, पृष्ठ १६८, १६९
३. भाषा और समाज, पृष्ठ २८६
४. वही, पृष्ठ २९९
५. भाषा और समाज—डॉ० रामविलास शर्मा, पृष्ठ २९२-२९३

थे किन्तु उनके साहित्यिक और सांस्कृतिक व्यवहार का माध्यम फारसी थी।[1] खुसरो ने अपनी सांस्कृतिक भाषा फारसी में लिखा था:—

तुर्क हिन्दुस्तानम मन हिन्दवी गोयम जवाब
+ + +
चु मन तूतिए हिन्दम अर रास्त पुरसी।

खुसरो को हिन्दुस्तानी होने पर गर्व था और हिन्दी से प्रेम था। श्री मुहम्मद वहीद मिर्जा ने खुसरो की फारसी रचनाओं में जहाँ तहाँ हिन्दी शब्दों के प्रयोग होने की बात लिखी है। फरिश्ता के अनुसार महमूद गजनवी के समय में हिन्दी कविता रची जाती थी तथा बहमनी बादशाहों के राजकार्यालयों में हिसाब-किताब हिन्दी में रखा जाता था। दिल्ली के प्रसिद्ध सूफी ख्वाजा बन्दानवाज गेसू दराज गोलकुण्डा रह गए थे और जनता मे अपने विचार हिन्दी में प्रकट करते थे। इस प्रकार भारतवर्ष की नवीन आर्य भाषाएं प्रभावित हो रही थी और जिस प्रकार राजस्थानी, बुन्देली, ब्रज, अवधी आदि का विकास हो रहा था उर्दू भी जड़ें जमा रही थी।[2]

डॉ० सैयद मुहीउद्दीन कादरी के अनुसार मध्यकाल मे देश के हर भाग में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे और 'नयी जबानें' अस्तित्व मे आ रही थी जिनकी ओर खुसरो ने संकेत किया है पंजाब और दिल्ली के क्षेत्र मे तत्कालीन बोलियां विभिन्न थी जिनकी जबान ब्रजभाषा से मिलती जुलती है।[3]

डॉ० ग्रियर्सन ने 'हिन्दुस्तानी' के दो भेद माने, एक बोलचाल की और दूसरी 'साहित्यिक'। 'साहित्यिक हिन्दुस्तानी' की चार शैलियां उर्दू, रेख्ता, दक्खिनी और हिन्दी निर्धारित की।[4] दक्खिनी वही भाषा थी जिसका व्यवहार उत्तर मे होता था। यह शब्द भण्डार मे ब्रज तथा अवधी के निकट थी।[5]

"हकायके हिन्दी" मे मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी (१५६६ ई०) ने जो रचनाएं उद्धृत की हैं वे उनसे कुछ पहिले की या समसामयिक हो सकती हैं। श्री बिलग्रामी ने उन्हीं शब्दों के रहस्य की गूढ़ व्याख्या की है जो उस हिन्दी-गानों में प्रयोग मे आते थे।[6] मुसलमान बादशाहों के दरबारों मे हिन्दू और मुस्लिम सभी गायक प्रात. ब्रज

१. उर्दू साहित्य का इतिहास—सैयद एहतिशाम हुसैन, पृष्ठ २०
२. वही, पृष्ठ २१, ३२, ३६, तथा 'भाषा और समाज, पृष्ठ २९६, २९९। ३०० 'दि लाइफ एण्ड वर्क्स ऑव अमीर खुसरो' (कलकत्ता १९३५) पृष्ठ २३४ 'हकायके हिन्दी' भूमिका, पृष्ठ २२।
३. उर्दू शहपारे, जिल्द १, पृष्ठ १०
४. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया, जिल्द ९, भाग १, पृष्ठ ४६
५. भाषा और समाज, पृष्ठ ३०२
६. 'हकायके हिन्दी'—लेखक मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी [स० डॉ० अतहर अब्बास रिज्वी] नागरी प्रचारिणी सभा काशी, भूमिका पृष्ठ २२।

भाषा के बोल ही कहते थे जिनमें राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंगों का वर्णन होता था।[१] डॉ० शिवप्रसाद सिंह का कथन है कि —"व्रजभाषा को पुराने लेखक 'भाषा' कहा करते थे। मिर्जा खां ने भी संस्कृत प्राकृत के बाद 'भाखा' ही नाम लिया है। लगता है 'व्रज भाषा' शब्द पुराना था संक्षेप में लोग 'भाखा' कहा करते थे।[२]" सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' में ग्वालियर को भाषाई क्षेत्र मानकर ग्वालियर का पूर्वी भाग बुन्देली तथा उत्तर-पश्चिमी भाग 'व्रज' में माना है।[३] *मिर्जाखां व्रज क्षेत्र के विवरण में ग्वालियर को भी सम्मिलित करते हैं।*[४]

भाखा या भाषा :—

प्राचीन जन पदों में साहित्य काव्य भाषा से इतर, लोकभाषा के अर्थ में 'भाषा' या 'भाखा' शब्द प्रयुक्त किया जा रहा है। चन्दबरदाई ने अपने काव्य की भाषा को 'भाषा' ही कहा—

षट भाषा पुरान च कुरान च कथित मया।[५]

तुलसी ने भी अपनी काव्य—भाषा को भाषा ही कहा है—

भाषा बद्ध करब मैं सोई।[६]

विष्णुदास ने अपने काव्य को भाषा काव्य कहा है—[७]

तुछ मत मोरी थोरी सी बोराई, भाषा काव्य बनाई।

नन्ददास — ताही सों यह कथा जथामति भाखा कीनी।[७-अ]

सूरदास — सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ।[८]

केशवदास — १ भाषा कवि भो मन्द मति तिहि कुल केसौदास।[९]

(कविप्रिया, द्वितीय प्रभाव छंद १७)

---

१. वही, पृ० ४८, ६१, ६२, ६८, ८८, ८५ में उद्धृत गीत।
२. सूर पूर्व व्रज भाषा, पृ० १४२
३. भारत का भाषा सर्वेक्षण [ग्रियर्सन] अनु० उदयनारायण तिवारी खण्ड १ भाग १, पृ० ३१८, ३१९, ३२०।
४ सूर पूर्व व्रज भाषा पृ० १४१ [मिर्जाखां का व्रज भाषा व्याकरण, पत्र संख्या १९६ अ] तथा 'व्रजभाषा—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ६ तथा १३२
५. व्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, [illegible] ८२ पर उद्धृत
६. रामचरित मानस—तुलसीदास [बालकाण्ड, दोहा ३१]
७ मध्यदेशीय भाषा परिशिष्ट, 'रुक्मिणी मंगल' के अंश,पृ० १७३. ७-अ—फुट नोट (४) उल्लेख।
८. डॉ० हरिवंशलाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य, सं० संस्करण, पृ० १२७
९. केशवदास—कविप्रिया, सन १९५२, पृ० १३

७ "नर हो नर भाषा करी"

(विज्ञान गीता, प्रथम प्रभाव ७-८)

कुलपति मिश्र — जितो देववानी प्रगट है कविता की घान ।
ते भाषा में होय तौ, सब समझै रस बात ॥

प्रिथीराज — चारण भाट सुकवि भाखा चित्र
बार एकठा तो अरथ कहि ।[1]

'भाषा-भाखा' मिर्जाखा के अनुसार ब्रजभाषा, पश्चिमी हिन्दी की एक बोली, बहुधा इसको हिन्दी भी कहते हैं । 'मुहावरा-हिन्दी' कोश में भी 'भाखा' शब्द का अर्थ भाषा, बोलना और आशायंक बोल दिया है । भाखा का भाषा रूप में प्रयोग 'सहन-क्रितं,' 'पराक्रितं (संस्कृत और प्राकृत) को छोड़कर होना है । यह ब्रज के व्यक्तियों की भाषा है ।[2]

कवि लल्लूलाल जी —

ने सुरलोक-देववाणी (संस्कृत), पाताल लोक-नाग वाणी (प्राकृत) नरलोक-मनुष्य (भाखा) का वर्गीकरण 'भाखा' का स्पष्टीकरण देते हुए किया है । लल्लूलाल ने ब्रजभाखा के व्याकरण मे 'भाखा' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'भाखा' संस्कृत शब्द अपने स्वरूप में व्यापक है किन्तु अब नरवाणी तथा हिन्दुओं की जीवित भाषाओं के लिये प्रयुक्त होता है और मुख्यतः ब्रज प्रदेश तथा ग्वालियर जिला से सम्बन्धित है । 'ब्रज' दिल्ली और आगरा के बीच एक जिला है ।[3]

डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया का कथन है कि प्रारम्भ मे 'भाखा' कहलाने वाली भाषा मुख्यतः ब्रज प्रदेश मे बोले जाने के कारण 'ब्रजभाषा'–ब्रजभाखा' कहलाई । ग्वालियर भी केन्द्र होने के कारण उसके अनुसार 'ग्वालियरी' भी कहलाई । 'ब्रज' का ब्रजभाषा र्थक प्रयोग 'रस विलास' के कवि गोपाल तथा "काव्य निर्णय" के रचियता भिखारी दास ने किया है । इस प्रकार 'भाखा' जो प्रारम्भ मे अपभ्रंश का बोध कराता था, कालान्तर मे 'ब्रजभाषा' का द्योतक ही नहीं, पर्याय बन गया । पर, साहित्यिक भाषा के रूप में इसकी प्रतिष्ठा और फलस्वरूप इसके प्रसार का वास्तविक आरम्भ १५१६ ई० में उस तिथि से होता है जब पुष्टिमार्ग के आचार्य ने कवि गायकों द्वारा श्रीनाथ के मन्दिर गोवर्धन मे सकीर्तन कराने का सकल्प किया और उसी उद्देश्य के लिए पद

1. प्रिथीराज–"वेलि क्रिसन रुकमिणी री,' वेलियो गीत २६६ ।
2. मिर्जाखा–व्याकरण (अनु० जियाउद्दीन द्वारा मूल अंग्रेजी में अनुवादित) ब्रजभाषा एव खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ८३ के फुटनोट से उद्धृत ।
3. लल्लूजी लाल–"General principles of inflectional and Conjugation in the Brij Bhakha, 1811, जनरल प्रिंसिपल्स ऑफ इन्फ्लैक्शन्स एण्ड कान्जुगेशन इन दी ब्रज भाखा (१८११" ई०) भूमिका से । हिन्दी विद्यापीठ शोध पत्रिका, १९५७, पृष्ठ १०६.

(त्रिपुपद) रचे गये ।[1] कन्नौजी को ग्रियर्सन एवं डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ब्रज की उपभाषा के रूप में मानते हैं किन्तु डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन का मत इससे भिन्न है ।[2]

मध्यदेश के कवि की भाषा–निवेश की चर्चा करते हुए 'काव्य मीमांसा' में राजशेखर' ने बताया है कि जो कवि मध्यदेश में (कन्नौज, अन्तर्वेद, पचाल आदि) में रहता है वह सर्व भाषाओं में निपुण है । 'राजशेखर' के अनुसार कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक अतर्वेद, पाचाल, और शूरसेन सह अवन्ती पारियात्र (वेतवा और चम्बल का निकास), दशपुर (मन्दसौर) के निवासी शौरसेनी और भूतभाषा (पैशाची) का प्रयोग करते हैं ।[3]

'पुरानी हिन्दी' में श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी ने शौरसेनी और 'पैशाची का देश निर्णय करते हुए बताया है कि "शौरसेनी तो मथुरा ब्रजमंडल आदि की भाषा है । इसका वही क्षेत्र है जो ब्रजभाषा, खड़ी बोली और रेख्ता की प्रकृति भूमि है" । पैशाची जिसमें गुणाढ्य ने बृहत्कथा' (बड्ड कथा) लिखी उसका प्रदेश कश्मीर का उत्तरी प्रान्त कहलाता था किन्तु वास्तव में पैशाची या भूतभाषा का स्थान राजपूताना और मध्यभारत है ।[4]

षट्भाषा का विवेचन–मंख के श्री कण्ठचरित की टीका में एक श्लोक मिलता है ।

—"संस्कृतं प्राकृतं चैव शूरसेनी तदुद्भवा
ततोऽपि मागधी प्राग्वत पैशाची देशजापि च" [5]

संस्कृत उसमें प्राकृत उससे उत्पन्न शौरसेनी, उसमें मागधी पहले की तरह पैशाची और देशजा यह छः भाषाएं हुई । मंख लोष्टदेव कवि के मुख में छः भाषाओं का निवास बताता है । जयानक सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज बड़ाई करता है कि छै भाषाओं में उसकी शक्ति थी।[6] चन्दबरदाई ने कहा—

— "षटभाषा पुरान च कुरान कथित मया ।"[7]

---

१. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, पृ० ८४, ८६
२. भारत का भाषा सर्वेक्षण, हिंदी अनुवाद, पृष्ठ १०१ (१९५९) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा (१९५४) [illegible] ३४, डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन–ब्रजभाषा का उद्‌गम और विकास–राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ४३२ ।
३. काव्य मीमांसा, पृष्ठ ९४ (राजशेखर) "विनशन प्रयाग यो र्गगा यमुन योश्चान्तर मन्तर्वेदी"–(अन्तर्वेद प्रदेश)
४. पुरानी हिन्दी, पृष्ठ ७ टिप्पणी (१)
५. वही, पृष्ठ ८८ पर उद्धृत, (श्री कंठ चरित अंतिम सर्ग)
६. पृथ्वीराज विजय प्रथम सर्ग)
७. प्रतिभा जिल्द ३, पृष्ठ २६४-२६७ पर श्री गुलेरीजी का लेख ।

'कुतबन' ने मृगावती में 'षट्भाषा' का संकेत किया है—[1]

(१) षट्भाषा कहहि यह जो कुछ सुध में बूझा।
कहेउ जहां लहु परेउ जो कुछ हिद्दं सूझ॥

(२) मास्तर आखिर बहुतै आये, और देसी कुछ चुन-चुन लाये
पढ़त सुहावन दोजै कानू, इहके सुनत न भावै आनू।

कुतबन 'षट्भाषा' में उसी 'हिन्दी' का संकेत करता है जो लोक मानस में पोषित होती हुई १५ वीं शताब्दी ईस्वी में पल्लवित हो रही थी और सूर तुलसी के रूप में आगे पुष्पित होने के लिए तत्पर हो रही थी।

मध्यकालीन काव्य भाषा के 'षट्भाषा' रूप को श्री भिखारीदास ने अपने 'काव्य निर्णय' में 'षट विधि' कहकर स्पष्ट किया है—[2]

ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ
मिले संस्कृत पारसिहुं पै अति प्रगट जु होइ
ब्रज मागधी मिलैअमर नाग जवन भाखानि
सहज पारसी हू मिलै "षट विधि" कहत बखानि
तथा—ब्रज भाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमान्यो
ऐसे-ऐसे कविन की बाणी हू सौं जानिए॥[3]

'ब्रज भाषा' का क्षेत्र ब्रज मंडल का सीमित क्षेत्र नहीं है बल्कि कवियों की वाणी ही उसकी कसौटी है।

'अर्द्ध कथानक' की भाषा[4]

'अर्द्ध कथानक' की भाषा के सम्बन्ध में डॉ० हीरालाल जैन ने संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करते हुए बताया कि व्यंजन 'श' के स्थान पर 'स' 'ष' का 'स' और कहीं-कहीं अपवादस्वरूप 'विषद', भेष में 'ष' का भी प्रयोग मिलता है। स्वर-भक्ति से व्यंजन गुच्छ टूट जाते हैं जन्म—जनम, पदार्थ-पदारथ। संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त से बनी सकर्मक

1. साधन कृत मैनासत-(भाषा विवेचन पृष्ठ ११६) पर उद्धृत।
2. 'काव्य निर्णय' १-१२ (ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, पृष्ठ ४० से उद्धृत)
3. साधन कृत मैनासत, पृष्ठ १२०-१२१.
4. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली का अध्ययन डॉ० भाटिया, पृष्ठ ३४ तथा अर्द्धकथानक-सं० सम्पा० नाथूराम प्रेमी (१९५७) भूमिका पृष्ठ १९-१६.

क्रियाओं के साथ 'न' का प्रयोग मिलता है। कारक मे करण –सौं, सम्प्रदान–को, कू, अपादान–सू, सम्बन्ध —के की, का, को, अधिकरण–मे माहि आदि का व्यवहार हुआ है। उर्दू–फारसी के शब्द काफी आये हैं तथा खडी बोली के मुहावरे भी हैं। ब्रज भाषा की भूमिका लेकर मुगलकाल मे बढती हुई प्रभावशाली खडी बोली का पुट दिया है जिसे श्री बनारसीदास जैन ने 'मध्यदेश की बोली' कहा है। जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेश में काफी प्रचलित हो चुकी थी। डॉ० भाटिया का कथन है कि ब्रज भाषा के रूप तथा लक्षण १०-११ वी शताब्दी मे प्रकट हो रहे थे। इसका नामकरण बहुत बाद मे हुआ। बहुत काल तक इसके अन्य नाम चलते रहे जिनमे पिंगल, मध्यदेशी, 'ग्वालियरी' मुख्य हैं।[1] अन्तर्वेदी भी इसका समानार्थक है।[2] यथा—

अन्तर्वेदी नागरी गौंडी पारस देश।
अरु जामे अरबी मिलें मिश्रित भाषा भेस॥

'बुन्देली' भाषा का साहित्य सृजन [3]—

चन्देल युग मे बुन्देल खण्डी भाषा हिंदी की एक समर्थ बोली के रूप में खडी हुई। 'गदाधर' परमार्दिदेव का कवि एव संधि विग्रहिक भी था। जैसे पृथ्वीराज चौहान का चंद था। गण्ड देव स्वय कवि थे। 'माधव' 'राम' 'नन्दन' आदि कवि तथा वैयाकरण देह थे। संस्कृत साहित्य के नाटककार कृष्ण मिश्र कीर्तिवर्मन चन्देल की सभा में थे। जगनिक ने 'आल्हा काव्य' रचा।

पश्चिमी हिन्दी से बुन्देलखण्डी भाषा का रूप इस समय निखर रहा था। चन्देल साम्राज्य के अधिकाश भाग मे बुन्देलखण्डी भाषा अपनी अनेक स्थानीय बोलियो के साथ ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी ईस्वी मे विकसित हो रही थी। जिसमें ग्वालियर राज्य का सब पूर्वी भाग शामिल था। चन्देल साम्राज्य के भीतर पश्चिम की ओर भदावरी, ब्रजभाषा तथा मालवी (राजस्थानी) स्वरूप ग्रहण कर रही थी। बघेली (पूर्वी हिन्दी) तथा भदावरी और ब्रजभाषा (पश्चिमी हिन्दी) और चन्देल साम्राज्य के दक्षिणी भाग मे गोंडी का विकास हो रहा था। तत्कालीन इतिहास मे यह युग अत्यत सक्रमण का था जब देशी भाषाओ और उनके सम्बन्ध रखने वाली बोलियों की रचना हो रही थी। हिन्दी भाषा की इस विविधता का स्रोत बडा प्रबल था और सारे उत्तर भारत मे इसके भिन्न-भिन्न नामों और रूपो मे साहित्य-सर्जन का कार्य आरम्भकाल से

1 डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया ब्रज० खडी बोली का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ ७८, ८१। डॉ० सत्येन्द्र—गुप्त जी की कला-(१९५६) पृष्ठ १-२

२. भारती, जून १९५४, पृष्ठ ५ अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी-क्या हिंदी मेरठ की बोली है)।

३ चन्देल और उनका राजत्वकाल-कैलाशचन्द्र मिश्र, पृष्ठ २१३-२१७। एपीग्राफिया इण्डिका, भाग १, पृष्ठ १२३, १३६, २१२ श्लोक ३०।

ही चल पड़ा। उस समय देश की अनार्य भाषाओं के शब्द इसमे अधिक मिले थे। ब्रजभाषा की छाप तो बाद मे पड़ी थी।

संगीत के माध्यम से मध्यदेश की भाषा परम्परा :—

प्राचीन कवियों के संरक्षक नरेश मुंज, भोज, चन्देल परमार्दिदेव स्वयं संगीतज्ञ थे। १३ वी शताब्दी के संगीताचार्य पार्श्वदेव ने अपने 'संगीतसमयसार' ग्रंथ मे इन्हें प्रमाणरूप मे उद्धृत किया है।[१] यही संगीत की और काव्य रचना की परम्परा १५, १६ वी शताब्दी मे चन्देल, बुन्देले और तोमर नरेशों के दरबारो में विकसित होती हुई दिखाई देती है इस काल मे संस्कृत, अपभ्रंश तथा देशी भाषा परिनिष्ठित काव्य भाषा 'हिन्दी' का कलेवर पुष्ट कर रही थीं। ओरछा, आंतरी, चन्देरी, नरवर, ग्वालियर, आगरा, गोकुल मे विष्णुपद एवं ध्रुपद शैली के पद साहित्य की रचनाएं तथा पौराणिक आख्यानों को लेकर प्रेम, नीति, ज्ञान एवं शौर्य आदि मानवीय तत्वों पर प्रबन्ध लिखे जा रहे थे जिसमे कि संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश फारसी, ब्रज, मागधी आदि के शब्दो का सम्मिश्रण था और ग्वालियर की रचनाओं मे क्षेत्र विशेष की अपनी झलक भी थी।

कथित 'ग्वाल्हेरी' या 'ग्वालियरी' भाषा —

मध्यकालीन ग्वालियर संगीत, पद रचना एवं आख्यान काव्य रचना के लिए कवियों, कलाकारो, शिल्पियों आदि को आश्रय दे रहा था जिसके कारण मध्यदेश में यह सांस्कृतिक केन्द्र माना जाता था। सांस्कृतिक केन्द्र ग्वालियर में हुई रचनाओं को क्षेत्र विशेष के नाम से "ग्वालियरी" कहा जाने लगा और यहां की प्रयुक्त भाषा को 'ग्वाल्हेरी भाषा' या 'ग्वालियर' भी नाम दिया गया।[२] यद्यपि यह मूलतः शौरसेनी का दाय थी[३] और सूर-पूर्व-ब्रज-भाषा होते हुए भी क्षेत्रीय विशेषताओं को लिए हुए थी।[४] अतएव स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे 'ग्वालियरी-ब्रज' कहा[५] और आचार्य चन्द्रबली पाण्डे[६] ने छन्द प्रभाकर में उद्धृत दोहों पर विचार करते समय 'ग्वालियरी' ग्वालियर की भाषा के अर्थ मे नाम दिया है। श्री अगरचन्द नाहटा ने 'ग्वालियर हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ, लेख लिखकर ध्यान आकर्षित किया।[७]

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा पृष्ठ ८२
२. ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ७४, ७५
३. वही, पृष्ठ ३५, शौरसेनी भाषा की प्राचीन परम्परा (चटुर्ज्या) पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ पृष्ठ ७६-८०
४. सूर पूर्व ब्रजभाषा पृष्ठ १३६-१४१
५. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल—दो शब्द (मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ३) सं० २०१२
६. आचार्य चन्द्रबली पाण्डे-केशवदास, पृष्ठ २६०, २६३, २६४ तथा श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'-छन्द प्रभाकर भूमिका पृष्ठ १३
७. भारती मार्च १९५५ पृष्ठ २०८ इति श्री हितोपदेश ग्रन्थ ग्वालियरी भाषा नवम प्रसंगेन ग्रन्थ पंचमो आख्यान हितोपदेश सम्पूर्ण।

श्री राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि जिसे हम ब्रज-साहित्य कहते हैं वह पहिले ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध था यह आज की ब्रज-बुन्देली–कन्नौजी का सम्मिलित साहित्य था।[1] 'क्रिस्न रुक्मिणी री वेलि' (१५८७ ई०) की गोपाल की टीका की भाषा को जयकीर्ति (१६२६ ई०) ने "ग्वालेरी भाषा" कहा है।[2]

सन् १८११ मे लल्लूलाल कवि ने—'ब्रजभाषा के व्याकरण में",—'ग्वालियरी' के भाषार्थक प्रयोग का उल्लेख इस प्रकार किया है[3]—

देश-देश तें होत सो भाषा बहुत प्रकार
बरनत हैं तिन सबन में, 'ग्वालियरी' रस सार

इस सन्दर्भ मे यह बात यहां उल्लेखनीय है कि ग्वालियर में देववाणी (संस्कृत) मे १५,१६ वी शताब्दी ई० मे रचनाएं हुई, 'हम्मीर महाकाव्य,' अनगरग, लिखे गये। स्वयंभू—पुष्पदन्त की परम्परा मे यश कीर्ति, रइधू आदि कवियों ने नागवाणी (अपभ्रंश) में पुष्कल रचनाएं की तथा विष्णुपद लिखे गये। विष्णुदास, थधनाथ, देवचन्द्र, मानिक आदि ने 'हिन्दी भाषा' मे रचनाएँ की जिसमे फारसी–अरबी के शब्द भी अपनाये गए और साथ ही देशज शब्द भी।

सन् १७५ ई० मे वीरसेन नाग ने कुषाणों के अंतिम सम्राट वासुदेव को हराकर मथुरा में राज्य किया जिसे पुराणो मे 'नवनाग' कहा गया है। नवनागो की राजधानियां मथुरा, पद्मावती (पवाया नरवर के समीप), कान्तिपुरी (ग्वालियर), कीतवार–कुन्ति प्रदेश मे रही हैं। नागो के साम्राज्य मे यमुना से नर्मदा, चम्बल से केन के बीच का भू-भाग था।[4] मध्यकाल में उत्तर पश्चिम से मध्यदेश की ओर आने वाली जातियो मे नाग भी थे, जातक कथाओं, कथास्थानों मे नागो, नाग कन्याओं का समावेश है।[5] अतएव 'ग्वालियरी' की रचनाओं मे नागवाणी (अपभ्रंश) का प्रयोग होना स्वाभाविक था। शौरसैनी परिनिष्ठित अपभ्रंश तथा जैनों द्वारा प्रयोग की परम्परा भी प्राप्त थी। मिर्जाखां की नागबानी[6] तथा भिखारीदास की कथित नाग भाषा को डा० शिवप्रसादसिंह एक ही मानकर यह नाम 'पिंगल' के लिये प्रयुक्त मानते हैं।[7] डा० बाबूराम

१. राहुल सांकृत्यायन—प्रस्तावना मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १३ (२४-१०-५५)
२ वही (१)
३. हिन्दी विद्यापीठ ग्रंथ वीथिका १९५७, पृष्ठ १३६ (लल्लूलाल कवि)
४ त्रिपुरी–'विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर) २०१० वि० पृष्ठ २३-२६ (विदिशा, पद्मावती और नाग का सांस्कृतिक विवेचन)
५ स्टेण्डर्ड डिक्शनरी आव फाक्लोर, मैथोलाजी एण्ड लीजेण्ड्स फुशाक (१९२०) पृष्ठ ७३०, ७८०
६. 'ए ग्रामर आव दी ब्रज (तुहफत-उल-हिन्द' का एक भाग, मिर्जा खां १६७६ ई०) १९३५ में प्रका० शान्तिनिकेतन बंगाल, पृष्ठ ३४।
७. सूर पूर्व ब्रज भाषा, पृष्ठ ८४।

के प्राचीन रूप में उक्त प्रयोग अकारान्त रूप से अच्छे प्रतिशत में उपलब्ध होते हैं।[1] अनुमानतः यह अकारान्त प्रयोग ग्वालियरी बुन्देली के ही हैं जो साहित्यिक ब्रजी में प्रविष्ट हो गए हैं।

(२) ब्रजी के पुरुषवाची सर्वनाम रूपों के आधार में -तथा - ते हैं पर उसमें भी तथा-तो पर आधारित रूप भी प्रयुक्त हुए हैं जो कि बुन्देली से ब्रजी में गए हुए माने जा सकते हैं।

(३) बो-तथा-ने में अन्त होने वाली क्रियार्थक सज्ञाए प्राचीन ब्रजी में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुई हैं। निस्सन्देह वे बुन्देली में ही वहां पहुंची है। ब्रजी की सज्ञाए क्रमशः बो-तथा-नो में अन्त होने वाली हैं।

(४) बुन्देली का कारण -सूचक-ऐं में अन्त होने वाला कृदन्त ब्रज साहित्य में मिल रहा है। ब्रज का अपना कृदन्त - ऐ ध्वनि में अन्त होता है। बुन्देली की क्षेत्रीय विशेषताएं दाशार्णी (धसान) द्वारा अभिसिञ्चित भू-प्रदेश में भलीभांति देखी जा सकती हैं।

खड़ी बोली (-आ) और ब्रज (-औ) की तुलना में यह ओकारान्त भाषा - बुन्देली

(१)	बुन्देली	खड़ी बोली	ब्रज
	माथो	माथा	माथौ
	मोओ	मेरा	मेरौ
	करौ	करा	करौ
	गओ	गया	गयौ
	ऐसो	ऐसा	ऐसौ

(२) स्वर मध्यवर्ती एवं शब्दांत महाप्राण ध्वनियों के महाप्राणत्व का ह्रास बुन्देली की उल्लेखनीय प्रवृत्ति है : यथा —

गदा	<	गधा
जाँग	<	जाँघ
कई	<	कही
दूद	<	दूध

(३) जहां तक भाषा की विविध व्याकरणिक विशेषताओं की समता का सम्बन्ध है, बुन्देली, अपनी समीपवर्ती भाषाओं — एक ओर ब्रज और मालवी तथा दूसरी ओर

१. सूरपूर्व ब्रज भाषा, पृष्ठ १०२ पैरा नं० ११६-११७

बैसवाडी और बघेली —– का ध्यान रखती हुई मध्यम —मार्ग का अनुसरण करती है। यथा.—

(अ) सर्वनाम रूप

	ब्रज	बुन्देली	अवधी
१.	या	ई	ए
	वा	ऊ	औ
	का	को	के
	जा	जो	जे
२.	मेरो	मोओ	मोर
	तेरो	तोओ	तोर

(ब) सहायक — क्रियाएं

वर्तमान

	बुन्देली	बैसवाड़ी
१.	आंव आंय	आहिव, आहिन
	आय आव	आहि, आहिव
	आय आय	आहो, आय, आहीं

भूत

	बुन्देली	ब्रज
२	तो, ते, ती, तीं	१ हतो, हते, हती, हतीं
		२. हो, हे, ही, हीं

१ भविष्यत रचना ऐतहासिक -ह- (स०-स्य-) पर आधारित है, किन्तु वाह्य प्रभावो के रूप मे ब्रज का -ग्- और अवधी का -ब्- भी सीमावर्ती क्षेत्रो मे देखे जा सकते हैं।

स–(१) वर्तमान काल की रचना-उ-विकरण लेने से होती है जबकि ब्रज मे–त्– और बैसवाडी मे-व्–विकरण मे। यथा :—[1]

ब्रज	बुन्देली	बैसवाडी
आवतु	आउत	आवत

---

१. यह अध्ययन डॉ० रामेश्वर अग्रवाल के शोध ग्रंथ–'बुन्देली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन,पृष्ठ १८, १९, २०, समापन २४ पर आधारित है।

(२) ये वर्तमानकालिक रूप वचन एवं लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होते, जैसे ब्रज और खड़ी बोली में होते हैं :—

	ब्रज	खड़ी बोली	
पु० एक व०	तु	ता	बुन्देली
स्त्री एक व०	ति	ती	त
पु० बहु व०	त	ते	
स्त्री बहु० व०	ति	ती	

४ क्रियार्थक संज्ञाएं–बो एवं–बु केवल बुन्देली क्षेत्र तक ही सीमित है।

५ निपात "ई" (=ही) एवं ऊ (=हू) अनोखे ढंग से जोड़े जाते हैं जो अन्य भाषाओं में नहीं हैं। यथा :—

राम ऊ चरन को=रामचरण को भी आदि।

६ आय (म० अय) भाषा में उल्लेखनीय रूप में प्रयुक्त होता है।

७. बुन्देली का आदरार्थक रूप जू (=जी) लगभग १४ वीं सदी का है, हओ जू, काएजू, हाजू आदि।

ब्रज का दक्षिणी रूप बुन्देली और ब्रज एवं खड़ी बोली —

ब्रज के दक्षिणी रूप बुन्देली, ब्रज और खड़ी बोली में निम्नलिखित व्याकरणिक प्रवृत्तियां इसी सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं —

वास्तव में बुन्देली बोली भी ब्रजभाषा से विशेष भिन्न नहीं है।[1]
क्योंकि—

(१) खड़ी बोली की पुल्लिंग संज्ञाएँ ब्रज के दक्षिणी रूप 'बुन्देली' में भी ओकारान्त है–'छोरो'

(२) पूर्वी ब्रज में पाये जाने वाले 'हुतो' रूप की चाल बुन्देली में भी है। 'तो' रूप शुद्ध बुन्देलखण्डी है। केशव ने दोनों रूपों का प्रयोग किया है—

(अ) तो वह सूरज को सुत को

(ब) सीता पाद सम्मुख हुते गयो सिन्धु के पार

(३) भविष्य रूप 'ह' व 'ग' दोनों ब्रज, बुन्देली में मिलते हैं।

(४) क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिए 'ब' प्रत्यय ही विशेष प्रचलित है।

१. ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० भाटिया (१९६२) सरस्वती पुस्तक सदन आगरा, पृष्ठ ८९।

(५) 'ये'—रहित भूतकालिक कृदन्त चल्यौ-चल्यौ सभी जगह चलता है। पूर्वी रूप में 'य' नहीं आता।

(६) ब्रज की 'ड' ध्वनि बुन्देली में 'र' में बदल जाती है। ध्वनि समूह में भेद होते हुए भी व्याकरणिक रूपों में विशेष भेद नहीं है अतएव बुन्देली भी ब्रज का एक रूप मानना चाहिए।

किन्तु बुन्देली और ब्रज में स्थानीय भेद बहुत सूक्ष्म है जिन्हें स्पष्ट किया जाता है[1]—

(१) ब्रज में 'कहत हतो' का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ 'बुन्देली' के क्षेत्रों में इसका संक्षिप्त प्रयोग 'कतो' किया जाता है। 'वो' का कतो ?—वह क्या कहता था ?

(२) क्रियाओं में से जो भाववाचक संज्ञाएं बनाई जाती हैं उनमें बुन्देली में अन्त में 'ब' का प्रयोग होता है—जैसे खाना पीना क्रिया से भाववाचक ब्रज में 'खानों होगा और बुन्देली में 'खाबो' कहा जाता है।

(३) भूतकाल की एक वचन की क्रिया में 'य'-कार प्रधान रूप ब्रज में 'गयो रहो' होगा किन्तु बुन्देली में 'गओ' कहा जाता है।

—काए का गओ तो—'क्यों, वह कहाँ गया ?'

(४) अन्य पुरुष के एक वचन के अकारान्त संज्ञा में भी ब्रज में औ प्रयुक्त हो सकता है किन्तु बुन्देली में नहीं।

(५) बुन्देली का एक तत्व और विभेदक है, वह है—"हिना, हुना" 'हिनां नइयां' —यहां नहीं है। 'हुना को बैठो तो'—वहां कौन बैठा था ?

पन्द्रहवीं शती का समय हिन्दी का संक्रान्तिकाल था। हिन्दी की तीनों प्रमुख बोलियां बुन्देली-ब्रज, खड़ी बोली एवं अवधी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थीं। किन्तु तीनों की रूपरेखा का निर्माण हो रहा था। अवधी में वस्तुवर्णन और प्रबन्धात्मक कथा की अभिव्यंजना की एक निराली शैली बनने लगी थी। मुल्ला दाऊद का चन्दायन (१३७२ ई०), लखनसेनि का हरि चरित्र विराट पर्व (१४२४-३१), ईश्वरदास की सत्यवती (१५०१ ई०) आदि ग्रन्थ अवधी भाषा की विवरणात्मक रचना शक्ति का परिचय देते हैं। दोहे-चौपाई में इस प्रकार काव्य लेखन की पद्धति 'सहजयान' के सिद्धों में, सरहपाद और कृष्णपाद (कान्हपा) के ग्रन्थों में दो-दो चार-चार चौपाइयों के बाद दोहा लिखने की प्रथा पाई जाती है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय में भी

---

१. नोट :—स्थानीय भेद लेखक बुन्देली क्षेत्र का होने से व्यवहार के आधार पर बताये गए है।

चौपाई प्रकार के छन्द दिये हुए हैं।[1] कबीर ने रमैनी की रचना इसी भाषा शैली में प्रस्तुत की।[2]

मध्यदेशीय भाषा 'हिन्दी' में अंतःप्रादेशिकता की मर्यादा:—

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने मध्यदेश की भाषा परम्परा में हिन्दी को रखते हुए कहा है कि हिन्दी कम से कम तीन हजार वर्षों की एक धारा – एक सिलसिले के अन्त में आ रही है – हिन्दी एक प्रवाह या परम्परागत वस्तु है – अचानक सामने आकर खड़ी हुई कोई नई चीज नहीं है।[3]

मध्यदेशीय भाषा परम्परा में निम्नलिखित धारा के अनुसार हिन्दी को अंतःप्रादेशिकता की मर्यादा मिली।[4]

(१) संस्कृत (२) प्राचीन शौरसेनी जिसका एक साहित्यिक रूप पालि। (३) शौरसेनी प्राकृत (४) शौरसेनी अपभ्रंश तथा उसी का रूपभेद नागर अपभ्रंश। (५) राजस्थानी की पिंगल तथा पुरानी ब्रजभाषा। (६) मध्यकालीन ब्रजभाषा – ब्रज भाषा (दक्षिणी रूप बुन्देली) एवं खड़ी बोली की मिश्र शैली। (७) दक्खनी (८) दिल्ली की खड़ी बोली (९) आधुनिक नागरी हिन्दी और उसका मुसलमानी रूप उर्दू।

इसी मध्यदेशीय भाषा की सेवा पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं शताब्दी के ग्वालियर क्षेत्र के साहित्य में सम्पन्न हुई।

भाषा का व्याकरणिक रूप का अध्ययन.—

(१) पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं शताब्दी के ग्वालियर क्षेत्र के साहित्य के भाषा शास्त्रीय विवेचन में सर्वाधिक कठिनाई इस काल के अधिकांश ग्रन्थों का अप्रकाशित होना है और कुछ कृतियों के विषय में विद्वानों में इस बात का मतभेद भी कठिनाई उत्पन्न करता है कि वे कब और कहां लिखे गए? तथापि इस काल के साहित्य की भाषा के विवेचन के लिए निम्न ग्रन्थों को आधार बनाया जा सकता है। इस विवेचन में साथ में सम-सामयिक ग्रन्थ प्रद्युम्न चरित (विक्रमी १४११), हरिचन्द पुराण विक्रमी १४५३ भी लिये गये हैं। रासो लघुतम, वार्ता का काल विक्रमी १६५० डा० शिवप्रसादसिंह ने अनुमान किया है. एक पुराने हस्तलेख से श्री अगरचन्द नाहटा ने व्रजभारती के (आश्विन –अगहन, सवत २००९) अंक में लघुतम रासो की कुछ वार्ताएं प्रकाशित करायी थी। इसमें प्राचीन ब्रज भाषा गद्य का रूप सुरक्षित है। पचेन्द्रिय वेलि (वि०

१. विक्रमोर्वशीय—कालिदास (४।३२)
२. कबीर ग्रंथावली, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ २२८-२२९
३. शौरसेनी भाषा की परम्परा, डा० चाटुर्ज्या, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ ८१
४. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली का अध्ययन—डा० भाटिया, पृष्ठ ७२

१५५०) की भाषा भी तुलनात्मक ब्रजभाषा के व्याकरण रूप के अध्ययन के लिये ली गई हैं—

(१) महाभारत कथा	विक्रमी १४९२
(२) रुक्मिणी मंगल	,,
(३) स्वर्गारोहण	,,
(४) स्वर्गारोहण पर्व	,,
(५) लखनसेन पद्मावती कथा	,, १५१६
(६) बैताल पच्चीसी	,, १५४६
(७) छिताई वार्ता	,, १५५०
(८) भागवत गीता भाषा	,, १५५७
(९) छीहल बावनी	,, १५८४
(१०) मधुमालती वार्ता	
(११) तानसेन ध्रुपद संग्रह	

(२) पिंगल ब्रज में संध्यक्षर ऐ और औ के लिये 'अए' और अओ, जैसे संयुक्त स्वरों का प्रयोग मिलता है इनका परवर्ती विकास पूर्ण सन्ध्यक्षर औ और ऐ के रूप में हुआ।[1]

भाषा की गठन और प्रगति के उचित आकलन के लिए पूर्ववर्ती पिंगल रूप तथा परवर्ती परिनिष्ठित रूप के सम्बन्धों की संक्षिप्त व्याख्या भी इस विवेचन में की जाना आवश्यक है – प्राकृत पैंगलम की भाषा में क्रिया रूपों में कहीं भी ओकारान्त प्रयोग नहीं मिलते। सर्वत्र 'ओकारान्त' ही मिलते है। 'औकारान्त' क्रिया रूप परवर्ती विकास है। प्राचीन ब्रज के स्वर अ, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ओ, औ मातृकानिक होते हैं।

(३) 'अ' का एक रूप सं पादान्त में सुरक्षित दिखाई पड़ता है।

ब्रजभाषा में मध्य अ प्रायः और अन्त्य 'अ' का नियमित लोप होता है।[2] मध्य आर्यभाषा के विकास के आरम्भिक दिनों में इस प्रकार की प्रवृत्ति सम्भवतः प्रधान नहीं थी। बहुत से शब्दों में अन्त्य 'अ' सुरक्षित प्रतीत होता है।[3] छन्दोबद्ध की कविता की भाषा में प्रयुक्त शब्दों में इस प्रकार की प्रवृत्ति को चाहे मौलिक न भी मानें किंतु वहां अन्त्य 'अ' का लोप माना जाना विचारणीय है। नयान (छिता० वा० २३५, मधु- वा० ६०६), नागर (छिता० वा० ७१) वयण (प्रद्यु० च० १२६) वदन (छिता० च० ४१०), गेह (महा० कथा ?) कठार (हरि० पु० २७ अष्टादश)।

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २३१

२. ब्रजभाषा—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ८८

३. उक्ति व्यक्ति प्रकरण, ५ (पुद)

(४) आद्य या मध्यम अक्षर में कभी-कभी 'अ' का 'इ' रूप भी दिखाई पड़ता है जैसे, पातिग (ह० पु० < पातक), काइथ (वैताल प० < कायस्थ), मूढिनि (गीता० भा० <मुर्द्धनि < मूढ), ततखिण (छीहल बा० ४ < ततक्षण) पाछिली (लघु०'रासो १४)। इस प्रकार प्रवृत्ति पुरानी राजस्थानी में भी दिखाई पड़ती है।[1] वैसे मूल ब्रज में भी यह प्रवृत्ति दिखती है। राजस्थान के बाहर ग्वालियर आदि की प्रतियों में भी यह प्रवृत्ति है। 'प्राकृत' में भी बलाघात के पूर्व अ का इ हो जाता था।[2]

(५) कुछ स्थानों में आद्य 'अ' का आगम हुआ है—अस्तुति (रुक्मि० म० < स्तुति), अस्नाना (महा० भा० क० २६६।१ < स्नान)

(६) मध्यम उ का कई स्थलों पर 'इ' रूपान्तर दिखाई पड़ता है – आइर्वल (गी० भा० १६ < आयुर्वल) जिजोधन (गी० भा० ३२ < दुर्योधन) पुरिष (म० क० ६।२ < पुरुष) मुनिख (प० बे० १४ < मनुष्य) यह प्रवृत्ति राजस्थानी में भी पाई जाती है।[3] उ – इ के उदाहरण ब्रजभाषा की बोलियों में भी पाये जाते हैं।[4]

(७) उ अ, मध्यम उ का कई स्थलों पर 'अ' हो गया है। गरुअ (छी० बा० १८।३ < गुरुक) मकुट (वैताल प० १ < मुकुट) रावरे (ह० म० राउले < राजकुल) हुअ (लक्ष्म० प० क० ५।१ < हूअ < भवतु।

इस प्रकार के उदाहरण परवर्ती ब्रजभाषा में भी मिलते हैं। चतुर – चतर, कुमार – कमर।[5] डा० तेसीतोरी ने भी पुरानी राजस्थानी में इस प्रकार के उदाहरणों की ओर संकेत किया है।[6] यह प्रवृत्ति अपभ्रंश से ही चलने लगी थी।[7]

(८) अन्त्य इ प्राय. परवर्ती दीर्घ स्वर के बाद उदासीन स्वर की तरह उच्चरित होता था। प्रद्युम्न चरित तथा हरिचन्द पुराण जैसे प्राचीन काव्यों की भाषा में अन्त्य 'इ' का प्रयोग बाहुल्य है किन्तु इस 'इ' का उच्चारण धीमा होता है।[8]

---

१. डा० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी (२/१) हिन्दी अनुवाद १९५५ ई० नागरी प्रचा० सभा काशी।
२. पिशेल ग्रैमैटिक डर प्राकृत स्प्राखे, पृष्ठ १०२–३, ७०,७३
(डा० चादुर्ज्या द्वारा भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी पृष्ठ ६० पर उद्धृत)
३. डा० चादुर्ज्या—राजस्थानी, पृष्ठ ११ (सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २४०)
४. डा० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, पृष्ठ १००
५. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा, पृष्ठ १००
६ डा० तेसीतोरी पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ५१।
७. डा० पिशेल, ग्रैमैटिक डर प्राकृत स्प्राखे, पृष्ठ १२३
८. डा० शिवप्रसाद सिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २४० (पैरा २६२) तथा ब्रजभाषा पृष्ठ ६१

हरे 'इ (प्र० च० ५०) करेंइ (प्र० च० ३६) सवरेंइ (प्र० च० २६) पला 'इ (हरि० पु० २) मा' इ (ह० पु०)

(९) मध्यग 'इ' का कभी-कभी 'य' रूपान्तर भी होता है। गोव्यन्द (महा० भा० २६४।१ < गोविन्द) मानस्यघ (गीता भा० ६ < मानसिंह)। कृदन्तज भूतकालिक क्रिया में इ य का आगम। 'बोल्यउ' मे 'य' बोलिअउ के 'इ' का ही रूपान्तर है। उसी तरह संहारण शब्द उपरोक्त (४) के अनुसार सिंहारण और फिर स्यघारण (लखन० पदमा० क० ७१) हो गया।

(१०) अ+'उ' या 'अ+इ' का 'औ' या 'ऐ' उद्वृत्त स्वर मे सन्ध्यक्षर रूप मे परिवर्तन हो जाता है। यह प्रवृत्ति अवहट्ठ या पिंगल काल मे ही शुरु हो गई थी। प्राचीन व्रज की इन रचनाओ मे इस तरह के बहुत से प्रयोग मिलते है' जिनमे उद्वृत्त स्वर सुरक्षित हैं —

चाल्यउ (लखन० पद० क० ५६।१ >चल्यो(, कधारउ (छीहल बावनी ४।५ > कधारो)चउवारे(छिता० चरित २६४ >चौवारे,चौवार मधु० वार्ताछन्द ३)धरई(स्वर्ग० > धरे) उद्वृत्त स्वरों के स्थान पर सन्ध्यक्षरों के प्रयोग के भी उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार के प्रयोग उनके अपभ्रंश रूपों के साथ किये जाते है—आनीयो (लखन० पद० क० ५८।२ < आनीयउ) उपज्यो (गीता भा० ४१ < उपजउ) को (स्वर्ग० < कउ), मकै (रुक्मि० म० < मकइ) चौपही (वेता० प० चउपई) चौक (महा० भा० क० २६५।१ < चउक्क < चतुष्क) पहिरो (छि० वा० १३५ < पहिरउ) आदि।

(११) स्वर सकोच नव्य आर्य भाषाओ की एक मूलध्वन्यात्मक प्रवृत्ति मानी जाती है। प्राचीन व्रज मे भी स्वर-सकोच कई प्रकार से हुआ है।

(१) अउ > उ
जदुराय (गी० भा० २६ < जादव राय < यादव राय)

(२) इअ > ई
अहारी (छीहल बावनी २०।४ अहारिअ—आहारिक)

(१२) 'ऋ' का परिवर्तन कई प्रकार से होता है—

ऋ > ए - गेह (छीह० बा० १४।३ < गृह)
ऋ > ई—दीठ (छिता० वा० < दृष्टि)
ऋ > इ —सिंगार (गी० भा० २२ < शृंगार)

(१३) अनुनासिक और अनुस्वार :—नव्य आर्य भाषाओं में अनुस्वार का प्रयोग अनियमित ढग से होता है। हस्तलेखो मे वर्गीय अनुनासिक के स्थान पर तथा अनु-

नासिक स्वर दोनो ही स्थानों पर जहा अनुस्वार का प्रयोग पाया जाता है वहाँ सर्वत्र बिन्दु ही मिलता है जैसे प्रद्युम्न चरित मे पचमी (११ पचमी) दड (४ दण्ड) मन्दिर (१ मन्दिर) तथा हसि हसि (४०८=हसि हसि) सुणिउ (७०५) आदि पदो मे अनुनासिक और अनुस्वार दोनो ही बिन्दु से व्यक्त किये गए है।

अनुस्वार कई स्थलों पर ह्रस्व हो गया है—जैसे अगार (महा० भा० ५<अगार) अधार (हरिचन्द पुराण—अधार<अधकार), इस प्रकार के परिवर्तन छन्दानुरोध के कारण तथा शब्दो मे बलाघात के परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं इस प्रकार के बहुत से प्रयोग मिलते हैं (सूर पूर्व ब्रजभाषा, पैरा न० १०६, १२६)

(१४) मध्य भाषा मे अनुनासिक को ह्रस्व या सरलीकृत बनने की प्रवृत्ति का एक दूसरा रूप भी दिखाई पड़ता है जिसमे पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करके अनुस्वार को ह्रस्व कर लेते थे। प्राचीन ब्रज मे यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

साभल्यो (हरिचन्द पुराण<सम्मलउ · अप० हेम० ४७४) पाडे (महा० भा० १<पडिअ<पण्डित) पाचई (बेता०पची०<पचइ<पच) छाडो (स्वर्गा० ५<छडउ)

(१५) अकारण अनुनासिकता के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं—सांस (हरिचन्द पु०<श्वास) सांपो (पचेन्द्रिय वेलि ५३<सर्प)

(१६) सम्पर्कज सानुनासिकता की प्रवृति भी दिखाई पड़ती है। डॉ० चाटुर्ज्या ने उक्ति व्यक्ति मे यह प्रवृति बगाली और बिहारी के निकट दिखाई पड़ना कहा है पश्चिमी हिन्दी के नही।[1]

कहा माइ (हरि० पुराण) तुमको (स्वर्गा०—कउ) परम आपणा (लखन० पद० क० १३<आपण) सुजाण (छिता० वार्ता १२४<सुजाण<सुजान)

(१७) पदान्त के अनुस्वार प्राय अनुनासिक ध्वनि की तरह उच्चरित होते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश काल मे ये ह्रस्व और दीर्घ दोनो ही समझे जाते थे। डॉ० पिशेल के मत से विकल्प से ये अनुस्वार और अनुनासिक दोनों माने जाते थे।[2] हेमचन्द्र के दोहो के पादान्त उ हुं ह के अनुस्वार प्राय ह्रस्व उच्चरित होते थे। डॉ० तेसीतोरी बताते हैं कि पदान्त अनुस्वार अपभ्रंश मे (हेमचन्द्र) ही अनुनासिक मे बदल गया था।[3] यही प्रवृत्ति विवेच्य ग्रन्थों में विकसित हुई—

पाऊं (हरिम० म०) लहहुं (स्वर्गा०) मनावें (बैताल प०) तैसैं (गीता भाषा ३०)

---

१. उक्ति व्यक्ति स्टडी, पृष्ठ २१—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

२. डॉ० पिशेल–ग्रेमेटिक०, पृष्ठ १८०

३. डा० तेसीतोरी–पुरानी राजस्थानी पृष्ठ २०

(१८) मध्यवर्ती अनुस्वार प्रायः सुरक्षित दिखाई पडता है—बांधौ (गीता भाषा, २७ <बधउ)।

व्यंजन :

(१९) अपभ्रंशकालीन सभी व्यंजन सुरक्षित हैं। कुछ नये व्यंजन भी हैं—ड ढ ड़्ह, न्ह, म्ह, ल्ह,

(२०) ण और न के विभेद को बनाये रखने की प्रवृत्ति नही दिखाई पडती। अपभ्रंश मे "न" के स्थान पर "ण" का प्रयोग अधिक हुआ करता था ब्रजभाषा मे मूर्धन्य "ण" का व्यवहार प्रायः लुप्त हो गया है।[1] विवेच्य ग्रन्थो मे 'ण' का प्रयोग मिलता है जिसे राजस्थानी लेख पद्धति का प्रभाव डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने माना है।[2] बुलन्दशहर की भाषा मे "न" का "ण" उच्चारण होना बताया गया है।[3]

आपणा (लखन० पद० क० १३)। अन्य हस्तलेखो मे प्रायः ण का न रूप हो गया है—

गनपति (रुक्मि० म० १ <गणपति)

पोषन (महा० भा० २६४ <पोषण)

(२१) ड र और ल न तीनो ध्वनियो का स्पष्ट विभेद पाया जाता है, किन्तु कई स्थानो पर ये ध्वनियां परस्पर विनिमेय प्रतीत होती हैं।

'र—ड' खरी (प्र० चि० १३६ खडी), बीरा (बेताल पची० <बीड़ा—बीटिका) करोर (गी० भा० १ <करो ड <कोटि)

ड-र-बाहुडि (हरि० पुरा० ६ बहुरि, छि० वार्ता १२८)

ल-र-जरै (महा०भा० २ ज्वलइ) रावर (महा०भा० ४ छिता०वा०पृ० २५६ < रावल <राजकुल) हैवारे (स्वर्गा० ३ <हिमालय) आर—(गीता० भा० २५ <आल) 'ल' का 'र' रूपान्तर ब्रज की—बोलियो मे पाया जाता है।[4]

(२२) न्ह, म्ह और 'ल्ह' इन तीन महाप्राण ध्वनियो का प्रयोग होने लगा था।

न्ह—कान्हर (छिता० वार्ता, पृ० २६७ <कृष्ण)

उन्हिआये (तानसेन ध्रुपद २४८)

न्हाइ (छिताई चरित, ३५८, <स्नान)

म्ह—ब्रम्ह (हरि० पु० २६ <ब्रह्म)

ल्ह—मोल्हन (छिता० च० ३९७),

---

1 उक्ति व्यक्ति स्टोडी पृष्ठ २२, तथा ब्रजभाषा,पृष्ठ १०५

२. सूरपूर्व ब्रजभाषा. पृष्ठ २८४ (पैरा न २०४)

३. ब्रजभाषा पृष्ठ १०५

४. वही, पृष्ठ १०६

(२३) मध्यग 'क' कई स्थलों पर 'य' हो गया है—इगुणीस (लखन० पद० क० ७२।१ < इकुणीस < एकोनविंशति)

(२४) 'क्ष' का रूपान्तर प्रायः दो प्रकार का होता है—क्ष > छ–छन्द (प्रद्युम्न चरित १५८–पक्ष)क्ष ख–खत्रिय (छिताई वार्ता ३१–क्षत्रिय) कुछ शब्दों में क्ष का ष रूप भी मिलता है किन्तु वहां भी स का उच्चारण 'ख' ही होता है।

(२५) 'म' का 'व' रूपान्तर महत्वपूर्ण है—मगंज (प्रद्युम्न च० १६ < मरकत रूप का च रूपान्तर अपभ्रंश में होना था। चत्तकुमह (हेम० ४।३६५ < त्यक्तांकुश) इसमें त च परिवर्तन महत्वपूर्ण है। डा० शिवप्रसादसिंह का कथन है कि संभवतः इसी च का ज रूपान्तर हो गया। त वर्ग और च वर्ग दोनों वर्ण उच्चारण की दृष्टि से अत्यन्त निकटवर्ती हैं। त वर्ग वर्त्स्य ध्वनि और 'च' वर्ग सवर्णी है इसीलिए इनका परिवर्तन स्वाभाविक है।[1] द–ज का भी एक उदाहरण जिजोंधन (गीता भाषा ३३ < जुजोंधन < दुर्योधन) का मिलता है।

(२६) प्राकृत में मध्यग क ग च ज त द प व के लोप के उदाहरण मिलते हैं (हेम० ८।१।१७७) यही अवस्था अपभ्रंशों में रही। अपभ्रंश में उच्चारण सौकर्य के लिए ऐसे स्थलों पर 'य' या 'व' श्रुति का विधान भी था। किन्तु इसका पालन कड़ाई से न था।

कहीं कहीं 'य' श्रुति का भी प्रयोग हुआ है किन्तु ये शब्द परवर्ती ब्रज में बहु प्रचलित नहीं है। इसके स्थान पर तत्सम शब्दों का ही प्रयोग उचित माना जाने लगा। यथा :—

पयालि (लखन० पद० कथा < पाताल), हूअ (लखन० प० क० < पूर्व-ब्रज-भाषा = हतो) सायर (गीता भाषा २६ < सागर)

(२७) य–ज–अजुध्या (बैताल प० < अयोध्या) आचारजहि (गीता ३३ < भाषा आचार्य)।

संयुक्त व्यंजन :

(२८) अपभ्रंश के द्वित्व व्यजनों का प्राचीन ब्रजभाषा में सर्वत्र सरलीकरण किया गया है। क्षतिपूर्ति हेतु कभी पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया गया है। आथमण (छीहल बावनी ७।५ < अत्थमण < अस्तमान)—नीसरइ (लखन० पद० क० २।१ < निस्सरइ < निस्सरति) कहीं यह द्वित्व व्यंजन सुरक्षित रह गया है दिट्ट (छिता० वार्ता १६।३), बिलग्गि (छीहल बा० २), इसे अपभ्रंश का अवशिष्ट प्रभाव कहा जा सकता है।

---

1. सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २४६ (पैरा नं० २७६)

(२९) 'ध्य' का 'झ' रूपान्तर—अपभ्रंश की तरह ही हो गया है। जूझ (संज्ञा महा० भा० २<जुज्झ<युध्य) ये शब्द परवर्ती ब्रजभाषा मे कई स्थलो पर उचित न माने जाकर छोड दिये गये हैं।[1]

(३०) मध्य ट का ड में परिवर्तन—

तोड़इ (हरिचन्द्र पुरा० <त्रोटति[2]

सकंडु (छीहल बा० १०<सकट) पडन (छीहल बा०

१३<पट) इस नियम की प्राचीनता (हेम० व्या० ८।१।१९८) द्रष्टव्य है।

त्स—छ—त्स का "च्छ" रूपान्तर अपभ्रंश मे होता था। आरम्भिक ब्रज मे 'च' भी लुप्त हो गया। इस प्रकार त्स > छ के रूपान्तर मिलते हैं जो उसमे भी आगे के रूप हैं।

उछग (हरी० पु० <उच्छग <उत्सग) मछि (पचेन्द्रिय बेलि १६<मच्छ< मत्स्य)।

(३१) स्त—थ—परिवर्तन भी मिलता है—थुन (गीताभाषा ६<स्तुति) हथना-पुर (गीता भाषा ७<हस्तिनापुर)

वर्ण विपर्यय—

डॉ० तेसीतोरी ने वर्ण विपर्यय को मात्रा, अनुनासिक स्वर और व्यंजन विपर्यय के नाम से चार वर्गों मे बाटा है।

१–मात्रा विपर्यय—तबोर (गीता भाषा २१ <ताम्बूल)
कुरवा (गीता भा० ५६<कौरव)

(२) अनुनासिक विपर्यय–कवलिय (पचेन्द्रिय केलि २५<कॅवल<कमल, मधु मा० वार्त्ता ३८७, छिताई चरित १०१६) कुंवर (छि० च० ४४१, पृ० ३११—कुंवार<कुमार)

(३) स्वर विपर्यय—परीछति (स्वर्गा० पर्व–परीक्षित), सिमरो (गीता भाषा< समिरऊं<स्मृ),

व्यंजन विपर्यय—पतरिच्छ (प्रद्यु० चरि ४१०<परितिछ<प्रत्यक्ष)

(३२) स्वर भक्ति—बिघण (प्रद्यु० च० ५ < विघ्न), तिरिया (< महा० भाषा ६ त्रिया)

१. 'सूर पूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २४७ पैरा नं० (२८३)
२. डा० पिशेल–'ग्रेमेटिक' पृष्ठ ४८६

(३३) संज्ञा शब्द—डा० ग्रियर्सन ने अनुस्वार को नपुंसक और पुलिंग मे विभेदक माना है।[1] किन्तु *अनुस्वार का प्रयोग प्राचीन हस्तलेखों में अनियमित है।* 'वार' (प्रद्यु० च० ३२) समय के अर्थ में स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त हुआ है। विधाधी पाप (हरीचंद पुराण २५) मे पाप स्त्रीलिंग है।

प्रतिपादकों की दृष्टि से व्यजनान्त ही प्रधान है। वैसे ऐसे व्यजनो के अन्त मे 'अ' रहता है जो प्रत्ययो के लगने पर प्राय लुप्त हो जाता है। बहुत से दीर्घ स्वरान्त स्त्रीलिंग शब्द ह्रस्व स्वर हो गए हैं। धर (वि० १४११ प्रद्यु० च० ४०७ < धरा) बात (प्रद्यु च० २८ < वार्ता) इस प्रकार की प्रवृत्ति अपभ्रंश मे भी दिखाई पडती है (हेम० ८।४।३३०)

(३४) वचन—बहुवचन द्योतित करने के लिये 'नि' या 'न' प्रत्यय का प्रयोग होता था। यह प्रत्यय प्राय. विकारी रूपों का निर्माण करता है जिनके साथ परसर्गो के आधार पर भिन्न-भिन्न कारको का बोध होता है।

१. चितवनि चलनि मुरनि मुसकानि (स्त्रीलिंग) बहुवचन (छिताई वार्ता ११५)

२. जेहि बस पचन कीय (पचेन्द्रिय वेलि ६२) पांचो ने।

(३५) विभक्ति—कर्ता और कर्म मे 'नि' या 'न' प्रत्यय विभक्ति चिन्ह का भी कार्य करता है।

कर्म 'हिं'—१ तिन्हहि चरावति (छिता० वार्ता १४१) कर्म० बहुवचन

करण 'हि' 'ए'—(१) चितौरे दीनी पीठ, छिता० वार्ता, १३१, चितौरे से पीठ दी गई।

षष्ठी 'ह'—वणह मझारि (प्रद्यु० च० १३७)

अधिकरण 'हिं' 'इ' 'ऐं'—

कुरखेतहिं (स्वर्गा० ३) सरोवरि (पचे० वेलि ३२) आगरे (प्रद्यु० च० ७०२) धरहि अवतरिउ (प्रद्यु च० ७०५)

(३६) उत्तम पुरुष—मैं इतनी जानी नही (मधुमाल० वार्ता, ६३१)

मैं जु कथा यह कही (गीता भाषा ३) हउ मतिहीन म लावउ खोरि (प्रद्यु० च० ७०२) कि मइ पुरुष विछोही नारि (प्रद्यु० च० १३७)।

(३७) मो और मोहि—

मोहि सुनावहु कथा अनूप (वैताल पचीसी), जो मोहि मदना जा रही, पवन उडावै खेह (मैनासत पृष्ठ २००), को मो सो रन जोधो आनि (गीता भाषा, ४५), 'मो' का विकारी रूप भिन्न-भिन्न कारको के परसर्गो के साथ प्रयुक्त होता है—

१. तो यह मो पे होइ है तैसे (गीत भाषा ३०)
२ मो सों कूरप कवहूं नहूँ (हिताई वार्ता, ३२६)

डॉ० तेसीतोरी मूं या मो की व्युत्पत्ति अपभ्रंश महुँ—संस्कृत मह्यम् से मानते हैं।[1] डॉ० तेसीतोरी इसे मूलतः षष्ठी रूप मानते हैं जिसका सम्प्रदान कारक में प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार मुहि या मोहि भी उनके मत से षष्ठी का रूप है। जिसका प्रयोग पूर्वी प्रदेश की बोलियों (राजस्थानी से भिन्न, ब्रजभाषा आदि) में सम्प्रदान कारक में होता है।[2] इस प्रकार मो के 'मम' अर्थद्योतक प्रयोग परवर्ती ब्रज में बहुत होने लगे।

(३८) मेरो, मोरी, मेरे—उत्तम पुरुष के सम्बन्ध विकारी रूपों के कुछ उदाहरण—

१ जो मेरे चित गुर के पाय (गीता भाषा), २६)
२ तो बिन् और न कोऊ मेरो (रुक्मि० मंगल)

सम्बन्ध वाची पुलिंग मेरो, मेरे तथा स्त्रीलिंग मोरी, मेरी आदि सर्वनाम अपभ्रंश महारउ संस्कृत—मह्य कार्यक से व्युत्पन्न मानते हैं[3] तेसी तोरी ने मेरउ और मोरउ रूपों को राजस्थानी का मूल रूप स्वीकार नहीं किया उनके मत से पुरानी राजस्थानी में मिलने वाले ये रूप ब्रज तथा बुन्देली के विकारी रूप 'मो' में के महरा हैं।[4] मेरा आदि की उत्पत्ति डा० धीरेन्द्र वर्मा 'महकेरो' प्राकृत से मानते हैं।[5]

(३९) बहुवचन [redacted] हम, हमारे आदि रूप भी मिलते हैं—

१ हम तुम जयो नरायन देव (हरीचंद पुराण)
२. एक सब सुहृद हमारे देव (गीता भा, ४८)

'हम' उत्तम पुरुष बहुवचन का मूल रूप है। हमारी, हमार, हमारे इसी [redacted] विकृत रूपान्तर हैं। 'हम' का सम्बन्ध प्राकृत 'अम्हे' (सं० अस्मे से किया जाता है हमारी आदि रूप महकारों— सं० अस्मत्कार्यकः से विकसित हो सकते हैं।[6]

(४०) मध्यम पुरुष—मूल रूप तुम, तूँ हैं जो अपभ्रंश के 'तुहुँ' (हेम० ४।३३०) संस्कृत त्वम् से निसृत हुआ है।

१, डा० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ८३।२
२ डा० एल० पी० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी ८३।२ (वही)
३. डा० पिशेल : ग्रमैटिक, पृष्ठ ४१४
४. डा० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी पृष्ठ ८३
५, डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिंदी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २६२
६. डा० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ८४

(१) अब यह राज तात तुम्ह लेहू (स्वर्गारोहण,४)
(२) जसु राखन हारा तूं दई (छीहल बावनी ४।६)
(३) तुम जनि वीर धरो सन्देहु (स्वर्गा० पर्व)

तो, तोहिं आदि विकारी रूपों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) तो बिनु अवरन को सरण (छीहल बावनी, ३।६)
(२) तोहि बिनु नयन इनइ को नोर (हरीचंद पुराण)

'तो' की व्युत्पत्ति अपभ्रंश < तुह < तुभ्यं मे सभव है।[1] मूलत ये भी षष्ठी के ही विकारी रूप हैं। 'तो' सर्वनाम षष्ठी मे भी प्रयुक्त होता है। तो मन की जानत नाही, आदि।

सम्बन्धी-सम्बन्ध विकारी रूप।

(१) तेरे सनिधान जो रहे (गीता भाषा, ६४)
(२) निसि दिन सुमरन करत तिहारो (रुक्मिणी मगल)

तेरे, तिहारे तुम्हारे या तिहारो रूप अप० तुम्हारउ < स० युष्मत् + कार्यकः से निसृत हुए हैं।[2]

(३) तुम चरणन पर माथो लावे (गीता भाषा)

संस्कृत के 'त्व' से निसृत 'तुव' रूप प्राचीन ब्रज मे प्राप्त होता है इसका प्रचार परवर्ती ब्रज मे दिखाई पड़ता है। कर्म सम्प्रदान के विकारी रूप जो विभक्ति युक्त या परसर्गों के साथ प्रयोग मे आते हैं—

(१) तुमैं छाड़ि मो पै रह्यो न जाई (स्वर्गा० पर्व)
(२) अब तुमहि को घरी हूँ वारी (स्व० पर्व)

(४१) अन्य पुरुष, नित्य सम्बन्धी सर्वनाम :—

इस वर्ग मे संस्कृति के प्राचीन 'सः' विकसित सो आदि तथा उसके अन्य विकारी रूप मिलते हैं :—

(१) सो पुत मानस्यव की करैं (गीता भाषा ६)
(२) भए देव सो आन (मधुमा० वार्ता ३३८)

स प्रकार के रूप केवल करण मे ही प्राप्त होते हैं। अन्य कारको मे इसी के विकारी रूप प्रयोग मे लाये जाते हैं। इनमे कई सर्वनाम और कुछ सर्वनामिक विशेषण

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २६१।२६२
२. डा० तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ८६
३. ब्रजभाषा, पृष्ठ १६७ से तुलनीय।

की तरह। इसी कारण कुछ भाषाविदों ने इन्हें मूलतः विशेषण रूप माना है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इन्हें नित्य सम्बन्धी कहते हैं।[1] डॉ० चाटुर्ज्या ने इन्हें अन्य पुरुष के अन्तर्गत ही माना है।[2]

(४२) कर्तृ करण–'तेह-तिह' :—

(१) तिहि तवोर येषू कंह दयो (गीता भाषा २१)

तेह सम्स्कृत तधि,> तइ> तेह> का रूपान्तर हो सकता है[3] तिहि तहि का रूप है।

(४३) ता, ताकों आदि विकारी रूप :—

(१) ता पीछे तुम करो उकीलो (मधु० वार्ता ३६२)
(२) ताको पाप सैल सम जाई (स्व० रोहण)

इन रूपों में 'ता' ब्रजभाषा का साधित रूप है जो भिन्न-भिन्न परसर्गों के साथ कई कारकों में प्रयुक्त होता है। वैसे परसर्ग रहित रूप से मूलतः यह षष्ठी में ही प्रयुक्त होता है। षष्ठी ताह' अपभ्रंश से सकुचित होकर 'ता' बना है।[4]

(४४) तासु तिसो, तिहि, ताही आदि संबंध विकारी रूप :—

(१) करि कागद मह चिनो तिसी (छिताई वार्ता, १३५)
(२) नारद रिति गो तिहि ठाई (प्रद्यु० चरि० २१)
(३) ताही को भावै वैराग (गीता भाषा २२)
(४) तास चीन्हह नहि कोई (छीहल बावनी, १)

स० तस्य> अपभ्रंश तस्स> तसु> तासु। तिसी, तासु का ही स्त्रीलिंग रूप जो मध्यकालीन ई प्रत्यय से बनाया गया।

(४५) बहुवचन ते, तिन्ह आदि :—

(१) सास ससुर ते आहि अपार (गीता भाषा, ५४)
(२) तिन्ह मुनिय जनम विगूते (पचेन्द्रिय बेलि २४)

तिन्ह और तिन रूप मूलतः कर्तृ करण के प्राचीन 'तेन' के विकार हैं। डॉ० चाटुर्ज्या इसकी व्युत्पत्ति 'ते' मध्यकालीन तेणम्+हि विभक्ति से मानते हैं।[5] ते संस्कृत के प्राचीन 'ते' से सबद्ध है।

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी का इतिहास, साहित्य पृष्ठ २६६
२. उक्ति व्यक्ति स्टडी–डॉ० चाटुर्ज्या, [redacted] ६६।३।
३. वही [redacted] ६७
४. वही [redacted] ६३
५. उक्ति व्यक्ति प्रकरण, स्टडी, पृष्ठ ६७ (डॉ० चाटुर्ज्या)

विकारी रूप :—

(१) तिन्हहिं चरावत बाह उचाइ (छिताई वार्ता, १४२) कर्म

(२) तिन समान दूजो नहिं आन (गीता भाषा, ३०) करण

(३) तिन को बात सु मज्जय भनै (गीता भाषा ३२) सम्बन्ध

बहुवचन में तिण या तिन का प्रयोग होता है :—

(१) तिण ठाई (लखन० पद० कथा १४)

(२) तिण परि (हरीचन्द पुराण)

नन्ददास और सूरदास ने भी 'उन' के अर्थ में 'तिण' का ऐसा ही प्रयोग किया है।[1]

(४६) दूरवर्ती निश्चय वाचक :—

अन्य पुरुष में 'व' प्रकार के सर्वनाम भी दिखाई पड़ते हैं। खड़ी बोली में अन्य पुरुष में अब "वह" और उसके अन्य प्रकार हो चलते हैं। वह की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध अपभ्रंश क्रिया विशेषण 'ओई' (हेम० ८।४।३६४) से जोड़ते हैं।[2] प्राचीन ब्रजभाषा के कुछ रूप नीचे दिये जाते हैं—

(१) बहइ मनुष गयो गुण तोरि (प्रद्यु० च० ४०५)

(२) पै वै बयो हू साथ न भयो (गीता भाषा, १४)

'वहइ' रूप सं० १४११ के प्रद्युम्न चरित में मिलना महत्वपूर्ण है क्योंकि इस काल की दूसरी रचनाओं में 'वह' का प्रयोग अत्यन्त दुर्लभ है। 'वे' के कई प्रयोग प्राप्त होते हैं सभी एक वचन के प्रायः। 'वे' का प्रयोग परवर्ती ब्रज में बहुवचन ही होता था।[3]

बहुवचन के रूप :—

(१) तब वे सुन्दरि करहिं कुकर्म (गीता भाषा, ११)

विकारी रूप 'उन' :—

बहुवचन में 'उन' का व्यवहार होता है।

(१) अलि ज्यों उन घुटि मुआ (पंचेन्द्रिय वेलि, ३५)

(२) उन को नाहिन सुरति तुम्हारी (स्वर्गा० पर्व)

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, पृष्ठ १८३

२. ओरीजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑव बेंगाली लेंग्वेज, कलकत्ता, १९२६, पृष्ठ ७०२ (इसका संक्षिप्त अनुवाद डॉ० उदयनारायण तिवारी के हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, [illegible] १६२-१७६ पर उपलब्ध है।)

३. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा, पृष्ठ १६८

(४७) निकटवर्ती निश्चयवाचक :—

इस वर्ग के अन्तर्गत एहि, इहि, आदि निकटता सूचक सर्वनाम आते हैं :—

(१) इहि स्वर्गारोहण की कथा (स्व० रोहण)

(२) इहि रमा कइ अपछर (छिताई वार्ता, १२७)

यह के लिये प्रायः इहि का रूप प्रयोग हुआ है, इहि, एहु, इह, यह आदि रूप अपभ्रंश के 'एहु' (हेम० ४।३६२ से विकसित हुए हैं। 'ऐहु' का सम्बन्ध डॉ० चाटुर्ज्या एत् से जोड़ते हैं जिसके तीन रूप एष, एषा और एतद् बनते हैं।[1] कभी-कभी इह का सकुचित रूप 'इ' भी प्रयोग में आता है— 'इ' बाद तणु रच्यो ऐसो (पचं० वेलि ५७) 'एह' वचन कह मिदर आयो (मधुमालती वार्ता, ४५६) 'इ' या 'इयि' का प्रयोग परवर्ती व्रज में भी होता था।[2]

विकारी रूप—या, याहि। 'या' व्रज का साधित रूप है। जिसके कई तरह के रूप परसर्गों के साथ बनते हैं :—

(१) सुनउ कथा या परिमल भोग (लखन० पद० क० ६७)

(२) या तैं समझे सारु अमाइ (गीता भाषा, २८)

(४८) सम्बन्ध के यासु, इसो आदि रूप :—

(१) गीता ज्ञान हीन नर इसो (गीता भाषा, २७)

'इसो' रूप स० एत > अस्य > प्राकृत ए, अस्स से सम्बन्धित प्रतीत होता है। डॉ० चाटुर्ज्या इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत 'एतस्य' से मानते हैं।[3]

बहुवचन—ये, इन :—

(१) ये नैन दुवै वसि राचै (पचेन्द्रिय वेलि ४८)

(२) सब जोधा ए मेरे हेत (गीता भाषा ३६)

ये की व्युत्पत्ति डॉ० चाटुर्ज्या के अनुसार प्रा० भा० भाषा के एत् > म० भा० एअ > ए मे हो सकती है।[4]

विकारी रूप—इन :—

इनके साथ भी सभी परसर्गों का प्रयोग होता है—

येधू इनमें एकै लहै (गीता भाषा, १७)

इन सर्वनाम सं० एतानाम> एमाण> एण्ह अपभ्रंश> एम्ह> इम्ह > इन।

---

१. ओरीजिन ऐंड डेव्हलपमेन्ट ऑव बेंगाली लेंग्वेज, पृष्ठ २६६

२. व्रजभाषा, [illegible] १७४—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

३. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ २६३

४. उक्तिव्यक्ति स्टडी, पृष्ठ ६७—डॉ० चाटुर्ज्या

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम :— एक वचन—जो,

(१) एकादसी सहस्त्र जो करे (महा० भाषा १६१)

'जो' सर्वनाम संस्कृत के य' से विकसित हुआ है।

विकारी जा, जिहि, जेहि, जसु, जाहि आदि :—

'जिहि' विधिना (मधु०वार्ता २६१)

(१) जाहि होइ सारदा सुबुद्धि (गीता भाषा १)
(२) जा के चरन प्रताप तें (रुक्मि० मंगल २)
(३) जसु रासणहारा तू दई (छीहल बावनी १)

जा < जाहि < याहि । जेइ < येभिः । जसु < जस्स < यस्य ।

बहुवचन-जिन-जे आदि :—

(१) जिन करतार कछु विपरीत करई (मधु० वार्ता, २६०)
(२) हुए 'जे' हियें सामुहे सैन (छिताई वार्ता, २६७)

इसमें 'जिन' विकारी रूप है जिसके साथ सभी परसर्गों या विभक्तियों का प्रयोग होता है और इस प्रकार जिनहि, जिनको, जिन सों आदि रूप बनते हैं। जिनकी व्युत्पत्ति जाण > जन्ह > जिन्ह > जिन हुई। जे < येभिः ।[१]

(४६) प्रश्नवाचक सर्वनाम:—

को भानहि गुन विस्तरै (गीता भाषा २१)
तो सम मिलें न छत्री कमणू (प्रद्यु० चरित ४०८)
को बूझै गूगे की गारो (मधु० वार्ता, ३६१)

को और कवन के बहुतेरे रूप प्राप्त होते हैं। 'को' तो संस्कृत कः का ही विकसित रूप है। कवण कौन, कूण आदि की व्युत्पत्ति इस प्रकार है। कः पुनः कवुण > कउण > कवण > या कौन।

विकारी रूप—का :—

का पहु सीख्यौ पौरष (प्रद्यु० च० ४०६)
का सें जाय कहू दौर (तानसेन ध्रुपद ६०)

बहुवचन में 'किन' का प्रयोग होता है। यह बहुवचन का विकारी रूप है।

(१) किण ही अन्त न लिद्धियउ (छीहल बावनी १)
(२) पति किन हू नहि पाई (रुक्मि० मंगल)

---

१. वही पृष्ठ ६७

किन रूप प्राकृत केषां, संस्कृत काया (केषा) से विकसित माना जाता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि प्राचीन ब्रज में विशेष विकृत रूप किन का प्रायः सर्वदा अभाव है।[1] किन के रूप आरंभिक ब्रज में मिलते हैं किन्तु कम ही।

(५०) अप्राणि सूचक प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप—कहा, काहि।

(१) कहो काहि कहु (छिताई वार्ता, ११३)
(२) कहा बहुत करि कीजै आन (गीता भाषा, २६)

(५१) अनिश्चय वाचक सर्वनाम :—

(१) तिस कउ अन्त कोउ नहि लहई (प्रद्यु० चरित २)
(२) इहि ससार न कोऊ रह्यो (गीता भाषा २५)

'कोऊ' ही ब्रज का मुख्य रूप है। कोई का प्रयोग आरंभिक ब्रज में नहीं दिखाई देता परवर्ती ब्रज में (मध्यकालीन) भी इसका प्रयोग अधिक नहीं था।[2]

विकृत रूपान्तर—काहू, किस :—

(१) मानत कह्यो न काहु को (स्वर्गा० रो० ६)
(२) काहू करमा कपर काऊं (गीता भा० २३)

किस्यो' रूप भी मिलता है। यह रूप डॉ० वर्मा के अनुसार खड़ी बोली [illegible] 'किस' का रूपान्तर है।[3] किन्तु इसे अपभ्रंश कस्स' > किस से सम्बन्धित भी कहा जा सकता है।[4]

१—किस्यो देख्यो (रामो लघु० वार्ता ४५)
इस रूप का प्रयोग आरम्भिक ब्रज में अत्यल्प दिखाई पड़ता है।

(५२) अचेतन निश्चय वाचक सर्वनाम के रूप—
१—कछू न सूझे हिये मझार (गीता भाषा ५८)

(५३) निज वाचक तथा आदरार्थक सर्वनाम—आपुने, आपनो, अपनी आदि रूप

१. दे कछु चिन्हु आपनो नाह (छिताई वार्ता ३१३)
२. कै मो आपुन साथ मगाउ (छिताई वार्ता ३११)
३. इतनी मौज दई आपनी (छिताई वार्ता ३१४)
४. अपनो कटक रोंदवे लागे (मधु वार्ता ५६५)
५. नर अति 'आप' मदानप करै (मधु० वार्ता २६७)

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—(ब्रजभाषा पृष्ठ १८७)
२. वही, [illegible] १६१
३. वही, पृष्ठ १६२.
४. सूर पूर्व ब्रज भाषा, पृ० २१७—डॉ० शिवप्रसादसिंह

ये सभी रूप संस्कृत आत्म > अप्पण > अप्प से निर्मित हुए हैं अपभ्रंश में इसी का अप्पण (हेम० ४।४२२) रूप मिलता है जो व्रज में आपन, आदि रूपों में विकसित हुआ।

(५३) सर्वनामिक विशेषण

(आरम्भिक ब्रजभाषा)[1] में सर्वनामों से बने विशेषण के निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं—

परिमाण वाचक—१. कल्प वृक्ष की शाखा जितो (गी० भा० १६)

अपभ्रंश तेत्तिउ (हेम० ४।३९५) > तितो > तिती आदि।

२—एते दीखे सुदृढ़ बहुत (गीता० भा० २६)

इयत्तक > प्राकृत > एत्तिय > अपभ्रंश एत्तअ > एता, एते आदि।

१—गै गत दिन निरवं थारि (छिताई वार्ता १२६)

संस्कृत कयत्तकः > प्रा० केत्तिय > अप० केत्तअ > कत > केते आदि हेमचन्द्र के बताये हुए एत्तिउ, जेत्तिउ, केत्तिउ, (४।३८३) आदि रूपों से ये शब्द विकसित हुए हैं। पिशेल इन्हें संभावित संस्कृत रूप अयत्यः ययत्य, कयत्या, से विकसित मानते हैं।[2] एक स्थान पर 'एतले (छीहल बावनी, ४७) रूप भी मिलता है। एतले ठांइ। एतले अपभ्रंश एत्तलउ (हेम० ४।४३५) से विकसित रूप है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में इसका प्रयोग हुआ है, व्रज में यह नहीं पाया जाता।[3]

(५४) गुणवाचक सर्वनामिक विशेषण—

१ ऐसो आय तुम्हारो राजू (महा० भा० १२)

२. गीता ज्ञान हीन नर इसो (गीता० भा० २७)

संस्कृत एतादृश > प्रा०एदिस > एइस > अइस > ऐसा, ऐसो आदि।

१ कइसइ भान भग या होई (प्रद्यु० च० ३४)

२. ऐसा सगुन कैसे वरवीर (गीता भाषा ५१)

कीदृश > कईस > कइस > कैसा।

१. तैसे सन्त लेहु तुम जानि (गीता भाषा ३)

संस्कृत तादृश > प्रा० तादिस > तइस > तैसा।

१. कह्यो प्रश्न अर्जुन को जैसे (गी० भा० ३०)

—यादृश > याईस > जइस > जैसा।

---

१. डा० शिवप्रसाद सिंह-सूरपूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ २२८

२. डॉ० पिशेल-"ग्रैमेटिक०" पृष्ठ ५२१

३. पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ६३। (डॉ० एल० पी० तेसीतोर)

(५५) परसर्ग—डॉ० तेसीतोरी के अनुसार परसर्ग अधिकरण करण या अपादान कारक की सज्ञाएं हैं अथवा विशेषण और कृदन्त। जिस सज्ञा के साथ इनका प्रयोग होता है ये उनके बाद आते हैं और उनके लिए उस सज्ञा को सम्बन्धकारक का रूप धारण करना होता है। कभी-कभी अधिकरण और करण कारक का भी। इनमे से सिउ या सौं तथा प्रति अव्यय हैं।[1]

कर्ता कारक में 'ने' का प्रयोग अत्यल्प है—

१. राजा ने आइस दीन्हो (रासो लघु० वार्ता १४)

कीर्तिलता में केवल सर्वनाम के जेन्हे रूप में यह प्रयोग है। वैसे यह 'ने' का प्रयोग १५ वीं शती के पहले की रचनाओं में कदाचित ही दिखाई दे। नरहरिभट्ट की भाषा मे एक स्थान पर 'न्हे' आया है। एण से 'ने' के विकास में सम्भवतः "न्हे" मध्यवर्ती स्थिति है। कान्हे लिखी पाती (रुक्मिणी मंगल)

मधुकर मिस मधुकर 'नें' कहे (मधु० वार्ता ३०२)

(५६) कर्म परसर्ग :—कहुं, को, कौ, कौं, कू, कउ

(१) तिन्हि कहु बुद्धि (प्रद्यु० च० १)
(२) रासन को अवतरो (गीता० मा० ५)
(३) अवरन कू छाया (छीहल बा० १७)
(४) ससि काउ दीयो (छी० बावनी ४७) जावे कूं इच्छै नहीं कोई (मधु० वार्ता ५७)

कर्म के सभी परसर्ग परवर्ती ब्रजभाषा में प्रचलित हैं।[2] कहुं और कउं निस्सन्देह पुराने रूप हैं इन परसर्गों की व्युत्पत्ति-"संस्कृत कक्षं > कक्खं > काख > काह > कहु > कउ > को "आदि से हुई। विधु चंदन चंदा कउ वासा—(छिताई चरित, २२६)

(५७) करण परसर्ग :—सौं सम, सो, सम, तइ, तै, ते।

इस सौं (प्रद्यु० च० १७) तो सम (प्र० च० ४०८) इहि पराग तइ (प्र० च० ४१०) अहंकार ते (महा० मा० १२) 'स' वाले रूप संस्कृत समम् से विकसित हुए हैं। समम् सउ सो। केलाग के मत से तैं या तें परसर्ग संस्कृत के तः (करणीतः) से सम्बन्धित है।[3]

(५८) सम्प्रदान :—कह, कौं, लीयो, तांई, हेत, लगि, काज, कारन, निमित्त।

विप्रन कह दान (महा० मा० २६६) विप्रन कौं (स्व० रो०) येघू कहुं दियो (गीता

१. वही, पृ० ६८
२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा, पृ० ६६
३. केलाग-ग्रामर ऑव दी हिन्दी लैंग्वेज, पृष्ठ १६७

माथा २१) मेरे हेतु (गी० भा० ३१) जा लगि (छीह० वा० ६) कुअरि को काजे (पंचे० वेलि ४) कह को की व्युत्पत्ति कर्म परसर्गों की तरह ही कक्ष से हुई है। लीयो, लौं, लूं, लगि आदि रूप लग्ने से बने हैं। लग्ने > लग्ने > लगि > लग > लउ > लौ आदि। ताई की व्युत्पत्ति हार्नले तरिते > तइए > ताई से ही करते हैं।[1] हेत संस्कृत हेतु का तद्भव रूपान्तर है।

(५६) अपादान :—हुतो, तें सौं

काश्मीर हुतो नीसरइ (लख० पद० क० २) हुंती और हुतउ और हुत्तउ अपादान के प्राचीन परसर्ग हैं इनका प्रयोग अपभ्रंश में हुआ है। डॉ० तेसीतोरी इसको अम् या अस्तिवाचक क्रिया का वर्तमान कृदन्त रूप मानते हैं।[2] हेम व्याकरण में अपभ्रंश दोहों में इसका प्रयोग हुआ है। होन्तओ (४।३५५) होन्तउ (४।३७३) इसी से 'तो' आदि रूप बनते हैं। अपादान में सें और सों रूपों का भी प्रयोग होता है।

(६०) अधिकरण :—माहि, माझि, मा, मे, मझारि, महि, मैं, मज्झि, अन्तर, मइ, पै।

पुर माहि निवास (प्रद्यु० च० २), जदुकुल मे भये (स्व० रो० ४), सोलोसरा मझारि (लख० पद० क० ४) कागद महि (छिताई वार्ता १३५) सपनी चित अन्तर (छी० वा० १६) पच्छिम मंइ परसिद्ध (छी० वा० १६) राजा पै बस (रा० लघु० वा० ८) अधिकरण मे मुख्य रूप से मध्य से विकसित मज्झि, महि, मह मे वाले रूप मिलते हैं। उपरि के पर और पै का भी बहुत प्रयोग होता है। अन्त०, अन्तर जैसे कुछेक पूर्ण शब्द भी परसर्ग की तरह प्रयुक्त हुए हैं।

(६१) सम्बन्ध :—तणउ, कउ, की, को, के, की (स्त्रीलिंग) तणी, तणउ।

बावनी किम डूंगरतणी (डूंगर बावनी, छंद ५०)[3] तासू सेज रमन की मंहै (मधु० वार्ता १६४), मालती के मन (मधु० वा० १५६), काठन को कीनो (मधु० वा० १०२) सायर कंउ ठाक (छिता० चरित, १३) कउ, को, के, की परसर्ग संस्कृत कृतः > प्राकृत केरो > या केरक, अपभ्रंश के रउ से विकसित हुए हैं। डॉ० तेसीतोरी ने इसकी व्युत्पत्ति संस्कृति के अनुमानित रूप आत्मनकः से की। आत्मनकः√ अप्पणउ > तणउ।[4]

---

१. ए० आर० हार्नले तथा एज० ए० स्टार्क (हिस्ट्री ऑफ इन्डिया नकलता १९०४ ई०) (ई० हि० ग्रै० पृष्ठ ७१)-सूर पूर्व ब्रजभाषा [illegible] २६०, २० पर उद्धृत।

२. पुरानी राजस्थानी-डॉ० एल० पी० तेसीतोरी, पृष्ठ ७२

३. सूर पूर्व ब्रजभाषा पृष्ठ १५६

४. पुरानी राजस्थानी—डा. एल पी. तेसीतोरी, पृष्ठ ७२

(६२) परसर्गों के प्रयास मे कहीं-कहीं व्यत्यय भी दिखाई पड़ता है । अधिकरण का परसर्ग करण में ।

का पह सीख्यो (प्रद्यु० च० ४०६) मो पे होइहै तैसे (गीता भा० २) कभी-कभी दो कारकों के परसर्ग एक साथ प्रयुक्त हुए हैं—तिन को तें अति सुख पाइये (हनिम मं०)

(६३) विशेषण—संस्कृत या अपभ्रंश [illegible] पद्धति से विशेषणों का निर्माण थोड़ा भिन्न प्रतीत होता है । रूप निर्माण की दृष्टि से विशेष्य के लिंग, वचन का अनुसरण करते हुए कहीं बदल जाते हैं, कहीं नहीं भी बदलते । जैसे सुन्दर लड़का, सुन्दर लड़की । निम्नलिखित मे पहला पद विशेषण है, दूसरा विशेष्य—

उत्तम ठाऊं (महा० भा०) विकट दन्त (वैता० पची० १)
अनूप कथा (वैता० पची०) चकित चित्त (छि० वार्ता १२०)
सुघर जोबन (छि० वार्ता १३६)

(६४) संख्यावाचक विशेषण—संख्याएं या तो इ-कारान्त हैं या ए-ऐ कारान्त हैं । कुछ विकारी रूपों में हूं, ऊ जैसे पद जुड़ते हैं—

१. एकहि (गी० भा० ६) एक (छीहल बा० ६) < अप० एक्क-सं० एक ।
२. दै (स्व० रो० ८) दोइ (सत्त० पद० क० ५७) < अप० दो < सं० [illegible]
३ पनरह (स० प० क ४) < अप० पण्णरह < स० पंचदश ।

करोर (गीता भाषा १) । चउबारे (प्रद्यु० च० १६) चौबार, च्यार (मधु० वार्ता, ३) चारि छि० वार्ता १२३)

(६५) [1]क्रम वाचक—प्रथम (छीहल बा० १५) दूजौ (गी० भा० ११)

(६६) क्रिया पद—सहायक क्रिया अस्ति वाचक क्रिया के रूपों से निर्मित होती है । ब्रजभाषा में भू और अच्छ (अछई ललन० पद० क० ६ अहै आदि रूप) धातु से बनी सहायक क्रियाएं होती हैं । भू धातु से बनी सहायक क्रिया के विविध काल के रूप दिये जाते हैं—

सामान्य वर्तमान—होइ, हुइ, हो होय, होहि, (बहु०) होय थान (महा० भा० २६६) सबन्धी है (गी० भा० २५) होहिं, बहुवचन (वैताल पची०) देत [illegible] (रासो लघु० वार्ता ४८) गति होई (मधु० वार्ता २७) खबर होइ (छिताई च० ५५०) होहिं (छि० च० १३६) होइ, हुई, होय, < अप० होइ < सं० भवति से बने हैं । होहि बहुवचन का रूप हैं । है रूप < अहइ < अछइ < असति से विकसित माना जाता है ।

---

१. डा. तेसीतोरी—पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ ११४

विधि आज्ञार्थक रूप का कोई उदाहरण इन रचनाओं में संभवत: नहीं मिला। यह रूप होइजे, हूजें, हूजो रहा होगा। ऐसे ही अन्य क्रियाओ के आज्ञार्थक में होते हैं। इसी से मिलते जुलते रूप पुरानी राजस्थानी में उपलब्ध होते हैं।

(६७) **भूत कृदन्त**–हुअउ, भयउ, भई(स्त्रीलिंग)भो, भयेभयो, हुउ। 'भयो संचित (छिता० चरित ६०६) क्रोधवत भए (छि० च० ६११) जाइ दूवारे ठाढी भई (छि० च० ६१८) खड ह्वै भयउ (स्व० रो० ८) हुअ उद्धाहु (लख० पद० क० ५।१) भई (छिता० वार्ता १२७) ये सभी रूप भू के बने कृदन्त मे ही विकसित हुए हैं। हुअउ-अप० हुअउ स० भूतक:। स्त्रीलिंग मे हुई और बहुवचन में भई रूप महत्वपूर्ण है।

(६८) **पूर्वकालिक कृदन्त**—भइ, हुइ, हो, होय, ह्वै, होइ, उढं होई दुहचरण (छीहल बा० १०) अपभ्रंश मे 'इ' प्रत्यय मे पूर्वकालिक कृदन्त का निर्माण होता था। भइ, होइ हुइ, मे (भू<हु मे) इसी प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। "ह्वै" हुइ का ही विकास है।

(६९) **भविष्यत काल** ह्वै हैं ह्वे हैं जैसे (गो० भा० ३०) भविष्य मे 'स' और 'ह' दोनों प्रकार के रूप अपभ्रंश मे चलते थे। ब्रज मे केवल 'ह' वाले रूप ही मिलते हैं 'गा' वाले रूपो का अभाव है।

(७०) **मूल क्रिया पद**—(सामान्य वर्तमान)—आरम्भिक ब्रज भाषा मे सामान्य वर्तमान की क्रियाएं प्राचीन तिङन्त (प्राय. शोरसेनी अपभ्रंश की तरह) होती हैं। किंचित ध्वन्यात्मक परिवर्तनो का होना स्वभाविक होता है। प्रद्युम्न चरित तथा हरीचन्द पुराण की भाषा में ऐसे तिङन्त रूपो में उदवृत्त स्वर सुरक्षित दिखाई पड़ता है किन्तु बाद की रचनाओ मे ध्वनि सम्बन्धी अपभ्रंश से पर्याप्त भिन्नता प्रतीत होती है—

देहुं, आनहुं (मधुमाल० वार्ता० ६३), बिलवो (गो० भा० ४८) करों (गो० भा० ५८) लागो (स्व० रो० १) मारउं [प्रद्यु० च० ४०२]।

इस प्रकार उत्तम पुरुष एक वचन में-उ, ऊ, ओ औं तथा विभक्तियां लगती हैं। अपभ्रंश मे केवल उ-जैसे करउ रूप मिलता है। बहुवचन मे ऐं-कारान्त रूप चलें, करें आदि होते हैं। अपभ्रंश मे करइ, चलइ आदि।

(७१) *मध्यम पुरुष*—एक वचन-करइ (छी० बा० १७) एक वचन का 'अइ' मध्यक्षर ऐ मे बदल जाता है और इस प्रकार सहै, करै, आदि रूप भी मिलते हैं। बहुवचन मे ओ, औ हु विभक्तियाँ लगती हैं। देहु (स्व० पर्व) लेहु (स्वर्गा० पर्व) प्रतिपालो (स्व० पर्व) यही प्रवृत्ति परवर्ती ब्रज मे भी है।[1]

---

१. ब्रज भाषा, पृष्ठ २११

(७२) अन्य पुरुष—एक वचन की क्रिया मे अपभ्रंश का पदान्त 'अइ' कहीं सुरक्षित है, कहीं ए हो गया है और कहीं ऐ। एकवचन-मोहइ (प्र० च० १६) विनसै (महा० भा० १) होइइ (लखन० प० क० ७) देयै (द्वि० वार्ता १२६)

बहुवचन की क्रिया मे हि विभक्ति अपभ्रंश मे चलती थी, कुछ स्थानों पर हिं विभक्ति सुरक्षित है। अहि>अइ>ऐ के रूप मे भी परिवर्तन हुआ है।

हि—आहिं (गो० भा० ३८)
हूं—जाइ (द्वि० वा० १२४) देयइ (द्वि० वा० १२४)
ए मनावें (वै०प० २) एं-रासें (स्व० रो० ६)

(७३) वर्तमान कृदन्त से बना सामान्य वर्तमान काल—वर्तमान कृदन्त के अत वाले रूप किंचित परिवर्तन के साथ सामान्य वर्तमान में प्रयुक्त होते हैं इस प्रकार के प्रयोगों का प्रचलन मध्यकाल में ही हो गया था। संस्कृत अतक >अत० अन्तउ>अत, अती के रूप में इसका विकास हुआ। पठन्त>पठन्तउ>पठत पढ़ती या पढ़ति। डॉ० तेसीतोरी का विचार है कि सम्भवतः अपभ्र[redacted] मे ही दन्त्य अनुनासिक व्यंजन दुर्बल होकर अनुनासिक मात्र रह गया था जैसा कि सिद्ध हेम० ४।३८८ मे उद्धृत करतु और प्राकृत पैंगलम् १।१२२ मे उद्धृत जात से अनुमान किया जा सकता है।[1] अन्त-वाले रूप भी अवहट्ट मे सुरक्षित हैं। किन्तु अन्त-अत की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है—

इमारत (मधु० वा० पृष्ठ० २२४), गहिरवन्तु (द्वि० वार्ता पृ० २५७) समरति द्वि० वार्ता पृ० २४६) परत (रविम० १) देखति फिरति चित्त बहुँपालि द्वि० वार्ता १३२)। चित चिन्ता चिन्तउ' हरिण (छीहल वा० ३)

वर्तमान कृदन्त का प्रयोग विशेषण की तरह भी होता है वर्तमान कृदन्त असमापिका क्रिया की तरह भी प्रयुक्त होता है। सप्तमी के प्रयोग भी महत्त्व के हैं—

काल रूप अति देखत फिरई (प्रद्यु० च० ३०) पढ़त सुनत फल पावै यया (स्व० रोहण) तो सुमिरन्त कवित हुलसै (वैताल पची०) लिखित ताहि भाग गुन (गो० भा० २०)

(७४) आज्ञार्थ—वर्तमान आज्ञार्थ के रूप शुद्ध रूप मे प्राप्त नहीं होते।[2] मध्यम पुरुष में प्राचीन व्रज भाषा में एक वचन में उ, ओ, व तथा कभी-कभी 'इ' विभक्तियों के रूप मिलते हैं। बहुवचन में प्रायः 'हु' या 'उ' विभक्ति लगती है। [redacted] व्युत्पत्ति के लिये-उक्ति व्यक्ति स्टडी, पृ० १०४ मे बताया गया है। मध्यम पुरुष-एक वचन-करो

१. पुरानी राजस्थानी: पृष्ठ १२२।
२. वही, पृष्ठ ११६

(रु. मं.) लेहु देउ (स्व. रोहण ५) सुनो (गीता ३६) पायो (गी. मा. ४४) सुनि (गी मा० ५८)। बहुवचन-देहु (छी० बा० ७)

आदरार्थक—अन्य पुरुष में इज्जइ>ईजे, ईये दो रूप मिलते हैं—

(१) इतनो नपट काहे को कीजै (महा० भाषा ११)
(२) गौरी पुत्र मनाईये (रुक्मि० मंगल)

(७५) क्रियार्थक संज्ञा :—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि साधारण तथा पूर्व में धातुओं से 'नो' लगाकर भी क्रियार्थक संज्ञा के रूप बनते हैं।[1] क्रियार्थक संज्ञा के दो रूपों में एक 'व' वाला और एक 'न' वाला है :—

न—करन (प्रद्यु० च० ३१) पोषन (महा० मा० २६४)
नि—चितवनि, चलनि, मुरनि, मुसकयानि (छि० वार्ता १३५)
व—चलिबे को (रासो लघु वार्ता ८)

(७६) भूत कृदन्त :—इनका निश्चयार्थ में प्रयोग होता है। ये रूप कर्ता, लिंग [illegible] परिवर्तित भी होते हैं। भूतकाल के उत्तम पुरुष के रूप-हुउ, सहिउ (छीहल बावनी १५) अवितरिउ (प्रद्यु० चरित ७०५)

मध्यम पुरुष के रूप :—

फूलियो सूक अब पत्त तजि (छीहल बावनी १२)। अन्य पुरुष के रूप ऊकारान्त ओ और औ-कारान्त होते हैं-ऊपर भयो (प्रद्यु० च० ११) पाडव भये-(स्व० रो० ३) कथा कही (बेताल पची०) इन कीनी कुमति (गी० मा० ४५)। दीयउ जाय (लख० प० क० ६) ईकारान्त स्त्रीलिंग के रूप अपभ्रंश से ही प्रारम्भ हो गए थे। 'दिण्णी' रूप मिलता है। ब्रजभाषा में 'देना' के दई और दीन्ही तथा करना के करी और कीन्ही प्रयुक्त होते हैं।

(७७) पूर्वकालिक कृदन्त—अपभ्रंश में पूर्वकालिक कृदन्त बनाने के लिए आठ प्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग होता था।[2] इनमें 'इ' प्रत्ययों की प्रधानता रही बाकी अवहट्ठ में भाषाकाल में लुप्त होने लगे थे।[3] ब्रज में 'इ' की प्रधानता है। कुछ स्थानों पर 'इ' दीर्घ हो गया है। दीर्घ स्वरान्त पदों में कभी-कभी इ-य में बदल जाता है, कहीं-कहीं इ>ए होता है—

(१) इ—तजि (छी० बावनी १२)
(२) ई—सरी विलखाइ (हरी० पु०)

---

१. ब्रजभाषा पृष्ठ २२०
२. हेमचन्द्र व्याकरण (४।४३९), (४।४४०)
३. कीर्तिलता (पृ० ७२)

प्राचीन है। राजस्थानी प्रभाव संभवत: निम्नलिखित 'स' प्रकार के रूप में है-रम नेस्यों आइ बहोड़ि (पचे० वेलि, ३०)

(७६) संयुक्त काल—'वर्तमान' मे अपूर्ण निश्चयार्थ व्यक्त करने के लिए वर्तमान कृदन्त और सहायक क्रिया के वर्तमान कालिक तिङन्त रूपों के योग से संयुक्त काल निर्माण होता है। हौं चलत हो, तू करत है आदि। प्रद्युम्न चरित, हरिचन्द पुराण में (१५ वीं शती की पूर्वार्द्ध की रचनाओं) ऐसे रूप नहीं मिलते।

(१) अस्तुति कहत हौं-(रुक्मि० मगल)

इस प्रकार के प्रयोग आरंभिक ब्रजभाषा में बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं—

(१) सुर नर मुनि जस ध्यान धरत रहे गति किनहू नहीं पाई—(रुक्मिणी मगल)

(२) सदा रहे भय भीति (पचे० वे० ४६)

निरन्तरता सूचित करने वाले पदों में प्रायः 'रह' धातु सहायक क्रिया की तरह प्रयुक्त होती है। इस तरह के कुछ उदाहरण 'पुरानी राजस्थानी' में भी प्राप्त होते हैं।[1] निरन्तर रुदन करती रहइ। 'कैलाश' ने कहा है कि निरन्तरता सूचक संयुक्त क्रिया मे अपूर्ण कृदन्त और 'रह' सहायक क्रिया का प्रयोग होता है।[2]

(७७) भूत कृदन्त निर्मित संयुक्त काल :—

पूर्ण भूत—भूत कृदन्त + वर्तमान सहायक क्रिया

(१) रहयो रहे हैरानि (पचे० वेलि ५१) सदा रहे

(२) यह आयो है (रासो लघु० वार्ता २४) आया है,

पूर्वकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रिया के वर्तमान और भूत दोनों कालों के रूपों के संयोग से भी संयुक्त कालिक क्रिया का निर्माण होता है।

(१) चित्र तन रहइ भुलाइ (छि० वार्ता १२४)।

(२) जल जल पूरि रहे अति (छीहल वा० १३)

(७८) संयुक्त क्रिया—पूर्व कालिक कृदन्त के बने क्रिया रूपों का प्रयोग। इस वर्ग की दोनों क्रियाएं मूल क्रियाएं ही होती हैं—

(१) गरि गए हेवारे (स्व० रो० ३)।

(२) ठाड़े भयउ (प्रद्यु० च० २८)

---

१. पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ १२२ (डॉ० तेसीतोरी)

२ 'कैलाश'—हिन्दी सेवर पृष्ठ ४४२, ७४४ डॉ०

डा० तेसीतोरी पूर्वकालिक कृदन्त को अपभ्रंश "ई"—संस्कृत—'य' से उत्पन्न नहीं मानते। ये इसे भूत कृदन्त के 'भावे सप्तमी' का रूप कहते हैं। उन्होंने 'सकना' क्रिया के साथ पूर्वकालिक कृदन्त का प्रयोग पुरानी राजस्थानी में लक्षित किया था।[1] ऐसे प्रयोग आरंभिक ब्रज में मिलते हैं—

(१) उपनो कोप न सक्यो सहारि (प्रद्यु० च० ३२)
वर्तमान कृदन्त+भूतकालिक क्रिया

(१) मोहि जूझत गयऊ (स्व० रो० ८)

(७६) क्रिया विशेषण—डा० तेसीतोरी के अनुसार 'करण मूलक' रीति बोधक, अधिकरण मूलक-काल, स्थान बोधक, विशेषण मूल परिमाण बोधक, अव्यय मूलक-अनिश्चित कार्यबोधक, क्रिया विशेषणों के चार वर्ग हैं।[2] नीचे, अर्थबोध की दृष्टि से विभागों में बताये जाते हैं—

(१) काल वाचक—जब-जब (द्वि० वार्ता १२८) आजु (गी० भा० ५५) अतर (छी० बावनी १)

(२) स्थान वाचक—तह (प्रद्यु० च० २६), पास (महा० भा० ४)

(३) रीति वाचक—ऐसे (म० भा० १२) ज्यू (द्वि० वार्ता १२७) जनु (द्वि० वार्ता १४२)

(४) निषेध वाचक—नहिं (प्रद्यु० च० २) म (प्रद्यु० च० ७०२) ना (गी० भा० २६)

(५) विभाजक—कइ तू परणी कइ कुमारि (लख० पद० क० ९) के (गी० भा० ५)

(६) समुच्चय बोधक—अर (लख० प० क० ६४-अपर) अरु (प्रद्यु० च० १३६)

(७) केवलार्थ—एकै (गी० भा० १७) किण हो (छीहल बा० १)

(८) विविध—'बर' (गी० भा=बरन)

(९) परिमाण वाचक—इतनी (गी० भा० ४६)

(१०) निमित्त वाचक—तउ (ल० प० क० ११)

(११) उद्देश्य वाचक—तह (पचे० वेलि ४) जो (गी० भा० १६)

(१२) घृणा सूचक—धिक-धिक (छीहल बा० १३)

(१३) करुणा द्योतक - हा-हा देव (छीहल बा० ३) हाकिय (हरी० पु०)

(८०) रचनात्मक प्रत्यय - निम्नलिखित रचनात्मक प्रत्यय प्राचीन ब्रजभाषा में मध्यकालीन आर्यभाषा स्तर से विकसित होते हुए आये अथवा जो इस भाषा में नवीन रूप से निर्मित हुए। पिछले प्रकार के वस्तुतः कुछ टूटे - फूटे शब्दों से बनाये गये—

---

१. पुरानी राजस्थानी, [redacted] १३१-१३२।
२. वही, [redacted] ११

अन—क्रियार्थक संज्ञाओ के निर्माण मे (करण, गमन) मे प्रयुक्त होता है–लावण (लखन॰ पद॰ क॰ ३)

अनिहार—'राखणिहारा' (छीहल बा॰ ४) इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति मध्यकालीन अनिय < अनिक+हार < प्रा॰ धार से हुई है।[1]

आर—अधिआर (ह॰ पु॰ < अधकार) जुझार (गी॰ भा॰ ३९ < युद्धकार)

कार—भुणकार (ल॰ पद क॰ ५५)

ई—नयनी (ल॰ प॰ क॰ १२ < नयनिका) गुनी (गी॰ भा॰ २ < गुणिक) इक या इका > ई।

पाल, वार—भुवाल (बैताल प॰ < भूपाल) रखवार (गी॰ भा॰ ३६ < रक्षपाल) पाल > वार

वाल - अगरवाल (प्रद्यु॰ प॰ ७०२)

वाल या वाला परवर्ती प्रत्यय है जिसका विकास संस्कृत – पाल से ही माना जाता है किन्तु यह प्रत्यय जाति बोधक शब्दो मे लगने के कारण प्राचीन अर्थ से किंचित् भिन्न हो गया है।

लो—पाछली (रासो लघु॰ वार्ता॰ १४)

वान—अगवाण (लख॰ पद॰ क॰ ५६)

वो-ओ—बधावउ=(बधाव), लख॰ पद॰ क॰ ६२)

एरो—चितेरो (छि॰ वार्ता १२७)

नी—गुविनी < गर्विणी) छि॰ वार्ता १३८)

अप्पण—भित्तप्पण (छी॰ बा॰ १२) विषवापणउ छी॰ बा॰ ४७)

यह अपभ्रंश का पुराना प्रत्यय है। इसी से परवर्ती ब्रजका पन प्रत्यय बनता है।

बे - क्रियार्थक संज्ञा बनाने मे इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। मरिबै (रासो लघु॰ वार्ता १७)

–यर > कर–गुनियर (गीता भाषा २१ गुणकर) डा॰ भायाणी ने सन्देश रासक मे इस 'यर' प्रत्यय के विवरण के प्रसंग में यह लिखा है कि इसी से व्रज भाषा का 'एरो' प्रत्यय जो 'चितेरो' मे दिखाई पडता है विकसित हुआ।[2]

उपर्युक्त भाषा शास्त्रीय विवेचन से विष्णुदास, बैजनाथ, नारायणदास, देवचन्द्र मानिक, दामो, साधन, तानसेन, छीहल, चतुर्भुजदास निगम [redacted] ग्रन्थो की भाषा और

१. उक्ति व्यक्ति स्टडी, पृष्ठ ४६
२. सन्देश रासक, पृष्ठ ६३

हरिचन्द पुराण, प्रद्युम्न चरित एवं पंचेन्द्रिय वेलि की भाषा में व्याकरणिक दृष्टि से समानता प्रतीत होती है।

मध्यदेशीय भाषा में मिश्रित भाषा (हिन्दी) का स्वरूप ही स्पष्ट होता है। विष्णुदास कृत "महाभारत" में संस्कृत शब्दावली, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशज शब्द दृष्टव्य हैं :—

सिद्धि श्री गणाधिपतये नमः॥ श्री सरस्वत्येनमः॥ अथ श्री महाभारथ कथा आदि पर्व लिख्यते॥ ॐ नमः परमात्मने श्री पुराण पुरुषोत्तमाय॥

अश्लोकु

हतो भीष्म हतो द्रोन् कर्णस्य दूसासनः
आसा बलवती राजन् सल्यो जयति पाडवा

क्रिपाचार्जु अरु सल्य सुसर्मा अस्वस्थामा अरु कृतिवर्मा
पांचो चले जूझ के ठाना, अर्जुन को रथु ह्रायौ बाना
(विष्णुदास–महाभारत १६३६–१६४१)

गुर सों कपट करे जो पापू, अब तू जो यह छोडि सरापू
क्यपु अभेद तासु उर सोहै, अंग माइ ता त्रिभुवन मोहैं
जे अहिवाती करे उपासू, तिन कहु होय नर्क महु वासू
जौ लो प्रान कठ महु धरऊ, तौ लों अस्त्री संगु न करऊ
जे नर सुमिरहि रन मंह अंता, ते वैरी दल जितहि अनंता
धर्म नेम तप तीरथ न्हातू, त्रिय विनु पुरुष होइ अपघातू
धनष्यो अर्जुन कुवनु निसंकू जानिकु रजनी उवो मयकू
भौ आनंदु सकल सबारी सुनु संतापु भयो गंधारी
+ + +
नित की किलकिल सो मिटे जो भीमु दिनाई खाय (२७)

विनही सालन विजन कीनें, विसही बरा पराठर भीनें
दूसासन दह वेनु पठायो पवन वेगि पनवारो ल्यायो
+ + +
नान्हें सों को हार्मी कुरई, थोरो थोरी रिम मन धरई (२७६)

मन में कहे भीनु ववंहा
+ + ×
हुमत भीमु बोल्यो बलगाजी

अचे कुवर कर वीरा लयौ, नाई सीमु यह भीमा गयो ॥
पट्ट फाट्यो भुनसारो भयो, कौरव फैल नगर मह गयो ॥ (३५)
ठा ठा सवनि उसारो कियो, यह विस खाये कैसे जियो (४४)

भीम दिनाई न मर्‌यो, तब किय ऐकु उपाइ।
चलो आंवरी खेलिये, भीमहि आवै दाउ ॥

जब रिसि करि हम देहें मारी, तब मिलि मारिवौ लुटारी
हसि हसि लात मुठीका दीजहु, कोऊ भानु बिहुटिया लीजहु

दूदे फीची आंवरी, परी कोस पर जाइ
पहरक मे हूहे मिली, लोबी भीम उठाई ॥३१॥

ते अघफर पकरी आंवरी, तो देऊ दाउ लेई भौपरी
भीमु हसुस्यो भरि अकवारी, कौरव सबै गिराऐ झारी
मारि मुकिक जिऊ काठो तेरो, अब भयो दाउ आय से मेरो (७८)

इति श्री महाभारते विस्नदास कवि कृते अठा......
समापत ॥ सुभमस्तु । सवतु १८२४ वर्षो माह सु .....

× + +

खुरासान ते भजे ततारी, बड्डे मूछ पूछ तिन भारी
छत्री काहु लेई हथियारु, ता कहु मारत मारत सिगारु

+ + ×

पुनि लोचई आदि रस खावे, फैनी देखि सराहे राजे
पूहा गोल दहोरी सेवा, बहुत भाति करि जानो देवा
पुनि बेडई आदि रस भाजे, ता गुन स्वादु सराहे पाडे

× × ×

विष्णुदास की भाषा में संस्कृत, तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्द हैं धरती संस्कृत तत्सम शब्दों की हैं। शैली मे अवधी का प्रभाव तथा ब्रज एवं बुन्देली के प्रयोग हैं। हिन्दी की उपभाषा–ब्रजभाषा–व्याकरण के अनुसार विष्णुदास की भाषा बुन्देली–ब्रजभाषा ही है जिसमें ब्रजभाषा के विकास के पूर्व तत्त्व देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत भाषा मे "यवन भाषा" के भी शब्द आए हैं किन्तु नगण्य ही हैं फिर भी उनका मिश्रण तो स्वीकार करना ही होगा। प्राकृत-अपभ्रंश अवहट्ट की प्रवृत्तियों के भी निश्चय अवशेष हैं।[1]

---

1. सूरपूर्व ब्रजभाषा, पृष्ठ १२२ (प्रथम संस्करण १९५८)

उपर्युक्त अंश में बुन्देली शब्द [1] 'बरदिया' लोथई, विसादर, माडे, दहौरी, अघफर, आवरी हलूस्यो, अकवारो, पहरक, फोची, दिनाई, गलगाजो, मुनमारो, उसारो, चिहुटिया, वरा, पखाउर (पछियाउर–बुन्देली) पनवारो, बिडारो, नैउत, वोडि, काढो, ढूडे, तथा फारसी के शब्द–खुरासान, हथियार, विष्णुदास की भाषा मे आए हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त, 'छिताई वार्ता' की भाषा और शैली को अपने वर्तमान रूप मे भी भक्ति युग की किसी भी ज्ञात रचना की भाषा और शैली से प्राचीनतर प्रतीत होना निर्धारित करते हैं। उनका कथन है कि–''इस दृष्टि मे वस्तुतः यह हिन्दी के आदि युग और भक्तियुग के बीच की एक कडी प्रतीत होती है''।[2]

छिताई चरित में अवहट्ट के अवशेष रूप, अरबी-फारसी के शब्द :—

मसीति, उम्मरा, हलक, जहमति, जामदार, साहिबु, परवानो, खेरीति, केफीति, अलूखान, कबोम, हलक, ताजी, मौजें, तथाबेशज बुन्देली–संपरि, जूठो, सद, सेम कुसर, मोहिझा, खोल, आपन, ताके जो प्रयोग भी हुए हैं।

छिताई चरित में अरबी शब्द[3] :—

मरदी, असली, आलम, उजीरा, अम्बारी, कबा, खुतवा (कुतवा) खैरात, खवास, गैर, गरीबी, जनाब, जबाब, जासूस, तमासा, तेग, तौग, दीन, फौज, फतहु, बागा, बुरज, मगरबी, वाजिद, सन्दूक, शहीद, हजूरी, हरम हवाई, हुकुम आदि।

फारसी[4] .—सवार (असवार), कमान, कूजा, खरबूजा, गर्द, गरदन, गिलूल (गलोल) गुदर, गुनाह, गुमान, गुर्ज, गुलाल, चाबुक, जहान, तबल, ताजन, तीर, तुरक, दमामा, दरवेश, दरबार, दस्त, दोजख, निशान, नेजा, नौगिरही, प्याजी, प्यादा, पैजार, पातसाह, पुस्तीनामा, फरमान, फरियाद, फरमाइये, बजार, बदरा, बादी, भिस्त (बिहिस्त) मजल, मरद, मसक, मसीत, मुसवर, मुनाफ, मोची, रसाला (इरसाल) लसकर, साह सुल्तान, हजार आदि।

तुर्की[5] :—कूच, तोप।

छिताई चरित के इन उदाहरणो को देखने से स्पष्ट है कि ईस्वी पन्द्रहवी शताब्दी तक हिन्दी में अरबी–फारसी शब्दो का पर्याप्त प्रयोग होने लगा था। यह अवश्य है

१. विष्णुदास–महाभारत भाषा की हस्तलिखित प्रति विद्यामंदिर मुरार (ग्वालियर) एवं दतिया राजकीय पुस्तकालय की प्रति से उद्धृत (भाषा एवं शब्दावली)
२. छिताई वार्ता, भूमिका डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ २६, २७
३. छिताई चरित, प्रस्तावना, पृष्ठ ८०
४. वही पृष्ठ ८१।
५. छिताई चरित प्रस्तावना, पृष्ठ ८१

कि उनका पूर्णतः हिन्दीकरण करने का प्रयास किया गया। तुर्की के नामों को भी तत्सम रूप मे नही किया गया। कहीं-कही—"वे काबा" (छिताई चरित पंक्ति ६१५) जैसे मिश्र प्रयोग भी मिलते हैं। "ग्वालियरी" के व्याकरण के अनुसार इसे 'जावनी' प्रभाव माना जा सकता है।

'छिताई चरित' में देशज शब्द[1] :—खुमरी, मटामरि थारी, जल कूकरी, परेवा जैसे पक्षी, गोइडा (मेंडडा), खलाइ, भोहरे, चोर मिहचनी, कट दप्पर, हिल्ल, भरता-भरती, ठा-ठा (स्थान-स्थान), मीडिया (मेडिया) गोमट (गूमटी) सुहागरात के प्रसग मे आया हुआ शब्द 'छ्हारिउ' दीपक जलाने के सन्दर्भ में इस प्रकार आया है :—

अधिक सुवासु तेल ले लीयो। तिहा छ्हारिउ जारिउ दीयो।

बहुत अधिक सुगन्धित तेल लेकर वहा झंझरी का दिया जलाया। दीपक को झंझरी से ढक देने के लिये 'छ्हारिउ' प्रयुक्त हुआ है। 'चोर मिहचनी' शब्द वस्तु के प्रसग मे आया है जिसका भूलभुलैयो के अर्थ मे प्रयोग होता है। आखमिचौनी भूल-भुलैयो मे अधिक कौतूहलवर्द्धक रूप मे खेली जा सकती है। भाषा प्रसग मे छिताई चरित के निम्नलिखित देशज एव तद्भव शब्द विचारयोग्य हैं :—

अकुलाई, अटा, अटारी, अघफर, अपमात, अरहु, अहेरे, आपीओ, आफू, ईसर, उजार, उसकति, उतरि, उनहार, उपर, उमाहे, उरवाई, उलइती, उसास, ऊपरवानी, एवौ एडाही, ओड, ओघाओघी, ओलेरी, अकवार ? आघए, कउपहि, कठछप्पर, कठा-इल, कडारी, कमठाने, कते, करषि, कलिचा, कहियउ, कहराई, कापई, खखरि, खधारा, खड्काइ, खलाइ, खेटी, घुमरी, गोध, ममाम, गुडरी, गोंइडा, गोमट, घोघर, चितेरो, चेंटी, चौबारे, चौमाले, छ्हारिउ, झकोग, झरोखा, ठड्कई, ठाटरि, डहकी, ढका, तरइया, दउत, दोरहा, नाखत, निकुताई, पइठ, पुरइन, बटवास, विरमना, भिनसारो, महडिया, मटामरियरी, मिहचती, लेजु, लोष, सउलसो, सवाधी, सरचहु, सिराइ, सियरो, हथौटी, हली, हल्ले, हाडिउ, हिलकी आदि।[2]

इन शब्दो के वर्तमान प्रयोग क्षेत्र तथा उच्चारणो पर विचार करने से यह वर्तमान बुन्देलखण्डी की पूर्ववर्ती रचना ज्ञात होती है। चदवरदायी से लेकर कुतवन और भिखारीदास तक जिस षट्भाषा का उल्लेख मिलता है उसकी अवस्थिति छिताई चरित मे प्राप्त होती है। संस्कृत शब्दो के तत्सम, अर्द्ध तत्सम एव तद्भव रूपो का प्रयोग विष्णुदास की महाभारत कथा आदि में बहुत पूर्व आरम हो गया था। स्पष्ट है कि छिताई चरित की प्रधान शब्दावली उन शब्दो की ही है।

१. वही

२. छिताई चरित प्रस्तावना, पृष्ठ ८२

छिताई चरित के खड़ी बोली के प्रयोगों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इस रचना मे निम्नलिखित प्रकार के प्रयोग यत्र तत्र मिल जाते हैं :—

कहु वे दिवागिरी तनी कइफोतो (पंक्ति ४८३)
कहु वे कइमइ मयो वियाहू (पंक्ति ४८४)
को कौन हुआ को कोन गया मीरा के परमाद (पंक्ति ७४६)
मइ क्या कोया देवगिरि आई (पंक्ति ८९१)
खूब-खूब खुदि आलम कहिउ (पंक्ति ६२६)

इस प्रकार की भाषा का प्रयोग तुर्कों के सेनापति और सैनिको द्वारा दिल्ली मेरठ की बोली को आधार बनाकर प्रारम्भ हुआ था और उसके लिखित रूप अमीर खुसरो के समय से मिलते हैं।[1] हिन्दी मे तुर्क पात्रो मे इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कराने की प्रथा छिताई चरित के पश्चात् बहुत लोकप्रिय हुई। पूर्ववर्ती हिन्दी, गुजराती एव बंगला काव्यों मे भी इसका प्रयोग हुआ है। वैसे खड़ी बोली का प्रारम्भ डॉ॰ कैलाश चन्द भाटिया[2] १०—११वी शताब्दी से मानते हैं तथा डॉ॰ प्रेम प्रकाश गौतम[3] ने भी प्राचीन खड़ी बोली गद्य मे भाषा का सक्षिप्त स्वरूप प्रकट किया है। उनका कथन है कि नाथ सिद्धो की अनेक गद्यमय और गद्य-पद्यमय रचनाओं में ब्रजभाषा, राजस्थानी और पजाबी के साथ खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बुद्ध चरित की भूमिका[4] मे कुछ उद्धरण दिये हैं जिनमें खड़ी बोली का पूर्व रूप भासित होता है।

डॉ॰ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या "हिन्दी का उत्तराधिकार"[5] मे पछाह या पश्चिमी हिन्दी को दो वर्गों में बाटते हैं जिसके अन्तर्गत 'आ बोलियां ओ या औ बोलियां:—

आ बोलियां—खड़ी बोली या दिल्ली की उर्दू, जो हिन्दी का प्रचलित और स्वीकृत रूप है और स्वीकृत रूप है वह बोली जो वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी या जनपद हिंदी कहलाती है जो मेरठ और रुहेलखण्ड विभाग मे प्रचलित है तथा जाट या बागरु या हरियानी बोली और पूर्वी पंजाब मे बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी के रूप।

---

१. आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ २१०—२११ डॉ॰ एस॰ के॰ चटर्जी तथा ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ॰ भाटिया, पृष्ठ ६२, ६३
२. डॉ॰ भाटिया—"ब्रज और खड़ी॰" पृष्ठ १०१ फुटनोट (२)
३. डॉ॰ प्रेमप्रकाश गौतम—प्राचीन खड़ी बोली गद्य में भाषा का स्वरूप—राजर्षि अभिनदन ग्रन्थ, पृ॰ ४६७-४७६
४. रामचन्द्र शुक्ल—बुद्धिचरित की भूमिका, पृष्ठ ५—६।
५. भारतीय साहित्य, जनवरी १६५६, पृष्ठ १६

ओ या औ बोलियां—कन्नौजी, ब्रजभाषा और बुन्देली । पहिले की बोलिया पुलिंग के समान रूप से उधार लिये हुए शब्दों को 'आ' की प्रवृत्ति में रखने के कारण पंजाबी से समानता रखती है और "औ या ओ" को बनाये रखने के कारण राजस्थानी बोलियों से मेल खाती है ।

हिन्दी वस्तुतः बहुत प्राचीन काल से आरम्भ होकर आज तक चली आने वाली एक लम्बी शृंखला के अन्त में आती है । विभिन्न युगों से चली आती हुई यह शृंखला मध्यदेश की भाषा के उत्तरोत्तर विकास में सदैव प्रतिष्ठा की अधिकारिणी रही है" ।[१]

भाषाशास्त्रीय विवेचन से मधुमालती वार्ता की भाषा में प्रवृत्तियां सूरपूर्व ब्रज भाषा की स्पष्ट होती हैं । साथ ही इसमें "पट् भाषा" का मिश्रण भी है । डॉ॰ चटर्जी साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त हिन्दी भाषा को नागरी हिन्दी' कहना अधिक उचित समझते हैं ।[२] १२वीं १३वीं शती की तुर्की विजय के पश्चात पूर्वी पंजाब से बंगाल तक के उत्तर भारत में बोली जानेवाली सब बोली तथा भाषाओं का प्राचीनतम तथा सरलतम नाम हिन्दी ही है । डॉ॰ चटर्जी ने नागरी हिन्दी और उर्दू शैली को सम्मिलित करते हुए 'हिन्दुस्तानी भाषा' का नाम दिया है ।[३] डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है कि खड़ी बोली हिन्दी भाषा का प्रयोग तीन अर्थों—(व्यापक, साहित्यिक तथा हिन्दी भाषा) में होता है जिसमें 'साहित्यिक' का प्रयोग उत्तर भारत के मध्यदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा इसी भूमि भाग की बोलियों और उससे सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में-साधारणतया होता है ।[४]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी ईस्वी की ग्वालियर क्षेत्र के गेय हिन्दी साहित्य की भाषा ने ब्रज भाषा के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया था एवं 'ग्वालियरी-ब्रज' सूर पूर्व ब्रज भाषा की खोई हुई कड़ी है ।[५] ग्वालियर की भाषा मध्यदेशीय भाषा हिन्दी की परम्परा में थी जिसमें तुलसी युग प्रतिनिधि काव्य' का सृजन कर सके ।

* * *

१. ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ॰ कैलाशचन्द्र भाटिया, पृष्ठ १२०
२. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—आर्य भाषा और हिन्दी, १९५७ ई॰ पृष्ठ १५७-१६५
३. वही, पृष्ठ १६०
४. डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९ ई॰, पृष्ठ ६०
५. स्व॰ डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल—दो शब्द मध्यदेशीय भाषा, पृ ६

खण्ड ३

अध्याय १२

छंद

काव्य रूपों के मूल मे प्रायः छंद हुआ करता है। यदि काव्य, भाषा की इकाई है तो छन्द, वाक्य की भंगिमा है। इसी कारण जब भाषा मे परिवर्तन होता है तो उसके छन्दों मे भी परिवर्तन हो जाता है। जब प्राचीन भारतीय आर्यभाषा वैदिक संस्कृत की अवस्था के बाद लौकिक संस्कृत हुई तो बहुत से वैदिक छंद बदल गये और अनुष्टुप लौकिक संस्कृत के प्रथम छंद होने का गौरव पा सका। इसके बाद तो संस्कृत मे अनेक छंद आये। पालि संस्कृत से भिन्न थी इसलिए पालि के छंद भी प्रायः संस्कृत के ही रहे किन्तु प्राकृत संस्कृत से काफी भिन्न थी अतएव उसकी छंदव्यवस्था भी बदल गई और जिस भांति अनुष्टुप लौकिक संस्कृत का प्रथम छंद बना उसी प्रकार 'गाथा' प्राकृत भाषा का प्रथम छंद बना। दोनों ही 'अनुष्टुप' एवं 'गाथा' का अग्रदूतत्व अपने अपने क्षेत्र मे रहा। अपभ्रंश के साथ आर्यभाषा के व्याकरण मे कुछ मौलिक परिवर्तन हुए। आर्यभाषा मे छंदोबन्ध मे भी इसके साथ मौलिक परिवर्तन हुआ। इससे पूर्व प्रायः वर्णिक छन्द होते थे जिनमे विभिन्न गुणों के अनुसार शब्दों का क्रम होता था। अपभ्रंश ने पहिली बार मात्रिक छंदों का सूत्रपात किया। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश से पूर्व छंद तुकान्त नहीं होते थे। अपभ्रंश ने छंद के क्षेत्र में तुकान्त प्रथा चलाई। तब से आज तक हिन्दी मे मात्रिक छंदों की ही प्रधानता है। अपभ्रंश के बाद हिन्दी के साथ आर्यभाषा मे कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ इसलिये आरंभिक हिन्दी के छन्द भी प्रायः अपभ्रंश के ही रहे। जिस सीमा तक परिवर्तन भाषा मे हुआ, उस सीमा तक हिन्दी मे नए छंद भी आये। यदि इस सामान्य सिद्धान्त को हिन्दी की विविध बोलियों के छंद भेद पर लागू किया जाय तो पता चलेगा कि 'बरवै' जैसे कई एक छंद ऐसे हैं जो अवधी के अपने हैं ब्रज मे वे नहीं चलते इसी तरह राजस्थानी का भी अपना छंद 'वयण सगाई' है जिसका प्रचलन ब्रज एवं अवधी किसी में नहीं है।

इसी प्रकार जब खड़ी बोली काव्य-भाषा हुई तो इसमे पुरानी अवधी और ब्रजभाषा के छन्दो से काम न चला अतएव उसमे नये छंदो की सृष्टि की।

छन्दो के परिवर्तन मे काव्य रूपो मे परिवर्तन आता है। अनुष्टुप जैसे छोटे-छोटे छंदों मे रामायण, महाभारत जैसे बड़े-बड़े धारावाहिक प्रबन्ध रचे गए, पीछे जब बड़े छंदो की रचनायें हुईं तो मुक्तक रचनाएं भी अस्तित्व मे आईं। 'रामायण' एक खण्ड के भीतर छोटे-छोटे कई अध्यायो मे विभक्त किया गया था। महाभारत में भी एक पर्व के भीतर कई अध्याय रहते थे जिनमे प्रति अध्याय मे १००–१५० छंद होते थे। कालिदास के समय मे नये प्रबन्धो के सर्ग पुराने महाकाव्यो के अध्याय से कुछ बड़े और पर्व अथवा काण्ड से कुछ छोटे हो गये। मन्दाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, शिखरिणी जैसे बड़े छन्दो मे ही अमरु शतक, शृंगार शतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक, आर्या सप्तशती, चौर पंचाशिका, मेघदूत आदि जैसे मनोहर मुक्तको की सृष्टि न होती। अनुष्टुप मूलतः कथाबन्ध का ही छंद है उसमे उत्कृष्ट मुक्तक नहीं लिखे जा सकते।

अपभ्रंश मे यही बात दिखती है कि चरित काव्य के लिये पद्धड़िया या पद्धरी छंद अपनाया गया। एकरसता न दिखे इस कारण बीच-बीच में दूसरे छंद भी प्रयोग मे लाये गये, कथा विस्तार के लिये यही अथवा छोटा छंद हुआ करता था। दोहा में स्वरगत भंगिमाएँ, चार यतियां एवं विषम चरण होने से मुक्तक के ही काम का है। आगे अपभ्रंश मे रासा, वस्तु, दुवई जैसे बड़े-बड़े छन्द आये तो अन्य गेय एवं मुक्तकों की सृष्टि हुई।

यही क्रम हिन्दी मे दिखाई पड़ता है। चौपाई प्रबन्ध काव्य के लिये और सवैया घनाक्षरी, छप्पय, कुण्डलिया आदि मुक्तक के लिये निश्चित कर लिये गए। 'दोहा' प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनो मे ही अपभ्रंश काल मे समाहृत है।

भावोद्गार के अनुसार छन्द और काव्यरूप बदलते हैं। छंद मे परिवर्तन काव्यरूप से पहिले होता है इस दृष्टि से हिन्दी छन्दो के विकास मे अपभ्रंश छन्दो के योग का अध्ययन किया जा सकता है।

हिन्दी का दोहा :—अपभ्रंश की देन है, यह निर्विवाद है। चौपाई का सम्बन्ध डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका (१९६३ ई॰ स॰ पृ॰ ४९) मे अपभ्रंश के 'अलिल्लाह छंद से बतलाया था परन्तु अपभ्रंश में 'चउपई' नामक छन्द भी प्राप्त है जिसके एक चरण मे १५ मात्राएँ होती हैं और तुकान्त मे क्रमशः गुरु लघु आते हैं, विनयचन्द सूरि का नेमिनाथ 'चउपई' समूचा काव्यग्रंथ रचा हुआ है। उसकी एक 'चउपई' का उदाहरण इस प्रकार है :—

थावणि सरवणि । कडुय मेहु, गज्जइ विरहिनि झिज्जइ देहु ।
विज्जु झवक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहि विणु सहि सहियइ केव ।

इसको जायसी ने प्रयुक्त किया तथा पिंगलाचार्य द्वारा स्वीकृत चौपाई है। आरंभ में यह छन्द चौपई ही था जिसे गाने के क्रम में चौपाई कर लिया गया। जायसी में चौपई अधिकांश में तथा तुलसी में कहीं-कहीं 'चौपई' की भी झलक मिलती है। अवधी की प्रवृत्ति सव्यंत है अतएव आरंभ में संभवतः चौपई का ही प्रचार रहा होगा।

हिन्दी का दूसरा प्रिय छंद काव्य तथा 'रोला' है इसका प्रचलन धनपाल के समय से अपभ्रंश में मिलता है :—

दूसह पिअ विओय सेतचउ मुच्चइ पत्तउ
सोयल मारएण बाणी वाइउ तणु अप्पाइउ
करयलि नाययुद्ध सओइवि पुणु पुणु जोइवि
तेण पहेण पुणु वि भवम्मिउ विरहिं मल्लिउ

जिस प्रकार हिन्दी में काव्य अथवा रोला के छंद में उल्लाला छंद जोड़कर छह चरणों का छप्पय (षटपद) बना लिया जाता है उसी प्रकार अपभ्रंश में भी होता था। परन्तु अपभ्रंश के काव्यों में रोला, उल्लाला मिलाकर 'छप्पय' बनाने की प्रवृत्ति कम दिखाई पड़ती है। 'भविसयत्त कहा' में रोला उल्लाला पृथक् पृथक् दोनों हैं। 'संदेश रासक' में इस प्रकार के निर्मित 'छप्पय' मिलते हैं :—

सपवि तम बहुलिण दसह दिसि छायउ अवरु
उन्नवियउ धुरहुरइ घोरु घणु किसणाडंवरु
णह हुमग्गि णहवल्लिय तरल तडयडि वि तडक्कइ
दद्दुर र—रडणु रउद्द सद्द कुवि सहवि ण सक्कइ
निवड निरन्तर नीरहर दुद्धर धुरधारोह-भरु
किम सहउ पहिय सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु

हिन्दी में प्रचलित प्रसिद्ध छंदों में 'घनाक्षरी' भी है यह छन्द चारण भाट की जुबान पर भी न था और 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस छन्द के दर्शन नहीं होते। सम्भवतः यह छन्द हिन्दी का निजी हो।

सवैया स्पष्ट रूप से वर्णिक गुणवृत्त है, इसलिये इसकी प्राचीनता अनिवार्य है। सभव है संस्कृत के किसी वर्णिक वृत्त के गणो को दुगना करके इसे रचा गया हो। दुर्मिल सवैया–चार सगण वाला त्रोटक छन्द है। यह संस्कृत का प्रिय छन्द नहीं बहुत बाद का विकास है। त्रोटक छद द्विगुणित करके सवैया बनाने के लिए पृथ्वीराज रासो के 'दो त्रोटक' के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—[1]

जल सैसव युद्ध समान भय गंत्रि बल बहिक्रम सैं क्षयय
बर सैसव जोवन संधि अली, सु मिलें जनु पित्तह बाल जती
जु रही लगि सैसव जुब्बनता, सु मनो ससि रंजन राजहिता
जु चलं मुरि मारुत अंकुरिता, सु मनो मुर बेस मुरी मुरिता
(शशिव्रता विवाह)

त्रोटक को दुगना करने के साथ चरणो को सुकान्त भी बनाया जा सकता है।

छद काव्यरूपों को प्रभावित करते हैं। वर्णनात्मक छद कथात्मक काव्यों का रूप निर्धारित करते हैं और गेय छद मुक्तक काव्यों का। निरन्तर चौपाई में कहानी कहने से एकरसता से श्रोता वक्ता दोनो ऊब जाएगे इसी कारण विश्राम आवश्यक है। 'आल्हा' यद्यपि धारावाहिक काव्य है किन्तु गायक ही अपने गाने के क्रम में सुखद परिवर्तन कर लेते हैं।

वक्ता श्रोता की इस सुविधा को ध्यान मे रखते हुए कथात्मक काव्यो के कवि कुछ चौपाइयो के बाद दूसरे छद प्रयोग की योजना करते आए हैं और जो छन्द सुविधापूर्वक मिल सकता था वह था दोहा। दोहा सहज सुलभ प्रचलित एव छोटा भी है। किसी बड़े छन्द प्रयोग मे धारावाहिकता मे बाधा पड़ने की आशका रहती है। अपभ्रंश मे कार्य के लिये घत्ता, दुवई, उल्लाला आदि अनेक छद विश्राम स्थल की भांति प्रयुक्त होते थे। हिंदी तक आते-आते चौपाइयो के बाद दोहा का घत्ता देने की प्रथा हो गई। यह भी निश्चित किया गया कि सात या आठ अर्द्धालियो के बाद ही दोहा रखा जाना चाहिये। लौकिक आख्यान काव्यकारो ने दोहा निश्चित अर्द्धालियो बाद नही रक्खा है।

विष्णुदास, मझन, कुतबन, चतुर्भुजदास निगम, नारायणदास रतनरंग, साधन, आलम, ईश्वरदास आदि आख्यानकारों ने व्यवस्थित नियम नही रक्खा कि कब दोहा चौपाइयों की कितनी निश्चित अर्द्धालियो के बाद रक्खा जाय साधन में 'सोरठ' का प्रयोग अधिकाश है। कही २ बीच मे श्लोक हैं। तुलसीदास ने प्रवाह मे बाधा पड़ने की आशका से निश्चित विश्राम के बाद भी 'दोहा' रख दिये हैं 'जायसी' ने भी चौपाई मे स्वतन्त्रता बरती है।

गेय काव्य के रूपों में अपभ्रंश बहुत समृद्ध था। रास, फाग, चाचर, रसायण, कुलक आदि अनेक प्रकार के गेय काव्य अपभ्रंश में दिखाई पड़ते हैं। रास काव्य मूलतः रास छन्द का समुच्चय है। अपभ्रंश मे २१ मात्रा का एक रासा या रास छद प्रच-

१. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवरसिंह (१९६१ संस्करण) पृष्ठ २७०,२७१। लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद-१.

लित था और ऐसे अनेक छन्दों को गाने की परिपाटी लोक में रही होगी यहाँ भी एकरसता दूर करने के लिए रास छंदों के बीच इतर गेय छन्दों को भी समन्वित कर लेने की सम्भावना जान पड़ती है। 'संदेश रासक' में इस प्रकार के गेय और मुक्तक 'रासक काव्यों' के रूप का पता चलता है। निश्चय ही रास काव्य रास-छन्द प्रधान काव्य रहे होंगे जैसाकि अद्दहमान का 'सदेस रासक' है।

आगे 'रास काव्य' एक निश्चित काव्यरूप हो जाने से कोई भी गेय छंद प्रयुक्त होने लगा। भाव की दृष्टि से फिर भी प्रेम प्रधान काव्य रहे। हिन्दी का 'बीसलदेव रास' में हिन्दी का अन्य गेय छंद प्रयुक्त हुआ है फिर भी वह प्रेम प्रधान है।

जब काव्य विशेष का एक रूप बन जाता है तो उसे दूसरे भावों या विचारों के लिये भी रचा जाता है। 'रास काव्य' मृदुल भावों के अतिरिक्त वीर गाथाओं के रूप में काम में लाये गये। अंग्रेजी का "सॉनेट" मूलतः प्रेमभावापन्न मुक्तक था किन्तु आगे चलकर अन्य भावों का भी वाहन बना लिया गया उसी प्रकार अपभ्रंश और हिन्दी का 'रास काव्य' भी इतने भावों, विचारों, घटनाओं के लिये अपनाया गया। अपभ्रंश में इस प्रकार के रास काव्य-बाहूबलि रास, समरराश हैं। हिन्दी में ऐसे ही रास काव्यों में प्रधान "पृथ्वीराज रासो" है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में वर्णित भेद रास रूपकों के कोमल उद्धत एवं मिश्रित, रास काव्यों के विषय में भी माने जा सकते हैं।[१] हिन्दी में हम्मीर रासो, "युद्ध प्रधान रासकाव्य" है। जिनदत्त सूरि के 'उपदेश रसायन रास' को भी युद्ध, प्रेम दोनों से पृथक् केवल धर्मोपदेश प्रधान रासकाव्य देखा जा सकता है।

लखनसेन पद्मावती रास में प्रेम एवं युद्ध यद्यपि दोनों बताये गये हैं किन्तु मूल में वह कामकथा लौकिकआख्यान काव्यधारा के अन्तर्गत ही है और पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी में 'रास' अथवा रासक नामक सामान्य गेय छन्द ने इतने रूप बदले। इसमें वस्तु और 'नाराच' छन्द भी प्रयुक्त हुआ है।

अपभ्रंश के अन्य गेय काव्यरूपों में से चाँचरि का नमूना 'जिनदत्त सूरि' की चाँचरि अथवा 'चच्चरी' में देखा जाता है। चाँचर में रास छन्द का भी व्यवहार किया गया है। चाँचरि कोई लोकगीत था। सम्भवतः उसमें विशेष लय का छंद व्यवहृत होता था। किन्तु वह साहित्य में काव्यरूप स्वीकृत हुआ। हिन्दी में 'कबीर' के नाम से कुछ गीत 'चाँचरि' के नाम से मिलते हैं।

'फाग' भी इसी प्रकार का एक लोकगीत 'वसन्त' में गाया जाता है। जैन कवियों की फाग में साम्प्रदायिक विचारधारा का समावेश है। 'जिनपद्म सूरि' की फाग 'थूलिभद्द' के चरित पर उपलब्ध है जिसमें काव्य या रोला छद प्रयुक्त हुआ है और तीन रोला छंदों के बाद 'दोहा' का घत्ता दिया गया है। हिन्दी में कबीर के नाम इसी तरह के 'वसंत' मिलते हैं।

---

१ हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन (८।४)।

लोक प्रचलित गीतों को सामान्य रूप में साहित्यिक बनाने की एवं अपने आदर्शों के प्रचार के लिये काव्य रूप अपनाने की प्रवृत्ति हो हिन्दी काव्य रूपों पर अपभ्रंश काव्य रूपों के प्रभाव का निर्णय कर सकने के लिये देखी जा सकती है। तुलसी ने रामलला नहछू 'को इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप रचना की।

हिन्दी में 'पद' नाम से कुछ ऐसे गीत मिलते हैं जिन्हें संतों और भक्तों ने गाने के लिये लिखे हैं। विष्णुदास ने पद, गोविन्द स्वामी, बासकरण, मधुकर शाह बुन्देला, तानसेन, बैजू, बख्शू, मीरा, सूरदास एवं अष्टछाप कवि, हरिराम व्यास, कबीर, तुलसी ने पदों की रचना संगीत शास्त्र के अन्तर्गत राग रागिनियों में सृष्टि की, पदों की परम्परा सिद्धों में अपभ्रंश में मिलती है। सिद्धों के 'चर्यापद' गेय पद हैं।

इस प्रकार पन्द्रहवी–सोलहवी शताब्दी में प्रयुक्त छन्दों में प्रबन्ध एवं मुक्तक गेय काव्य रूपों के अनुसार प्रयुक्त छन्द प्रधानतः दोहा, चौपाई–दोहा, सोरठ एवं विष्णुपद एवं ध्रुपद में प्रयुक्त छन्द ही हैं।

मध्यकाल में प्रयुक्त छन्द दोहा चौपाई छंद भारतीय हैं। स्वयंभू की रामायण इससे मिलते जुलते छंद में हैं। पुष्पदन्तकृत महापुराण तथा जसहर चरित्र की धत्तावाली शैली का विकास सम्भवतः दोहा चौपाई वाली शैली में हुआ है। गोरखनाथ में भी चौपाई मिलती है। कबीरदास की रमैनी में दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है। ईश्वर-दास कृत सत्यवती कथा भी दोहा, चौपाई छंद में है।

केशव के छन्द, विकास क्रम की चरम परिणति हैं। छन्दों ने ऋग्वेद में जन्म ग्रहण किया, शास्त्र पुराण और संस्कृत काव्य ग्रन्थों में परिपुष्ट होते रहे और हिन्दी के जैन साहित्य तथा पंथियों के साहित्य से लेकर कवि केशव तक अनेक प्रकार की साज-सज्जा प्राप्त करके उन्होंने अन्तिम स्वरूप केशव में प्राप्त किया।

महाकवि केशव ने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी के प्रारम्भ युग में 'छप्पय,' 'तोमर,' 'दोहा,' 'गाहा, त्रोटक एवं आर्या आदि प्राप्त होते हैं। भक्ति युग की निर्गुण शाखा के संतों ने 'दोहा' छन्द ही अधिक अपनाया। प्रेमाश्रयी–सूफी दोहा–चौपाई शैली के लिए प्रसिद्ध रहे। अष्टछाप के कवि पद रचना में व्यस्त रहे सूर, नन्ददास, परमानन्ददास आदि ने, 'सार' 'सरसी' दोहा, चोपाई और रोला आदि का भी प्रयोग किया। तुलसी ने ही इस क्षेत्र में अधिक महत्ता दिखाई किन्तु केशव ने इस क्षेत्र में उन्हें पीछे छोड़ दिया है।

भाषा कवि समुझें सबै, सिगरे छन्द सुभाइ
छन्दन की माला करो, सोभन केशवराइ (छन्दमाला, दोहर छन्द ३)

* * *

खण्ड ३

अध्याय १३

काव्यशास्त्रीय अध्ययन, अलंकार एवं प्रतीक विधान

ईस्वी पन्द्रहवी एव सोलहवी शताब्दी ईस्वी मे जो भी लौकिक आख्यान काव्य रचे गये, उसमे तत्व भारतीय रहे तथा जो सूफी सतो द्वारा लिखे गये, उनमे उनके सम्प्रदाय के अनुसार प्रणय–निवेदन के पक्ष मे रूपान्तर किया गया। मूल भाव धारा मे रस कथा अथवा कामकथा ही कही गई और प्रेम का उत्कृष्ट रूप सवारा गया। प्रेम-व्यजना मे मानवीय रागात्मकता के सूत्र की एकता को दृढ किया गया और सम्प्रदाय-भेद की दीवाल गिराने के लिए अप्रत्यक्ष रीति से प्रेम का सार्वजनीन एवं सार्व-भौमिक स्वरूप प्रतिष्ठित किया गया। मानव को मानव से (प्रेम के व्याज से) सहज, जिनकी सरल, निश्छल एव रागात्मक व्यावहार करने की प्रेरणा दी गई एवं लौकिक स्तर से प्रेम के आलबन से मानव के चरम विकास की दशा में भी गति प्रदान की गई।

प्रस्तुत आख्यान काव्यो मे लखनसेन पद्मावती रास, चतुर्भुजदास निगम की, मधुमालती, मझन की मधुमालती, आलम का माधवानल कामकन्दला, नारायन दास की छिताई चरित, कुतबन की मृगावती, ईश्वरदास की सत्यवती जायसी का पद्मावत आदि है जिनकी कथावस्तु प्रेम की धुरी पर परिक्रमा देती है और नीति सम्मत 'काम' का लक्ष्य रखते हुए मानव को जीवन मे रस लेने का मार्मिक एवं सारगर्भित सन्देश देती है।

'प्रेम' 'तत्व का निरूपण करने के उद्देश्य से जो काव्यकथाए लिखी गई उनमे वासना से परे उस उत्कृष्ट प्रेम के 'दर्शन' का ध्यान रखा गया है जिसे पाकर मनुष्य स्वयं सच्चिदानन्द रूप बन जाता है। 'प्रेम' ग्रहण करने या पाने की वस्तु उतनी नही होती जितनी कि सहज प्रेम को प्राप्त समझते हुए उसे अनुभव करने की होती है। यही बात परमात्म तत्व के विषय मे कही जा सकती है कि, परमात्मा सर्वव्यापक 'अमूर्त' होते हुए भी तीव्र अनुभूति मे मूर्त होकर सतचित् आनन्द स्वरूप का आभास कराता

है। परमात्मा सभी को घट-घट में एवं प्रकृति मे बाह्याभ्यन्तर रूप से प्राप्त है केवल उसका अनुभव करना है। वस्तु प्राप्त होने हुए भी उनकी प्राप्ति का अनुभव न होने से अनुपलब्ध समझकर प्राप्ति की खोज मे प्रयास निरर्थक है। इसी प्रकार मनुष्य को प्रेम का मूल रागात्मक तत्व सहज ही प्राप्त रहता है। केवल उसका अनुभव करते रहकर उसका नीतिसम्मत विकास करना होता है। वह 'प्रेम' उसी परमात्म तत्व का 'पर्याय होता है। वह सत् होता है, चित् होता है एवं साथ ही आनन्दमय होता है। 'प्रेमल' मनुष्य सच्चिदानन्द रूप मे माधुर्य एवं ऐश्वर्य समन्वित, अद्‌भुत शक्ति सम्पन्न, शीलवान एवं सौन्दर्य से परिपूरित होता है। उत्कृष्ट प्रेम का बीज प्रस्तुत लौकिक आख्यान काव्य क्षेत्र मे अंकुरित हुआ है।

वैसे मध्ययुग मे ईसा की पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी मे जिन कवियों ने कृष्ण के लोक कल्याणकारी स्वरूप को सामयिक प्रेरणा का विषय बनाने के उद्देश्य से हरिचरित्र एवं 'महाभारत' का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया उनमे भी भाव पक्ष प्रबल है और उन्होने मसनवी शैली को अपनाया है। श्री विष्णुदास ने महाभारत कथा मे मनोवैज्ञानिक आधार पर "भावो" की सुन्दर व्यंजना की है :—

विनसै तिरिया पुरिष उदासी, विनसै मतहिं हर्लं बिन हासी।
विनसै रोगी कुपथ जो करई, विनसै घर होतें रन धरमी।
विनसै अमि गति कीनें ब्याहू, विनसै क्षति लोभी नर नाहू।
विनसै धर्म किये पाखडू, विनसै भारि गेहू परवहू,।
विनसै राडु पढाये पाडे, विनसै खेलें ज्वारो डाडे। (मध्यदेशीय भाषा पृ० १७१)

परन्तु व कातरता एवं लोकरजनकारी स्वरूप भी रुक्मिणी मंगल में प्रतिष्ठित हुआ है—

मोहन मेहलन करत बिलास
कनक मन्दिर मे केलि करत हैं और कोउ नहिं पास
रुकिमिन चरन सिरावै पिय के पूजी मन की आस
+ + +
विष्णुदास रुकमन अपनाई जनम-जनम की दास। (मध्यदेशीय भाषा, पृ० १७२

लखनसेन पद्मावती रास मे उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है[1] :—
"सरस विलास काम रस भाव" और इसी उद्देश्य की परिपुष्टि मे कथाकार ने काम रस की निष्पत्ति की है:—

सरस सकोमल कुच कठिन, गय गति सक विसाल
हंसा चंचल कनक खम, चढी मुयणा भाल।

1. लखनसेन पद्मावतीरास अप्रकाशित है प्रतिलिपि आचार्य द्विवेदी हरिहर निवास द्वारा(ग्रन्थागार,) ग्वालियर से अध्ययन किया।

प्रस्तुत रास में चउपही वस्तु के पश्चात् कहीं श्लोक भी दिये गये हैं जो नीति-परक हैं। यथा:—

> पितु रितव्य माता व चतुर्थो मातुलस्तथा
> नचा सो नरक जांति दिष्ट्वा कन्या रजस्वलां

पद्मावती के स्वयंवर में पधारते समय कवि ने उसकी छवि का चित्रण किया है:-

> करि शृंगार पहुँतो आई, देखीय सयल सुहड मुरछाई
> पनर वरस की बाली वैस, रूप अचल अन ऊगम सेस
> वेणीय इड कि ओसडह फण्यद, जोतिय मुह करि उज्यउ चद।
> जलधर गति सारग सुलयणि, वोलिनि कुरइ अमीय रस वयणि।
> हीरा जडित ससो-मिन दत, एसो कुमरि अनु दिन मयमत।
> लक न कोमल मूठि समाय, नमइ केलि नरवइ दुहु पाय।
> क्रान्ति ममइ रवि कविलास, करि मोहणी उतरी अगास

कथाकार ने इस कथा की समृद्धि के लिये पौरुष की प्रतिष्ठा हेतु युद्धवर्णन भी सजीव किया है। इस कथा में सबल, पौरुषवान पुरुष ही स्त्री को भोग सकने में सक्षम है यह बात प्रतिपादित करने के लिये पुरुष के पौरुष को सघर्ष से गुजरना पड़ा है और सक्षम पुरुष को ही नायिका वरण कर सकी है—इसी सन्दर्भ में युद्ध का सजीव चित्रण हुआ है—

> रगत धार नदी पण वहइ, लखनसेन रिण आगमि रहइ।
> भुटइ कमल धडउ परि पडइ माही मांहि सूर ईं म भिडई।
> भड सुभड जुडइ रिण जोर, हाहा मवइ हुओ जग सोर।
> रगत प्रवाह नदी अति वहइ, अम्ब गज मद्द वद्द मम रहइ।
> सु कवि दामो वहइ वखाण, हुओ चवा हो गिद्ध मसाण।
> अहिनिस राउ कीउ सग्राम, अनेक सुभट रिण रहीया ताम।
> मारी कुंजर भरी रहीया ठाई, लखनसेन भड लीयो पटाई।
> बल पौरष भज्यो अहिवाई, गलि धरि वधलाव्यउराय।
> नइतपाल बधावो भयउ, नरवइ चित्त अनमत्त थयउ।
> लखनसेन बोलो तिणि ठाई, वीर पाल किय ओरायउ राय।
> कइ आंण्यो भुज वांह मरोड, वचन राव जब कहाउ वहोडि।
> हमराय बोलइ तिण ठाई, वीरपाल जे कहोयइ राय।

लखमसेन—पद्मावती के परिणय को तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाज द्वारा सम्पन्न कराया गया है।

चउपही—ईण बोलइ हरस्यो छइ राव
चस्यो वेगि नीसाणे घाव
फीटो कलह न लागो खोडि
परणइ सुंदर आचम जोडि
कनक दड चउरी तिणि ठाई
तसम्यतर लखणेती राय
पद्मावती रुप कुमार
चउरी बइठा हुस कुमार।
वेदि वेगिइ बइठा जाय, हरस्या चितमाई अर वाय
ईणि ठाँय यो देस्यइ दान एक बीस कुल तसु मन सनान
फेरा चयारि फिरया तिण ठाई हाथ मेला विमा वइ राय
अर्ध देस राउ बाटी दीयउ पाय पखारि उछगइ लीयो
मइ अतेऊरउ भी पास पदमावती को पूरी आस
कण ककण एकावलिहार, राणी आवै रायकुमार
+ + +
आई पीयइ बीमसे समारि, तिहो वासउ वैकुठ मझारि

लखनसेन पद्मावती का जोड़ा भी अनुकूल है—

दुई सुजाण दुई चतुर बीवेक, दुई मुख देखि मिल्या मनि ऐक

कवि ने मानवीय संवेदना का संदेश दिया है:—

पर दुखइ ते दुखीया, पर सुख हरख करत।
पर कजइ सुरा सहउ, ते विरलानर, हुत।

संयोग श्रृंगार का वर्णन कवि ने किया है—

चउपई— दोई जण दृष्टि भई एक ठाई, चद्रावती मूहइ भइ माई।
मनमथ भटक रह ईण ठाँण, करि आयमण वेग करि भाँण।
दिन आयम्यो रयण पर जली, उह्लयउ मयण अग तलमली।
मूनी वाया हस हरि लोर, धोवति पहिरो उपमि मयउ।
बइठी देवी मूलिलनी नार, पहिर चीर कचु श्रृंगार।
नयन सुनाडिया कजल रेहे, चंदन सहल करी छइ देह।
अधर तवोल कुसम सिर बध, कस्तुरी केतकी मुगध।
दवमइ चूडो एकावल हार, अमृत पयोहर बंध सहार।
+ + +
खेलइ रमइ हसइ नर बालि, जाँण वसति उल्हसउ अशालि

पद्मावती छलनायक योगी के हाथ पड़कर भी अपने पति लखनसेन के दर्शन की दृढ़ आस्था प्रकट करती है और लखनसेन के दर्शन के बिना वह मृत्यु को वरण करने तत्पर है।—

> पदमावती कहइ सुण नाथ, एक बोल मागु तो हाथि।
> लखनसेन दरसण देखालि, नहीं तर मरूं हुतासन झालि।

पदमावती योगी को हतप्रभ करती है और उपाय रचती है कि वह निरायुध होकर *पराभव को प्राप्त हो*—

> पदमावती कहइ सुणि नाथ, एह पाखड न सोहइ हाथ।
> जइ तुम्ह कह्यउ हमारो करइ, खडग फरसी मेंयल माहइ धरइ।

जिस समय चन्द्रावती तथा लखनसेन पासे खेल रहे हैं पद्मावती बार-बार अपनी मान नृप के मुह से सुनकर पहिचान जाती है और लखनसेन को विजय के हेतु संकेत करती है और लखनसेन पद्मावती को भी प्राप्त हो जाता है।

कवि मंझन ने अपनी रचना का उद्देश्य बताते हुए कहा है —

> तो हम चित उपजा अभिलाषा, कथा एक बाधउ रस भाखा (३६-२)
> \+ \+ \+
> रस अनेक संसार कर, सुनहु रसिक दै कान।
> जो सब रस मह राउ रस, ताकर करौं बखान। (४३-६-७)

रचना का मूल स्रोत पौराणिक है।

यद्यपि मध्ययुगीन प्रेमाख्यानकों का कथा शिल्प प्रायः एक ही भांति है। सबमें मूल कथा प्रारंभ से विभिन्न आरोह—अवरोहों के साथ अन्त तक चलती रहती है तथा अपने संयोग बिन्दु पर आकर रुक जाती है। इनके पात्र, कथानकों की सन्धियाँ तथा इनके वर्णन सब प्रायः एक ही प्रकार है किन्तु मधुमालती, साधन का मैनासत, छिताई चरित की कथा शिल्प अपनी विशेषता लिये हुए हैं। मंझन की मधुमालती के कथाशिल्प पर "कथा सरित्सागर' और हितोपदेश के कथाशिल्प का प्रभाव है। मूल कथा के विकास के साथ-साथ तमाम अन्तर्कथाएँ और उपकथाएं उससे फूटती रहती [redacted] और इन कथाओं की चरम परिणति मूल कथाओं मे होती रहती है।

छिताई वार्ता :—छिताई चरित अथवा छिताई वार्ता मे काव्य सौन्दर्य के सन्दर्भ मे छिताई के नख शिख वर्णन मे कवि ने कवि-समय-सिद्ध परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का ही संयोजन किया है। केशों के लिये भौरों की उपमा एवं मुख की तुलना चन्द्रमा से आदि। मोतियों की माग मदन की बाट है, वदन का प्रकाश, सरद सोम के तुल्य है भौहें कामदेव के धनुष के समान है।

वयः संधि का वर्णन भी कवि ने किया है जिसमें नायिका के उरोजों आदि के लिये शंभु और श्रीफल से तथा अन्य अंगों की उपमा परम्परागत ही दी है।

कुच कठोर जोवन बर बढ़े, जातु सर सधि जूझि नृप चढ़े
सुवन सुढार सुकचन कुंभा, श्रीफल सम सोहृक रम जंभा
—(३८४-८५)

संयोग शृंगार में 'भोग विलास' और केलि का वर्णन मिलता है। प्रथम समागम के समय कवि ने सात्विकभाव और 'किलकिञ्चित हाव' का संयोजन किया है:—

छोरति कर कंचुकी लजाई, फूँके दिस्टन दीया-बुझाई।
भो मिलापु मुखि कपह देहा, चल्यो प्रसेद ते सुरति सनेहा
अधर पान करि कुच गहि लेई, छुवन न अंग छिताई देई।
घूंघट वदन तर हुडी कीऊ, दोउ हाथ बचावत हीऊ
कठिन गाठि दृढ़ विधना दई, छोरत जबहि सुरसी लई
नाना भांति नारि उचरई, तब चित्त चउप चवगनी करई।
रहे ने दोनों संगु लपटाई, सकड सकुचन, बोरी लाइ॥
(१४१२-१८)

उपर्युक्त 'हावों' के वर्णन के उपरान्त संयोग शृंगार का वर्णन कहीं २ मर्यादित हो गया है:—

चउरासी आसन की खानि, दुलइ चतुर चतुर मनि गयान
जहां बार तिथि अरु अनग, छुवत सुभवइ छिताई अंग
आसन सब नी कमल विधवध विपरीत रति न चोज दसि सध
कोकिल वयनि कोक गुन गनी, कछु बुधि मलिन पड सुनी
दोउ चतुर सुरत रस रंग, बहुत उपजावइ अनंग।
—(भार० प्रेमा० काव्य, पृ० २१५)

विप्रलंभ:—शृंगार में यद्यपि 'सुरसी' के विछोह के उपरान्त भी विरहिणी छिताई की नाना मानसिक अवस्थाओं का वर्णन न करके कवि कहानी के सूत्र को आगे लेकर बढ़ जाता है इसका भी कारण है। कवि ने प्रस्तुत कथानक में वीरत्व की भूमि पर दाम्पत्य प्रेम का चरमोत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है इसमें एकपत्नीव्रत की झांकी है, नायक—नायिकाओं की तरह काम कथा का विस्तार नहीं, यह तो एक यदुवंशी क्षत्री रामदेव की कन्या छिताई थी जो अत्यन्त निष्ठा से वीरोचित सम्मान से पति को पाने को उत्सुक थी। इस कथानक में छिताई और सौरसी विवाह के पूर्व प्रेमी-प्रेमिका नहीं रहे थे जिनकी प्रेम की चरम परिणति ब्याह में हुई हो वरन वे पति-पत्नी थे और अलाउद्दीन द्वारा आक्रमण में छिताई हरण की कुचेष्टा के प्रति दोनों सतर्क थे। सौरसी ने (छिताई-सीता) का पता लगाया। अतएव इस कथानक में छिताई में विरहिणी प्रेमिका की मनोदशा पाना अपेक्षित नहीं, छिताई में साध्वी पत्नी का ओज, निष्ठा

एवं अडिग आस्था, क्षत्राणी का तेज देखा जा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि छिताई में गहरे प्रेम का अभाव है उसका प्रेम सात्विक, स्थिर, गंभीर उदधि के समान प्रशान्त है उसमे बरसाती नदी की भांति उमड़-घुमड नही।

एक दूसरा भी कारण है भाव-भूमि का। छिताई चरित के लेखक की भाव-भूमि मे तथा काम कथा या रस कथा के लेखक की भावभूमि मे अन्तर स्पष्ट है, जैसे मझन का अभिप्राय है प्रेम का 'दर्शन' और छिताई चरित के लेखक का अभिप्राय है दानवी शक्ति पर दैवी शक्ति की विजय। नारी का सतीत्व, उसकी अपराजेय गरिमा। पुरुष का एकपत्नीव्रत, 'काम' का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप इस भावभूमि के साथ छिताई चरित के प्रबन्धकार की अपनी सीमाएं हैं।

छिताई चरित तो उन रचनाओं में से है जिनमें स्वकीया का पति प्रेम, समाज-सम्मत है और एक पत्नीव्रत का आदर्श लिये उपपत्नियों के अगणित धूमिल नक्षत्रों के आकाश में केवल समरसिंह हिन्दी साहित्य में संभवतः पहिली बार ध्रुव की भांति प्रकाशमान है।

प्रस्तुत आख्यान काव्य मे दुर्दान्त और निर्दयी शत्रु का सामना देवगिरि की सेना ने साध्य मे पराक्रमपूर्वक किया है। राजपूतों का शौर्य एवं बलिदान स्तुत्य है। छिताई हरण केवल छल से हुआ है। शौर्य अधिकांश निश्छल होता है। शौर्य छला जा सकता है—जीता नही जा सकता।

छिताई के आत्मबल ने, उसकी दैवी ज्योति ने राक्षस के तिमिराच्छन्न हृदय में आलोक दिया। उसका हृदय परिवर्तन हुआ और वह अपने लक्ष्य को खोता हुआ अनुभव करने लगा:—

अति दुख सुनि सुलतानहि भयौ, पायो रतन हाथ तर्द गयो। (१४०८)

कवि नारायणदास ने हृदय परिवर्तन स्पष्ट किया है:—

पाप दिष्ट छोडी नरनाथा सउपी राघव चेतन हाथा। (१५०१)

छिताई चरित मे बिरहिन अनेक प्रलोभनों को पार करती हुई अपनी एक निष्ठा और संयम के बल में अपने प्रियतम को पाती है और वैरागी समरसिंह अपनी साधना से अपनी प्रियतमा प्राप्त करता है। यहा वैरागी समरसिंह के 'विराग' पर भी लिखना अप्रासंगिक न होगा क्योंकि जायसी ने—'दुख बिरहिन कइ दुख बयरागी' लिखकर इसे अनिष्ट रूप दे दिया है। समरसिंह एकपत्नीव्रता या बहु पत्नी पर केन्द्रित था, उसके राग का बिन्दु उसकी अपनी पत्नी थी, दुनियाँ का जार प्रेम, दुनियाँ का असामाजिक, अनीतिकारक राग उसे नहीं बाँध सकता था उसने ऐसे अनीति सम्मत राग से

विराग ले लिया था और नीति सम्मत गृहस्थी के पावन संयमित राग के आधार में वह मानवीय साधना में रत था। वह पत्नी की ओर से उदासीन या वैरागी नहीं था। 'राम' के लिये सीता के अतिरिक्त कोई केन्द्र बिन्दु न था। संसार उनके लिये कोई राग का कारण न था। राम परम वैरागी होते हुए भी सीता के लिये परम अनुरागी थे। इसी प्रकार वैरागी समरसिंह के प्रति विरहिन का दुःख अथवा विरहिणी छिताई के प्रति वैरागी समरसिंह का दुःख उपेक्षणीय नहीं वरन् उतना ही गहरा और सच्चे प्रेम के धरातल पर अवस्थित है जितना पति-पत्नी की एकान्तनिष्ठा में अपेक्षित है। सौरसी– (समरसिंह) तत्कालीन समाज में भारतीय नारी के समक्ष अपहरण जैसी गंभीर व्याधि से पार पाने का सतुत्य प्रयास करता है उसे चन्द्रनाथ ने ही यही उपदेश दिया :—

अविचल बोल धरम को सूना, इन सम धर्म आन नहिं तूना।
औरो कहौ मित्य तुम जोगा, राजनीति प्रतिपालहु लोगा।

राजधर्म के साथ योग धर्म का पालन तत्कालीन मान्यताओं के आधार पर विवेचित है। प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच तो उनकी मान्यता के विरुद्ध समाज से लड़ाई रहती थी जिसे वे अपने मनोदशा के चित्रण में लाज को नेह पर न्योछावर कर देते थे। किन्तु छिताई की लड़ाई समाज के उस क्षुद्र तत्व से है जो छिताई को सौरसी की परिणीता मानकर भी उसे बलात् अपहरण करना चाहता है। इसमें साहस के साथ धैर्यपूर्वक सामना करना आवश्यक है साथ ही युक्ति का आश्रय भी श्रेयस्कर है। सौरसी (समरसिंह) की गायन एवं वाद्य कला श्रेष्ठ थी। वह खोज में निकला और उसका पता पाने में सुविधा हो इसलिये उसने अपनी वीणा नगर के प्रसिद्ध गायक के यहां पहिचान हेतु रखा दी थी, छिताई ने युक्ति और सयाल से काम लिया विरहिणी की मिलन की उत्कंठा बहुत ही सधी हुई है।

समरसिंह को अहर्निश केवल छिताई का ही ध्यान था :—

अहनिसि रमइ छिताई होए, जिसे भुवंगम रहइ मनि लोए। (२०७६)

चन्द्रशार की कामिनियों में एक पत्नीव्रती समरसिंह वैरागी अप्रभावित ही रहा :

अधर सुधा सुन्दरि की पीए, वनिता एक सुहाइ न होए। (१६१२)

पति-पत्नी की एकान्त निष्ठा अलाउद्दीन को भी मानना पड़ी :—

भूलो नहीं तहां करतारा, जइसो त्रिया तैसो भरतारा। (१८७३)

प्रस्तुत काव्य में राजपूत रमणियों की सत की साधना और भारतीय सैनिकों की रण की साधना और भारतीय योगियों की आत्म साधना इन तीनों सत्तों से समन्वित काव्य-सौन्दर्य है जिसमें रचनाकारों के भावपक्ष, कला पक्ष एवं लोक पक्ष का सुन्दर सामंजस्य है।

अलाउद्दीन छिताई को बलात् लेने का उपक्रम करता है और रामदेव (उसके पिता) को राघव चेतन द्वारा चेतावनी दिलाता है :—

दय गढ छोडि वचन दय मोहीं, कन्या देहि रहई पत तोही

किन्तु राजपूतों के शौर्य से कन्या मांगना टेढ़ी खीर थी—रण-सज्जाओं के बीच सैनिक के मनोभावों का मार्मिक चित्रण द्रष्टव्य है :—

ठा ठा घाइल तोरहि घाई, इहहीं के अब किये सुदाई ।
बहु सेवक कीन्हे करतारा, पर समारि करहि कर द्वारा ।
थरथराइ धरणी महि लोटहि, एक ते चलहि वृन्द की ओटहि ।
जूझनहार ते हुते अनाथा, बिरले मुँह महि घालेइ हाथा ।
ओछे घाइ जिन भये सरीरा, एक सहम देइ मागइ नीरा ।
युद्धों के सजीव एवं यथार्थ वर्णन में छिताई चरित हिन्दी में बेजोड़ है।

नारायणदास तथा देवचन्द रचनाकारों ने शब्दों के माध्यम से शब्दचित्र सजीव अंकित किये हैं।

'रतजगे' का चित्र अर्थात विवाह की रात्रि में जागी हुई राज रमणियों का शब्द-आकर्षक है :—

ब्याहु राति जागी कामिनी, धूघट घूमहि गज गामिनी ।
एक ते भारी मुलहि नैना, भरे मांचकइ बोलइ बैना ।
लटि मेले जे लटिकति फिरहिं, जोवन मदमाती जिउ गिरहिं ।
एक ते लांम्ह गहे ऐंडाही, जागी राति ते सरी जभाही । (३५४-५७)

समरसिंह के सौन्दर्य पर मुग्धा युवतियों के हाव-भाव का हृदयांकन सजीव है :—

चलिउ से जाइ रमिक परवीना, विथी तिया जनु बनसी मीना ।
एकते रहीं कलस सिर लीएं, एक दुहूं कर राखे हीए ।
एकते हात रही उरवाई, बरवट मन जोगी लइ जाई ।
एक जंभाहि ते तोरइ अगु, जे चित व्यापी अगमु अनंगु । (१५६३-६६)

समरसिंह की वीणा सुनने के लिये दिल्ली की रमणियों की आतुरता का चित्र दर्शनीय है :—

उठी चली कामिनी अनूपा, तिनको कौन बखानइ रूपा
जो कवि रूप वरनि कइ कहई, कहति कथा कउ अंत न लहई ।
एक ते एक बांह देइ चली, नैन कुरंगिनी वनिता मिली ।
एकन आंजे एक ते नइना, एक ते गूंगे बोलि न बयना ।
चिकने केस हाथन रागई, कौतुक देखनि अइसे गई । (१०५०-५५)

नाद की ब्रह्म के रूप में उपासना भारतीय संगीत की विशेषता रही है।

योग साधन, आत्म दर्शन, तीर्थाटन भी नाद ब्रह्म की आराधना बिना बावरो का बावलापन है :—

नादु रंग को मरमु, न लहई, जोय महिं जानि अपनपउ कहई।
चित एक पाखंडी करउ, तीरथ फिरति भवइ बावरउ। (६०-६१)

संगीत पूर्णानंद का सर्वश्रेष्ठ साधन है :—

नादु रंग बिनु और न रंगू, मृगमाला मोहियइ भुवंगू। (८६)

लोक भाषा हिन्दी के बोलों युक्त लोक प्रचलित संगीत 'देशी' कहा जाता था छिताई चरित मे उल्लेख है :—

सुध अंग देसी बहु रूपा, उघति नाच ते करहिं अनूपा। (४१४)

छिताई चरित मे 'गोपाल नायक' संगीत मर्मज्ञ ऐतिहासिक व्यक्ति, का उल्लेख है। छिताई का विद्यागुरु 'जगम' स्वयं छिताई, समरसिंह, संगीत मे पारंगत हैं। अला-उद्दीन, रामदेव भी संगीत मे प्रवीण पारखी हैं। योगी चन्द्रनाथ संगीत मे दक्ष हैं। चतुर्थ खंड तो संगीत के वैभव से ओतप्रोत है–सामूहिक प्रकार से नृत्य, छन्द गीत एवं वाद्य का सजीव वर्णन देखने योग्य है।

लागी कामिनी करइ अनन्दु, भवन भवहिं जनु मदन गयंदू।
निरत सील जो ठयो अनूपा, बडइ कथा जो बरनी रूपा।
एकन कामिनि कांधे यन्त्रा, बरनों बसीकरण के मन्त्रा।
जिती छिताई करी प्रवीना, ते सब गीत नादु रस लीना।
सरमंडल सरवीण सवारि, मुरज मृदंग लए बर नारि।
प्रेम कपाट पखावज बीन, बैठी तरुणि तमासे लीन। (१७१२-७४)

छिताई चरित उस युग की रचना है जिसमे मानकुतूहल विरचित हुआ एवं ध्रुपद शैली अपने विकास के चरम सीमा को पहुँची थी।

छिताई का नायक समरसिंह भी धीरोदात्त आदर्श नायक है :—

ताकउ सुत सउरसो सुजाना, मुद्रावत सो मदन पचाना। (३३३)
मानइ मुहगिरि फेरे नाला, पन्यो सरीर जैं द्रिढहि रसाला। (३३४)

"रावर" मे छिताई को सत से डिगाने दूती भेजी जाती है वह छल छद्मवेषिनी दूती का चित्र भी सजीव है :—

भागौती को तिलक लिलारा, हाथ सुमिरनी गरि जपमारा।
रामु नाम कइ टोपी सीसा, कर तुलसी लइ दई असीसा। (१३६९-७०)

छिताई इस अभ्यागत को सादर मधुर वचन बोलती है :—

कहहु तपोधन अपुनी बाता, कौन कौन तीरथ कीय जाता। (१२७१)

शिवपूजन को छिताई के जाते समय का चित्र देखिए :—

चंपक बरन चीर पहिरता, मांगु दिपह मोतिन कद पता।
दीसहि चंचल नयन बिसाला, गरे दलह मोतिन कइ माला।
बहुत रूप को कहइ अपारा।.... .. .. (१३२१-२२)

जब मंदिर तुर्कों से घिर गया और छिताई ने उन्हें आते देखे :—

शिव शिव तब जपहि सुंदरी, एकते सौम सारि भुइपरी।
एकन कठकटारिन हए, एकन कहहु "हम" उड़ि गए। (१३८६-८७)
पाति साहि अइसो उचरई, जगु अपघात छिताई करई। (१३९१)
गए साहि सामुहो विचारी, पूजा करति गही सौ नारी। (१३९३

+ + +

छिताई ने साहि को जानकर कहा कि एक वचन का निर्वाह करो :—

पाप दिष्ट जन चितवहि मोहि, पिता बराबर जानउ तोही।
जइसे रामदेव जानता, वइसी ओजन तो देखता।
जबहि रामदिउ सेवा करी, तब तई मया बहुत मनि धरी।
बंधु बराबर कहत प्रमाना, अब मो तू कन्या करु जाना।
—(१३९६-१४००)

छिताई ने, राक्षसी हृदय को मनोवैज्ञानिक ढंग से बदलने की चेष्टा की, राक्षस के भी हृदय होता है सात्विकता प्रसुप्त रहती है उसे जगाया जा सकता है। मानवीय संवेदनाओं के स्वर को लहराया जा सकता है। उसने ठीक ही कहा कि रामदेव मेरे पिता जैसे मुझे देखते हैं वैसी ही आँखों से आप मुझे देखा करो। जब मेरे पिता ने तुम्हारी सेवा की थी तब आपने मन मे बहुत दया रखी थी उसी प्रकार मैं कृपापात्र हूँ। उन्हें तुमने भाई समझा मे उसी भाई की पुत्री तुम्हारी कन्या समान हूँ।

"किन्तु जब एक युवती बाला को अपने पीछे घोड़े पर अलाउद्दीन ने चढ़ा लिया तब उस छिताई सुन्दरी की छाती अलाउद्दीन की पीठ से स्पर्श हुई, 'काम' के इस नैसर्गिक स्पर्श से अलाउद्दीन के शरीर में सिहरन दौड़ गई और हाथ से चाबुक छूट पड़ा, लगाम छूट गई :—

अपुने पाछे लई चढ़ाई, भयो शरीर सुखारो राई।
जबही हिदय पीठिमिंद लागा, चाबुक निछुटि निछुटि कर खागा। (१४०१-२)

छिताई ने इस 'कुभाव' को समझा और फिर चेताया :—

जोय मंहि पापुन चितहि साहि, हठ तेरी बेटी वर आहि। (१४०४)
ऐसो जबहि सुनउ सुलिताना, सीसु ढोरि तब मूंदे काना। (१४०५)

इस भाव का अलाउद्दीन पर उसी प्रकार असर हुआ जैसे मदमाते हाथी को अंकुश दिया जाता है। *उसकी दुर्भावना बेटी, बेटी के शब्द सुनकर सिकुड़ जाती थी, सिमट जाती थी।* लगता था जैसे कान मूंद कर "तोबा" कर रहा हो।

छिताई ने 'जगम' से वीणा वादन सीखा था, छिताई कलाधिष्ठात्री थी। अलाउद्दीन ने ऐसी कलाधिष्ठात्री के अपघात करने के भय को महत्वपूर्ण समझा :—

ज्यों ज्यों कुंअरि बजावइ रागा, भिकमि भूमि यइ सेमहि नागा।
देखत साहि अंचभौ करई सुनइ नाद चित काहू न टरई। (१४८६-८७)

इस कला से रीझकर अलाउद्दीन ने अपहृता को उसके वचन के अनुसार अपने पास न रखते हुए-अलग रख दी। वह "विधना कर्म दियौ दुख सहई" की अवस्था में है।

इह विधि रहइ छिताई बाला, नहीं सुधि सौरंसी भुवाला। (१५०७)

अपहरण के पूर्व मृगया में कभी छिताई समरसिंह के साथ जाती थी और जीवों से प्रेम करती थी उसका अपना ढंग पति से जीवों के प्रति दया उत्पन्न करने का अत्यन्त मर्मस्पर्शी है :—

कबहू साथ छिताई जाई, गहे हरिन कर घट बजाई।

मृगया में समरसिंह (सुरसी) के एक दिन के लिए मार्ग भूल जाने के समय छिताई की विह्वलता और विरहजनित दुःख की करुण झांकी देखने को मिलती है :—

पियो मिगाह सेज को सावा, रह्यों नाह बाहरि निसि आजा।
उझकि झरोखे लेहु उसासु, विपु बन्दन-बन्धन को वासु। (१४६७-६८)

छिताई अपहृता की विपन्नावस्था, उसकी कर्तव्यनिष्ठा एवं पति-परायणता के दृश्य हृदय को प्रभावित करते हैं। प्रेमयोगिनी छिताई भी वैरागी समरसिंह पति की योग पाती है विरह में उसने भी योग साध रखा है।

कंठमाल जप माली करी, पिउ पिउ जपत रहइ सुंदरी।
सचल सीस सीलइ जल-हारई, दिन प्रति सिव की पूजा जाई।
कुअन पान रानी परहरयो कुस सायरो छिताई करयो।
(भार० प्रेमा० काव्य, पृ० २१६)

छिताई के विरहिणी स्वरूप की इस झांकी पर किसे गर्व न होगा ? प्रेम का कितना प्रशान्त, स्थिर सागर लहरा रहा है धैर्य एवं साहस से समरसिंह को पाने की अहर्निश साधना है।

काव्य में अन्य विशेषताएं :—कलापक्ष में सादृश्य मूलक अलंकारों की प्रधानता है। शब्दालंकारों का प्रायः अभाव ही है। युद्ध सरोवर के वर्णन में 'देवचन्द' ने लिखा है:—

परकोटा भयो पारि समाना, लोहू भयो पानी उनमाना।
रावत भए मकर आकारा, खते रूप होइ रहे हथियारा।
जूझे मलिक ते उमरावाना, तेई भए मच्छ के बाना।
भई छिताई ऐसे तुला, जस सर माझ कमल के फूला।
पालि साहि दल कडहर भइयो, भुजबल तोरि छेई ले गइयो। (१४१२-१६)

श्याम स्तुति— दीरघ नयनी रत हुई अक्षकाल अनल पगानु।
छीन लक हम देखनी, तुम्ह न सिखावटुरानु।
× × ×
तुम कुच कावरि कीन्हें वासा, लाजन गये भुजग पताला।
बदन जोति तुम ससि की हरी, तू क्यिउ मुख पावइ सुदरी। (१४६६-६७)

प्रस्तुत रचना दोहा चौपाई के अतिरिक्त दूहा, दुहरा, वस्तु आदि छंदों में प्रणीत है:—

दूहा— चेतन होइ विपरीत, किउ आनु गड सुधि।
कि सुरसुह सुरितान सु कि होय आसुधि।

दुहरा— आमा वैरी न कीजिय, ठाकुर न कीजिय मीत।
खिन ताती खिन सीयरी, खिन वयर खिन मीत।

वस्तु— कहइ जोगी सुनहि रे मूड तोहि बुधि विधना हरी।
हरहि पापु बन जीव मरइ, भलो बुरो जानइ नही।
जीव अंदेस चित माहि विचार
इह भोपहि मुनि गयान् चउरासी लख जीवा जोनि
तेगिन आप समान। (भार० प्रेमा० काव्य, पृ० २१६-१७)

भाषा मध्यदेसीया है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसे राजस्थानी एवं डिंगल के पुट सहित होना बताया है और निश्चित प्रकार से उन्होंने शब्दों की तोड़-मरोड़ के कारण भाषा सम्बन्धी निष्कर्ष देना दुस्तर कार्य कहकर इसे विचारणीय ही रखा है।

लोकपक्ष :—कन्या की उपर्युक्त वर से ब्याहने की चिंता है :—

घर माहि कन्या ब्याहन जोग, वर भ्रम करइ मोहीआ लोग।
जाके कन्या कुआरी होइ, निस भरि नींद कि सुई सोई।
कन्या दिन ब्याहै पोर, तिनके चिन्ता होई सरीर।

---

१ अ, भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव (१९६१) पृ० २१७, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१।
ब, छिताई चरित—स० आचार्य हरिहर निवास द्विवेदी (१९६०) पृ० ७६-८१। विद्या मन्दिर प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर)

सम्बन्ध समान स्तर वाले से और यशस्वी के यहां करना चाहिये:—

पुरखा गति सजनाइ जिहा, तिहचइ कन्या दीजइ तिहा।
ब्याह वैर मित्रो या प्रमान, एति न चाहीइ आप समान।

विवाह के समय गाई जाने वाली "गारी" की प्रथा भी थी:—

परदानी अरनगर के सोजउ, दीजइ गारि गारि के चौज
कोकिल वचन रतन जे नारि, सुधा समानि सुनावइ गारि।
—(भार प्रेमा० काव्य-पृ० २१७)

घर की चित्रसारी में अकित किये जाने वाले भोगासनो की भी प्रथा थी। चित्रकला में चित्रसारी में 'मृगशावक' को जो चराती हुई नायिका का श्रेष्ठ चित्र उपलब्ध होता है।

स्थापत्य कला मूर्तिकला का अद्‌भुत वर्णन है:—

खेत्रपालु पूजिउ करि भाउ, अविचल होउगेहु द्रिढ राउ।
गही नीव हारी चोराई, पुरिय सात कइ भेरि भराई।
चौवारे चउखडि चौडोरा, कलिया बने काच के मोरा।
एकले काठन पाहन पाटे, नव नाटक नव साला टाटे।
भवनि रंग कुरि अति रवनीका, ठाव ठाव सोने के टीका।
बादल घनहु उठी घन घटा, रचे अनूप अटारी बटा। (२४२-४७)

रचनाकारों के सामने रामकथा निरन्तर रही है:

अति सरूप सीता सम सती (छिताई चरित पंक्ति ३६)
+ + +
रावन समु को पुहमी भइयो। (५०)
+ + +
अधिक विषय रावन कउ मरना (४७५)
+ + +
मिलची जु सुरेसी रावल भैसी (५३१)
+ + +
बधि समुद्रहि उतरहूँ पाटा, जिउ रावनहि राम कियो घाटा। (८८७)
तिनके कारज सिधि चढहि जिउं हनुवतहि सुधि। (११२३)
देखहि चढ तल दिप्ट पसारी, मानहु सेतबंध कोपारी। (१३४०)
+ + +
चढहि मुगल जनु बंदर लका (१२५१)
+ + +
मुदरी लोए सोय सुख जइसे। (१६५४)

इस प्रकार छिताई चरित में एक ओर प्रेम की उत्कट भावना है दूसरी ओर रामचरित मानस जैसे समाज सस्थापक महाकाव्य का बीज भी प्राप्त होता है। छिताई में उस रामकथा की सीता का स्वरूप झलकता है जो तुलसी की सीता मे पाया जाता है और समरसिंह योगी बना छिताई की खोज में अग्रसर है तथा अपहृता बन्धन में है यह झलक तुलसी मे विशद एवं मार्मिक रूप में जीवन के विविध अगो का उद्घाटन करती हुई मिलती है।

चतुर्भुज मिश्र कृत मधुमालती की कथावस्तु।—लीलावती नगरी मे चन्द्रसेन राजा राज्य करता था इसके मंत्री का पुत्र मधुकर बड़ा सुन्दर था। १२ वर्ष की अवस्था मे ही नारियाँ मुग्ध होने लगी। रामसरोवर के तट पर स्त्रियाँ जल लेना भूल जाती थी। मधुकर ने गुरु से ३० वर्ष की अवस्था मे १४ विद्या पढली। मालती भी मधुकर से मिलने लालायित थी, वह विवाह योग्य थी। राजा को चिन्ता थी, सयोगवश राजा ने मालती को पढाने के लिए वही गुरु नियत किया जो मधुकर को पढाता था। वह कुष्ट रोगी था अतएव पर्दे में पढने के लिए मालती राजी हो गई उसने अपना अभीष्ट सयोग जाना।

एक दिन पडित बाहर गया कि पर्दे को थोडा सा फाडकर मालती ने गुलाब का फूल मधुकर पर फेंका, फूल के लगते ही चौंककर मधुकर ने मालती को देखा और मुग्ध हो गया दोनों की दृष्टि टकराई और एकटक दृष्टि से परस्पर देखते रहे, मधुकर ने कहा हमारे तुम्हारे प्रेम की गति उसी प्रकार होगी जिस प्रकार मृग और सिहनी के प्रेम का फल हुआ।

मालती के मूक प्रणय प्रस्ताव को मधुकर मान तो रहा था किन्तु हृदय की अवस्था को परिपक्व करने के उपरान्त तथा भावावेश के उद्दाम प्रवाह को सयमित करके ही उसे प्रत्यक्ष रूप मे मानना चाहता था कि मालती राजा चन्द्रसेन की पुत्री एक सिहनी के समान है और वह उसके आलहृत मंत्री का पुत्र एक मृग के समान है, परस्पर मृग और सिंह में स्वभाविक बैर है जिसमे विश्वास का कारण नही और मैत्री का भी कोई कारण नहीं, आगे-पीछे की बात विवेकपूर्वक विचार करके ही प्रेम करना जो निभ सके यह विवेक प्रकट करता है, हृदय एव मस्तिष्क का सामन्जस्य प्रकट करता है। मधुकर में कामान्धता नही है जो प्रेम को अन्धे की सज्ञा दे सके। मृग और सिहनी, घूहर और 'काग' टिटिहरी और अडा की अन्तंकथाओं के साथ उसने अपने को उसकी बराबरी का न होना बताया।

मृग और सिहनी की अन्तर्कथा:—मृग बड़ा सुन्दर था वह नो दस मृगियों के साथ घूमता रहता था सिहनी ने उसे रति सुख लाभ के लिये प्रणय याचना की उसे विश्वास न हुआ और मृग ने अपनी अवस्था 'घूहर और काग' जैसी होने का भय माना।

'घूहर और काग' की पटकथा :— जंगल के सारे पक्षियों ने घूहर को राज देने की सोची, काग ने गरुड को राजा बनाने की हिमायत की और गरुड की शक्ति के वर्णन में शेषनाग का कम्पित होना, पहाडों का चूर-चूर होना, सागर का भी डरना बताया, सागर भी भयभीत होने की पुष्टि मे 'टिटिहरी और अण्डे' की एक वार्ता और जोडदी कि समुद्र द्वारा टिटिहरी के अण्डे बहा ले जाने पर गरुड ही आपत्ति करने पहुँचा कि सागर ने रत्नो सहित उसके अण्डे लौटा दिये इसे जानकर पक्षियों ने गरुड को राजा बना दिया।

इसकी प्रतिक्रिया मे घूहर (हरिमर्दन राय) ने मेघवरन (कागो) को मरवा डालने का अभियान प्रारम्भ किया तब मेघवरन ने संधि करके छल से घूहर को एक गुफा मे ले जाकर और आग लगाकर मार डाला।

सिंहनी ने मृग के साथ रति सुख लाभ लिया। सिंह बहुत दिनो मे जब आया तब सिंहनी ने उसका सत्कार किया और आहार ले आई कि मृग तब तक भाग जायगा किन्तु सिंहनी के साथ रहने मे वह तो अपनी चौकडी भूल गया था। सिंह ने नदी तट पर देखकर उसे मार डाला।

इस प्रसग को मालती ने सिंहनी को निरपराध एव प्रेम पंथ मे अपना बलिदान करने वाली बताकर कहा कि मृग अकेला नहीं मारा गया, सिंहनी अपने प्रेम को पहले मरता न देख सकी जैसे ही सिंह मृग पर उछला सिंहनी मृग के सीगोपर जा उछली और पेट अपना फटने के कारण पहिले अपने प्राण गवाये तब मृग मरा, मालती ने कहा कि सिंहनी ने प्रेम निभाया, मधु ने कहा और भी बुरा हुआ दोनों के प्राण गये।

मालती मधु के प्रेम मे व्याकुल हो रही थी। मधु ने उस प्रेम की चिनगारी को ज्वाला बना दी और ऊपरी स्थिरता एवं गाम्भर्य अपना प्रदर्शित कर जैसे उस ज्वाला को धधकादी हो, मधु ने कहा प्रेम पात्र को देखते रहने से प्रेम तीव्र होता है, स्पर्श से नहीं।

मालती ने फिर एक अन्तर्कथा—कुवर कर्ण कन्नौज निवासी की कही कि कुँवर स्त्री की ओर से पहल होने की बात सोचता रहता है और नवविवाहिता कोने मे दुबकी बैठी रही, प्रातःकाल होने पर स्त्री अधकूप मे टामदो जाती थी। शूरसेन की पुत्री पद्मावती ने उसी कर्ण से विवाह करके आधी रात्रि के समय गुलाब की पिचकारी भर कुवर की पीठ पर मारी और अपने हृदय से लगा लिया। दोनों मे परस्पर प्रेम हो गया, मधु मेरे साथ कब ऐसा व्यवहार करेगा। मधु ने फिर बात का पेच काट दिया, कहा तुम्हे ऐसी अपेक्षा मुझसे नहीं करना चाहिये क्योंकि मेरा पिता तुम्हारे पिता की मातहती मे है और अपने विद्या गुरू भी एक हैं यह कह मधु ने पढने आना बन्द कर दिया।

मधु राम सरोवर पर है ऐसा सुनकर मालती वहां पहुंची। मालती चन्द्र वदना को चन्द्र जान कमल सम्पुटित हो गए, भ्रमर बन्द हो गए मधुकरो ने मालती से आपत्ति की तथा चकवी ने भी कि उनके जोडे आपके आने से बिछुड गए। मालती ने कहा मधुकर (भौंरा) तो काठ को भी बींध डालता है, मधुकरो ने कहा किन्तु प्रेम के कारण कमल से ऐसा व्यवहार नही कर सकता। मालती चकवी को पिंजरे मे घर ले गई, चकवी के कहने पर मालती ने अपनी सखी से सारी वेदना कह सुनाई। मधु को पाने की इच्छा प्रकट की। मालती की सखी जैतमालती राम सरोवर पर पहुंची वहां मधुजैतमालती की वार्त्ता हुई। मधु ने बताया कि पूर्वजन्म मे मालती 'पुष्प' थी और मैं भौंरा था। (कामदेव) शिव द्वारा मुझे भस्म करने पर मालती ने दूसरे भ्रमर से प्रेम करना प्रारंभ कर दिया था अतएव उस प्रेम मैं दुबारा नही बंध सकता। जैतमालती ने वशीकरण मंत्र का प्रभाव डाला, मालती का रूप भी दिखाया और उषा अनिरुद्ध के समान गान्धर्व विवाह करा दिया। कुंज मे वे विहार करने लगे।

गान्धर्व विवाह हो जाने के पश्चात् एक माली ने राजा को यह खबर दे दी। सेना पकडने भेजी गई। मधुकर ने वीरोचित साहस से 'मालती' को निश्चिन्त रहने को आश्वस्त किया और इसी साहस की एक अन्तर्कथा सुनाई चन्दा और अनवरी के जोडे की।

कुमारी अनवरी राजवाटिका मे पुष्प चुनने आती थी। चन्दा कुंवर का प्रेम हो गया, कुमारी मूर्च्छित हो गई, एकान्त मे दोनो ने रति सुख लाभ किया, शेर आया, कुमार ने पडे-पडे तालू मे तीर मारा और ढेर कर दिया पर भागे नही, प्रेम मे जो हिम्मत करता है उसे यम से भी डर नही रहता, अतएव मधु ने कहा घबडाओ नही।

विवाह के पश्चात् मधु का साहस प्रशंसनीय है। उनका साहस नैतिक है। सैनिकों को गुलेल से मारता है। मालती की सुगन्ध से लाखो भौंरे एकत्रित हो गये। विशाल-वाहिनी को भौंरो ने काट काटकर खदेड दिया। राजा ने दूत भेजा, राजा को चुनौती दी। राजा ने आक्रमण किया, मालती ने विष्णु की स्तुति की। सुहाग की असहता मांगी, गरुड़, चक्र, सिंह को रक्षा के लिये भेजा। तीन ओर से विष्णु की तीन शक्तियों ने चौथी ओर से भंवरो ने सहार किया। 'सारंग' मंत्री ने सिंह का मुंह राजा को बचाने के लिये मंत्रबल मे फेर दिया। राजा को मधुमालती के विवाह की मंत्रणा दी समाज ने मुहर लगादी, वे आनन्द मे रहने लगे।

अधिकारिक कथा मे प्रासंगिक कथा, छोटी-छोटी पाच हैं जो मूल कथा को लक्ष्य की ओर बढ़ाने मे योग देती हैं नायक—नायिका मधु-मालती के प्रेम को, उनकी एकान्तिक निष्ठा को दृढ़ करने मे योग देती है। अखिल भारतीय संस्कृति धर्म नीति की सूक्तियो के कारण इसे नीति काव्य भी कहा जा सकता है किन्तु, "चातुर चित हित—

सहित रिझाने" का यह काव्य है, प्रेम प्रबन्ध है राजाओ के लिये राजनीति का पथ है, मंत्रियो के लिये बुद्धि को उद्दीप्त करने वाली रचना है।

काम प्रबन्ध प्रकाश, पुनि मधुमालती प्रकास।
प्रद्युम्न की लीलायहै, कहै चतुर्भुजदास।
राजा पढ़े तो राजनीति मंत्री पढ़ै सुबुद्ध।
कामी काम विलास ज्ञानी ज्ञान सुबुद्ध। (६४७-४८, स० डॉ० गुप्त)

हितोपदेश और जातक की शैली मे पशु-पक्षियो की छोटी-छोटी कहानिया पात्रो से कहलाकर कवि ने कथा को ही कुशलता से आगे नही बढाया वरन नीति सम्बन्धी सूक्तियों को भी एक सुन्दर लड़ी मे पिरो दिया है। कथोपकथन के बीच अवान्तर कथाएं इतनी सुन्दरता से लाई गई हैं कि पाठक का कौतूहल बढता जाता है और आगे पढता हुआ चलता जाता है। अवान्तर कथाएं मूल कथा के सूत्र को छिन्न नही करतीं पात्रों की चारित्रिक विशेषता इनसे प्रस्फुटित होती है। "कथा मांझ मधुमालती ज्यौं पडइतु भो बसन्त" वाली कवि की उक्ति सार्थक ही है।

नीति पक्ष :– प्रस्तुत कथा मे सूक्तियो की भी प्रचुर सामग्री है जिससे नीतिपक्ष अधिक निखरा है। जैसे एक बार हृदय मे मैल पड़ जाने पर दो हृदय निश्छल होकर नही मिल सकते इसी कारण जिससे पूर्व मे द्वैष रह चुका हो वह विश्वास करने योग्य नही रह जाता–"न विश्वास. पूर्व विरोधस्य शत्रोर्मित्रस्य न विश्वसेत" जिस प्रकार कुएं मे ढकुल नीचे की ओर जितनी ही झुकती है उतनी ही कुवे का जल खोलती है। बैरी के विनम्र होने पर हानि की सभावना उतनी बढती जाती है।

मनुष्य को अपने वचन का पालन करना नितान्त आवश्यक है। मनुष्य को बिना प्रयोजन दूसरे के घर न जाना चाहिये जो बिना प्रयोजन घर जाते हैं उन्हे जीवन मे दु ख और लघुता ही का अनुभव करना होता है। धन की अधिकता और काम की तीव्रता मे मनुष्य इतना अधा हो जाता है कि उसमे और जन्मान्ध मे कोई अन्तर नही रह जाता। क्षुधा तथा काम से पीड़ित मनुष्य को लज्जा तथा भय नही रह जाता :–

क्षुधा अर्थ मेरी अनुरागी, चिंता काम काम कर जागी।
लज्जा डर ते मेरी भागी, सुख सखी जैतमाल यों त्यागी।

भले ही मनुष्य सदैव परोपकार मे सलग्न रहकर स्वय दुःख सहते हैं उनकी गति पेड़ के समान होती है जो पत्थर मारने पर भी फल देते हैं और शीत और धाम को अपने सर पर बर्दाश्त कर दूसरो को छाया देते हैं :—

देनी धरनी धनु की सर्व विश्व के हेत।
पुनि तरवर की गति कहा, पर हित काज करेय।
धूप सहे शिर आपने, औरे छाय करेय।

जो मनुष्य उत्तम साहस और युद्ध तथा पराक्रम से कार्य करते हैं उनसे यम भी डरता है :—

उद्यम जश साहस प्रबल, अधिक धीर नर चित्त।
ताके बल की मत कहो, यम की कटक सकित।

श्री निगम का कथन है कि प्रेम और काम तो सृष्टि के साथ ही संसार में उत्पन्न हुए हैं वह संसार के अणु-अणु में प्रतिबिम्बित है और कोई भी मनुष्य उससे शून्य नहीं हो सकता :—

जा दिन ते पुहुमी रची, जिय जत जगनाम।
भवन मध्य दीपक रहै, त्यो घट भीतर काम।
शरीर मध्य जाग्रत सदा, जग की उत्पत्ति काम।
ज्यों हूढ़ी त्यों पाइए, प्रान सग नित काम।
गोरस में नवनीत ज्यो, काष्ट मध्य ज्यों आग।
देह मध्य त्यों पाइये, प्रान काम इक साग।
बिजुरी ज्यो घन मों रहै, मंत्र तंत्र महि राग।
देह मध्य ज्यों काम है, फूल मध्य पैराग।
दर्पन मो प्रतिबिम्ब ज्यो, छाया काया सग।
कामदेव त्यों रहत हैं, ज्यों जल बसतु तरंग।

काव्य-सौन्दर्य :—मालती के नख-शिख वर्णन में कवि ने नवीन उद्भावनायें की हैं। रक्त-घन में बिजली का सयोजन कवि परिपाटी से सर्वथा नवीन है। नाभि को कवि ने काम के चढ़ने की 'पेढ़ी' अथवा सीढ़ी माना है।

अधर प्रवालो निरखन हारे, पुनि बिम्बाफल पाके न्यारे
तामें दसन अति मुसकति सोहै, बिजुरी मनो रक्तघन को है।

+ + +

नाभि कमल हाटक घट जैसी, फुनि त्रिवली राजै तहं कैसी।
पेढ़ी काम चढ़न की कीन्हीं, कै विधि आइ अंगुरिया दीन्ही।

कटि की क्षीणता की मृगमरीचिका से उपमा देकर सुन्दर उद्भावना की है स्थूल सूक्ष्म का साथ बड़ा सुन्दर है।

केहरि कटि चिर्धौ मृग छाही, मानो टूट परे किम अबही।

'किम' शब्द अत्यन्त ललित है एवं लाक्षणिक अर्थ प्रकट करता है कि अभी टूटी है। यह शब्द कटि की स्वाभाविक लोच को भी बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है।

संयोग पक्ष :—एक वाक्य अत्यन्त मार्मिक है जो समस्त कथानक का सार है जिसमे प्रेम का अर्थ दिया है। "उतपति एक समूर, प्रीति हेतु दुइ तन धरे" इससे यह स्पष्ट है कि एक ही मूर (मून) 'जड' से दो शरीर (प्रेमी-प्रेमिका) अथवा नायक-नायिका की उत्पत्ति है और वह केवल प्रीति बताने के लिये है वैसे दोनो की मूर एक ही है इसमे वह दो शरीरी प्राणी अलग-अलग होते हुए भी मन, वचन एव कर्म से एक ही होते हैं, उनकी आत्मा एक ही होती है प्रीति बताने सयोग भी आवश्यक है और वियोग भी। प्रीति के दोनो ही पक्ष हैं।

प्रस्तुत काव्य में सयोग शृगार मे रति या सुरतान्त का वासनात्मक चित्रण नहीं मिलता और हावो का सयोजन भी नही के बराबर भी है। ऐसे स्थलो का सकेत कथावस्तु के सघटन मे है। केवल एक स्थान पर कचुकी के सरकने की ध्वनि सुनाई पड़ती है :—

प्रगट्यो मैन कचुकी सरके, जल के कुच सोम ते ढरके।

स्त्री का यौवन पति के बिना उसी प्रकार सूना है जिस प्रकार रात्रि तारों के बिना या सरोवर कमलो के बिना।

ज्यो निशि उडगन चद विहूनी, जैसे वाडी चपा पिक बिन सूनी।
रित बसत पिक बिन नहि नीको, बरखा घन दामिनि बिन फीकी।

'प्रतीक'—मन्मथ का प्रतीक 'मधु,' कुसुम-वृक्ष की प्रतीक मालती, बताई गई है :—

मन्मथ उतपति देह तुम्हारी, प्रेम निबाहन को अवतारी।
मालती कुसुम वृक्ष बन फूली, मधुकर प्रीत जानिके भूली।
अलि रस लुबुध मगन भए दोऊ, अतर होइ न बिछुरे कोऊ।

भ्रमर (मधुकर) कौमनसा मालती के बिना सौन बन मे कहीं भी किसी वृक्ष पर स्थिर नही :—

यहै प्रतीत आजु लहै कोई, चाडल फूल भ्रमर तहा होइ।
मध्य रैन समयो जहा होई, दिव्य देह प्रगटे तन दोई।
अति रस सरस केलि तहा करै, भोर भये वेई तन धरै।

कितने ही दिन मधुकर-मालती वन में इसी प्रकार भ्रमर एव लता के रूप मे 'सरस रस केलि' करते रहे। एक समय 'दौ"–दव (अग्नि) लगी और शाखा-शिखा तक लगने से मालती जल गई–क्योंकि मुख देखो प्रीति नहीं थी :—

मुख देखे की प्रीत ऐसो तो बहुतक करें
वे फुनि न्यारे मीत मुये मरें जीवे जियें।

ऐसी प्रीति बिरले ही करते हैं कि प्रेमी अथवा प्रेमिका के मरने पर मरें और जीवित रहने पर जियें ? मालती को जलते देख मधुकर तत्काल जल मरे।

मालती जरत मधु जरि निघटे, पुनि ताके नव पल्लव प्रगटे।
साखा पत्र वृक्ष भए तबहीं, मानो दग्ध भए नहीं कबहीं।
आली के प्रान पवन संग रहे, मिलि कै नव सुरभ मग बहे।
देखहु इहाँ प्रीति भई साची, मधुकर बरत मालती बाची।
बन में सहज आपन फूली, प्रीत पुरातन सो सब भूली।
मधुकर प्रेम मपूरन रास्यो, अतरोस अपनो जिय राख्यो।

मधुकर का प्रेम असाधारण है वह कहता है कि पुरुष के मरने पर त्रिया जल मर लेती है किन्तु त्रिया के मरने पर ऊपर पुरुष नहीं मरता, पर मैं मरा और मैंने अपनी गति सर्वसाधारण के ऊपर कर डाली इसका अनुभव न किया तूने मालती ?

पुरुस मरत ऊपर त्रिय जरै, पै त्रिय ऊपर पुरुस नमरै।
सो मैं तो ऊपर गति ठानी तै मेरे जिय की नही जानी।

उक्त उक्ति में 'मधुकर' के व्याज से पुरुष वर्ग की कठोरता को उभारी गई है और नारी वर्ग ही बलात् सती बनने को विवश है यह अप्रत्यक्ष रीति ध्वनित है। साथ ही यह बताया है कि 'त्रिया' सहिष्णु होती है पुरुष जो कहता है सब सहती है किन्तु कठोर वचन नहीं कहती।

मधुकर एवं मालती का प्रेम का जोड़ा इतना अद्भुत एवं अद्वितीय है कि शंकर की साखी या तो राम ने भरत को विश्वास दिलाने के लिये दी थी कि कैकेयी निर्दोष है और यह पृथ्वी तेरे रखने से ही रह सकती है अथवा प्रस्तुत प्रसंग में इस जोड़े के अनन्य प्रेम को प्रमाणित करने के लिये ली गई है कि जन्म न होकर ही अच्छा है यदि जन्म हो भी जाय तो नियम यह रहे कि मालती का रस केवल मधुकर उसका प्रियतम ही ले सके अन्यथा मालती को अग्नि जलादे। क्योंकि एक ही मूर से दोनों की उत्पत्ति है और प्रीति के हेतु ही एक मूर से 'दो' बने। यदि मालती जैसी सत्यनिष्ठावान, पवित्र व्यवहार वाली नारी अन्यथा व्यवहार करने लगे तो सत्य पृथ्वी पर कहा रह जायेगा, सत्य का सूर्य ही पृथ्वी पर उदित न हो सकेगा। हृदय में कोई भी छल नहीं है। निश्छल अनिन्द्यशक्ति शंकर की साखी देकर कहता हूं कि या तो मालती का तन अगोट रहे अथवा मधुकर ही केवल स्पर्श कर सके ?

करता जनम न देयजो जनमै तो नेम यह।
कै मधुकर रस लेय कै दौं दाझै मालती
उतपति एक समूर प्रीति हेत तन दोय धरै

पुहमी न उगै सूर ज्यौं अंतर दे मालती
औ कछु जिय मे खोट साखी दै सकर कहू
कै तन रहे अगोट, कै मधुकर परसै मालती
(निगम–मधुमालती, ३६५, स०—डॉ० माताप्रसाद गुप्त)

प्रेम के पात्रो मे परस्पर कितनी अनन्य निष्ठा है ?

गान्धर्व विवाह सम्पन्न हुआ :—

लीनो सगुन वेद विधि जोही, परसे पानि परस्पर स्यो ही ।
कर ककन भवर गहि बधे, टूटी नेह बहुरि फिरि सधे ।
रचे कलस तहा अबुज केरे, मधु मालती सु भावरि फेरे ।
मगल चार जेत उच्चरई, सुर निरखे तिहा अति सुख धरई । (४४०-४१)

गान्धर्व ब्याह हो चुकने के बाद मधु एक पति की भाति मालती को पत्नी रूप में पाकर उसका सरक्षक के रूप मे पूर्ण जागरूक है, अब उसकी मानसिक चिन्ता को वह समाप्त कर देना चाहता है, अब उसे एक बार स्वीकार कर लेने पर ससार का, समाज का, राज्य का किसी का भय नही है वह अपने 'परिणय' के सम्पन्न होने पर अब किसी भी 'निग्रह' को सामने टिकने नही दे सकता, सबका सामना करने तत्पर है । मालती हर-गौरी मना रही है कि इस परिणय मे उसके पिता का राजदल, सामन्त अथवा सभा बाधक नही उन्हे बिछुड़ने पर विवश न करदें ? वह मगल मना रही है, मधु कहता है कि :—

तू जिन डरपै मालती मति जिय अति अकुलाय ।
पारवती ऊपर रहै सकर करै सहाई ।

× × ×

ऐसो सूरा कोउ नही, मोमन सनमुख होई ।

मालती के पिता को विदित होने पर उसने कुमुक भेजी किन्तु मधु ने बडी शूर-वीरता से उसको पराजित कर दिया । मधु 'वैश्य' होते हुए वीरता का परिचय दे रहा है । वीरता केवल क्षत्रियो के बाटे की नही है कोई भी मानव वीर हो सकता है–मधु ने कहा :—

सगरो कटक मोल कै काटूं, नातर वनिक बस नहि काटूं ।

मधु जब मालती को स्वीकार कर चुका तब किसी भी प्रकार या बलात् उसे मधु से पृथक् नही की जा सकती मधु दृढ प्रतिज्ञ है कि :—

हम तन प्रेम परसन कू धारे, छीर नीर मिलि होय न न्यारे ।

मधुमालती में युद्ध वर्णन बड़ा सजीव है :—

कहुं कमान कहुं तरकस टूटैं, नेजा सांग परस्पर फूटे ।
कहुं खजर कहुं गदा कटारी, कहूं जदया कहुँ ढालहि न्यारी ।
कहुं तरवर कती कहुं खड़ा, कहुं रही गुरज पटा कहुं खड़ा ।

काम प्रसग मे जगत-व्यवहार का दर्शन अनुभवगम्य है-जैसे नारी और बेल अपने समीप आधार पर पूर्णतः छा जाती एव रम जाती है :—

नारी नर वर बेलिया, डिग ही देखि रचत ।

निगम का रामसरोवर :—लौकिक आख्यान काव्यों मे 'रामसरोवर' स्थल नायक नायिका के मिलन के हेतु विशेष पावन धाम रहा है । लखनसेन पद्मावती एवं छिताई चरित मे भी यह 'सरोवर' प्रयोग मे आया है और तुलसी ने भी इस राम सरोवर को लिया है किन्तु अध्यात्मपरक रूप दे दिया है । निगम का राम सरोवर इस प्रकार है :—

राम सरोवर ताल की सोभा बरनि न जाइ ।
सत अरुन पकज तहां मुनि जन रहे लुभाइ ॥ (१६ दूहा)

इसी राम सरवर पर मधु और मालती का गन्धर्व विवाह सम्पन्न हुआ ।

गधर्प ब्याह "रामसर" कीनौ, प्रथम समागम को रस लीनौ ।

मालती कन्या की वयस से ऊची थी अतएव उसे गन्धर्व विवाह करना सामयिक एवं समीचीन था ऐसा पुष्ट किया गया है ।

उपरोक्त कथानक मे निगम लेखक ने अन्य वर्णनों में पशु-पक्षी, सरिता, वृक्ष बेल रात्रि-दिवस का वर्णन किया है । यथा :—

चीता देखि देखि मृग दौरें, सिघनि भाय मारि सिर फौरें ।
तौ लूं सिंह सैल तें आयो, सिंहनी ताको आहट पायो ।
नदी तीर चढ़ि आए दोऊ, मृग बैठो देखो दृग खोऊ ।
पर्व सिला परी जू आई, मानू बीज सर्ग तै पाई ।
चद चकोर कुमुद किन देख्यो, फुनि रवि राज अबुज कूं लेखियो ।
राजा सुनत महल में आयो, अपनो सब परिवार बुलायो ।
लई गुलाब भरी पिचकारी, पद्मावती पीठ मे मारी ।

मनुष्य के कामुक स्वभाव की श्वान से उपमा देते हुए कवि कहता है कि स्त्री के तनिक से संकेत पर मनुष्य कुत्ता जैसा ललचाकर पीछे लगता है :—

त्रिय की तनक इसारति पावें, नर ललचाय स्वान जू आवें । (२११)

इस काव्य मे योग और भोग का सामञ्जस्य बतलाया गया है। समन्वयवादि का यह मगल कलश जीवन का मर्मस्पर्शी काव्य है। नारी के मनोभावों की तथा उसके मानसिक उद्वेलन की अभिव्यक्ति अत्यन्त स्वच्छ एव मनोहारी है। प्रस्तुत काव्य के प्रसाद-गुण ने इसमे रस की प्राणप्रतिष्ठा की है।

अलकार एवं प्रतीक विधान :—मध्यकाल की हिन्दी काम कथाओ में कथाकारो ने भावो की व्यजना के लिए अलकारो का प्रयोग किया है। भावो की तीव्रता मे भी अर्थालकार बन पड़े हैं। अत्यनुप्रास का समुचित प्रयोग हुआ है।

सबसे अधिक प्रयोग उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टात आदि साम्यमूलक अलकारो का है।

नाभि एव त्रिवली का वर्णन करते हुए चतुर्भुजदास निगम कहते है :—

नाभि कमल हाटक घट जैसो, पुनि त्रिवली राजै तहां कैसी।
पैडी काम चढन कों कीन्हीं, कै विधि आनि आंगुरिया दीन्ही। (४१४)

कटि की क्षीणता का वर्णन करते हुवे चतुर्भुदास कहते हैं :—

भृगी कटि किधौ केहरि छीन हौ, मानहु टूटि परै किन अबही। '(४१५)

'किन' अबही के प्रयोग से सजीव चित्रण है कि जैसे अभी ही टूटी पड़ती हो इस वर्णन मे जायसी पीछे रह गए :—

"मानहु नल खड दुइ भए, बिच तक तार रहि गए।"

क्षीण तार से दो खड जुड़े हैं जिसमे अस्वाभाविकता लगती है।

नागमती की अविरल अश्रुधारा का वर्णन जायसी कहते हैं :—

मोर दुइ नैन चुवैं अस ओरी।

आगे 'अतिशयोक्ति' आ जाती है :—

रकत के आसु परहि भुइं टूटी, रेंगि चली जनु बीर बहूटी।

छिताई चरित मे नारायणदास की 'अतिशयोक्ति' भी स्वभाविक लगती है :—

'एक नारि नी तनु निकलकू, महा मनोहर ज्यो मयकू।

छिताई ने 'तपोधन' का प्रतीक छद्मवेषिणी दूती को देकर कहा :—

कहहु तपोधन अपुनी बाता, कौन कौन तीरथ कीय जाता।

+ + +

चढहि मुगल जनु बदर लका, जीय न धरहि मरन की सका।

विषय वासना जन्य मन की प्रवृत्ति मिटकर निवृत्तिपरक स्थिरता आ जाय और सासरिक ऐश्वर्य सम्पन्नता प्रकृति वैभव भी आध्यात्मिक दृष्टि से अथवा एकाग्रनिष्ठा

विरहिणी के लिये उजाड़ सड़ दिखाता है– यह 'प्रतीप' का उदाहरण देखिये:—साधन के मैनासत में :—

भोग भुगुति सगीत उतारू, मो लेखे संसार उजारु। (१६२)

'सन्देह' :—निगम की मधुमालती में द्रष्टव्य है :—

केसू पावक जानि के मधुकर मरिवे हेत।
जरिवे कू उहि द्रुम गयो, साच बात सुनि 'चेत' ॥
ग्रीवा देखि कपोति सजानी, फुनि जराव भूषन तिहा वानी। (४०६)

प्रतीक विधान :—मधुमालती निगम कृत मे पाडल-भंवर के रूप में है–

पाडल-भवर भए तुम दोऊ विधि के लेख न जाने कोऊ।
मालती कुसुम वृक्ष वन फूली, मधुकर प्रीत जानि के भूली। (३२८-३३०)

उत्प्रेक्षा की अतिशयोक्ति :—मे निगम ने मधुमालती में कहा है :—

मुख तंबोल बीरो जब डारै, मानो कीर पंकज निखारे।

दृष्टान्त :—निगम की मधुमालती

फुनि तरुवर की गति सुनो पर हितकों गरुवाइ
धूप सहे सिर आपने औरहिं छाह कराइ।

व्यतिरेक :—निगम की मधुमालती

ससि कलंक घटि घटि तन बाढ़े, मुख सोभा दिन दिन अति चाढ़े।
ससि देख्यो कं बार, रवि के ढिग फीको सदा।
मालती बदन निहार, तेज हीन दिनकर भयो।

यमक— गहनो और सरूप सब सुन्दरि सुन्दर सगे।
यह रमनी को रूप, गहनो को गहनो भयो। (४२६-अप्रका० मधुमालती)

\+ \+ \+

तो तन औरे चाह, मो तन औरे वसि रही।
आगम की गति चाहि, जैसे मसो फसि रही। (१३१-अप्रका० मधुमालती)

\+ \+ \+

अनुप्रास :—खोरयो मन तन परसो सरसें, पल पल गई घरी सम बरसें।

निदर्शना :—माटी ऊपर द्वि विधि मेला, परम हूम माटी में मेला।

माटी भोगें माटी खायें, माटी उपजे रंग सवायें।

सोन फूल है माटी फूली, माटी देख सु माटी भूली।

माटी विरला जाने कोई, चंदिनु सेलु सब माटी होई। (२६८-७० मैनासत)

\+ \+ \+

तौर बदन तिरभुवन अजौरा, सकल सिस्टि मुख दरपन तौरा (मझन—३१-२)

सांग रूपक :—(मैनासत)

कवल प्रवले भवर जो किया, कोस झकोर सकल रस लिया (आलम)

भादो गहर गभीर नैन गगन गोरी तरें।

क्यो करि पावें तीर, साधन तिरिया नाह बिनु (प्रका० साधन—१७८)

\+ \+ \+

भौंहें धनुक नैन सर साधे, लागे विषम हिये विष बांधे (कुतबन)

तद्गुण :— (जायसी)

नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।

हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर। (खंड ४-८)

नितम्ब :—देखि नितम्ब त्रिकुटि चित लागा, परत दिस्टि मन्मथ तन जागा। (मझन-६७)

जंघा :—जुगुल जघ देखि मन थहराई, करमेउ खीउ कछु कहा न जाई। (मझन—६७)

भ्रम — (निगम की मधुमालती)

औचक आनि दामिनी कौंधी, निरखत नैन भई चकचौंधी। (४००)

परिकरांकुर— (जायसी)

रतन चला भा जग अंधियारा। (आचार्य शुक्ल भूमिका—जायसी, पृ० ११२)

इस प्रकार कवियो ने उपमान साहित्यिक परम्परा एवं लोकजीवन से ग्रहण किये हैं। अलकारों का रीति काव्य की भाँति इन कामकथाओं मे ठुसा ठासी करके प्रयोग नहीं किया गया। स्वाभाविक रूप में अलकार बन पड़े हैं। यही हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य धारा की अलकार सम्बन्धी विशेषता है। वर्णन की मुव्यजना में प्रखरता लाने ही उपमा और रूपक का आश्रय ग्रहण किया गया है।

आखों के कमल खजन, भ्रमर, मीन आदि उपमान तो परम्परागत हैं किन्तु त्रिवली काय की नसैनी और "वेणी माग मध्य दई पाटी—मानहु सेस फुनि करवत काटी" आदि लोक जीवन की मौलिक उक्तियां हैं।

मझन के प्रेमदर्शन मे समुद्र—लहर और रवि-किरण का प्रतीक नायक-नायिका को रखा गया है :

> तैं जो समुद लहरि मैं तोरी, तें रवि मैं जस किरनि अंजोरी।
> एक जोत दुइ घट संचारा, एक अगिनि दुइ ठांए वारा।
> एकै जोति, रूप, पुनि एकै, एक परान एक देह।

प्रीति को परेवा के प्रतीक में देखिए :—

> सुनिउ आहि दिन लिखि उपाई, प्रीति परेवा दिहेउ उड़ाई (मझन)
> —सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त भूमिका पृ० २३, २४

विरह.—

> ऐसा कछु कीजै उपचारा, बारं रैनि न होइ सवारा।
> तब माधो बीना कर लीन्हा, बिधुरय मृन्न श्रवन सुनि दीन्हा।
> मरम बजावहि बीन सुरंगा, टिकयो चद थकि रहे तुरंगा॥ (आलम)

प्रोषित पतिका का चित्र—दयनीय बन सजीव बन पड़ा है :—

> वस्त्र मलीन सीस नहि धोवै, सब टेर माधो मग जोवै।
> नींद न भूख न भावै पानी, काया छीन दीन मुख बानी।
> हा हा प्रान न मग गय जब बिछुरै माधंत।
> कर मीजैं वस्तर धुनैं, गहै अगुरियां दंत। (आलम)

मुग्धा का वर्णन :—

> सुनत नाद मोही पनिहारी, सीसहु तैं गागर भुमि डारी॥ (आलम)

अभिसारिका का वर्णन:—

> कुच सम्पू सिर्यू संपुट बाड्यो, कुञ्ज कोम सिर्यू भारय बाड्यो।
> तापरि कंचि कंचुकी कीन्ही मानु मनाह काम तन कीनी॥ (४१०)
> लहगा ललित लाल अतलस को, तापर जरद चीर तरवस को।
> मूर्य सगवगाई रही सुघरी, मानू इन्द्र भवन तें उतरी। ..... (४११)
> राजै चरण कमल रवि वसी, गज मराल केरी गति बिहँसी।
> नुपुर रवहि सुरत कू पूरे, मानूं काम दून हैं पूरे। (निगम-मधुमालती ४१७)

साधन कृत मैनासत[1] मे 'मैना' के विशाल हृदय एवं उदारता के ऐसे प्रकार दर्शन होते हैं जो जायसी की नागमती में हैं—मैना कहती है:—

---

1. साधन कृत मैनासत—सम्पादक आचार्य हरिहर निवास द्विवेदी (१९५६ ई०)।

जिहि राता मोरा पीउ हौं चेरी ता सौत की ।
वार न बाधौ जीउ, साघन सीस कि राखिये ।

(मैनासत, पंजाब प्रति०)[1] सं० द्विवेदी पृ० १८७

जब दूती ने मैना को यह कहकर डिगाना चाहा कि तू उसी के लिये विरह में एकाग्र निष्ठा से क्यों अपना 'जोबन' खो रही है जो दूसरी सौत पर आसक्त हो तेरी कानि नहीं करता इस पर दूती को विनयपूर्वक मैना ने उसकी छलना पर विजय प्राप्त की। नागमती ने संदेश देते हुए पद्मावती 'सौत' से कहलाया था —

मोहि भोग सों काज न बारी, सौंह दिष्टि के चाहनहारी। (खण्ड ३१-३)

किन्तु नागमती से बढ़कर मैना ने तो अपनी समाश्रित सौत का दासीत्व स्वीकार करने की तत्परता दिखाई है।

वासक सज्जा का चित्र छिताई चरित में.—

भूली भवति फिरइ उजारी, चाहइ बाटि छिताई नारी।
कीयौ सिंगार सेज रउ साजा, रहिउ नाह बाहुरि निसि आजा।

(४६६-६७)

उत्कंठिता का रूप छिताई में देखिये :—

उझकि झरोखा लेइ उसासा, पिपु चदन चढ़ा कउ बासा।
बनु महि बसिउ राउ सौरसी, तपत होइ देखइ तनु ससी।
करहि सखी सीरे उपचारा, होहि ते सबइ अगिनि की झारा।
डूबे दिवस भानु अथायो, दुखितौ ही घर सउरसी गयो।
रही छिताई निसि कुंभिलाई, गाढ़ आलिंगन कीयो अघाई।

(४६८-७२)

इन उद्धरणों में यद्यपि कथाकार नारायणदास द्वारा प्रथम समागम के चित्र को मर्यादा का उल्लंघन कहा जा सकता है किन्तु प्रथम समागम के चित्र को चित्रण करने में कवि को सफलता मिली है और 'रस' की निष्पत्ति हुइ है जो कवि-कर्म के लिये स्वच्छ एवं सरल अभिव्यक्ति है यद्यपि ऐसे चित्र मर्यादा के बाहर जाने वाले एकाधिक नहीं है, किन्तु इन्हे 'अश्लील' नहीं कहा जा सकता क्योंकि काम-कथा में स्वकिया के साथ समागम का चित्रण करना कवि का पुनीत कर्त्तव्य था और उसमें गर्हित चित्रण नहीं है।

'सुरति' के बाद का चित्र 'आलम' कृत माधवानल कामकन्दला में मनोहारी है :—

किलकत बोलत लोक कहानी, भयो भोर प्रगट्यो जु विहानी।
कामकन्दला परिहरि सेजा, मद विहाल तन रह्यो न तेजा।
झलके पलक उनीदे नैना, अति जमुहाइ आवहि नहिं बैना।
कवल प्रवेस भवर जो किया, कोस झकोर सकल रस लिया।

1. श्री अगरचन्द नाहटा—सत असत रचनाओं की परम्परा, राष्ट्र भारती, मई, १९५६।

'मृगावती' में कुतवन ने 'सौतिया डाह' का वर्णन 'सामंजस्य' लेकर किया है जो मानव जाति को प्रेम, सहयोग एवं जीवन में समझौते की प्रेरणा देता है। राजकुंवर की ब्याहता पत्नी 'रूपमिनि' तथा प्रेयसी मृगावती में परस्पर प्रेम एवं सौहार्द्र दिखाया गया है। मृगावती की ओर राजकुवर आकृष्ट होकर रूपमिनि ब्याहता पत्नी को छोड़-कर योगी हो गया। रुपमिनि विरहाकुल पति से मिलने की चेष्टा में सफल होकर जीवन से समझौता करती है और मृगावती के पास सुखपूर्वक रहकर जीवन बिताती है। राजकुवर की मृत्यु पर दोनों के साथ जल जाती है।

प्रस्तुत कथानक आज के विषम कामुक वातावरण में प्रत्येक गृह में शान्ति, प्रेम, सहयोग एवं समझौते का संदेश देकर समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत करता है।

चतुर्भुजदास का 'स्मरण' का चित्र 'विप्रलम्भ' में द्रष्टव्य है :—

मालती करुना वचन सुनावै, पैंकहू अलि की सुधि नहि पावै।
अब हू नहि यै प्रान गमाऊं, पति वियोग कैसे सचु पाऊं। (३७०)
रटत नाम मन में श्री हरि हरि, आराध्यो संकर नीके करि।
मधुकर प्रीति हेत चित धारी, एक वचन कह देह प्रजारी। (३७१)

'मरण — पवन प्रतीति प्रीति दृढ राखी, दंपत्ति मिले दई तहां साखी। (३७२)

अनन्यता :— जिन कोऊ अपनो दोष न काटै, प्रेम नेम दोऊ घटै न बाढ़ै। (३७२)

\+ \+ \+

पर्यायोक्ति :— मालति सम नहिं प्रेम मधुकर सम प्रीतम नहीं।
को निबहि नेम मनसा बाचा कर्मणा। (निगम) मधु० (३७३)

प्रेम का प्रतीक मालती तथा प्रीतम का प्रतीक मधुकर को निगम ने मधुमालती में पर्यायोक्ति द्वारा भव्य प्रतिष्ठा की है।[१]

* * *

खण्ड ४

अध्याय १४

सामाजिक तथा सांस्कृतिक चित्रण

अलाउद्दीन खिलजी के काल से देश को एक अत्याचारी सैनिक साम्राज्यवाद के दमनचक्र में गुजरना पड़ा। अनहिलपाटन, जालोर, रणथम्भौर, चित्तौड़, सिवाना उज्जैन, माण्डू, चन्देरी, ग्वालियर, देवगिरि, वारंगल, द्वारसमुद्र, मदुरा जैसे सांस्कृतिक और राजनैतिक केन्द्रों को इसके प्रबल आघात झेलने पड़े। भारत की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था में गड़बड़ी आ गई और हलचल मच गयी। प्राचीन मानों का पुनरीक्षण चला। आघात के प्राबल्य के अनुपात में ही भारतवासियों में प्रतिरोध-शक्ति जागृत हुई साथ ही अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की सुरक्षा की महती प्रेरणा उद्भूत हुई। सैनिक पराजय एवं राजनैतिक पराभव को न रोका जा सका। राजपूतों की रक्षाशक्ति भी मरण को वरण कर रही थी। नवीन आक्रान्ताओं ने भारतीय नारी के गौरव पर चोट करना चाही, उसकी मातृत्व की वन्दना के स्थान पर उसे केवल भोग्या जाना। भारतीय नारी ने सङ्कटकालीन व्यवस्था के तौर पर सती धर्म की बलिदान पथी व्याख्या की। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू पौराणिक, जैन साधु और गोरखनाथ के नेतृत्व में नाथपंथी योगी अपनी परम्पराओं की प्रतिरक्षा के लिये कटिबद्ध हुए। इन परिस्थितियों में शूर-सती-साधु की विभूति के लिये अक्षय स्वर्ग की कल्पना अवतरित हुई। यह प्रतिरोध रोमांचकारी रहा और इसका प्रथम अध्याय राणा सांगा की मृत्यु (सन् १२२८ ई०) तक चला। इस समय के भारतीय इतिहास में इस युग की आशा-निराशा, आकांक्षाओं और संघर्ष की विषमता तथा प्रतिरोध के प्रबल सङ्कल्प के सजीव चिह्न मिलते हैं।

समस्त भारत के लोक जीवन की आत्मरक्षा तथा प्रतिरक्षा की भावना में पराक्रम करते हुए भाट, चारण, जैन साधु, पौराणिक, व्यास, योगी साधु, सन्यासी और कलम

पढ़ने वाले कायस्थ, असिजीवी और मसि जीवी सभी लोकवाणी का रूप निर्माण कर रहे थे।

इस युग के हिन्दी साहित्य मे तथा लोकजीवन मे पूर्ण तादात्म्य था। जनसाधारण ने विविध उत्सवो, पर्वो, समारोहो आदि मे हिन्दी की रचनाओ का प्रयोग होने लगा था। उनके काव्यरूप लोक छन्द, लोक गीत और लोक नृत्य की भवों मे बधे हुए प्राप्त होते हैं।

लोकनिष्ठा एव लोक साधना का प्रभाव सगीत के क्षेत्र मे भी इस युग मे दिखाई दिया।

समाज के विभिन्न पर्वो एव उत्सवो पर गीति नाट्य-(जिसमें आख्यान तत्व एव स्वर साधना के साथ अभिनय एवं नृत्य का भी समावेश था)-भी किया जाता था। ये मगल काव्य, वसन्त, चाचर, धमार, रसिया, हिंडोला, विरहुली, बोली, फाग, रास, भास आदि नामो से प्राप्त होते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल, मालती माधव जैसे रूपक राजसभाओ के समृद्ध रगमच के लिये थे, एकन्दो या तीन नटो अथवा तत्कालीन मण्डा-वली के बहुरूपियो द्वारा अथवा एक ही व्यक्ति द्वारा लोकमच के उपयुक्त रचनाए हिन्दी मे उस काल मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती हैं।

मैनासत चांचर फाग हिंडोला आदि गीत और नृत्य के काव्य रूपो का उल्लेख है युवतियो द्वारा रास नृत्य का उल्लेख छिताई चिरत मे मिलता है। पृथ्वीराज रासो के क्रम मे रास नाम से रचना लखनसेन पद्मावती रास है जो एक ही परम्परा की प्रतीत होती है। मधुमालती और छिताई चरित मूलत. लोकमंच पर गायन के लिये लिखे गये काव्य हैं। वे रास, फाग, वसन्त आदि काव्य रूपो की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। ये चरित तथा लौकिक आख्यान काव्य, लोकमच के रास तथा पौराणिक कथावाचकों के बीच की कड़ी हैं। इन गेय काव्यों को नृत्य और गीत के साथ अनेक वाद्यों के योग मे गाया जाता था।

बारहमासा, लोक गायन का सभी प्रचलित गेय काव्यरूप रहा है। हिन्दी मे पहिला बारहमासा बीसलदेव रास मे प्राप्त होता है। विनयचन्द्र सूरि के नेमिनाथ रास मे बारहमासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर आषाढ मे समाप्त होता है। बीसलदेव रास मे कार्तिक से प्रारम्भ होता है। वियोगिनी की मनोदशा वर्णन करने मे इनका प्रयोग हुआ है। मैनासत के बारहमासे मे मार्मिक व्यंजना एवं चमत्कार है।

हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्यो में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का बहुत विस्तृत रूप एव प्रामाणिक इतिहास प्राप्त होता है। लखनसेन पद्मावती रास, निगम कृत मधुमालती, माधवानल कामकन्दला तथा मैनासत आदि रचनाओ में काल्पनिक

काम कथाओं के बीच तत्कालीन विश्वासों एवं सामाजिक आकांक्षाओं का स्वरूप मिलता है।

तत्कालीन सामाजिक विश्वासों का दिग्दर्शन हमें छिताई चरित में विशेष रूप से प्राप्त होता है। नियति की प्रबलता, कर्मफल की दुर्निवारिता, ज्योतिष के प्रति चरम आस्था, शकुन-अपशकुन पर विश्वास, योगियों के प्रति भयमिश्रित समादर, ब्राह्मणों के प्रति आदरभाव, ये तो प्राय समकालीन रचनाओं के समान ही प्राप्त होते हैं।

घर में विवाह योग्य कन्या होने पर माता-पिता की व्यथा इन समस्त रचनाओं में समान रूप से व्यक्त की गई है।

छिताई चरित राजाओं रानियों, सुलतानों और बेगमों पर केन्द्रित होकर चला है अतएव इनके तथा इनसे सम्बन्धित समाज के मनोभावों का चित्रण इसमें विशेष रूप से प्राप्त होता है। जन-साधारण का वर्णन तो है ही। राजकुमार और राजकुमारियों की बाल क्रीडा, उनके यौवन विलास, मृगया आदि के वर्णन तो मिलते ही हैं परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है राजसभाओं और सेनाओं से सम्बन्धित अत्यन्त प्रामाणिक और नवीन उल्लेख।

देवगिरि से दिल्ली तक बहुत थोड़े ही समय में ही देवगिरि विजय का समाचार भेजने की युक्ति समाचार साधन को प्रस्तुत करती है। ये आठ सौ कोस की वर्णित दूरी में प्रत्येक चौथाई कोस पर ढोलवालों की तीन हजार दो सौ चौकियाँ बना दी गई थी। नुसरतखाँ की आज्ञा होते ही पहिली चौकी पर ढोल बजना आरम्भ हुए। उन्हें सुनकर आगे की चौकियों पर क्रमश. ढोल बजने लगे और उसी दिन दिल्ली में संकेत मिल गया। उलुग खाँ को पहिले ही समझा दिया गया था कि ढोल बजना विजय की सूचना होगी। देवचन्द्र द्वारा जोड़ा गया यह अंश एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया की सूचना देता है।

धावन (पतिहा) द्वारा समाचार भेजने के उल्लेख तो अन्यत्र भी मिलते हैं। राघव चेतन का दौत्य कार्य एवं दूत अवध्य है ऐसी सूचनाएं अन्यत्र भी मिल जाती हैं। जासूसों का अस्तित्व भी मिलता है परन्तु उस समय के व्यायाम के साधनों का उल्लेख महाभारत के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता।

> मानइ मुद्गिरि फेरइ नाला, बन्यो शरीर जे इढहि रसाला।
> लागहि खम्भु बालु बहुगुनो, योगहि भुजसु वायु को दुनो।

इनमें पन्द्रहवीं शताब्दी के इस हिन्दी काव्य में मुद्गर, नाल और मलखम्भ को देखकर चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। ग्रामों की चौपालों पर पत्थर के अनेक प्रकार के नालों और मुद्गरों की परम्परा पुरानी है तथा दक्षिण का मलखम्भ उत्तर में लोकप्रिय था।

तत्कालीन हिन्दू और मुस्लिम सैनिकों की जातियाँ, उनके अस्त्र-शस्त्र और गढ़ों को ध्वस्त करने की रीति छिताई चरित में बहुत विस्तार से दी गई है। बड़े-बड़े अभियानों में मार्गों को साफ करने वाले और गढ़ की प्राचीरों को कुदालियों से खोदने वालों के दल भी सेना के साथ जाते थे। हाथी, घोड़ा, ऊंट, खच्चर, नोहौन, नैनाडों से भार वहन एवं वाहन के रूप में काम में लाए जाते थे। ऊंटों पर पानी की मशकें भी लादी जाती थीं। गढ़ के ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर और गरम तेल फेंककर आक्रमणकारी को रोका जाता था। आक्रामक टाटरी बनाकर ओट में आक्रमण करते थे। भगाश्री, ढेकुली जैसे यन्त्रों से गोले फेंके जाते थे और तीर कमान, भाले तथा अनेक प्रकार की तलवारें प्रयोग में लाई जाती थीं। सेना के साथ अनेक प्रकार के ध्वज एवं रणवाद्य रहते थे। तोप और बन्दूकें अभी समरांगण में नहीं आई थीं। दूर तक ठीक लक्ष्य-संधान करने वाले यन्त्रों का प्रयोग होता था। युद्धों का सजीव एवं यथार्थ वर्णन राजाओं-रानियों के, साधारण सैनिकों के और योगियों के वस्त्राभूषण एवं प्रसाधनों के विस्तृत वर्णन इस रचना में प्राप्त होते हैं।

'चन्दवार' के पनघट और सम्मोहक युवतियों की लीलाओं का वर्णन भी सामाजिक दर्शन है। पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त में 'चन्दवार'—चौहान राजपूतों के हाथ में था—नारायणदास लेखक का घनिष्ठ परिचय चन्दवार से रहा होगा।

मैना और छिताई दोनों ही वियोगावस्था में अपने प्रियतम का बाना पहिनकर पुरुष वेष में रहती हैं। दोनों को ही दुष्टियों द्वारा सत से डिगाने की चेष्टा की जाती है किन्तु अपने पथ पर अविचलित रहती हैं। चन्द्रगिरि के चन्द्रनाथ योगी द्वारा सिद्ध का साधन और योग मार्ग का विवेचन तथा राजधर्म के साथ योग का पालन तात्कालीन मान्यताओं के आधार पर विवेचित है।

मृगावती में मोतिया डाह का वर्णन कुतबन की विशेषता है। रूपमिनि विवाहित पत्नी, प्रेयसी मृगावती के साथ शान्तिपूर्वक रहकर अपने आराध्य की अनन्य प्रेम की उपासिका की भांति प्राप्त करती है तथा राजकुँवर की मृत्यु होने पर सती हो जाती है। पर-पीड़ा एवं परोपकार का भी प्रबल समर्थन है। टोना टोटका की मारविणी एवं मालविणी तथा जायसी की नागमती-पद्मावती से मृगावती में समन्वय अधिक है। ब्याह मंडप, भांवरी, नेग देने की प्रथा, बधाई मंगल, हिंगारी-जनाने (दूल्हा से पहेली बुझाने) का प्रसंग है। लोकगीतों में दूरी का निर्देश, प्रचलित तन्त्र मन्त्र, जादू टोना, देवी, देवताओं का भी उल्लेख आया है।

पुत्री को 'धिया,' भाई को 'वीर' वीरन। माया छूना-शपथ खाने के लिये "माथ परद्ध" प्रयुक्त हुए हैं।

सुई मे तागा, महिय न पिये खीर जो जरा, कहावतें–"साप के मुहु आगुरि जब मेलेव," नर गौहारि जस मूल्य क धैरा, " "नदी तीर के बरगुन होई" । "अजुर पानि जैम जिउ मोरा", "जैसे सग रे होय गुन सोई" आदि लोक तत्त्वो की प्रधानता है ।

माधवानल कामकन्दला मे वेश्यावृत्ति पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार से समाज अपने विकृत स्वार्थ के लिये अपने ही आवश्यक अग को उपेक्षित एव पद-दलित करके उसकी काया-छाया मे चद चादी के टुकडे उछालता है । एकता का मूत्र अविच्छिन्न रूप मे जोडने के लिये तत्कालीन समाज मे 'प्रेम' का सदेश दिया गया है यह प्रेम-दर्शन नीति सम्मत काम के आधार पर सुद्ध धरातल पर प्रतिष्ठित है ।

लखनसेन पद्मावती मे लोक विश्वासो को चित्रित किया गया है । यह क्षत्रियों की श्रेष्ठता की मान्यता का युग था । क्षत्रिय राजकुमारी का विवाह ब्राह्मण के साथ अवाछनीय था । ब्राह्मणो मे योग्यता नही हो सकती ऐसा विश्वास भी प्रचलित हो गया था । बाल विवाह का प्रतिपादन एव योगियो द्वारा प्रभावित समाज की झाँकी मिलती है ।

सामाजिक इतिहास की सामग्री:– समाज के विभिन्न वर्ग, उनके कार्य आदि का इनमे सरल अकन रहता है ।

ब्राह्मण का एक कर्म पौरोहित्य स्पष्टत दिखाई देता है । भाटो का राजदूत के रूप मे कार्य करना, न्यौता देने नाई का जाना ज्ञात होता है । नाटक और नाटिकाओ की भी लोकरजन के लिये व्यवस्था थी अनेक नट यही व्यवसाय करते थे । लोग चौसर पासे खेलते थे । स्त्रिया शृंगारिक प्रसाधन के लिये काजल, अगर, तम्बोल, पुष्प, कस्तूरी, केतकी की गध, हाथी दात की चूड़िया, एकावली हार, नूपुर आदि का उपयोग करती थी । महिलाएँ मजूषा (पेटी) मे अपने गहने रखती थी । उत्सवो पर बन्दनवार बाधे जाते थे ।

विवाह मे सप्तपदी, हथलेवा (पाणिग्रहण) आदि विधिया प्रचलित थी ।

समाज मे नगरश्रेष्ठि का स्थान ऊँचा था । उसके साथ व्यापार के लिये निकलते थे । 'मैनासत' मे समुद्र यात्रा का उल्लेख है । वर्णन स्थल यात्रा का ही किया गया है ।

प्रस्तुत रास मे कूप, नगर, सरोवर वर्णन भी आए हैं उनसे तत्कालीन समाज की स्थिति पर अधिक प्रकाश नही पडता । सरोवर वर्णन रूढिबद्ध ज्ञात होता है । मधु-मालती और रामचरित मानस मे भी रूढिबद्ध है । कूप वर्णन एव नगर वर्णन वास्तविक हैं ।

समकालीन समाज मे ज्योतिष के प्रति आस्था एव ज्ञान था । (पंक्ति २४०-२४६) मे पद्मावती शारीरिक लक्षणो को देखकर ही लखनसेन को राजा होना समझ गई थी । स्वप्न मे प्राण भ्रमित होते रहने का भी उल्लेख आया है (४५२-४५३) ।

परोपकार की महिमा (५४७) सत्य का प्रतिपादन (४६७) लोक कल्याण की भावना से किया गया है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :—कला साधना के क्षेत्र में ईस्वी पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतवर्ष की स्थिति क्या थी इसका वर्णन ऐतिहासिक रूप में छिताई चरित में प्राप्त होता है।

ईस्वी पन्द्रहवीं शताब्दी के मंदिर आज भी उपलब्ध हैं किन्तु निवास गृह की साक्षी केवल 'दुर्ग-ग्वालियर' स्थित मानमन्दिर एवं गूजरी महल दे रहे हैं।

मूर्तिकला में मानसिंह ने पीतल के एक बड़े नन्दी और पत्थर के विशालकाय हाथी की मूर्तियां मानमंदिर के सामने बनवाई थीं।

चित्रकला में छिताई चरित में चित्र रचना चित्रों के विषय, एवं उनके सौन्दर्य का अंकन किया गया है कवि केवल दर्शक नहीं उसने चित्रों की सजीवता का आंखों में अनुभव किया है जिसे वह श्रोताओं को सौन्दर्य बोध कराने में सफल हुआ है। *मध्यकालीन चित्रों में हाथ ऊँचा उठाकर मृगशावक को जो चराती हुई नायिका के* श्रेष्ठ चित्र प्राप्त होते हैं।

अलाउद्दीन के समकालीन, भरत मत के सर्वश्रेष्ठ संगीताचार्य, गोपाल नायक को छिताई चरित के कवियों ने अपनी रचना में महत्त्वपूर्णस्थान देकर भारतीय संगीत एवं उसके प्रवर्त्तकों के प्रति आस्था दिखाई है। नायक गोपाल यद्यपि गौण पात्र है। छिताई और समरसिंह के वाद्य कौशल की श्रेष्ठता दिखाने के लिये लिखा गया है। गोपाल नायक के वर्णन में ऐतिहासिक तथ्य भी सामने आये हैं। वह दक्षिण से दिल्ली आया था और छिताई चरित के अनुसार दिल्ली में समरसिंह को वही एक ऐसा व्यक्ति मिला जो दक्षिणी भाषा से परिचित था। इतिहास की साक्षी यह है कि गोपाल नायक फिर दक्षिण लौट गया था। छिताई चरित में गोपाल की भेंट के रूप में समरसिंह को बादशाह की ओर से दिया जाना बताया है और उसके साथ ही वह दक्षिण लौट जाता है।

संगीत की सम्मोहन शक्ति से मानवों के अतिरिक्त वन्य पशुओं, पक्षियों और नागों के विमोहित होने की किंवदंतियां मध्यकाल में बहुत प्रचलित थीं। बैजू बावरा एवं तानसेन के विषय में अनेकों को जोड़ा गया है। इन विश्वासों के आधार पर रागमाला चित्रों की कल्पना की गई है। छिताई चरित में इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। उस काल में मानसिंह तोमर, बैजूबावरा, बख्शू करण एवं पाण्डवीय जैसे संगीताचार्यों की स्वर-लहरी से भारतवर्ष गूंज उठा था।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में वीरसिंह तोमर से लेकर रामसिंह तोमर तक मध्यदेश के सांस्कृतिक केन्द्र ग्वालियर में 'कला' के उच्च आदर्श एवं मान स्थापित हुए जिसने मध्यदेश के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वैभव को समृद्ध किया। ●

खण्ड ४

अध्याय १५

काव्य रूढ़ियां

कथा युक्तियां :—कथावस्तु को आगे बढाने के लिये कथा युक्तियो की सृष्टि होती रहती है जिनका उपयोग अनेक कथाकारो ने किया है। 'दामोदर' ने ऐसी अनेक लोक प्रचलित कथा युक्तियो का प्रयोग किया है :—

(१) जो व्यक्ति १०१ राजाओ को मार सकेगा उसके साथ ही पद्मावती विवाह करेगी यह एक कथायुक्ति है। पद्मावती के इस सकल्प के कारण ही इस आख्यान का कथानक आगे विकसित होता है। इसी के कारण योगी ९९ राजाओ को कुँए में बन्द करके लखनसेन की खोज मे निकलता है।

(२) अधेरे कुँए में पाताल के लिये मार्ग मिल जाना भी एक कथायुक्ति है।

(३) सामोर नगर मे राजा ने ब्राह्मण वेष धारण कर प्रवेश किया। संभव है लखनसेन ने योगी से अपने आपको छिपाने के लिये ऐसा किया हो परन्तु प्रकटतः इसकी आवश्यकता न थी। आख्यान को विस्तार देने एव चमत्कृत करने मे इससे सहायता मिली। स्वयवर के बाद भी केवल ब्राह्मण वेष मे होने के कारण लखनसेन को सिंह मारना पडा और कनकावती के राजा वीरपाल को हराना पडा तब कही पद्मावती विवाह हो सका।

(४) योगी के प्रति लखनसेन का वाचाबद्ध होना अगली युक्ति है पद्मावती से विवाह होने के उपरान्त कथावस्तु का अन्त हो गया था उसे आगे बढाने के लिये योगी द्वारा वचन का स्वरूप बतलाए बिना ही राजा को वाचाबद्ध कर लेना एक कथायुक्ति है। रामचरित मानस मे कैकेयी के तीन वचनो ने ही कथावस्तु को विस्तार दिया है। राम वनवास, अयोध्याकाण्ड के आगे के पाच काडो के कथानक की उसी कारण सृष्टि हो सकी।

और पक्षियो के समान अबाध गति से प्रवेश पाने की मानव की इच्छा प्राचीन काल से है। 'गर्भ' के चार खण्डो मे से एक खण्ड से प्रस्तुत कथा मे प्राप्त होने वाली "इच्छागामी धोती" मानव की इस सामूहिक अतृप्त वासना की तृप्ति का साधन है। योगी सिद्धनाथ, योग सिद्धि द्वारा इच्छागामी था। लखनसेन को इस धोती के रूप मे वह साधन मिल गया था। सामोर से कपूरधारा तक वह बात की बात में पहुँचा देता थी। पचतत्र मे वर्णित एक बढई का गरुड राजकुमारी की अटारी तक पहुँचा देता था। लखनसेन इस धोती की सहायता से राजकुमारी की चित्रसारी तक पहुँच जाता है। कल्पना की दिशा एक है, मूर्त रूप विभिन्न हैं, अरबी के आख्यानो की इच्छागामी दरियाँ इसी भारतीय कथा रूढि की देन हैं। तुलसीदास के 'पुष्पक विमान' मे यही कथा रूढि है कहीं उडन खटोला, कहीं उडने वाले घोडे और कहीं किसी अन्य रूप में यह कल्पना साकार हुई है। जब दामोदर इन इच्छागामियो की ओर अपने भावकों को ध्यानाकृष्ट करता है तब वह कौतूहल को जगाता है :—

तिण्ण भुवन माहि जोयू वालि, आवागमण दुतउ तिणि कालि ॥

जिस काल की कथा वह सुना रहा। उस काल में तीन भुवनो मे आवागमन था।

(६) **चित्रसारी में राजकुमार**—महल की दुर्गम अट्टालिका मे पलने वाली सुन्दरी तक पहुँचने की पुरुष मन की कामना फूट पडी है। पचतत्र मे साहसी युवक बढई ने एव 'बाण' की अपूर्ण सुन्दरी उषा के लिए अनिरुद्ध ने तथा 'विद्या' के 'सुन्दर' ने वर्जित कक्ष मे प्रवेश कर यही किया जो कि लखनसेन ने धोती के सहारे चन्द्रावती की चित्रसारी में पहुचकर किया। लक्ष्य तक पहुच के विभिन्न माध्यम हैं।

(७) **स्त्री हत्या का भय** :—अत्यधिक शारीरिक शक्ति से युक्त कामान्ध के वश मे पडी हुई कोमल काया सुन्दरी लोकाख्यान के श्रोतावर्ग को स्तब्ध और समुत्सुक कर देने वाली कथा रूढि है। पद्मावती जैसी सुन्दरी वन मे क्रूर योगी सिद्धनाथ के हाथ में पड गई। श्रोता वर्ग अवाक् हो गया। पद्मावती रूप की राशि भी है। किन्तु, एकनिष्ठ पातिव्रत की भी प्रतीक है। कथाकार ने उसकी रक्षा के लिये युक्ति निकाली उसने रूढि का प्रयोग किया। पद्मावती ने योगी से कह दिया कि "वह उसे अपना पिता मानती है "और यदि वह उसे उसके पति से न मिला कर अनाचार करेगा तब वह आत्महत्या कर लेगी। जिस पद्मावती की रूपज्वाला से दग्ध होकर सिद्धनाथ योगी योगभ्रष्ट हुआ और अनेक राजाओ को कुँए मे बन्द किया एव अकरणीय कृत्य किये उसी पद्मावती की आत्महत्या करने की धमकी के सामने वह तत्क्षण झुक गया। समाज में व्याप्त स्त्री हत्या के अपराध की जघन्यता के कारण श्रोताओ को यह रूढि स्वाभाविक ही ज्ञात हुई।

(८) माया-युद्ध :—योगी के एक एक रक्त बिन्दु से एक-एक योगी की उत्पत्ति, आकाश में होने वाले युद्ध आदि आकर्षक और कौतूहलवर्द्धक कथा रूढ़ि के रूप में प्रयोग किये गये हैं। मधुमालती एवं रामचरित मानस में यह रूप पाया जाता है।

(९) भ्रमर में योगी के प्राणों का निवास :—योगी सिद्धनाथ के सिर पर एक भ्रमर रुण झुण करता रहता है तब तक वह नहीं मारा जायगा योगी भी नहीं मर सकता। रावण के नाभिकुण्ड में पीयूष का निवास बतलाया गया है और उसमें बाण मारने के पश्चात ही रावण-वध सम्भव हुआ था।

(१०) तैंतीस कोटि देवता :—तैंतीस करोड़ देवताओं के अस्तित्व की कल्पना कितनी प्राचीन है। इसका विचार हमें यहाँ अभीष्ट नहीं है। प्रस्तुत कथाकार द्वारा वर्णित सरोवर पर तैंतीस करोड़ देवताओं के मंदिर हैं (१७१) पद्मावती के स्वयंवर मंडप में भी अन्तरिक्ष में देवता कौतुक करते हैं (३०५)। राजा हम जब लखनसेन को विदा करते समय पद्मावती और चन्द्रावती को एक ही आसन पर आंचल बांधकर बैठाता है तब तैंतीस कोटि देवता हर्षित होते हैं (१८६) लखनसेन के धनुष सधान करने पर देवराज इन्द्र भी आकाश में भागते हैं (६५२) देवताओं का इस प्रकार का उपयोग लोक कथाओं की कथा रूढ़ि बन गया था। तुलसीदासजी ने यह कथारूढ़ि प्रचलित लोक कथाओं से ग्रहण की है।

(११) कर्मफल—कर्मवाद भारतीय लोक कल्पना में विभिन्न स्रोतों से गहरी जड़ें जमा चुका है। अनेक साम्प्रदायिक चिंतनों ने तथा राजनीतिक पराजयों ने प्रत्येक दुर्घटना को कर्मफल के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रत्येक प्रबन्ध काव्य में कर्मफल के विवेचन की प्रधानता पाई जाती है (१४१, ३५५, ४३७, ४७०, ५००) में यह कर्मवाद दामोदर के कथानक में आ गया है।

(१२) दृष्टान्त कथाएँ :—यह भी कथारूढ़ि है। दामोदर ने केवल महाकाव्यों और पुराणों में प्रसिद्ध आख्यानों का दृष्टान्त दिया है।

(क) काल ने अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्तियों को भी नष्ट कर दिया—उदाहरणतः—

(१) राम (२) युधिष्ठिर (३) हरिश्चन्द्र (४) परशुराम (५) नल दमयन्ती (६) दुर्यो-धन (७) मांधाता (८) सगर (९) गांगेय (१०) पांच पांडव।

(ख) वचन पालन के लिये दुःख सहना चाहिये उदाहरणतः—

(१) हरिश्चन्द्र (२) पाण्डव।

अन्य कथा रूढ़ियों में 'विवाह की वय का निरूपण,' सरोवर वर्णन, नगर वर्णन, प्रथम दृष्टि में प्रेम, विवाह वर्णन, ज्योनार वर्णन, वन-श्री वर्णन, प्रकृति वर्णन, आदि

रूढ़ि के रूप में इस युग के अनेक आख्यान काव्यों में मिलता है। प्रत्येक कवि की अपनी वर्णन शक्ति के अनुसार उनमें रूढ़िपालन के साथ काव्य चमत्कार का भी प्रवेश हो जाता है।

(१३) ज्योतिषी की भविष्यवाणी —इसका कथा रूढ़ि के प्रकार से प्रेम-पात्र के मिलने एवं विरह कराने में कथाकार ने प्रयोग किया है। मझन की मधुमालती में यह द्रष्टव्य है।

(१४) अप्सराओं द्वारा अलौकिक कार्य साधना :—राजकुमार को सैया विक्रमराज की कन्या मधुमालती के समीप पहुंचवा दी गई जिससे जागने पर दृष्टि विनिमय एवं पूर्व प्रीति का जागरण हो सके।

(१५) त्रिदेव की शपथ एवं पाणिग्रहण :—'नीति सम्मत काम' की प्रतिष्ठा के लिये कथाकार मझन ने त्रिदेव की आन दिलाई है और त्रिदेव की शपथ लेने तक सहवास से प्रेमी-प्रेमिका को विरत रखता है। चतुर्भुजदास निगम ने अपने तरुण 'मधु' नायक को वेद विहित पाणिग्रहण न होने तक मालती मत्तयौवना से अछिन्न रखता है।

(१६) योगी वेष —योगी वेष में नायक की क्रिया नायिका की खोज के लिये कराई गई है तथा खलनायक का चमत्कारी रूप भी योगी वेष में दिखाया गया है।

(१७) मनुष्य का पक्षी बन जाना :—अभिमंत्रित जल के प्रभाव से नायिका को पक्षी बना दी गई। रूपमंजरी के पानी पढ़कर फेंकते ही मधुमालती पक्षी बन जाती है। ताराचंद के द्वारा उद्धार हुआ।

(१८) राक्षस द्वारा अपहरण एवं बन्दिनी बनाई जाना —मझन की 'पेमा' नायिका की बालसहेली को राक्षस द्वारा अपहरण कराकर बन्दिनी बनाया गया है जिससे मनोहर नायक को खोज के मार्ग में पेमा के अचानक मिल जाने से लक्ष्य की दिशा में बढ़ाया जा सके। अपहृता के उद्धार के प्रसंग में अलौकिक एवं चमत्कृत करने वाली कथा रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। राक्षस चमत्कारी है। मारी-कांटी देहगण भी जोड़ लेता है, तथा युद्ध करता है। अमृत वृक्ष में उसका सूक्ष्म रूप से वास है। ये कौतूहल के तत्व लखनसेन पद्मावती रास में 'दामोदर' ने भी दिए हैं तथा 'बेताल पचीसी' में भी जिनकी प्रमुखता है।

(१९) 'मुद्रिका' प्रणय का चिह्न :—'मुद्रिका' से पेमा ने मनोहर के प्रणय सम्बन्ध की मधुमालती अपनी सहेली को प्रतीति कराई तथा 'मनोहर' की ही चर्चा की प्रामाणिकता पर विश्वास कराया। गोस्वामी तुलसीदास ने बन्दिनी सीता को 'राम के दूत' होने की प्रतीति इसी 'मुद्रिका' के माध्यम से कराई है। मुद्रिका को Episode के तौर पर अंग्रेजी कथाकारों ने भी ग्रहण किया। 'पोरशिया' आदि के प्रणय की मुद्रिकाओं

के विनिमय से इसी कथा रूढ़ि के सहारे कथानक का विकास एवं कौतूहल की उत्पत्ति हो सकी थी।

(२०) पक्षी द्वारा चर्चा —'राजकुअर–मृगावती' के मिलन की चर्चा में पक्षियों द्वारा सहयोग की भावना प्रदर्शित की गई है। निगम की मधुमालती में वियोग कथा पक्षी के सवाद द्वारा कहलाई गई है। जायसी ने पद्मावत में भी इसका उपयोग किया है। पूर्वानुराग, अथवा नायक अथवा नायिका के सौन्दर्य की ओर आकर्षण उत्पन्न करने की विधि के रूप में भी प्रयोग हुआ है। जातक ग्रहलता तथा पंचतन्त्र के आधार पर शुक-सारिका द्वारा सारा आख्यान कथन तथा तोते-हंस द्वारा सदेश वहन आख्यान काव्य के अंग बन गए।

(२१) प्रतीकात्मक कथा रूढ़ियां:—नायक-नायिका को एक ही प्राण और दो शरीर होने की प्रभावात्मक उक्ति के लिये कुतबन ने 'प्रजापति' के एकाकी जीवन से 'दो दल अन्न' की भांति द्विविध रूप हो जाने की बात कही है। निगम ने भी 'जिउ एकै–दुइ गात 'पहिले ही कह दिया है। श्रीमद्भागवत से 'चीर-हरण' के आधार पर आत्मा-परमात्मा के संयोग का प्रतीकात्मक रूप ग्रहण किया है। सूर्य-चन्द्र, भ्रमर एवं लता पुरुष-स्त्री के प्रतीक बन गए। चकवा-चकवी भी वियोग दशा के रूप में लिए गए। गुणों के वर्णन के आधार पर स्त्रियों के प्रकार के वर्गीकरण में 'पद्मिनी' नायिका के रूप में ग्रहण की गई।

(२२) साधुसंत के प्रसाद से सन्तति:—राजा सूरजभान निःसतान थे तपस्वी के पिंड प्रसाद से 'मनोहर' का जन्म हुआ। यह कथा रूढ़ि अनेक काव्यों में प्रयुक्त हुई है।

(२३) छलनी (दूती):—'छिताई' चरित' में पद्मिनी छलनी (दूती) की कपटमयी चर्चा में भाग लेकर अपनी तेजोमय प्रतिमा निष्कलंक रख सकी। 'साधन' के मैनासत में 'मैना' का सत 'दूती' न डिगा सकी। 'दूती-कुटनी' की विडम्बना भी हुई। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित' में 'कैकेयी' बहुत कुछ इसी का रूप है।

(२४) राम-सरोवर के तट पर एवं देवी पूजन के समय नायक-नायिका का दृष्टि निक्षेप भी काव्य रूढ़ि बन गया।

(२५) प्रकार एवं सांस्कृतिक वर्णन:—भवनों, प्रासादों की चित्रकारी, मंडप, वृक्ष, ज्योनार में पकवानों का विवरण, पक्षियों के प्रकार का वर्णन आदि भी काव्य रूढ़ि बन गए और इसी आधार पर पौराणिक आख्यान काव्यों में महाभारत में विष्णुदास ने तथा लौकिक आख्यान काव्यों में मृगावती, छिताई चरित, मधुमालती आदि में इसका वर्णन हुआ है।

(२६) 'कथा के छेउ' और नराइन देउ की जय-छिताई चरित्र, हरिश्चन्द्र पुराण और विष्णुदास के स्वर्गारोहण मे इस प्रकार की कथारूढि है।

फारसी मसनवी शैली के लौकिक आख्यान काव्यो मे एक ही प्रमुख कथा रूढि है और वह है नायक की ओर से नायिका की खोज एव उसकी प्राप्ति की आशा। नायिका को उन्होने खुदा का प्रतीक माना और नायक को 'बन्दे' का प्रतीक माना। लौकिक दृष्टि से वे साधारण प्रेमी-प्रेमिका हैं। चन्दायन, मृगावती, मझन की मधुमालती, आलम के माधवानल कामकन्दला मे लोरक, राजकुमार, मनोहर एव माधव नायको द्वारा इसी कथा रूढि के आधार पर प्रयास कराया गया है। किन्तु मझन की मधुमालती और 'चन्दायन' की चन्दा भी मनोहर और लोरक के विरह मे खोजग्रस्त हैं।

दूसरी फारसी मसनवी शैली के काव्यो की प्रमुख रूढि है विरह की ऊहात्मक उक्तियां, जिनकी छाया लौकिक आख्यान काव्यो तथा सतसई आदि मे पड़ी है। विरह की तीक्ष्णता तथा उसकी ज्वलन की अग्नि की नाप-जोख करती उक्तियां, तन का क्षार होना, कोयला हो जाना, पीपल के पत्ते की भांति पीला पड जाना आदि इसकी प्रमुख अभिव्यक्ति की शैली है।

तीसरी प्रमुख रूढि मुस्लिम सूफी आख्यानकारो की यह रही कि उन्होने ग्रथ के प्रारभ मे पैगम्बर, गुरु पीर, की वन्दना की है। अन्य मे गणेश शारदा, ईश्वर, गुरु, देवस्तुति की गई है।

इस प्रकार कथायुक्तियो एव कथा रूढियो के सहारे लौकिक आख्यान काव्यों में रसात्मकता, सजीवता एव विचित्रता और कौतूहल का प्रवेश हुआ है। पात्रो के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। कथानक के विकास एव निर्वाह मे सुगमता आई है और व्यजना को शक्ति मिली है। इन्ही काव्य रूढियो के सहारे पूर्ववर्ती एव परवर्ती कवियो के काव्यो का तारतम्य समझने मे भी सहायता मिली है।

* * *



खण्ड ४

अध्याय १६

परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

आख्यान काव्यों में ईस्वी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में काम कथा अथवा रस कथा कही गई है। इन आख्यान काव्यों में निम्नलिखित आख्यानों की गणना की जाती है :—

(१) ऐतिहासिक आख्यान काव्य (२) साम्प्रदायिक आख्यान काव्य तथा (३) लौकिक आख्यान काव्य।

इस वर्गीकरण का आधार उनके कथानक, नायक एवं उद्देश्य हैं। आख्यान, कथा, कहानी एवं चरित आदि शब्दों का प्रयोग जिस प्रकार की रचना के लिये हुआ है उन सबको एक ही वर्ग में रखकर अध्ययन सुविधाकारक है।

ऐतिहासिक आख्यान काव्यों में ऐतिहासिक घटनाओं, व्यक्तियों अथवा वंशों के कथानक अथवा आधार बनाकर लिखे जाने वाले ग्रन्थों में मध्यकाल में पद्यबद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जिनमें काव्यगुण भी न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होता है। राजस्थान के ख्यातिपोथी, पट्टावली, वंशावली आदि मुख्य घटना वर्णन की रचनाएं हैं। केशवदास के वीरसिंहदेव चरित एवं जहांगीर जस चन्द्रिका, न्यामत खां उपनाम जानकवि के ग्रन्थ कायम खां रासो एवं अलफखां की पैड़ी, गोरेलाल का छत्रप्रकाश, पद्माकर का हिम्मतबहादुर विरदावली, सूदन का सुजान चरित्र, खड्गराय कृत गोपाचल आख्यान आदि उल्लेखनीय हैं। "कल्याणसिंह कुडरा" का झाली का रायसो, "गुलाब" का करैया का रायसो, अत्यन्त उत्कृष्ट, वीर दर्पपूर्ण, ऐतिहासिक आख्यान काव्य हैं। आत्मकथा भी इसी वर्ग में आती है और बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' हिन्दी की मध्यकालीन आत्मकथा है। ऐतिहासिक आख्यान काव्यों की तालिका देना अनावश्यक है। केवल इन उदाहरणों से उनके कथानक, नायक और उद्देश्य पर विचार किया जा सकता है। ऐति-

हासिक आख्यान मे कथानक और नायक इतिहास सम्मत घटनाऐं एवं व्यक्ति हैं। इनका उद्देश्य कथानक मे यथासभव यथा तथ्य वर्णन करना होता है। इनके लेखकों का दृष्टिकोण भी सहानुभूतिपूर्ण तथा प्रशसात्मक रहा है। कवि राजवश का आश्रित रहने से उसका इतिहास उसने लिखा है अथवा उसके कथा नायक के प्रति उसने श्रद्धा व्यक्त की है।



राम, कृष्ण, उदयन, सदयवत्स, विक्रमादित्य, पृथ्वीराज, भोज, जगदेव, बिल्हण, गोविन्दचन्द्र माधवानल, लोरिकशाह, हरदौल आदि मूलत ऐतिहासिक व्यक्ति थे परन्तु जिस रूप मे वे विविध आख्यानो मे आये हैं वे ऐतिहासिक नही कहे जा सकते। उद्देश्य भेद से वे ऐतिहासिक आख्यान काव्यधारा से दूर अन्य वर्गों मे गणना करने योग्य हैं।

साम्प्रदायिक आख्यान काव्य —भारत के मध्यकालीन साहित्य मे धार्मिक प्रचार का माध्यम काव्य को बनाया गया। कबीर तुलसी, सूर, नरसी, आक्सा, प्रेमानन्द, दयाराम, ज्ञानदेव, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु मूलत धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होने अपना माध्यम काव्य को चुना। हिन्दी मे जैन और सूफी धर्म प्रचारको के आख्यान काव्यो का प्रधान उद्देश्य भी यही था। उनके सिद्धान्तों को जनता तक पहुँचाने का साधन काव्य गुण ही था। वर्ण्य विषय, प्रतिपादित, आराध्य अथवा सम्प्रदाय की दृष्टि से रामचरित्र, कृष्णचरित्र, जैन आख्यान तथा सूफी आख्यान हिन्दी मे प्राप्त होते हैं। इनके कथानक पात्र तथा उद्देश्य इनके वर्ग निर्धारित करने मे सहायक होते हैं। आख्यान रचना विधा अथवा काव्य गुण का इस वर्गीकरण से कोई सम्बन्ध नही हो सकता।

(अ)—हिन्दी के आरभिक काल मे सर्वप्रथम कृष्णचरित्र पर आख्यान काव्य प्राप्त होते हैं। हिन्दुओ ने अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रयास मे महाभारत तथा गीता के क्षात्र तेज पर दृष्टि डाली। लखनसेनी, विष्णुदास, मेघनाथ, भीम, ईश्वरदास, लालदास, परमानन्द, लालदास आदि ने पौराणिक आख्यानो मे कृष्णचरित्र, भागवत दशम स्कन्ध तथा आंशिक उपाख्यान उषा—अनिरुद्ध कथा, काव्य मे कही इसकी परम्परा मे रामदास नीमा, सरोज (१६८४ ई०), भारतशाह (१७४० ई०), कुंजदास (१७७४ ई०) एव कुम्भदास ने ऊषा—अनिरुद्ध कथा तथा उषाचरित आख्यान काव्यों की रचना की। सूर ने पूर्ववर्ती विष्णुपदो एव वैष्णवपदो के आधार पर कृष्ण चरित्र दशम स्कन्ध को अपने पदों का विषय बनाया। कृष्णचरित्र आगे चलकर स्फुट मुक्तक छन्दों का विषय बन गया। नन्ददास की रूपमञ्जरी अथवा अक्षर अनन्य की 'प्रेमदीपिका' जैसी रचनाओं में आख्यानत्व, कवित्व तथा सम्प्रदाय अधिक ऊपर आया है। कृष्ण चरित्र दब सा गया है। वर्तमान काल मे कुछ श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य लिखे गये। श्री मैथिलीशरण गुप्त का 'द्वापर,' हरिऔध का 'प्रियप्रवास', उसके एक अश के सम्बन्ध

मे है। दिनकर का 'कुरुक्षेत्र,' महाभारत के आधार को लिये है। 'अचित' की कृष्णायन, सुरभिदान सीता रची गई। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र का कृष्णायन समग्र कृष्ण चरित्र के विषय में श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य है।

(ब)--शक्तिशील एव सौन्दर्य समन्वित गौरव गरिमा युक्त राम का महान् व्यक्तित्व हिन्दुओं के गौरव, पौरुष और नीति सस्थापक के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। इसे गोरख और कबीर ने जन मन मे स्थापित किया। सूरजदास, ईश्वरदास के सीतापद तथा भरत मिलाप प्राप्त होते हैं। रामचरित पर हिन्दी का सर्वप्रथम ग्रन्थ महाकवि केशवदास की रामचन्द्रिका है। रामचन्द्रिका मे राम का दुष्टदलन और लोक सस्थापक का रूप प्रतिष्ठित हुआ है। भारतीय समाज तंत्र पर जिन नवीन राक्षसों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे उनके सहारक के रूप मे केशवदास के राम आविर्भूत हुए थे। रामचरित को लोक व्यापक, जन कल्याणकारी एव लोकरजक विधायक तुलसी ने किया। यद्यपि विनयपत्रिका मे काव्य गरिमा विशेष है किन्तु वह विशिष्ट वर्ग के लिये उपादेय है जबकि रामचरित मानस जन-जन के हृदय का हार है। वह युग की प्रतिनिधि रचना है जिसमे पूर्ववर्ती विष्णुदास का पौराणिक कथाओं का अश, लखनसेन पद्मावती रास की अद्भुतता और अप्राकृतिकता, विरहृष चरित्र 'रासो' का शृंगार, मानिक की वेतालपच्चीसी की कौतूहलपूर्णता एव विना ओर छोर की अन्तर्कथाओं का का प्रवेश एव वार्ता, छिताई चरित, मधुमालती का 'नीतिसम्मत काम, 'मैनासत' का प्रेम मे आध्यात्मिक तत्व, आख्यान काव्यो से तथा आत्मीयता, केशवदास की 'रामचन्द्रिका' से ग्रहण की गई। और इन सबके पूर्वाधार मे तुलसी एकमात्र प्रतिनिधि महाकाव्य अपने युग का भेंट करने मे समर्थ हुए। तुलसी के रामचरितमानस मे इन सबका प्रभाव स्पष्ट है। जायसी पर भी इन्ही पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव है।

रामचरितमानस जैसे समाज सस्थापक महाकाव्य का बीज उपर्युक्त लौकिक आख्यान काव्यो मे प्राप्त होता है। इसके प्रमाण मे कतिपय उदाहरण पर्याप्त होंगे यदि विस्तार से बताया जाय तो पृथक शोध ग्रथ अपेक्षित होगा अतएव कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है।

महाभारत भाषा मे विष्णुदास की गणेश वन्दना मे कवि की प्रवृत्ति रमने की है जबकि तुलसीदास की गणेश वन्दना मे कवि के मागने की प्रवृत्ति है। विष्णुदास की गणेश वन्दना द्रष्टव्य है:—

[1] प्रनवहुं गवर पूत गननाहू। सिद्धि बुद्धि वर देहुं अयाहू।
ऊंदर चढ्यौ भवै दिन राति। विष्णुदास सुमिरै गनपाती ॥१॥

---

१ छिताई चरित के परिशिष्ट २ पृष्ठ १६० पर उद्धृत विष्णुदास रचित महाभारत कथा भाषा की प्रतिलिपि दतिया राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त विद्यामंदिर, मुरार मे सुरक्षित है।

गजमुख ऐकदंत बुधियानू । वीना सानु करै रस सानू ।
फरसा निर्मल सोहै पानी । प्रनवत होहि मधुर सुर वानी ॥२॥
सिरहू सिन्दूर कानु मदुपरियो । ता रस लोभ भ्रमर गुजरियौ ।
अहनिसि द्वै बासुकि मेमतू । सुमिरत देही बुद्धि तुरन्तू ॥३॥
ब्रह्मा सुमिरयो सिद्धि करता । नागराज धर सीस धरता ।
हरि सुमिरयो हिरनाकुश मारो । सुमिरत तासु गई भौ भागी ॥४॥
सुमिरि देवि महिषासुर मारयो । शंकर सुमिरयो त्रिपुर सघारयौ ।
सुमिरि सु त्रिभुवन जिते अमगा । सुमिरि सिद्धि मुनि लही असगा ।
नारायन बलि छल्यो पताला । सुमिरि देवगन वैं युदियाला ।
नाटारव रच्यो जगदीसा । सुमिरै देव कोटि तैंतीसा ॥६॥
हीरा मुकुट नाग उर हारो । घूंघर चलन करै झनकारो ।
खरो मनोहर नाचत सोहै । सुर नर नाग भवन मन मोहै ॥७॥
साहर सोखु कियो जिहि खेतू । राहुरि उत्तरि बद्‌यो सर सेतू ।
विघ्न हरन जो करै पसाऊ । रोगु कलकु न छीयै काऊ ॥८॥
सुमरहिं पुत्र कला गुन हीना । मूरख होहि चतुर परवीना ।
जे नर सुमिरहु रन मह जता । ते बैरी दल जितहिं अनन्ता ॥९॥
भारथ माखौं ताहि पसाई । पुनि सारद कें लागौं पाई ।
मोहहिं सभा सुनत यह ख्याती । कौरव पाडव की उतपाती ॥१०॥

दोहरा

भक्ति विनायक की करौं, पुनि सारद सिर नाइ ।
सुर रक्षक असुर निकर जिन्ह तें कथा सिराइ ॥१॥

विष्णुदासने गणेश को नाट्य (गीति नृत्य और वाद्य) का देवता माना है। वे सगीत और काव्य के अधिष्ठाता हैं। नारायनदास ने भी इसी रूप में वन्दना की है :—

वस्तु बन्धु

सुमति सामी सुमति सामी वीर गणनाहु
नागहार नव रग रसु समयो फुनि तुय चरन ।
लम्बोदर-ऊंदर चढिउ सुमति देहु जिह कथा उपजइ
सिरि सिंदूर उज्जल दसन घोषर सुर नर मोह
कवि वै नारायण सुमति लगि शरन नवइ कवि जोह ॥१॥

छन्द

कान कुंडल जडित उर हार गुण गंभीर वषाहु ।
देहि बुधि जिउ होइ सिधि एक दत गणनाहु ॥

मोहइ सुर सभ घरहि धरि नादु करइ नव रगु ।
लबोदर सोहइ त्रिभुवन मोहइ अगमु अपार अभंगु ॥२॥

चौपाई

दय मति सामी मोहि अभगू । मोहि प्रणामु करउ अष्टगू ।[1]

गोस्वामी श्री तुलसीदास ने इस प्रकार गणेश वन्दना की है :—

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवरवदन
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥१॥
×   ×   ×
मूक होइ बाचाल पगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन ॥२॥[2]

उपर्युक्त अंशों से स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुदास, नारायणदास की गणेश वन्दना और तुलसी की गणेश वन्दना इन तीनों के तुलनात्मक विचार से ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी ने गणेश वन्दना करने में उड़ान भरी है जबकि पूर्ववर्ती कवियों ने जमकर वन्दना की है । तुलसी की भाषा सुविकसित है और भावों मे गहनता है ।

राम सरोवर :—१५, १६वी शताब्दी ईस्वी की रचनाओं में नगर का 'रामसरोवर' एक विशेष कथारूढ़ि है । नायक-नायिका के प्रेम मलाप तथा कथा को आगे बढ़ाने वाली विशेष घटनाएं रामसरोवर के तीर पर ही घटित होती हैं । दासो के लखनसेन पद्मावती रास तथा चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती दोनों में ही रामसरोवर का विशद वर्णन है ।

मधुमालती[3]—कबहुक राम सरोवर जाय, अगी जूप मानु चौंक भुलाय ॥१५॥

(दूहा)

राम सरोवर ताल की सोभा कही न जाय ।
सेत बरण पंकज तिहा 'मुनिवर' रहे लोभाय ॥१६॥

(चौपई)

सोभा कोण राम सर कहे बहुतक तिहां विहंगम रहे ।
प्रफुलित कमल वास महमहै । वोपमा 'मान सरोवर' लहै ॥१७॥

---

१. छिताई चरित, पाठ, पृष्ठ ३ से उद्धृत ।
२ श्रीरामचरित मानस-तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, (सं० २०१३ नवम संस्करण, मझला साइज, गोरखपुर) पृष्ठ ३०
३. चतुर्भुजदास-मधुमालती वार्ता-सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पाठ, पृष्ठ ३

अबल किती इक पानी भरै। चितवत कुम सीस तें परै।
रीतें कलस हाथ तें गिरै। भूली मानुं बिना प्रत मरै ॥१८॥
मालती 'एक बात' सुन पाई। मधु देखन कु मनसा धाई।
मन की काहू कह न सुनावैं। जैसे चातृक स्वाति कु घ्यावैं ॥१९॥
+ + +
'एह' बात सुनिहै नृप ईस। कहा कुंवर सरवर की चोस ॥२१॥
(मधुमालती वार्ता)

गोस्वामी तुलसीदास :—

जे गावहि यह चरित संभारे, तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।
अति खल जे त्रिपइ बग कागा, एहि सर निकट न जाहिं अभागा।
सबुक भेक सेवार समाना, इहा न विषय कथा रस नाना
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥[1]

जहा हिन्दी प्रेमाख्यानकारों ने 'राम सरोवर' को प्रेमी–प्रेमिका के खोज का स्थान, मिलन का स्थान एवं प्रणय की आराधना का स्थान बनाया है वहा तुलसीदास जी ने 'राम सरोवर' को 'काम' विषयक साधना का केन्द्र न बनने देकर उसे चतुर्वर्ग की साधना का दिव्य केन्द्र बनाया जिसमे धर्मकथा एवं कामकथा की नीतियुक्त समन्वित निष्पत्ति हुई और मानव के उच्चतम विकास का लक्ष्य सपन्न हुआ।

कलिजुग वर्णन :—विष्णुदास का कलिजुग वर्णन तुलसी की अपेक्षा मौलिक है। विष्णुदास ने 'स्वर्गारोहण' रचना में कलिजुग वर्णन इस प्रकार किया है।[2]

कलि मैं कन्या बेचै बापु। महा जू कलि मे चलि है पापु ॥१६॥
कलि मे राजा करैं अकाजु। बेटी दै दै करि है राजु
कलि मे बहू न माने सासु। ऊलटो ताहि दिखावै त्रासु। ॥१७॥
पुत्र पिता की कही न करै। अपु मन भावै सोई करै ॥
कलि मै मऊ कुघुजुफुद्धम देही। अरु न आपनो बद्धा लैहो ॥१८॥
कलि के विप्र करैं न सटकर्म। चलि है सूद्र आपने धर्म ॥२०॥
कलि के विप्र बिचरि है देव।
महू मोरे मदु मछरी खाई। बिन असनानें भोजन कराई ॥

१. रामचरित मानस, बालकाण्ड, ३७। १, २, ३ (दोहा–चौपाई)
२. 'स्वर्गारोहण' –विष्णुदास खोज रिपोर्ट १९२९–३१ पृष्ठ ६२६–२७। इसकी प्रतिलिपि डॉ० शिवशरण शर्मा, दतिया के पास सुरक्षित है. उसके सभा विष्णुदास की रामायण भाषा काव्य (रचना सम्वत् १४९९ वि०) की प्रतिलिपि विक्रम सम्वत् १९२० की सागर विश्वविद्यालय में होने की सूचना उज्जैन मे श्री नन्ददुलारे वाजपेयी से भेंट करने पर मिली थी किन्तु श्री सोमनाथ भिलाकारी प्राप्त न हो सकी।

गोस्वामी तुलसीदासजी के कलिजुग वर्णन की पंक्तियां कुछ श्रीमद्भागवत का अनुवाद मात्र प्रतीत होती हैं :—

सुन व्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार ॥ तुलसी–उत्तरकाण्ड (१०२ क)

कलौ दोष निधे राजन अस्ति ह्येको महान गुणः ।
कीर्त्तना देव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत । (श्री मद्भागवत, १२।३।५१)

कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ।
(तुलसी–उत्तरकाण्ड (१०२ ख)

तुलसीदास जी ने कहा है :-

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहि बिप्र गुर घात ॥ (तुलसी–उत्तरकाण्ड (९९ क)

इसी भाव को लेकर भागवतकार की यह उक्ति है—

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्त सौहृदा :
त्यज्यन्ति च प्रियान प्राणान हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ (भागवत, १२।३।४१)

तुलसी— द्विज श्रुति बचक भूप प्रजाशन (९७ ख–१) उत्तरकाण्ड
भागवत—राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदर परा द्विजाः (भागवत १२।३।३२)
मूढ़ करहिं जप तप व्रत दाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥ (९९ ख–४) उत्तरकाण्ड
सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव बिप्र श्रुति संत विरोधी ॥ (९८ ख–२) उत्तरकाड
असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं । (९८ क)
मारग सोई जा कहुं जोइ भावा, (९७ ख–२) उत्तरकाण्ड
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं । (१०० ख–२) उत्तर०
रिपु रूप कुटुम्ब भये तब तें (१०० ख–३) उत्तरकाण्ड
विष्णुदास—(स्वर्गारोहण पर्व)[1]

कलिजुग देव पाप की रासी । साध लोग छांडेंगे जासी ।
कलि में ऐसी चलि है राई । जाति बड़ो बिस्वा घर जाई ॥
और कहों सब कलि के भेवा । कहत सुनत जग कौनों देवा ॥
ब्रह्म कुंड तुम करो अस्नाना । और अचवो तुम अमिरत पाना ॥

तुलसी[2]— बरन धर्म नहि आश्रमचारी । श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥
पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥

---

1. खोज रिपोर्ट, १९२९–३१,पृष्ठ ६२७–६२८)
मध्यदेशीय भाषा–परिशिष्ट पृष्ठ १७८ पर उद्धृत ।
2. तुलसी–उत्तरकाण्ड, ९७ ख (१), ९९ ख (१), (४)

तेइ अभेद वादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥१॥
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी ॥४॥

उपर्युक्त अंशो से स्पष्ट है कि विष्णुदास इस प्रकार का कलिजुग वर्णन मौलिक रूप में तुलसी के बहुत पहले कर चुके थे। तुलसी पर कलिजुग वर्णन में श्रीमद्भागवत तथा विष्णुदास की छाया है। तुलसी का एक उदाहरण वर्षा वर्णन का लीजिये।

बुन्द अघात सहैं गिरि कैसे ?

भागवतकार ने लिखा है :—

गिरयो वर्ष धाराभिः हन्य माना न विव्यथुः
अभिभूयमाना व्यसनैं यथाधोक्षज चेतस. ॥ (भागवत १०।२०।१५)

छिताई चरित में सौरसी (समरसिंह) नायक की एकपत्नीव्रत निष्ठा प्रदर्शित की गई है तथा इसी प्रकार 'छिताई' के लिये भी पर पुरुष पिता पुत्र एवं बंधु के समान है यथा :—

बिन सौरसी पुरुष जे आना, पिता पुत्र ते बन्धु समाना।
तेहि पुर पतिव्रता जे नारी, ते मन माहिं यों कहइ विचारी।
जो यहु क्रिया विधाता करई, अइसो सुत हमरे औतरई।

+ + +

ताकउ सुत सउरसी सुजाना, मुद्रावत सो मदन प्रवाना।
मानइ मुदिगिरि फैरे नाला, बयो सरीर जे त्रिदहि रसाला।
सब गुन राजनीति व्यौपरई, पर अस्त्री पर दिष्ट न धरई।

+ + +

मेरे ग्रेह एक वर नारी (छिताई चरित)

इस प्रसंग में परवर्ती काव्य रामचरित मानस के यह अंश उद्धरणीय हैं जिनमें इन भावों की छाया है। यथा :—

उत्तम के अस बस मन माही, सपनेहु आन पुरुष जग नाही।
मध्यम पर पति देखइ कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।

+ + +

मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।

+ + +

कुंअर मन मे मैना बसई, अवर न देखू तिरिया असई (मैनासत)

मंझन ने जेठ वर्णन में विरह तीव्र अनुभूति एव विषम वेदना प्रकट की है :—

जेठ सखी मोहि निसि दिन दहना, सीतल सेज साइं जेहि लहना।
एक वियोग दूसरे बनवास, तिसरे कोइ न साथ।
चोथे रूप विहूनी, मरों तो म्रित्यु न हाथ।
+ + +
मोहि तन आगि विरह पर जारा, सरद चांद मोहि सेज अंगारा। (मंझन)

अशोक वाटिका मे सीताजी परम विरहाकुल हैं और उन्हे भी चन्द्रमा अग्निमय प्रतीत हो रहा है :—

पावक मय ससि स्रवत न आगी, मानहु मोहि जानि हतभागी।
+ + +
अगिनि मांग देई न कोई, पाहुन पवन पानि सब कोइ। (जायसी)
+ + +
चहु दिसि घुमरि घोर घहराने (मंझन)
घन घमड नभ गरजत घोरा। (तुलसी)
+ + +

नीति-अविरुद्ध-'काम' के प्रति मंझन की उक्ति में और साधन एव तुलसी की उक्ति मे कितना भाव साम्य है ? यथा :—

तिल एक सुख के कारणा, जनि आपुहि नसाउ।
भ्रिमहि घोरे अपकरम, जग अपकीरति पाउ।

सुख तिल एक जनम को पापू, तिहि लगि कौन विटारै आपू ? (मैनासत)-साधन

तुलसीदास जी ने उसी भाव को इस प्रकार कहा।

सुख तिल एक जनम को पापू, तिहि लगि कौन विगारै आपू ?

लौकिक आख्यान काव्यकारो ने 'पूर्वानुराग' की व्यजना की है :—

पुनि जो पेम प्रीति पुरब के बिधि जिय पेम समान।
उठि ऊमी उर माम जो, समुझि आदि पहचानि। (मझन)
+ + +
एक जीव दुइ घट मनारेउ, एक जन्म दुइ ठां औतारेउ।
एकै हम दुइ के औतारे, एक मदिल दुइ दिया दुआरे। (मझन)
+ + +
उतपति एक समूर प्रीति हेत तन दोय धरै।
पुहमी न उगै मूर ज्यों अनर दे मालती। (चतुर्भुदास निगम)

इहु तो पूरब प्रीति तिहारी, अब क्यों होई करै तें न्यारी ?

+ + +

मन मे सहज आपने फूली, प्रीति पुरातन सो सब भूली। (चतुर्भुजदास निगम)
तें जो समुद लहरि मे तौरी, वे रवि मे जग किरनि अजोरी।
सभ गियान चखु देखेउ हेरी, हम तुम्ह दुहु परिचै कब केरी ?
अजहूं मोहिन चीन्हेंसि बारी, संवरि देखु चित आदि चिन्हारी। (मंझन)

+ + +

हम तोहि माही जीव कुछ, जिउ एकै, दुइ गात। (कुतबन)

+ + ×

जो जौ गांठ कत तुम जोरी, आदि अत लहि जाय न छोरी।
यह जग काहि जो अछहि न आधी, हम तुम नाथ दुहू जग साधी।

+ + +

इसी पूर्वानुराग को गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी सीताराम के प्रथम मिलन में स्पष्ट किया है। राम का मन सहज ही पुनीत है किन्तु फिर भी सीताजी को देखकर मन मे क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसका कारण था कि सीताजी के लोचन भी तो इसीलिये ललचा गए क्योंकि राम उनकी अपनी निधि थी अपनी ही खोई हुई निधि को पहिचानकर उसे प्राप्त करने ललचा रहे थे।

देखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहिचाने।

+ + +

तन संकोचु मन परम उछाहू, गूढ प्रेम लखि परइ न काहू।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई, प्रीति पुरातन लखइ न कोई।

+ + +

सोहत सीय राम के जोरी, छवि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी।

+ + +

अर्थ गिरा, जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दो सीता राम पद, जिन्हें परम प्रिय खिन्न।

+ + +

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी, तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी।
(रामचरित मानस)
धर्म मत्र तप तीरथ न्हानू, त्रिय बिनु पुरुष होइ अपमानू। (विष्णुदास)

+ + +

पति-भक्ति के प्रसग को महाभारत मे विष्णुदास (१४३४ ई०) ने इस प्रकार कहा है :—

सब व्रत नारि अकारथ करही, पुरुष भक्ति जे हिये न धरही।
जे अहिवाती करें उपासू, तिन कह होय नरक मह वासू। (विष्णुदास)
\+ \+ \+
जो साई कोकह्यो न कीजै, कहे नारि तो नरकपरीजे।
\+ \+ \+

श्री तुलसीदासजी इसी भाव को सुन्दर भाषा मे प्रकट करते हैं :—

एकइ धर्म एक व्रत नेमा, कांय वचन मन पति पद प्रेमा।
\+ \+ \+
पति प्रतिकूल जनम जहं जाई, विधवा होइ पाइ तरुणाई।

यही पतिभक्ति ईश्वरदास को सत्यवती मे देखी जाती है वह पिता की आज्ञा से कोढी को पति रूप मे प्राप्त करती है और पतिव्रता की भांति तन्मय होकर सेवा करती है अपनी एकनिष्ठा से कोढी को तीर्थ स्थान कराने ले जाती है, उसका निर्मल शरीर हो जाता है, सत्यवती ने कहा :—

तोहि छाडि, मैं अब किस जाऊ, माई बाप सौंपा तुव ठाऊं।

तुलसीदासजी ने इसी सत्-निष्ठा को व्यक्त करते हुए कहा :—

वृद्ध रोगवश जड धनहीना, अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।
\+ \+ \+
पति वचक पर पति रति करई, रौरव नरक कल्प सतपरई।

इसी बात को पूर्ववर्ती 'साधन' ने मैनासत मे लोक भाषा में सीधे-सादे शब्दो मे रख दिया था :—

रीकहि मैना तीखे मैना, बोली सती महासति मैना।
\+ \+ \+
फाटौ ताम नार कर हियार, एक छाड जिन दूसर कियार।
ज्यू चिकोर पावक भष करई पछी और छिवत जल मरई (साधन-मैनासत)

नारी के स्वभाव में 'कामिनी' का चित्र तुलसीदासजी ने जिस प्रकार का खीचा है उसमें पूर्ववर्ती आख्यानकारो की छाया स्पष्ट है। पहिले वह चित्र लिया जाय जो तुलसीदासजी ने रखा है :—

दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग ।

\+ + +

अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानि ।

\+ + +

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महं अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।

\+ + +

रूप रासि बिधि नारि संवारी, रति सत कोटि तासु बलिहारी ।

\+ + +

सुनि मुनि कह पुरान श्रुति संता, मोह बिपिन कहुं नारि बसंता ।

जप तप नेम जलाश्रय झारी, होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ।

दुर्वासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई ।

धर्म सकल सरसीरुह मंदा, होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा ।

पुनि ममता जवास बहुताई पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ।

पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड़ रजनी अंधियारी ।

बुधि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।

\+ + +

राखिअ नारि जदपि उर माहीं, जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।

\+ + +

भ्रातापिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी ।

\+ + ×

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ ।

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ, सब बिधि अगम्हु अगाध दुराऊ ।

निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई, जानि न जाइ नारि गति भाई ।

\+ + +

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ ।

का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ।

\+ + +

इस उद्धरण [illegible] मिलते जुलते भाव मंझन पहिले ही अपने ढग पर लिख चुके थे :—

तिरिया जगत माहि राकमिनी, जनि पतियाहि ऊपर देखि बनी ।

\+ + +

ऊपर निरमल पूनिब देही, भीतर स्याम अमावस बेही ।

\+ + +

दिस्टि परत छिन चित मुन हरें, ग्यान हानि असपरसहि करें।

\+ \+ \+

तिरयहि सभे अलच्छन, एक सुलच्छन सार।
महापुरुष जेत जगत महं, तिरयहि ते अवतार।

\+ \+ \+

को न सका तिरिया बस साधी, तिरिया सौ ओखदि रूप वियाधी।

छिताई चरित के समरसिंह को आखेट के समय शाप दिया गया है उसकी 'छिताई' पत्नी को अपहरण एव बंदिनी बनने के दिन देखना पड़े। उसने योगी वेष में उसकी खोज की और पहिचान के लिये अपनी वीणा प्रसिद्ध संगीतज्ञ गोपाल नायक के रख दी थी। इसी प्रसग की भाव-भूमि को परिमार्जित ढंग से 'तुलसी' में पाते हैं। 'नारद' ने 'राम' को श्राप दिया।

मम अपकार कीन्ह तुम भारी, नारि विरह तुम्ह होब दुखारी।

\+ \+ \+

विरहवंत भगवतहि देखी, नारद मन भा सोच विसेखी।
मोर साप कर अंगीकारा, सहत राम नाना दुख भारा।

\+ \+ \+

राम सीता की खोज में लताओं और वृक्षों की पत्तियों से भी पूछते हुए चले जा रहे हैं और पशु पक्षियों से भी।

हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ?

और सीताजी बन्दिनी अवस्था में 'हरिनाम' रटती रहती हैं :—

जेहि विधि कपट कुरग संग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।

\+ \+ \+

मंदिर एक रुचिर तहं बैठि नारि तप पुंज।

\+ \+ \+

कृस तनु सीस जटा एक बेनी, जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी।

\+ \+ \+

निज पद नयन दिए, मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन।

इसी भाव-भूमि का चित्र पूर्ववर्ती आख्यान छिताई चरित में द्रष्टव्य है :—

छिताई शिवपूजन को गई है। सहेलियां भी हैं, मंदिर तुर्कों से घिर गया, छिताई 'शिव-शिव' जप रही थी पूजा करते हुए अलाउद्दीन ने उसका अपहरण कर लिया :—

शिव-शिव तबहिं जपहि सुंदरी, एक ते सीस सारि भुइं परी।
एकन कंठ कटारिन हए, एकन डरहु हंस उडि गए।
पाति साहि अद्दली उच्चरई, जनु अपघात छिताई करई।
गए साहि तामुहौं विचारी, पूजा करति गही सो नारी।
+ + +

अपहृता छिताई की सतनिष्ठा एवं तेज से प्रभावित हो अलाउद्दीन ने पाप दृष्टि छोड़ दी और राघव चेतन को चौकसी में उसे कला-साधना हेतु रखदी।

पाप दिष्ट छोडी सुरताणा, सउंपी राघव चेतन हाथा।
+ + +
कंठ माल जप माली करी, पिउ पिउ जपत रहत सुंदरी।
सचल सीस सोलह व्रत न्हाई, दिव धमि शिव की पूजा जाई।
कुंअर नाम रानी परहरयो, सुत सायरो छिताई कर्‌यो।
+ + +

समरसिंह वैरागी भी छिताई की खोज में तन्मय है :—

अहनिसि बसइ छिताई हीए, जिसे भुजगम रहइ मनि लीए।
+ + +
रटत नाम मन में श्री हरि हरि, अराध्यौ संकर नीके करि। (निगम-मालती)
खिन माधो माधो गुहिरावै। खिन भीतर खिन बाहर आवै। (आलम)

कुटनी, छद्मवेषिनी एवं लसलाविकाओं के चित्र भी रामचरित मानस के पूर्ववर्ती आख्यानकारों ने अच्छे दिये हैं और उनकी कुगति कराई है। असत पर सत की विजय प्रतिष्ठित हुई है। 'छिताई चरित' की कुटनी का रूप इस प्रकार है :—

मायोली को तिलक लिलारा, हाथ सुमिरनी नरि जप मारा।

छिताई चरित में जिस स्थापत्य एवं चित्रकला का वर्णन आया है वह 'मान मंदिर' की पच्चीकारी का वर्णन ही प्रतीत होता है क्योंकि यह सुनिश्चित है कि 'छिताई चरित' के लेखक का ग्वालियर गढ़ से सम्बन्ध रहा है। छिताई चरित में द्रष्टव्य है:—

चौवारे चउखंडि चौडोरा, कलिचा बने काच के मोरा।
एक ते काठन पाहन पाटे, नव नाटक नव साला ठाटे।

नवनि रंग कुरि अति रवनीका, ठांव ठांव सोने के टीका।
बादल घनहु उठी घन घटा, रचे अनूप अटारी अटा।
कठ छपर सतु खने अवासा, कंचन कलस मनहुं कविलासा।
चहुंधा खुटी काच की भली, पहड़ परेवा तहा बंगली।

तुलसीदासजी ने सार-सार ग्रहण किया है। सभी ग्रन्थों का रस लिया है। यह छिताई चरित का स्थापत्य तथा चित्रकला पच्चीकारी का वर्णन अवश्य उनके सामने रहा होगा जिससे प्रभावित हो, उन्होंने सीता जी के मंडप को (विवाह के समय) विशाल रचना कराई है जो संक्षेप में इस प्रकार है :—

बेनु हरित मनि-मय सब कीन्हे, सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे।
कनक कलित अहि बेलि बनाई, लखि नहिं परइ सपरन सुहाई।
तेहि के रचि पचि बंध बनाये, बिच बिच मुकुता दाम सुहाए।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा, चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। आदि

अब दूती का प्रकरण देखिए :— (२८७—१, २)

रामु नाम कइ टोपी सीसा, कर तुलसी लइ दई असीसा।
(छिताई० ६२१)

किन्तु छिताई ने कुटनी मालिनी को धिक्कारा :—

चापी जीभ छिताई दता, तू धिगु दूती दुष्ट असता।

'मैना' को कुटनी कहती है :—

दीजै हाथ उठाय, साजै पीजै बिलसिये।
+ + +
एहि रित तो यह रैन दुहेली, काहे झुरि-झुरि मरत अकेली।
+ + +

मैना ने कुटनी के झोंटा पकड़कर लातें लगाईं और गधे पर बिठाकर नगर में फिराया और गंगापार करदी :—

मैना मालिनी नियरि बुलाई, धरि झोंटा कुटनी लतराई।
मूड़ मुड़ाई केस दरि कीने, कारे पीरे टीका दीने।
गदहू पलानि के आनि चढ़ाई, हाट-हाट सब नगर फिराई।
(मैनासत ४९२-९४)
+ + +
सत मैना को सापन, थिर राखो करतार।
कुटनी देस निकारी, कीनो गंगा कं पार। (४९८)
+ + +

परवर्ती रामचरित मानस में तुलसी की 'मन्थरा' भी अपनी दिशा में कैकेयी को डिगाती है।

पूत बिदेस न सोचु तुम्हारे, जानति हहु बस नाहु हमारे।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई, लखहु न भूप कपट चतुराई।
+ + +
पुनि अस कबहुं कहसि घर फोरी, तब घरि जीभ कढ़ावउ तोरी।

विष्णुदास ने तोमर क्षत्रियों के लिये 'महाभारत' काव्य के माध्यम से क्षात्र तेज की उत्कट प्रेरणा दी :—

छत्री काहु लेइ हथियारू, ता कहु मारन मरन सिंगारू।
+ + +
कंपे भीमु ओठ थरहरियो, जन द्वै नैन सिंदूरह भरियो।

इसी क्षात्र तेज को रामचरित मानस मे सुन्दर चित्रित किया गया है :—

हम छत्री मृगया बन करही, तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही।
+ + +
छत्रिय तनु धरि समर सकाना, कुल कलंकु तेहिं पावर आना।
कहउ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी, कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।
+ + +
जौं रन हमहि पचारै कोऊ, लरहिं सुखेन कालु किन होऊ।
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं, एक बार कालहु सन लरहीं।
+ + +
माखे लखनु कुटिल भई भौंहे, रद पट फरकत नयन रिसौहें।

विष्णुदास का क्रोध निरूपण :—

इतनो सुनत भीम परजरियो, जनु घृत विसांदर मे परियो।

रामचरित मानस में शब्दशः अवतरित हुआ है :—

सुनत बचन रावन परजरा, जरत महानल जनु घृत परा।

'काम' की व्यापकता का चित्र लौकिक आख्यान काव्यों मे इस प्रकार दिया है :

सरस सुकोमल कुच कठिन गय गति लंक विसाल।
हंसा चपल कनक सम, चढ़ी मृगगा बाल। (लखनसेन पद्मावती रास)
आसा लूधा उतारिवउ पण कुंभउ गलांह
घूमइ पड़िया हसड़ा, भूला मानस राह। (ढोला मारू रा दूहा)
राते नैन निलज भये नैना, दुइ दिस रची काम की सेना।
संकर जीउ जाहि ते हारा, तासों को जग जीतैं पारा।
सुनत सुनत रस मादक बाता, कामिनि जोब सहज है राता।

छिटके चिहुर सुहागिनि, जगत भएउ अन्ध कान ।
जनु विरही जन जिय वध, मन्मथ रोपा जाल ।

\+ + +

काम कमान रहनि कर लीन्हे, बर लेइ तोरि टूक दुइ कीन्हे ।
पुनि रस लेउघरि मेलि जडारे, सोइ बनाइ भयु नाँहि संवारे ।
तेहि धनु मदन त्रिभुअन जीता, बहुरि उतारि नारि के दीता ।

\+ + +

सहज भाव जो भौंह सकोरा, मदन धनुख तो दीन्ह टंकोरा ।
(मंझन–मधुमालती)

\+ + +

जा दिन ते पुहुमी रची जिय जंत अपनाम ।
भवन मध्य दीपक रहे, त्यों घट भीतर काम ।

\+ + +

गोरस में नवनीत ज्यों, काष्ठ मध्य ज्यों आग ।
देह मध्य त्यों पाइये, प्रान काम इक लाग ।

\+ + +

दर्पण मो प्रतिबिम्ब ज्यों, छाया काया सग ।
कामदेव त्यों रहत है, ज्यों जल मनु तरंग ।

\+ + +

प्रगट्यो मैन कुचुमी तरके, जल के बुन्द सीस ते ढरके ।

\+ + +

मल भरि काम पहुमि विस्तारयो, ताके बल सगरो जग हारयो ।
जो सिव काम दहन नहि करते, तो पसु नर एकै गति सरते ।

\+ + +

म्यान दीप जो न सुथिर थिरक रहे घन माँहि ।
तिय लोचन चचल पवन, तो नू लागत नाहि ।

\+ + +

कमल कटाक्ष बान जब लागे, म्यान म्यान तजिके उठि भागे ।

\+ + +

'काम' की यही व्यापकता तुलसी के रामचरित मानस में सौन्दर्य की चरमावस्था पर पहुंची है :—

ब्रह्मचर्जव्रत संजम नाना, धीरज धरम ग्यान विग्याना ।
सदाचार जप जोग विरागा, समय विवेक कटकु सबभागा ।

\+ + +

जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज-निज मरजाद तजि भए सकल बस 'काम'।
\+ + +
सबके हृदय मदन अभिलाषा, लता निहारि नवहिं तरु साखा।
नदी उमगि अंबुधि कहुं धाई, संगम करहिं तलाव-तलाई।
\+ + +
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी, तेपि काम बस भये वियोगी।
\+ + +
जहं तहं जनु उमगत अनुरागा, देखि मुएहुं मन मनसिज जागा।

'मृगावती' मे भौंह की 'कमान' को इतना शक्तिशाली बताया कि इसी धनुष से राघव, पाण्डव, पौरव, अर्जुन ने सुरक्षा की किन्तु बिना 'गुन' (डोरी) के यह धनुष की रचना 'मृगावती' में कुतबन ने की है :—

गुन बिनु धनु कहा यह साधा, हो मिरगा जस हनेव वियाधा।
\+ + +
भौंह धनुक नैन सर साधे, लागे विष हिये विष बाधे। (मृगावती)
\+ + +

'मानस' मे यही काम के पंचबाण छूटे हैं जिनको शिव के तीसरे नेत्र ने शान्त किया :—

छोड़े विषम विशिख उर लागे, छूटि समाधि संभु तब जागे।
\+ + +
तब सिव तीसर नयन उघारा, चितवत कामु भयउ जरि छारा। (तुलसीदास)

परवर्ती कविवर बिहारी ने इसी भौंह रूपी धनुष का प्रयोग किया है :—

"तिय कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिह भौंह कमान"।

इसी प्रकार प्रकृति वर्णन, नायक-नायिका को 'काम' का अवतार मानना, उन पर नगर की स्त्रियों का आकृष्ट होना, दहेज, ज्योनार, विदाई के समय कन्या को माता पिता की सीख, स्वयंवर का चित्र आदि में ईस्वी पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के आख्यानकारों एवं रामचरित मानस में बहुत कुछ साम्य है। . . . .

चलिउ से आइ रसिक परवीना, चितो तिया जनु मनमी मीना। (छिताई चरित)

युद्ध वर्णन 'छिताई चरित' में हिन्दी में बेजोड़ है :—

ठां ठां पाइन्ह तोरहिं धाई, इहहीं के बब कीए सुदाई।
परयराइ धरणी मह लोटहिं, एक ते चलहिं वृच्छ की ओटहिं।
\+ + +

बांधि समुद्रहि उतरहुं पाटा, जितं रावनहि राम कियो घाटा।

+ + +

चढ़हि मुगल जनु बन्दर लका—   (छिताई चरित)

कहूँ कमान कहूँ तरकश टूटैं, नेजा सायपरस्पर फूटैं   (नियम मधुमालती)

वाल्मीकि काव्य की रामकथा इन लौकिक आख्यानकारों के सामने रही है और नि जो रेखाएं विभिन्न मानवीय व्यापारों में सामान्य धरातल पर खींची हैं उनको ने साज सवारकर मार्मिक रूप में विशद एवं भव्य रूप दिया है तथा सत्य, एवं सुन्दर का समन्वय किया है। जीवन के विविध अंगों का उच्च धरातल पर टन किया है।

लखनसेन पद्मावती में मद्गुण एव माया के चमत्कारी वर्णन, इच्छागामी घोती, ।, खड्ग खप्पर आदि का प्रयोग से मिलता जुलता मार्मिक वर्णन 'मानस' में भी है :—

सक्ति सूल तरवारि कृपाना, अस्त्र शस्त्र कुलि सायुध नाना।
डारइ परसु परिघ पाषाना, लागेउ वृष्टि करै बहु बाना।
दस दिसि रहे बान नभ छाई, मानहुं मघा मेघ झरि लाई।
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना, जो मारइ तेहि कोउ न जाना।
गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं, देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं।
अवघट घाट बाट गिरि कंदर, माया बल कीन्हेसि सर पंजर।

+ + +

पुनि रघुपति से जूझै लागा, सर छांड़ई होइ लागहिं नागा।

+ + +

देखेसि आवत पवि सम बाना, तुरत भयउ खल अंतरधाना।
विविध वेष धरि करइ लराई, कबहुंक प्रगट कबहुं दुरि जाई।

+ + +

- जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहिं, भूत पिसाच वधू नभ नंचहिं।
भट कपाल करताल बजावहिं, चामुंडा नाना विधि गावहिं।

+ + +

नानाकार सिलीमुख धाए, दिसि अरु विदिसि गगन महि छाए।
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पवारे, बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारे।

निशा के बीतने और उषाकाल के पूर्व का वर्णन विष्णुदास ने किया है :—

पहु फाट्यो भुनसारो भयो, कौरव दल नगर मह गयो।

(विष्णुदास-महाभारत)

+ + +

निमा सिरानि भयउ भिनुसारा, लगे भालु कपि चारिहुं द्वारा।
(रामचरित मानस)

मैनासत मे 'प्रेम' मे आध्यात्मिक तत्व का संदेह किया गया है :—

माटी माटो कहा बखाने, माटी भेद न मैना जाने।
माटी ऊपर द्रव विधि मेला, परम हस माटी मे खेला।
माटी भोगे माटी खाये, माटी उपजे रग सवारे।
सोन फूल है माटी फूलो, माटी देख सु माटी भूली।
माटी बिरला जाने कोई, परिखु खेलु सब माटी होई।

इसी माटी के दीपक में हम रूप ब्रह्म का प्रकाश अनुभव करने की विद्या पर तुलसीदासजी ने प्रकाश डाला है :—

सोहमस्मि इति वृत्त अखडा दीप सिखा सोइ परम प्रचडा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा, तब भव मूल भेद भ्रमनासा।
+ + +
मोह निवृत्ति पात्र बिस्वासा, निर्मल मन अहीर निज दासा।
परम धर्ममय पय दुहि भाई, अवटे अनल अकाम बनाई।
तोष मरुत तब छमा जुडावे, धृति सम जावनु देइ जमावे।
मुदिता मथे विचार मथानी, दम अधार रजु सत्य सुबानी।
तब मथि काढि लेइ नवनीता, विमल विराग सुभग सुपुनीता।
+ + +
तब बिग्यान रूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ, ममता दिअटि बनाइ।
+ + +
तीनि अवस्था तीन गुन तेहि कपास तें काढि।
तूल तुरीय सवारि पुनि, बाती करै सुगाढि।
+ + +
एहि विधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब। (उत्तर काण्ड ११६-११७)

रामचन्द्रिका मे जो शास्त्रीयता है उसका अश मानस में विद्यमान है।

प्रत्येक की तुलना करके विवेचन किया जाना अपेक्षित नहीं है।

इस प्रसग मे एक उदाहरण देना और अनिवार्य प्रतीत होता है—विष्णुदास के महाभारत के युद्ध मे दोनो दलो के रोष को वर्षाकाल के घनो को घुमेड बताया है :—

रोष भरे दोउ दल उमडे, मानो पावस के घन घुमडे।

तुलसी ने भी ऐसा ही वर्णन किया है जो विकसित रूप है :—

प्राविट सरद पयोद घनेरे, लरत मनहु मारुत के प्रेरे।
देखि चले सन्मुख कवि भट्टा, प्रलय काल के जनु घन घट्टा।

निगम की मालती के मुखचन्द्र की आभा बढ़ती है और चन्द्रमा घट-घट कर बढ़ता है—इसी भाव को सुन्दर रूप मे तुलसीदास ने व्यक्त किया है :—

घटइ बढ़इ बिरहिन दुखदाई, ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।

निगम ने जहां मालती का रूप वर्णन करते हुए कपोत मृग, मीन, कदली, कनक, कीर, पिक, मराल आदि की उपमाएं दी हैं। इसकी दृष्टि में तुलसीदासजी ने अत्यन्त भव्य वर्णन उस समय किया है जब राम सीता की खोज कर रहे हैं और उपमा दे रहे हैं :—

खजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुंदकली दाड़िम दामिनी, कमल सरद ससि अहि भामिनी।
बरुन पास मनोज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं।

इतना कहना पर्याप्त है कि उपर्युक्त कुछ दृष्टान्तों से इस बात का स्पष्ट आभास हो जायगा कि युग के प्रतिनिधि काव्य रामचरित मानस में पूर्ववर्ती आख्यान काव्यों की विभिन्न भाव भूमियों का तत्व समाविष्ट है और उसका सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत रूप रामचरित मानस है।

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने 'साकेत' के प्रणयन से हिन्दी के रामचरित काव्य धारा की परम्परा को अत्यन्त शालीन रूप में आधुनिक काल में प्रवाहित रक्खा है। प्रस्तुत शोध ग्रंथ के लेखक द्वारा भी लिखी गई 'कल्याणी कैकेयी' प्रबन्ध तथा श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' द्वारा रचित 'कैकेयी' रामचरित की दिशा मे लिखे गये उपाख्यान काव्य है।

जैन आख्यान काव्य :—संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश मे जैन आख्यानकारों ने आख्यान काव्यों की रचना की। वसुदेव हिण्डी, तंगवती, समरादित्य कथा, हरिवंश, पदमपुराण, यशोधरा चरित्र, नागकुमार चरित्र की परम्परा पीछे चलकर केवल अपभ्रंश को धर्म भाषा मानकर रुक गई। ग्वालियर में 'मध्यदेशीया' के संस्कार के समय 'रइधू' अपभ्रंश में ही साम्प्रदायिक आख्यान लिख रहा था। श्वेतांबरों ने १३,१४वीं शता० ई० में रचनाएं कीं किन्तु उनका राजस्थानी रूप भी अपभ्रंश के निकट था।[1]

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २००२ पृष्ठ ९ (श्री नाहटा) "वीर गाथा काल का जैन साहित्य"

श्री नाहटा ने अपने लेख में जैन साम्प्रदायिक आख्यानकारों की सूची दी है। 'समय सुन्दर' की मृगावती प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। दूसरा आधार उदयन और चण्ड प्रद्योत का प्रसिद्ध आख्यान है। उदयन के जैन धर्म स्वीकार करने से इसी वर्ग में यह आख्यान आ जाता है भले ही उसके पात्र एवं रचना विधा लौकिक आख्यान के समान ही है। बनारसीदास जैन कवि ने भी आत्मकथा के अतिरिक्त कुछ साम्प्रदायिक आख्यान काव्य "मध्यदेसीया" में लिखे हैं।

सूफी आख्यान :—सूफी प्रेम निवृत्ति परक, संसार में बन्धन तोड़ने का प्रधान साधन है। सूफी प्रेम का स्रोत सूफी और मयूर के प्रेम निवेदन की प्रणाली में है। किन्तु तथाकथित सूफी आख्यान इस कसौटी पर कसने से इस वर्ग में बहुत कम टिकाये जा सकेंगे। 'मैनासत' के लेखक 'साधन' को कहीं 'मियाँ' भी कहा गया है। संदेश रासक के लेखक अब्दुलरहमान, मधुमालती का लेखक मझन, माधवानल कामकन्दला का लेखक आलम एवं कनकावती का जान आदि दर्जनों आख्यान काव्यकार मुसलमान या सूफी भले ही हों किन्तु इन रचनाओं को सूफी आख्यान कहना विचारणीय होगा। 'खिज्रखाँ-देवलदेवी' में भी मांसल प्रेम का कथानक है तथा भारतीय चिन्तन पद्धति पर आधारित कामकथा है। 'चन्दायन' में भी उस निवृत्तिपरक प्रेम-तत्त्व की विशदता नहीं जो ईश्वर से मिलाने वाला है। 'मृगावती' में भी इस्लाम का गहरा रंग नहीं है। सूफी आख्यानों में जिसमें सप्रयास समस्त सूफी साधना पद्धति के अंगों का विवेचन है जायसी का 'पद्मावत' ही गणना करने योग्य है। सामाजिक पाठक 'प्रेम की पीर' पर पहुँच जाता है जिसमें 'रत्त के लेई' का वर्णन है और उद्देश्य इस्लाम प्रचार के रूप में 'जायसी' का एक ध्रुव वाक्य भी है—"पातसाहि गढ़ चूरा, चितउर भा इस्लाम।"

इस परम्परा में गाजीपुर के उस्मान की 'चित्रावली' (१६१३ ई०) में सूफी साधना का विस्तृत विवेचन है। १७३६ ई० के लगभग लिखित दरियाबाद के कासिमशाह का 'हंस जवाहिर' बलख बुखारे के कथानक पर आधारित सूफी आख्यान है। नूरमोहम्मद की इन्द्रावती (१७६४ ई०) में "मन इस्लाम मसलिके मांजेउ" उद्देश्य स्पष्ट है। 'अनुराग बाँसुरी' तथा 'नलदमन' शेख नबी का ज्ञानदीप (१६१९ ई०) निश्चित ही सूफी आख्यान काव्य है। यह परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी तक चलती रही। सूफी आख्यानकारों के कथाबीज, कथा रूढ़ियाँ एवं युक्तियाँ लौकिक आख्यान काव्यों के समान ही हैं। किन्तु उद्देश्य केवल भिन्न हैं। भारत के बाहर के पात्र भी एकाध आख्यानकार ने ही ग्रहण किये हैं।

(३) लौकिक आख्यान काव्य :—लौकिक आख्यान काव्य धारा की मूल स्रोत 'कामकथा' है। चारों आश्रमों में मोक्ष लक्ष्यपरक विषय है और उसके मार्ग भी

भिन्न-भिन्न कहे गये हैं। कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन समार विषय के रूप में केवल धर्म अर्थ समन्वित 'काम' इन तीन पुरुषार्थों को मान्यता देते हैं। आत्मा में युक्त मन द्वारा पचेन्द्रियों से आनन्द प्राप्ति की प्रवृति को 'काम' कहते हैं। वाछित वस्तु के प्राप्त होने वाले आनन्द का नाम ही काम-सुख है। हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्यों के कथानक, पात्र एव उद्देश्यों पर विचार करने पर कुछ 'उपवर्ग' प्रत्यक्ष होते हैं उद्देश्य तो लोकरजन समान ही हैं। परन्तु इस उद्देश्य के माध्यम में अन्तर अवश्य दिखाई देता है। कथानक निर्माण के लिये कथाकोशों का मूल भी उपवर्गों के निर्धारण मे सहायक होता है। उपवर्ग के रूप में :

(क) नीति उपदेश परक काव्य हैं। 'काम' कथा का अत्र अर्थ समन्वित काम के अन्तर्गत अर्थशास्त्र भी है। जिसमे नीति सम्मिलित है। विष्णु शर्मा ने अर्थशास्त्र और नीति के सार रूप 'पचतन्त्र' की रचना की जिसकी वाचना 'पंचाख्यान' के रूप मे हुई। इसकी सूक्तियों ने इस काव्य धारा को अनुप्राणित किया। इसका मौलिक उपयोग निगम की मधुमालती में किया गया। जातक बृहत्कथा तथा पंचतंत्र के मानव वाणी में बोलने वाले तथा मानव मनोभावों से संवेदना रखने वाले पशु पक्षी भी लौकिक आख्यान के अभिन्न अग बन गए। शुक सारिका द्वारा आख्यान कथन, तोते एव हस द्वारा सदेश वहन हिन्दी मे-किन्तु सस्कृत के नीति उपदेश परक ग्रन्थों का अनुवाद रूप-अधिक हुआ। जिनमे आख्यान तत्व एव काव्यत्व मूल रचना में ही रहा।

अनुवादों मे चन्द कवि (१५०६ ई०) रत्नसुन्दर सूरि (१५५६ ई०), वच्छराज (१५६१ ई०) के अनुवाद गण्य हैं। इसका प्रभाव परवर्ती कवि "जान" पर भी पड़ा। 'जान' ने 'बुद्धिसागर' अनुवाद प्रस्तुत किया। वशीधर, प्रयागदास, नारायण पडित, देवीदास, एव शिवप्रसाद ने भी पचतन्त्र तथा हितोपदेश के अनुवाद प्रस्तुत किए। गुमान मिश्र का नैषध काव्य का पद्यानुवाद एवं पद्माकर भट्ट का हितोपदेश का गद्यानुवाद प्रस्तुत हुआ।

(ख) सत विषयक :—प्रेमिका तथा पत्नी की, पति अथवा प्रेमी के प्रति एकनिष्ठा लौकिक विषय है। भारतीय रमणी के चरित्र के इस उज्जवल अंश को लेकर लौकिक आख्यान काव्य लिखे गये जिनमे सीता, सावित्री तथा शाण्डली जैसे रूप प्राप्त हुए। 'जैन धर्म में शील का बहुत ऊंचा स्थान रहा है। चित्तौड़, ग्वालियर और चन्देरी में जौहर की ज्वाला धधकी जिसने आख्यानकारों को अपनी चिनगारियों के प्रति आकृष्ट किया।

हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्य धारा के सत विषयक काव्यों में "सर्वप्रथम" मैनासत" का नाम लिया जा सकता है जिसमे स्पष्ट साधना है—

जो सिर जाय तो जाय, साधन सत्त न छोड़िये।

ईश्वरदास कृत 'सत्यवती कथा' (१५०१ ई०) सत विषयक प्रथम तिथि युक्त प्राप्त एवं प्रकाशित रचना है। कृष्णदास रचित मैनासत (१५६१ ई०) का उल्लेख भी है। इस परम्परा मे 'जान' कवि के 'निर्मल (१६१७ ई०) कुलवन्ती (१६३६ ई०) शीलवती (१६२७ ई०) तमीम अन्सारी (१६४५ ई०) सतवन्ती (१६२१ ई०) आख्यान काव्य सतीत्व के प्रतिपादक है। समय सुन्दर तथा मेघराज प्रधान की 'मृगावती' भी अनुमानतः इसी वर्ग की रचना हो। साधन के 'मैनासत' के अतिरिक्त अन्य काव्यों का स्तर इस वर्ग मे साधारण है।

(ग) ऐतिहासिक कथा बीज पर आधारित —लोक मानस की असाधारण के प्रति आकर्षण की भावना निहित है इनसे कथा बीज लेकर आख्यानकार जनमन रजन करता है। परन्तु इस उपवर्गीय लौकिक आख्यान मे कभी व्यक्ति का नाम केवल ऐतिहासिक होता है, कभी स्थान का नाम। कभी घटना का थोटा ढाचा ही केवल ऐतिहासिक होता है और शेष काल्पनिक होता है। घटनाओ का आख्यानकार द्वारा प्रतिष्ठित रूप भी इतिहाससम्मत बन जाता है।

हिन्दी की लौकिक आख्यान काव्य धारा मे इस दिशा मे प्रतिभाशाली प्रयोग हुए। प्राचीन कथा बीजो मे कुछ का उपयोग किया गया और नवीन घटनाओ मे अधिक कथाबीज ग्रहण किये गए। सस्कृत के नलोपाख्यान मे हिन्दी मे दृष्टान्त लिये गए पर आख्यान कम लिये गए, गुजराती मे 'प्रेमानन्द' का 'नलाख्यान' है। 'जान' का 'नल-दमयन्ती,' लखनऊ के सूरदास का 'नलदमन' कम प्रसिद्ध हैं। दुष्यन्त-शकुन्तला के कथा बीज हिन्दी मे मूक ही रहे।

सस्कृत-बृहत्कथा मे उज्जयिनी के विक्रमादित्य और पाटलीपुत्र के विक्रम के आख्यान है किन्तु हिन्दी मे उन्हे आख्यान रूप मे नही लिया जा सका। भोज परमार ने लोक मानस को जागृत किया कि उनको आधार मानकर उज्जयिनी के वीर विक्रमादित्य हिन्दी मे 'वैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' के रूप मे मध्यकाल मे फिर अवतरित हुए। जैन लेखको ने भी प्रयास किए। पन्द्रहवी शताब्दी ईस्वी (सन् १४६१ ई०) मलचन्द्र का विक्रमचरित्र, १४८६ ई० की मानिक की 'वैताल पचीसी' किसी पूर्व की पुष्ट परम्परा के पदचिन्ह हैं। विनय समुद्र रचित 'सिंहासन बत्तीसी' (१६५३ ई०) ओरछा नरेश सुजानसिंह के आश्रित मेघराज प्रधान की 'सिंहासन बत्तीसी' (१६६६ ई०) अटेर (भदावर) के छत्र कवि का 'विक्रम चरित्र' (१६६४ ई०) कुछ ज्ञात रचनाओ के उदाहरण हैं काशी के गहड़वाल वशी गोविन्दचन्द्र ने भी जन-मन को अपने पराक्रम एवं साहित्यप्रेम मे आकृष्ट किया। मध्यप्रदेश के मकरन्द पडित से उसका सम्बन्ध हुआ। मकरन्द के पुत्र माधवनल के नाम से कथा का कलेवर सज्जित हुआ। भडौच के गणपति ने 'माधवानल कामकन्दला' पर सर्वश्रेष्ठ लौकिक

आख्यान काव्य लिखा। विद्यापति को हिन्दी साहित्य मे स्थान देने के समय 'गणपति' छूटा रहा। विद्यापति, नरपति, नाल्ह, कुशललाभ की भाषा हिन्दी मानी जाती है किन्तु गणपति की भाषा को 'जूनी गुजराती' कहा गया है।

'माधवानल कामकन्दला' की परम्परा मे बोधा का 'विरह बारीश' (१८००ई०) प्रमुख है। किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखित 'मधुमालती' की प्रति मे माधवनल कामकदला की प्रति १८११ ई० मे भी प्राप्त हुई है। वियोग को प्रेमी से मिलने के आशय से 'विक्रमादित्य' इन आख्यानो मे लाये गये हैं। उज्जयिनी के 'सदयवत्स' तथा प्रतिष्ठानपुर की "सावलिंगा" के लोकरंजक बीज को १६४० ई० मे खरतरगच्छीय कैमव कीर्तिवर्धन द्वारा विकृत रूप दे दिया गया।

ग्वालियर–नरवर के ईस्वी ६ वीं शताब्दी के पराक्रमी एवं कलाप्रिय कछवाहे, वयाबीज के रूप मे चन्द्रगिरि के गणपतिदेव के राजकुमार उनके दूत 'दुर्लभ' और कुंअर 'परसराम' नाम से प्रकट किये गये हैं। 'मझन' के कनकगिरि के कछवाहों में भी उनकी छाया है। ढोला–मारविणी के रूप मे हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्य धारा को बहुमूल्य देन उनकी ही है। राजस्थान से छत्तीसगढ तक सांस्कृतिक इतिहास मे आख्यान नायकों के रूप मे उनका नाम गाया जाता रहा।[1] कुशललाभ के 'ढोला मारू रा दूहा' (१५५० ई०) के बाद दतिया, झांसी, मथोप मे परवर्ती काल मे 'ढोला मारू' लिखे गये आख्यान अनुपलब्ध हैं। अज्ञात कवि ने 'सारगा सदै वृक्ष रा दूहा' तथा 'बीजो ने सोरठ रा दूहा' लिखा।

पृथ्वीराज चौहान के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' लौकिक आख्यान काव्य धारा मे ही रखा जा सकता है। 'परमाल रासो' में यही बीज है। चित्तौड की पद्मिनी की जौहर की ज्वाला उत्तर भारत में व्याप्त हो गई। हेमरतन की 'गोरा–बादल' चौपाई (१५८८ ई०) की परम्परा मे परवर्ती कवि जटमल नाहर ने (१६२३ ई०) में 'गोरा बादल री बात, लब्धोदय, वा लालचन्द्र ने पद्मिनी चरित्र' (१६३८ ई०) लिखे। जायसी के पदमावत की यही कथा रतनी में गुलाम अली ने (१६८१ ई०) में 'पदमावत' में समाविष्ट की। लालचद ने भी 'पदमावती चरित्र' लिखा।

अलाउद्दीन और छीता सम्बन्धी आख्यान काव्य 'रतनरग, नारायणदास देवचन्द्र' कवियो द्वारा 'छिताई चरित' लिखा गया। इस परम्परा मे परवर्ती कवि जान कृत 'छीता कथा' लिखी गई। प्रस्तुत कथाएं विद्वान लेखक प० हरिहरनिवास द्विवेदी एव श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा छिताई चरित' के नाम मे तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा 'छिताई वार्ता' के नाम से सम्पादित भी की जा चुकी है।

१. कायमखा रासो–श्री दशरथ शर्मा, श्री नाहटा द्वारा सम्पादित पृष्ठ ४

राजस्थान मे "वात सायण चारणी री" गद्य मे अलाउद्दीन को आधार बनाया गया है। वह काव्य न होकर महत्वपूर्ण आख्यान है। 'रमणशाह छबीलो भटियारी' की गद्य कथा भी सिकन्दर लोदी तथा शहजादे के आधार पर बनी है। इनका उल्लेख डॉ० हरीकान्त श्रीवास्तव के भारतीय प्रेमाख्यान काव्य मे है।[1] इनमे ऐतिहासिक कथाबीजो का बाहुल्य है।

अमीर खुसरो की रचना "आशिकी" फारसी मसनवी रूप का मूल काव्य अनुपलब्ध है। इसमे "खिजरवाँ देवलदेवी" के हिन्दी प्रेमलापोख्यान को मसनवी रूप दिया[2] गया। इसी परम्परा मे परवर्ती जान कवि ने (१६२७ ई०) मे 'देवलदेवी खिजरखां' नामक लौकिक ताख्यान काव्य लिखा।

दामो ने १४५९ ई० मे 'लखमसेन पद्मावती रास' लिखा इनमे कामशास्त्र मे वर्णित स्त्रियो का सर्वश्रेष्ठ 'प्रकार'–'पद्मिनी' का रूप है। लखनसेन संभव है ऐतिहासिक राजा रहा हो, किन्तु दल्ह दामोदर का 'विल्हण' (१४७० ई०) अवश्य ही ऐतिहासिक कथाबीज पर आधारित व्यक्ति है। काश्मीर पंडित 'विल्हण' की 'चोर पंचाशिका' मे इसके सूत्र मिलते है।

(घ) निजंधरी :—हिन्दी मे ऐसे लौकिक आख्यान काव्य हैं जिनमे ऐतिहासिक व्यक्तियो अथवा घटनाओ से कथाबीज न लेकर निजंधरी कथानको का उपयोग हुआ है। निगम की 'मधुमालती' तथा उसकी परम्परा मे लिखित परवर्ती 'जान कवि' के अनेक आख्यान काव्य निजधरी कथानको पर आधारित हैं। 'वजही' की 'कुतुब मुश्तरी'[3] प्रेमाख्यान कृति १६०६ ई० की है।

उपर्युक्त साहित्य के वर्गीय विश्लेषण एवं विवेचन से परवर्ती साहित्य पर प्रभाव समझने मे सहायता मिलती है। 'निजधरी' वर्ग मे ओरछा के ठाकुरदास कायस्थ की 'ठाकुर-ठसक', रसनिधि (दतिया) का 'रतन हजारा' 'अरिल्ल और माझो,' बोधा (बुद्धि सेन) बांदा निवासी का 'इश्कनामा', बख्शी हंसराज (पन्ना) का 'सनेहसागर,' सन १६३१ ई० के सुन्दरदास (ग्वालियर) का 'सुन्दर शृंगार' रचित उल्लेखनीय हैं। 'चरखारी' के खुमान कवि के साहित्य का पता नही चलता। छत्रसाल के गुरु 'अक्षर-अनन्य' एवं छत्रसाल के समाहृत 'भूषण' मतिराम बूंदी, देव (इटावा), मध्यदेश के ही थे।

हरिसेवक की काम रूप की कथा, पुहकर का 'रसरतन' रेड मुनि का 'सुर सुन्दरी चरित्र' तथा 'दात' का शतक भी परवर्ती आख्यान काव्य है।

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० हरीकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ २२३, २२७, ३३०
२. खलजी कालीन भारत, पृ० १७१, १७६ आदि तुर्ककालीन भारत पृ० २८१।
३. दक्खिनी हिंदी काव्य धारा (१९५९- पटना) पृ० १७-२८।

विरोधी रूप धारण नहीं कर सकती। यदि कला नैतिकता का विरोध करेगी तो वह सामाजिक या भावक के हृदय को प्रभावित करने में असमर्थ रहेगी। 'भरत मुनि' के रस सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों—"अलंकार सम्प्रदाय", रीति सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय एवं औचित्य सम्प्रदाय आदि के महाचार्यों ने कला का मानदण्ड तो सौन्दर्य को ही रखा है किन्तु वे उसका लक्ष्य सामाजिक की तृप्ति ही मानते हैं इसका निष्कर्ष यह है कि भारतीय काव्य शास्त्र के क्षेत्र में 'कला' स्वतन्त्र रहती हुई भी नैतिकता के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती रही है। जब-जब समाज के दृष्टिकोण में भी नैतिकता सम्बन्धी मान्यताओं में परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। छिताई चरित, निगम की मधुमालती, साधन के मैनासत में जिस 'सत' की एवं नैतिकतापूर्ण कला को प्रतिष्ठा की थी उसमें कुछ समकालीन एवं परवर्ती काव्यों में नैतिकता के मान में परिवर्तन किये गये तथा नायिका भेद के अन्तर्गत 'परकीया' को स्थान दिया गया। 'रूपमञ्जरी' और 'सदयवत्स सावलिंगा' इसके उदाहरण हैं।

काव्य में कला का मूल लक्ष्य जहां सौन्दर्य है वहां अनैतिक तत्वों का मिश्रण भी अपेक्षित नहीं है कि जो समाज को क्षति पहुँचाने लगें। यदि कलात्मकता को ठेस पहुंचाये बिना कुछ उपयोगी तत्वों का भी समावेश किया जा सके तो यह काव्य का विशेष गुण ही है। कला के क्षेत्र में सौन्दर्य को नष्ट करने वाली अति नैतिकता और अनैतिकता को ठेस पहुँचाने वाली अति सुन्दरता (नग्नता) ये दोनों ही त्याज्य हैं। सौन्दर्य और नैतिकता का समन्वित रूप ही उत्कृष्ट कला में दृष्टिगोचर होता है। कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में—'सौन्दर्य मूर्ति ही मंगल की पूर्ण मूर्ति है और मंगल मूर्ति ही सौन्दर्य का पूर्ण स्वरूप है"।

इस दृष्टि से मध्ययुग में छिताई चरित, निगम की मधुमालती एवं मैनासत में जिस 'सती', साधु', और शूरमा की प्रतिष्ठा की गई उनमें कला के उत्कृष्ट स्वरूप का बीजांकुर था जो पल्लवित एवं पुष्पित होकर जायसी, केशव, सूर, तुलसी के साहित्य में नन्दन कानन की भांति लहराया और जिसकी सुवास से सामाजिक, पाठक या भावक सुवासित हुए।

मध्यदेश, साहित्य के इस नन्दन—कानन के लिये उस सांस्कृतिक पीठ का ऋणी है जो मध्ययुग में गढ़ गोपाचल (ग्वालियर दुर्ग) के अन्चल में तोमरकालीन युग में विद्यमान थी और जिसकी यशोगाथा—आज भी प्रतिष्ठित भग्नावशेष 'मानमन्दिर' गूजरी महल, बखान कर रहे हैं। ग्वालियर के तोमर राज्यकालीन साहित्य, संगीत एवं कला के समन्वित उत्कर्ष की (ईस्वी पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी की) मूक साक्षी दे रहे हैं।

केशवदास का—"देशो की मणि" यही मध्यदेश है जिसके मुख में 'सुभाषा' का निवास रहा। वह 'सुभाषा' फकीरुल्ला के 'सुदेश' (ग्वालियर) की मध्यदेश की भाषा थी जो हिन्दी साहित्य की उपभाषा के रूप में "बुन्देली–ब्रज" कही जा सकती है और जिस साहित्य की खाद में सूर एव तुलसी जैसे कवि पुष्पित हुए। जिसके कारण समष्टि रूप युग-प्रतिनिधि-काव्य एव समाज का संस्थापक काव्य 'रामचरित मानस' विश्व-साहित्य को उपलब्ध हो सका।

ईस्वी पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के ग्वालियर के बुन्देली–ब्रजी पद साहित्य तथा लौकिक आख्यान काव्यों ने हिन्दी भाषा एव साहित्य की खोई हुई कड़ी जोड़ दी है जिसका जुड़ना हिन्दी भाषा एव साहित्य के विकास क्रम के व्यवस्थित अध्ययन के लिए आवश्यक था।

* * *



परिशिष्ट १

श्री डूगरेन्द्रसिंह तोमर राज्य काल १४२४–२५ ई० से १४५९ ई० मे तत्कालीन महाकवि विष्णुदास ने बाल्मीकि रामायण के आधार पर जो हिन्दी भाषा मे रामायण काव्य रचना की थी, उसकी एक प्रति सागर विश्वविद्यालय के बुन्देली विभाग में है जिसकी पुष्पिका, रामायण उत्तरकाण्ड रामचन्द्र स्वर्ग आरोहन नामक सर्ग के अनन्तर इस प्रकार दी गई है :—

"जद्रस पुस्तक दृष्टवा तद्रस लिखित मया यदि शुद्ध अशुद्ध वा मम दोषो न दीयते शुभ मगल ददातु सम्वत् १९२० प्रथम श्रावणे कृष्ण पक्षे तिथौ ४ शनिवासरे तदिम् समाप्तम् आदि पथ रिया आन जै जै गनकुन्नो सुथाद्। श्री महाराज तोमार कहि भूपसिंघ सुत नाम शुभ भवतु।"

विष्णुदास ने सबसे अन्त मे रचना माहात्म्य मे दो 'चौपही, दी हैं—

मन थिर बुद्धि सुनै जो कोई, ताकहु व्याधि पीर ना होइ
अरमठ तीरथ को फल लहै, विष्णुदास निज गुरु वर कहै (७०)

प्रारम्भ मे 'श्री गनेशाय नम., अथ रामायण कथा, चौपाही लिखते हुए गणपति की वदना, सरस्वती की वदना, दीक्षा गुरु और विद्यागुरु की वदना की है । अपने विषय मे एक पक्ति दी है जिससे यह परिणाम नही निकलता कि विष्णुदास किसके पुत्र थे ? विष्णुदास वैष्णव थे इसमे तो सन्देह नही रह जाता। सम्भवतः विष्णुदास मे दास वैष्णवत्व का बोधक है, जिस प्रकार सूरदास महाकवि के पिता रामचन्द्र "रामदास" हो गये । विष्णुदास ने एक पक्ति यह लिखी है—[1]

लावन श्री करन भयो व्यासु, ता सुत विष्णुदास को दासु (१०)
विष्णुदास विनवै नरनाह, तोहि प्रसादै बुद्धि अथाह (११)
रवनि मीस नेवर झनकार, प्रनऊ देवी बारम्बार (३, ४)
जाको रूप न सकौं बखानि, हस चढी ता पुस्तक पानि
ता पद विष्णुदास चढ लहयो, मरम बुद्धि रामाइनु कहयो

---

1. विष्णुदास कवि कृत रामायन कथा—सम्पादक लालताप्रसाद द्विवेदी, मिनाकारी, सशोधन एव भूमिका डॉ० भगीरथ मिश्र, प्रका० १५ जनवरी १९७२, साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद प्रकाशन, मूलपाठ [illegible] १

मुन्दरनाथ पास लई दक्ष्या, हरत परत मब .... (७)
वचन जो सहज नाथ पह लहों मरम वचन रामाइनु कहौं (६)
चौदह मन निन्यानव लियौ, पून्यौं पवित्त रमाइनु कियौ
गुर बासर रेवती (स्वेती) नक्षत्रु, माघ मास कवि कयो चरित्तु (११)

क्रमांक १० की उक्त पंक्ति मे दो अर्थ निकलते हैं, एक तो यह कि श्रीवरन (कर्म ?) व्यास हुए उनका पुत्र विष्णु, दासो का दास है। वैष्णव की विनीत भावना अपने को भगवद्भक्तो का दासानुदास मानती है। दूसरा अर्थ यह निकलता है कि श्री करन व्यासु हुए उनका पुत्र विष्णुदास का दास था। विष्णुदास पूरा नाम साथ मे रखने पर यह अर्थ निकलता है, किन्तु प्रथम अर्थ ठीक है। अतएव यह स्पष्ट होता है कि विष्णु कवि के साथ "दास" शब्द वैष्णवत्व का बोधक है। रामायण कथा की रचना कवि ने स० १४६६ वि० (सन् १४४२ ई०) मे माघ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवार रेवती (स्वाति ?) नक्षत्र मे की। डॉ० भगीरथमिश्र तथा सपादक स्व० लोकनाथ जी सिलाकारी ने क्रमशः भूमिका पृ० ३५ तथा प्रस्तावना पृ० ४८ पर यह लिखा है कि, "विष्णुदास का समय स० १४५० से १५०० वि० तक मानना चाहिए। ये ग्वालियर के रहने वाले थे। विष्णुदास श्री कर्णव्यास के पुत्र और वैष्णव भक्त थे। इन्ही के पुत्र नारायणदास थे जिन्होंने छिताई वार्ता नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की"—(भूमिका पृ० ३५) श्री सपादक ने लिखा है कि, "विष्णुदास के गुरु हरिभक्त योगी सुन्दरनाथ जी थे जिन्हें अन्यत्र सहजनाथ भी कहा गया। विष्णुदास श्री कर्ण व्यास के पुत्र थे और अपने आपको वैष्णवो का दासानुदास मानते थे। इन्ही विष्णुदास के पुत्र कविवर नारायणदास थे जिन्होंने छिताई वार्ता नामक श्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रबध काव्य की रचना की है और जिसकी सुसम्पादित प्रतियाँ डॉ० माताप्रसाद गुप्त और ए० हरिहरप्रसाद द्विवेदी तथा अगरचन्द्र नाहटा द्वारा प्रकाशित की जा चुकी हैं"—प्रस्तावना पृ० ४८)

छिताई चरित्र के यशस्वी सपादक आचार्य हरिहरनिवास द्विवेदी ने नारायणदास और विष्णुदास कवि की भाषा और शैली के कतिपय अंश तुलनात्मक देते हुए प्रस्तावना पृष्ठ १५ तथा भावार्थ पृष्ठ १६१, १६२ फुटनोट में यह स्थापना की थी कि नारायणदास तथा उनके पिता विष्णुदास ग्वालियर के तोमरो के आश्रित कवि थे और नारायणदास की यह पंक्ति—'हरि सुमरतह भयो हुलासु, विरमिध बम नरायनदासु (१०) उनकी मान्यता का आधार थी। डॉ० भागीरथ मिश्र तथा श्री लोकनाथ सिलाकारी ने अपनी स्थापनाओं का कोई आधार नही दिया और सभवतः छिताई चरित के सम्पादक जी का आधार लिया है। यह स्थापना ऐतिहासिक कालक्रम तथा अन्य पोषक सामग्री की अपेक्षा रखती है और परिस्थितियाँ इसके पोषण की ओर जाती दिखाई दे रही हैं, खण्डन की ओर नहीं। इसकी पुष्टि में नारायणदास का

कालक्रम तथा विष्णुदास का कालक्रम और उनके ऐतिहासिक घरानस पर पिता-पुत्र होने की, कालक्रम से, सभावना जाचना होगी। डॉ० राजाराम जैन ने डूगरसिंह तोमर और कीर्तिसिंह तोमर राज्यकाल का कवि रइधू (वि० स० १४५०-१५३६ वि० अर्थात् १३९३ ई०—१४७९ ई०) समय का माना है। साथ ही, इसी समय रइधू के (कीर्तिसिंह राज्य काल मे 'मावयचरिउ, की रचना के) समय छिताई चरित की रचना नारायणदास का करना माना है।[2]

कीर्तिसिंह तोमर ने बहलोल लोदी के विरुद्ध जौनपुर के हुसैनशाह शर्की की सहायता की थी और शरण दी थी। उसका राज्यकाल टॉड कृत राजस्थान ओझा जी द्वारा सम्पादित पृष्ठ २५४ के अनुसार १५१० सम्वत् से १५३६ वि० (१४५३—१४७९ ई०) माना है, किन्तु हमने १४५९-१४७९ ई माना है। डॉ राजाराम जैन के अनुसार छिताई चरित की रचना नारायणदास कवि की १४७९ ई० तक हो जाना चाहिए। प्रस्तुत लेखक ने छिताई चरित का रचनाकाल १४८६-८१ ई० अनुमानित किया है, जो केवल नारायणदास कवि का है। विष्णुदास कवि १४४२ ई० मे वर्तमान थे उनकी मृत्यु कब हुई पता नही चलता। १४४३ ई० तक डॉ० भागीरथ मिश्र ने समय अनुमानित किया है, किन्तु यह ठीक नही लगता। जनमेजय के यज्ञ में इन्द्रप्रस्थ के निकट गौड विप्र हरियाणा कुरु जागल प्रदेश आने को कुछ ग्राम पुरस्कार मे लगा दिये गए थे उनमे एक भट्ट जोशी (मिश्र) कौशल गोत्र, यजुर्वेद माध्यन्दिनी-शाखा, घरोंडा (हरियाणा) की ब्राह्मण जाति थी। इस कुल में विष्णुदत्त कुलकमल दिवाकर उत्पन्न हुए थे और उनका पुत्र "नारायण" विख्यात हुआ। उसी नारायण का पुत्र दामोदर हरियाणिया-विप्र, षट्दर्शन साहित्य एव आयुर्वेद मे पण्डित हुआ। इस कुल की जानकारी दामोदर मिश्र ने दी है। इस वंश का वर्णन इसके वंशज हृदयराम मिश्र ने अपनी रचना सम्वत् १७३१ (१६७४ ई०) "रस रत्नाकर" मे किया है।[3]:—

जनमेजय के यज्ञ मे, हरिआने जे विप्र
इन्द्रप्रस्थ के निकट तिन, ग्राम दये नृप छिप्र (३)
गौड देश तें आनि के, बसे सबै कुरुखेत
विप्र गौड हरिआनिया, कहै जगत इहि हेत (४)
तिनमे एक भटानिया, जोशी जग इहि ख्याति

---

२. ग्वालियर के तोमर वंशी राजाओं का साहित्य एव कला प्रेम, डॉ० राजाराम जैन लेखक, म० प्र० सदेश १८ मार्च १९६७, पृष्ठ ५, ६,

३. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, दूसरा भाग, १९४७ ई० उदयपुर शोध सस्थान, पृ० २७-२९,

यजुर्वेद माध्यंदिनी, शाखा सहित सुजाति (५)
गोत कलित कौशल्ये, गर्नो घरोंदा ग्राम
उपजे निज कुल कमल रवि, विष्णुदत्त इहि नाम (६)
विष्णुदत्त को सुत भयो, नारायण विख्यात
ताको दामोदर भयो, जग में जस अवदात (७)
भाष्य सहित कैयट सकल, पढ्यो पढायो धीर
षट् दर्शन साहित्य में, जाको ज्ञान गंभीर (८)
स्वारथ परमारथ प्रद, विद्या आयुर्वेद
श्री दामोदर मिश्र सब, ताको जानें भेद (९)
हरिवदन के नाम जिन, ग्रन्थ करयो विस्तार
कर्मविपाक निदान युत, और चिकित्सा सार (१०)
करी चाकरी बहुत दिन, वैरम सुत के पास
बहुरि वृद्ध ताके भये, कीनो कासी वास
रामकृष्ण ताको तनय, विद्या विविध विलास
विप्र नगर के शिष्य सब, कियो जोनपुर वास (१२)

रामकृष्ण पर आसफखां के अनुज 'यातिकादखां, की कृपा रही। रामकृष्ण के तीन पुत्र—तुलसीराम, माधवराम, गंगाराम हुए। माधवराम, शाहशुजा के पास रहे। माधवराम के पुत्र हृदयराम मिश्र थे, राधाकृष्ण विलास दान लीला के रचियता यही माधवराम हैं ? और भीष्म पर्व के रचियता यही गंगादास वैष्णव हैं ? जांच का यह विषय है। इस उद्धरण से ऐसा अनुमान होता है कि श्री करन इसी वंश के थे, पंडित घराने के और कथाकार थे, संभवतः व्यास पद इसी कारण था। एक उदाहरण है ओरछा के श्री "हरीराम शुक्ल" का, जो शुक्ल न कहे जाकर "व्यास पद" से ही जाने जाते हैं। प्रतीत यह होता है कि श्री करन हरियानिया विप्र तैमूरलंग द्वारा की गई विनाश की आंधी में इन्द्रप्रस्थ से, नव-स्थापित तोमर राज्य वीरसिंह तोमर राज्य काल १३६४–१३९९ ई० में ग्वालियर सपरिवार आगए उन्हीं के साथ विष्णुदत्त नाम का मेधावी बालक था, जो उस समय (१) वर्ष की आयु का हो ? इस परिवार ने तोमर राज्य के संस्थापक वीरसिंह वंश का आश्रय ग्रहण किया और युद्ध क्षेत्र में भाग लिया, क्षात्र तेज को प्रखर किया, भागवत धर्म की रचनाएं दीं। लगभग ४६ वर्ष की आयु में विष्णुदत्त ने वैष्णव के रूप में विष्णुदास नाम से १४३५ ई० में महाभारत भाषा काव्य की (डूंगरसिंह तोमर काल में) रचना की। महाभारत के अर्जुन का—"युद्धाय कृत निश्चय" :—संदेश डूंगरसिंह को सुनाना था। वे जैन धर्म की मानसिक अहिंसा के निकट थे जिसके साथ उनका शासक का कर्तव्य और रूप प्रचंड होना था। डूंगरसिंह रइधू के अनुसार नृप गणेश के पुत्र थे। इतिहासकार श्री एच० सी० राय के अनुसार

राय डूंगरसेन ने ग्वालियर दुर्ग मे अगणित जैन मूर्तियो का निर्माण कराया था। वीरम देव तोमर काल के पदमनाभ कायस्थ (१४०२ ई०) ने स० १५११ (१४५४ ई०) अपनी सम्भवत. अंतिम रचना में राय डूगर को (संघपति) जैन धर्म के उन्नायक की पदवी देते हुए उनकी प्रशस्ति मे 'डूगर बावनी' की रचना की है, जिसके विषय मे डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने उद्धरण देते हुए 'सूरपूर्व व्रजभाषा' पृ० १५५-५६ मे यह कथन किया है कि 'डूंगर' पद्मनाभ एक व्यक्ति थे अथवा द्पमनाभ ने, डूगर कथित उपदेशो को बावनी के रूप मे लिखा यह स्पष्ट नहीं होता।

वीरमदेव तोमरकालीन यही पद्मनाभ था जिसने डूगरसिंह तोमर की प्रशस्ति मे डूगर बावनी लिखी है। डूगरसिंह ने ही कछवाहो से नरवरगढ छीन लिया था।[४]

विष्णुदास ने ५३ वर्ष की आयु मे रामायन कथा काव्य की रचना की। इनके पुत्र नारायण भी नारायणदास वैष्णव बन गए और छिताई चरित की रचना मे वीरसिंह वंश के आश्रित होने और एक पंक्ति मे "अपइ विष्णु नरायन दासू" कहकर पिता का स्मरण किया।[५] अनुमान यह है कि नारायण दास अपने पिता की चालीस वर्ष की अवस्था मे पिछली सन्तान थे, और इनका जन्म १४३६ ई० के लगभग ग्वालियर मे ही हुआ है। इन्होने दामोदर नामक पुत्र-रत्न १४६० ई० के लगभग प्राप्त किया होगा। जिस समय नारायणदास की आयु २१ वर्ष होगी। नारायणदास पिता के काल में ही दामोदर ने १४८० ई० में यौवन के उन्मेष मे श्रृंगार ग्रन्थ 'विल्हण चरित्र' की रचना की जिसमें नरेन्द्र कल्याणसिंह तोमर (गढ गोपाचल) राज्यकाल मे हरियाणा—विप्र होने का परिचय दिया है।[६]

गढ गोपाचल अगम अथाह, तेज तरणि तुवर नरनाह
दीप पयाल अमरपुर इन्दु, महिमण्डल कल्याण नरिन्दु
\+ \+ \+
हरियाणिया विप्र कविलास, दामोदर भुअन कविदास

---

४. पद्मनाभ की डूगर बावनी, अभय जैन ग्रंथागार, बीकानेर में है, गोपाचल का गौरव-राजा डूंगरसिंह तोमर, डॉ० राजाराम जैन, म० प्र० सन्देश ८ अक्टूबर ६६, पृष्ठ २१ पर एच० सी० राय का कथन उद्धृत :—
H. C. Roy "He (Dungarsen) was a great patron of the Jain faith and held the Jains in high esteem. During his event ful reign the work of carving Jains images on the rock of the fort of Gwalior was taken in hand, it was brought to completion during the reign of his successor Raja Karnisingh (or Kirtisingh)

५. छिताई चरित का मूल काव्य पृ० ४, पंक्ति २६।

६. जैन गुर्जर कवियो से सूचना प्राप्त, गुजरात के सीकर स्थान में प्रति।

विल्हण चरित्र के कर्ता ने भी गोरखनाथी संतो का स्मरण किया है। जिस प्रकार विष्णुदास ने सहजनाथ का नारायणदास ने चन्द्रनाथ का तथा दामोदर ने गोरखनाथ निरजन ज्योति राजाराम का उल्लेख किया है। इस समय दामोदर की अवस्था केवल बीस वर्ष होगी और नारायणदास ने छिताई चरित की रचना कल्याणसिंह के राज्यकाल के अन्तिम समय से मानसिंह राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षो मे पूर्ण करली होगी जो सभवतः १४७१-८६ से १४६१ ई० तक आता है। दामोदर वही दामो हो सकता है जिसने लक्ष्मणसेन पदमावती रास लिखा हो ? यह संभावना इस दृष्टि से दूर हो जाती है। वह "दामो" और हो सकता है। यह हरियाणा विप्र दामोदर, विष्णुदास, नारायणदास का वशज प्रतीत होता है जो स्पष्ट कहता है :—

गवड वश गोपाचल वास, विप्र दामोदर गुणह निवास
अनुदिन होय धर्महि जगुमाइ, सुमिरत बुद्धि देइ बहु माइ
सवत् पनरह सइ छैंतीस, सुदि वैशाख दसइ गुरु सीस
आदि कथा सकट मे रहो, ता लगि दस्ह सुमति कर कही
अति सिंगार वीररस घणो, करुणा रुद्र भयानक भणो
विल्हण चरित बरणि कर कहऊ, दुख सहि पाछे सुख लहिऊ

विष्णुदास ने देवी की वन्दना की है नारायणदास ने भी उसी सरस्वती की वंदना की है और यह दामोदर भी जगुमाइ की वंदना कर रहा है। हो सकता है कि दामोदर ने १४८० ई० से पीछे तक रचना की हो। नारायणदास ने विक्रमादित्य तोमर के २१ अप्रैल १५२६ ई० पानीपत युद्ध मे निधन के तत्काल बाद, सारगपुर-मालवा, जीवन के अंतिम क्षणो मे देखा और उसके वशज दामोदर आदि भी आश्रय के लिये चले गए ?

विष्णुदास की रामायन कथा में बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ट और उत्तरकाण्ड है, जिसमें लगभग ४१ सर्ग हैं इनमे ही हिन्दी साहित्य मे रामकथा को लेकर विशाल काव्य विष्णुदास ने प्रथम पौराणिक आख्यानकार के रूप मे रचा। इस ऊहापोह मे आचार्य हरिहर निवास द्विवेदी की मध्यदेसीया भाषा, "भारती" उनकी पत्रिका दिशा बोधक मीलस्तम्भ रहेंगे।

* * *

७. लक्ष्मणसेन पदमावती कथा–दामोदर, सपादित श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, परिमल प्रकाशन, प्रयाग, १६५६ ई० लेखक के अध्ययन की इस कथा की अप्रकाशित प्रति विद्यामंदिर मुरार-ग्वा० मे है।

ग्रन्थ सूची (मूल ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ)

(अ)

(१) अलबेरूनी का भारत, भाग १

(२अ) अर्द्धकथानक (१६४३ ई०)—बनारसीदास द्वारा रचित (द्वितीय संस्करण, १९५७)

(२ब) अर्द्धकथानक की भूमिका—डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित।

(३) अंधकारयुगीन भारत—श्री काशीप्रसाद जायसवाल

(४) अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल (सं० २०००)

(५) अकबर—श्री राहुल सांकृत्यायन (संस्करण १९५७) परिशिष्ट ३

(६) अकबरनामा, जिल्द ३—अबुल फजल

(७) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ० दीनदयालु गुप्त

(८) अष्टछाप (सं० १६९७ की वार्त्ता और भावप्रकाश)—सम्पादक, प्रो० कण्ठमणि शास्त्री, संचालक विद्या विभाग, कांकरोली (सं० २००९ संस्करण)

(९) अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल

(१०) अनगरम—कल्याणमल तोमर)

(११) अकबरनामा, भाग १—अनुवादक ब्लोचमैन

(१२) अपभ्रंश साहित्य—डॉ० हरिवंश कोछड़ (सं० २०१३)

(१३) अकबर दि ग्रेट, खण्ड १—डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (१९६२ संस्करण)

(१४) अकबर दि ग्रेट मुगल—विन्सेन्ट स्मिथ

(१५) अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन (१९६५)

(आ)

(१) आइने अकबरी प्रथम भाग (अंग्रेजी अनुवाद—ब्लोचमैन)

(२) आगम प्रामाण्य—यामुनाचार्य

(३) आइने अकबरी—(ग्लैडविन-अंग्रेजी अनुवाद)

(४) आचार्य केशवदास—डॉ० हीरालाल
(५) आर्कोलॉजिकल सर्वे इंडिया, रिपोर्ट पार्ट २ तथा वार्षिक रिपोर्ट (१९१५-१६)
(६) आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध—डॉ० हरीश (१९६६)

(इ)

(१) ईलियट्स—मेम्वायर्स आन दी रेसेज आफ एन० डब्ल्यु पी० ई० टी० सी० १८६६, पार्ट १, एपेन्डिक्स 'सी', पार्ट २
(२) इण्डियन एण्टीक्वेरी, पार्ट १६ (१९०० ई०) तथा पार्ट ३७
(३) इम्पीरियल फरमान्स—श्री झवेरी
(४) इण्डियन पेन्टिंग्स अण्डर दी मुगल्स

(उ)

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १—ओझा
(२) उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग १ तथा भाग २ (१९५८ ई०)
—सम्पादक, अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़
(३) उत्तरी भारत की संत परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी
(४) उज्ज्वल नीलमणि—कृष्ण वल्लभ

(ऐ)

(१) ऐतरेय ब्राह्मण
(२) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—सम्पादक, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, सं० १९९४ (कलकत्ता से प्रकाशित)
(३) एपीग्राफिया इण्डिका, पार्ट १ तथा पार्ट ५, एपेन्डिक्स ३४
(४) एनसियन्ट जागफी ऑफ इण्डिया—कनिंघम
(५) एन्शियन्ट इण्डियन हिस्ट्री—मजूमदार
(६) एनॉल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान—टॉड
(७) ए शॉर्ट हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ दी म्यूजिक ऑफ अपर इण्डिया—श्री विष्णु-नारायण भातखण्डे
(८) ए गाइड टु खजुराहो
(९) ए स्टडी ऑफ दी इन्डो-आर्यन सिव्हिलिजेशन
(१०) एन एडव्हान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पार्ट २

(ओ)

ओरछा गजेटियर, पार्ट ६—केप्टेन सी० ई० लुआर्ड, एम० ए० (आक्सन)

(क)

(१) कविप्रिया—केशवदास
(२) केशवदास और उनका साहित्य—डॉ० विजयपालसिंह
(३) काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध—डॉ० उमा मिश्र (सं० १७००–१९००, १९६२ ई०)
(४) कवितावली उत्तर काण्ड—तुलसीदास
(५) कीलावलि निर्णय—डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची
(६) कबीर—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(७) कविता कौमुदी—श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित। प्रथम भाग, पाँचवाँ संस्करण तथा आठवाँ संस्करण (प्रवीणराय के पद)
(८) कवि तानसेन और उनका काव्य—नर्मदाप्रसाद चतुर्वेदी
(९) केशवदास—चन्द्रबली पाडे
(१०) कानूने हुमायूँनी (मुगलकालीन भारत हुमायूँ, भाग १)—डॉ० रिजवी
(११) काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डॉ० शकुन्तला दुबे (१९६४ ई०) हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१
(१२) कीर्तन संग्रह, भाग १ (आसकरन के पद)
(१३) कबीर साहित्य की परख (सं० २०११)
(१४) कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—डा० शिवप्रसादसिंह
(१५) कामायिनी—विमर्श (भागीरथ दीक्षित) समुदाय प्रकाशन, ५१४ उन्नीसवाँ रास्ता, खार, बम्बई–५२
(१६) कायम खाँ रासो—श्री दशरथ शर्मा, श्री नाहटा द्वारा सम्पादित।
(१७) कालिदास—विक्रमोर्वशीयम्, चौखम्बा सीरीज, वाराणसी-१
(१८) कनटेम्पोरेरी मुस्लिम किंगडम (५)

(ख)

(१) 'खजाए-उल-फतूह' (लि० अमीर खुसरो)—हबीब द्वारा अनूदित।
(२) खुसरो की हिन्दी कविता—सं० ब्रजरत्नदास (२०१० वि०)
(३) खोज विवरण १९०६-८, पृष्ठ ९२, नम्बर २४८, पृष्ठ ३२४-३२६, संख्या २४८ ए व बी।
(४) खोज विवरण (विष्णुपद) (१९१२-१४), पृष्ठ २४२–२४३, गोस्वामी राधाचरण वृन्दावन की प्रति से।

(५) खोज विवरण १९२६-१९२८, पृष्ठ ७५६ सख्या २९८ ए. पृष्ठ ७६० संख्या ४६६ । रुक्मिणी मंगल—विष्णुदास ।
(६) खोज रिपोर्ट १९२९-३१, पृष्ठ ६२६-६२७ दरियावगंज, जिला एटा के लाला ठकरलाल की प्रति से । स्वर्गारोहण—विष्णुदास ।
(७) खोज विवरण सन् १९२९-३१, प० बजीराम अतमादपुर, जिला आगरा की प्रति से, पृष्ठ ६२७-६२८ । स्वर्गारोहणपर्व—विष्णुदास ।
(८) खोज रिपोर्ट १९२९-३१, पृष्ठ ६२३-२४, पिनाहट, जिला आगरा के चौबे श्रीकृष्ण की प्रति से । महाभारत—विष्णुदास ।
(९) खोज विवरण सन् १९००, नम्बर ८८, पृष्ठ ७१, दामो की लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा ।

(ग)

(१) ग्वालियर राज्य के अभिलेख (स० २००४)—सकलनकर्ता, हरिहरनिवास द्विवेदी
(२) ग्वालियरी के व्याकरण का नमूना (साधन कृत मैनासत पृष्ठ २५-२६ पर प्रकाशित) डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रयाग द्वारा प्रेषित ।
(३) ग्वालियर नामा—खड्गराय कृत । प्रतिलिपि—दतिया राजकीय पुस्तकालय से प्राप्त, विद्यामन्दिर, मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है ।
(४) ग्वालियर पुरातत्व रिपोर्ट, सवत १९८४, सख्या २१, स० १९७१, सख्या २५
(५) गोरक्ष सिद्धात सग्रह
(६) गोरखबानी—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा सपादित ।
(७) गुह्य समाज तत्र—स० विनय तोष भट्टाचार्य
(८) गीतापद्यानुवाद—थेघनाथ, आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचा० सभा काशी के सौजन्य से प्राप्त । प्रति—विद्या मंदिर, मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है, परिशिष्ट—मध्यदेशीया भाषा मे कुछ अश प्रकाशित ।
(९) गोविन्दस्वामी के पद—डॉ० दीनदयालु गुप्त के निजी सग्रह में पद सख्या ६१, वर्षोत्सव भाग १, २, ३ (२४७ पद प्रकाशित)
(१०) गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज—ब्रिग्स. जी. डब्लू. चार्ट, पृष्ठ ६२।६,७४

(च)

(१) चन्देल और उनका राजत्वकाल—केशवचन्द्र मिश्र (स० २०११)
(२) चन्दायन—सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद (१९६२ ई०) विद्यापीठ, आगरा तथा चांदयन—स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, ३५, लाजपत कुंज सिविल लाइन्स, आगरा (१९६७ ई०)

(छ)

(१) छिताई चरित—नारायणदास रतनरंग देवचन्द—सं० हरिहरनिवास द्विवेदी
(२) छन्द प्रभाकर—श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु
(३) छिताई वार्ता—स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त-प्रधान सं० श्री रुद्र काशिकेय
(४) छीहल बावनी—डॉ० शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित, वाराणसी।

(ज)

(१) जफरुलवालेह—अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन उमर
(२) जायसी ग्रंथावली—रामचन्द्र शुक्ल (संस्करण २०१७ वि०)
(३) जैन साहित्य और इतिहास—सं० नाथूराम प्रेमी (१९५६)
(४) जैन गुर्जर कविओ, पृष्ठ २१२१, २११० (लखनसेनि की रचना हरिचरित्र, विराटपर्व का वर्णन, १९४४-४६ की खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचा० सभा द्वारा प्रकाशित)
(५) जनरल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, पार्ट ३१ तथा पार्ट १ (१८८१)
(६) जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, भाग १, २—सं० परमानन्द जैन

(ट)

(१) टॉड का राजस्थान, जिल्द १—ओझा कृत अनुवाद,
(२) ट्रीटाइज ऑफ हिन्दुस्तान—कैप्टेन विलर्ड

(ड)

(१) डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्थ इण्डिया, पार्ट २—एच० सी० राय

(ढ)

(१) ढोला मारू रा दूहा—सं० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, ना० प्रचा० सभा (१९९१)

(त)

(१) तारीखे मुहम्मदी—मुहम्मद बिहामद खानी, उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग २
(२) तारीखे मुबारिक शाही यहया—स० रिजवी, उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग १
(३) तबकात-ई-अकबरी—ख्वाजा निजामुद्दीन कृत का अंग्रेजी अनुवाद, भाग ३
(४) तारीख-इ-फरिश्ता—फरिश्ता कृत (लखनऊ संस्करण)

(५) तबकात-ए-नासिरी—अनुवादक रेवर्टी, भाग १
(६) तारीख-ए-फरिश्ता—ब्रिग्ग, भाग १
(७) तारीखे दाऊदी—अनुवादक, रिजवी, उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग १
(८) तारीखे शाही—अहमद यादगार
(९) तुजुक-ए-जहांगीर—अनुवादक, रोजर और बेवरिज, जिल्द १
(१०) तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य—नागेन्द्रनाथ उपाध्याय (२०१५)

(द)

(१) दिल्ली सल्तनत—डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (पंचम संस्करण १९६५)
(२) दक्खिनी का पद्य और गद्य—श्रीराम शर्मा
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—गो० हरिरायजी कृत, द्वितीय खण्ड
(४) देव और उनकी कविता—डॉ० नगेन्द्रकृत (प्रथम संस्करण)
(५) दो सौ वैष्णवन की वार्ता, द्वितीय खण्ड
(६) दक्खिनी हिन्दी—डॉ० बाबूराम सक्सेना (१९५२)
(७) देवलरानी—खिज्र खां, अनुवादक, मै० अतहर अब्बास रिजवी—खिलजीकालीन भारत १९५५ (पृ० १७१-१७६) में उद्धृत।
(८) दी आउटलाइन ऑफ इण्डियन म्यूजिक—ले० डॉ० जी० के०
(९) दी जनरल ऑफ दी हिन्दू यूनीवर्सिटी, पार्ट ५, इश्यू २, १९४० ई०
(१०) दी मैम्वायर्स ऑफ बाबर—बैवरिज द्वारा अनुवादित
(११) दी जनरल ऑफ यू० पी हिस्टोरीकल सोसाइटी, जिल्द २१, पार्ट १–२,–ए नोट ऑन तानसेन
(१२) दी कलकत्ता रिव्यू, जून १९२७
(१३) दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ऑन हिस्टोरियन्स—हेनरी इलियट, व्हाल्यूम ३
(१४) दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन (१९५९)

(न)

(१) नायक बख्शू का पद—मध्यदेशीया भाषा पृष्ठ ८३
(२) नाथ सम्प्रदाय—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
(३) नेशनल फ्लैग एण्ड अदर एसेज (तानसेन)—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

(प)

(१) पुरानी हिन्दी—श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(२) प्रबन्ध चिन्तामणि (मेरुतुगाचार्य १३०४ ई०)–सम्पादक, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३) प्रबोध चन्द्रोदय–नाटक—कृष्ण मिश्र
(४) पृथ्वीराज रासो–सम्पादक, मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और श्यामसुन्दरदास, बनारस (१९१३)
(५) पुरातत्त्व निबन्धावली–सांकृत्यायन
(६) पद्मावत–जायसी, नागरी प्रचारिणी सभा (तीसरा सस्करण, सं० २००१)
(७) पद्मनाभ–'डूंगर बावनी' की प्रति अगरचन्द नाहटा के अभय जैन ग्रन्थागार बीकानेर) में है। (सूरपूर्व ब्रजभाषा से सूचना, पृष्ठ १५५। १५६ पर)
(८) पंच सहेली–छीहल की रचना, श्री अगरचन्द नाहटा के सग्रहालय के स० १६६६ में उतारे गए गुटके में साधनकृत मैनासत के परिशिष्ट ३ में २०१-२१३ पर प्रकाशित।
(९) 'पवन दूतम आव धोयी'–सम्पादित, श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती, सस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता
(१०) पोस्ट चैतन्य सहजीया कल्ट–मनीन्द्र मोहन बोस
(११) पचतन्त्र–सपादक, डॉ० हर्टेल, हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज, नम्बर ११
(१२) प्रोग्रेस रिपोर्ट्स ऑफ आर्कीलॉजीकल सर्वे वेस्टर्न सर्किल (१९१९ ई०)
(१३) पजाब सेन्सस रिपोर्ट (मैकोलेन)
(१४) प्राकृत टैक्स्ट् सीरीज, भ्रा० ७, (१९६३, द्वि० सस्करण)
(१५) प्रशस्ति सग्रह–स० डॉ० कस्तूर चद कासलीवाल (१९५०)

(फ)

(१) फुतुहुस्सलातीन— एसामी (अनुवादक रिजवी)

(ब)

(१) बुद्धचरित–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
(२) बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास–गोरेलाल तिवारी
(३) बुन्देलखण्ड की प्राचीनता–डॉ० भागीरथ प्रसाद 'बागीश' शास्त्री
(४) बीसलदेव रासो–डॉ० तारकनाथ अग्रवाल
(५) बुन्देल-वैभव–गौरीशकर द्विवेदी (१९९० वि०) प्रथमावृत्ति
(६) वैष्णव प्रपत्ति वैभव–ले० गोविन्ददास चतुर्वेदी। मूल हस्तलिखित ग्रन्थ श्री नारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' वशज के पास है।

(७) बाबरनामा–बैवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद, भाग २
(८) विक्रमांक देव चरित–बूलर द्वारा सम्पादित, भाग ३
(९) विद्यापति की पदावली, चतुर्थ संस्करण—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी
(१०) वीर काव्य–डॉ० उदयनारायण तिवारी
(११) वाल्मीकि–उत्तरकाण्ड ५९ स०
(१२) विज्ञान गीता–केशवदास, प्रथम प्रभाव, छंद ३
(१३) वाकआते मुश्ताकी–अनु० रिजवी, उ० तैमूरकालीन भारत, भाग १
(१४) वैताल पचीसी–मानिक कवि, कोसीकला, जिला मथुरा के प० रामनारायणजी की प्रति। स० त्रैमासिक खोज विवरण १९३२, ३४, पृष्ठ २४०-२४१
(१५) बृहत्कथा मंजरी–क्षेमेन्द्र कृत
(१६) वैताल पंचविंशति–शिवदास, जर्मन विद्वान हाइनरिश ऊवे द्वारा सम्पादित, लाइपजिग, १८८४ ई०
(१७) वैताल पंचविंशति–जम्भलदत्त कृत। डॉ० एमेनाउ द्वारा रोमन अक्षरों में अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित, अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी (१९३४) संस्कृत साहित्य का इतिहास–बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ४१२ पर सूचना प्राप्त।
(१८) वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, भाग २–लल्लू भाई छगनलाल देसाई
(१९) वल्लभ दिग्विजय–श्री यदुनाथ जी कृत–अनुवादक, पुरुषोत्तम चतुर्वेदी
(२०) वीरभानूदय काव्यम्, दशम सर्ग–माधवकृत
(२१) वीरसिंहदेव चरित (सं० २०१३ संस्करण), मातृभाषा मंदिर, प्रयाग
(२२) ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प–डॉ० सावित्री सिन्हा (१९६१ संस्करण)
(२३) विल्हण चरित्र–दामोदर कृत, गुजरात के भीवर स्थान में प्राप्त प्रतिलिपि रचनाकाल सं० १६७४ वि० सूचना 'जैन गुर्जर कवियों' से प्राप्त।
(२४) बिलहरी के शिलालेख–एपीग्राफिया इंडिका १
(२५) बंगला साहित्येर इतिहास–डॉ० सुकुमार सेन
(२६) विक्रम स्मृति ग्रन्थ–भारतीय संगीत का विकास–ठाकुर जयदेवसिंह
(२७) बुन्देलखण्ड के लोक गीत–वृन्दावनलाल वर्मा (१९६२)
(२८) बृजभाषा एवं खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया
(२९) बुन्देली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन–डॉ० रामेश्वर अग्रवाल
(३०) ब्रजभाषा–डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग
(३१) बिहारी सतसई–महाकवि बिहारीलाल
(३२) विष्णु दास कविकृत रामायन कथा–सं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी, (सागर विश्वविद्यालय)

(भ)

(१) भारतभूमि और उसके निवासी–जयचन्द्र विद्यालंकार
(२) भारत का इतिहास, प्राचीनकाल (१९६०, तृतीय संस्करण)–प्रो० दयाप्रकाश
(३) भक्त रत्नावली ग्रंथ–श्रीभास्कर रामचन्द्र भालेराव के ग्वालियर स्थित संग्रहालय में सुरक्षित है। (प्रियादास की टीका मराठी अनुवाद नाना बुआ वेन्द्रकर ने पश्चिम खान देश अमलनेर में किया है)
(४) भक्त कवि व्यासजी (२००६)–वासुदेव गोस्वामी, दतिया
(५) भक्त माल–श्री प्रियादास कृत टीका, गणेशदत्त कृत टिप्पणी, गोवर्धन (वृन्दावन)
(६) भारतीय संस्कृति का विकास–प्रो० जॉ० एन० मेहरा (चतुर्थ संस्करण, १९५६)
(७) भारतीय दर्शन, पृष्ठ ५३८—उपाध्याय
(८) भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव (१९६१ ई०) द्वितीय सं० (सं० १०००-१९१२)
(९) भ्रमरगीतसार (चतुर्थ संस्करण)–आचार्य शुक्ल द्वारा सम्पादित।
(१०) भारती संगीत के स्वर्णिम पृष्ठ–वृंदावन विलास
(११) भक्त विजय–निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित (महीपतिबुवा ताहुराबारकर कृत)
(१२) भक्त नामावली–ध्रुवदास (सं० राधाकृष्णदास)
(१३) श्रीमद्भागवत
(१४) भावभट्ट–अनूप संगीत रत्नाकर छन्द १६५-१६७
(१५) भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी–डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
(१६) महारक सम्प्रदाय–प्रो० जोहरापुरकर (१९१८ ई०) शोलापुर

(म)

(१) मनुस्मृति, अध्याय २
(२) मार्कण्डेय पुराण
(३) मध्यभारत का इतिहास (सं० २०१५, प्रथम संस्करण)–लेखक, द्विवेदी
(४) मध्यदेशीय भाषा–हरिहरनिवास द्विवेदी, ग्वालियर
(५) मालती माधव–महाकवि भवभूति, व्याख्याकार–शेषराज शास्त्री
(६) मुगलकालीन भारत (१९६५, पंचम संस्करण)–डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
(७) मानसिंह-मानकुतूहल (सं २०१०, प्रथम संकरण)–हरिहरनिवास द्विवेदी
(८) मुगलकालीन भारत-बाबर–सं० अतहर अब्बास रिजवी

(९) मिरात-इ-सिकन्दरी का अंग्रेजी अनुवाद—फज्लुल्ला लुत्फुल्ला फरीदी कृत।
(१०) महारानी दुर्गावती—वृन्दावनलाल वर्मा (१९६४)
(११) मुगलकालीन भारत (हुमायूं) भाग १—सम्पादक, रिजवी
(१२) महाकवि रइधू—परमानन्द जैन शास्त्री (वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ)
(१३) मृगनयनी—वृन्दावनलाल वर्मा (१९६२)
(१४) मालविकाग्निमित्र (कालिदास)
(१५) महाभारतमूवनपर्व ८१ अ
(१६) मासिरुल उमरा—लेखक, समसामुद्दौला, शाहनवाजखां जिसमें मैकलां शीर्षक में फकीरुल्ला मैकला की जीवनी दी गई है। (पृष्ठ ४७९-४८४)
(१७) मुनि जसकित्ति (यश कीर्ति भट्टारक)—ज्ञानार्णव, इसकी प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में सुरक्षित है।
(१८) महाभारत भाषा—विष्णुदास, हस्तलिखित प्रति—राजकीय दतिया पुस्तकालय प्राप्त। प्रति—विद्या मन्दिर, मुरार (ग्वालियर) में सुरक्षित है।
(१९) मुन्तखबुत्तवारीख जिल्द २, ३—बदायूंनी
(२०) मिश्र बन्धु विनोद, भाग १
(२१) मधुमालती वार्ता—चतुर्भुजदास निगम (स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त)
(२२) मधुमालती—मंझन कृत, स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त (१९६१ संस्करण)
(२३) मुगलकालीन भारत (बाबर)—सम्पादक, से० अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़
(२४) मुगलकालीन भारत—डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
(२५) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डॉ० (श्रीमती) सावित्री सिन्हा
(२६) मैम्बायर्स ऑफ महमूद आफ गजनी
(२७) माइल स्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर—कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी
(२८) मुथरा मैम्बायर्स (मथुरा मैम्वायर्स)—ग्राउजे

(य)

(१) यू० पी० डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जिल्द २२, २१ (१९०९ ई०)

(र)

(१) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग (प्रथम संस्करण १९४७ ई०) (अगरचन्द नाहटा)
(२) रसिक प्रिया—केशवदास
(२-अ) राजस्थान के राजघरानों की हिन्दी सेवा—डॉ० राजकुमारी कौल, जयपुर।

(३) राम कथा—फादर कामिल बुल्के, रांची
(४) रूपमंजरी की वार्त्ता—नन्ददास
(५) रैदास जी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
(६) राजपूताने का इतिहास—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
(७) रामचरित मानस तुलसीकृत, बालकाण्ड ३७—१,२,३
(८) रायसेन का शासक सलहदी तवर—डॉ० रघुबीरसिंह द्वारा लिखित छिताई चरित, परिशिष्ट १, पृष्ठ ४२७-४३६
(९) रागमाला (तानसेन)—गोवर्धनलाल द्वारा संपादित, लहरी प्रेस, काशी
(१०) राधाकृष्ण ग्रंथावली, भाग १ (प्रवीणराय एवं अकबर की चर्चा)
(११) रागदर्पण—फकीरुल्ला खाँ (मानकुतूहल पृष्ठ ५५-६७)
(१२) रासो साहित्य विमर्श—डॉ० माताप्रसाद गुप्त (१९६२)

(ल)

(१) 'लोर कहा'—सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, विद्यापीठ, आगरा
(२) लखनसेन पदमावती कथा—दामो (सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी) १९५९ ई० ।

(स)

(१) साधनकृत मैनासत (१९५९)—हरिहरनिवास द्विवेदी
(२) सूर्यवंशी कछवाहा वंशावली—(स्व० बाबू भीमसेन वर्मा, प्रकाशक क्षत्रिय महासभा, सरायवेगा सिकन्दरा, आगरा
(३) संगीत सम्राट तानसेन—प्रभुदयाल मीतल (२०१७ वि०)
(४) सम्प्रदाय कल्पद्रुम
(५) शिवसिंह सरोज—ठा० शिवसिंह सेंगर
(६) संत साहित्य—डॉ० सुदर्शनसिंह मजीठिया (१९६२)
(७) संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, सप्तम संस्करण १९६५
(८) सम आस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन फिलोसफी—डॉ० हेमचन्द्रराय
(९) सूरनिर्णय—प्रभुदयाल मीतल
(१०) संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएं—नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
(११) शुक्रनीति, अ० ४, भाग ४, श्लोक १४७-१५०
(१२) सूरपूर्व ब्रजभाषा—डॉ० शिवप्रसाद सिंह (फरवरी १९६४, द्वितीय संस्करण)
(१३) सत्यवती कथा—ईश्वरदास कृत, सं० शिवगोपाल मिश्र तथा रावत श्री ओमप्रकाश सिंह—प्रका० विद्या मंदिर, ग्वालियर
(१४) सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरवंशलाल शर्मा, संशोधित संस्करण, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

(१५) सगीत सुदर्शन–प० सुदर्शनाचार्य ने तानसेन और तानतरंगखा की वशावली अपने सगीत गुरु अमृतसेन तक दी है।
(१६) सूर साहित्य–डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (सशो० सस्करण १९५६)
(१७) सगीत पारिजात, पृ० ६, छन्द सख्या २०
(१८) सगीतशास्त्र–पं० विष्णुनारायण भातखण्डे, प्रथम भाग
(१९) स्वर्गारोहण–विष्णुदास की एक प्रति डा० शिवशरण शर्मा, दतिया के पास सुरक्षित है। खोज रिपोर्ट १९२९-३१, पृ० ६५६, ६५७, ६५८
(२०) सदेश रासक स्टडी, पृ० ३३
(२१) शृगार दर्पण–अकबर साहि, दूसरा भ० १५८
(२२) सूफी मत साधना और साहित्य–प्रो० रामपूजन तिवारी (२०२५ वि०)

(ग)

(१) शिलालेख स० १२२६ (विजौल्या)
(२) शिलालेख स० १३१६
(३) शिलालेख स० १३७७ (अजयगढ)

ह

(१) हिन्दी भाषा का इतिहास (१९५३ सस्करण)–डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
(२) हिन्दी साहित्य–डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी।
(३) हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य शुक्ल (सस्करण स० १९९७, १९९९ वि०, २००७)
(४) हिन्दी साहित्य की भूमिका–डॉ० हजारी प्रसाद, द्विवेदी (प्रथम सस्करण)
(५) हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग २–नेमिचन्द शास्त्री (प्रथम सस्करण १९५६ ई०)
(६) हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय–डॉ० बडथ्वाल
(७) हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य–डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ
(८) हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग चौथा–आचार्य भातखण्डे कृत।
(९) हरिवश पुराण, अध्याय २१
(१०) हम्मीर काव्य–श्री नीलकठ जनार्दन कीर्तने द्वारा सम्पादित, बम्बई से १९१८ ई० मे प्रकाशित।
(११) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण, भाग १

(१२) हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य मे सगीत–डॉ० ऊषा गुप्ता, पचम अध्याय, आमकरन के पद (स २०१६, लखनऊ वि० वि०)
(१३) हिन्दी नवरत्न–मिश्र बन्धु
(१४) हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योग–डॉ० नामवरसिंह
(१५) हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह–स० श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी (स० १६५२, द्वितीय सस्करण) श्री गुलाबराय द्वारा सशोधित, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
(१६) हिन्दी कामसूत्र (जयमगला टीका सहित, श्री देवदत्त शास्त्री १६६४ ई०, पृष्ठ २ लगा० ७, ११ टिप्पणी १)
(१७) हिन्दी विश्वकोष–सम्पादक श्री नगेन्द्रनाथ वसु, जिल्द १४ (प्रवीणराय पातुर का जन्म सवत, पृष्ठ ६४१)
(१८) हिस्ट्री ऑफ राइज ऑफ मुहम्मडन पावर इन इन्डिया–जान ब्रिग, जिल्द ४
(१९) हिस्ट्री ऑफ इडिया एण्ड ईस्टर्न आरकीटैक्चर (१६१० ई०) पार्ट २, –फर्ग्युसन
(२०) हिस्ट्री ऑफ मिडवल हिन्दू इडिया पार्ट ३
(२१) हिस्ट्री ऑफ दी खिलजीज–डॉ० किशोरीशरणलाल
(२२) हिन्दू म्यूजक फार्म ब्हेरियस आथर्स–एस० एम० ठाकुर
(२३) हुकाय के हिन्दी–अनु० रिजवी (स० २०१४) काशी नागरी प्रचा० सभा
(२४) हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि–डॉ० प्रेम सागर जैन (१६६४)
(२५) हम्मीर महाकाव्य–नयचन्द्र सूरि (सम्पादक–श्री फतहसिंह) जोधपुर

त्र

(१) त्रिपुरी (स० २०१०)–हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्या मदिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर.





पत्रिकाएँ

१ 'भारती' मासिक ग्वालियर (लेख और लेखक)

(१) ग्वालियरी हिन्दी का प्राचीनतम ग्रन्थ—श्री अगरचन्द नाहटा (गद्य हितोपदेश) (मार्च १९५५, पृष्ठ २०८) दिसम्बर १९५४ पृ० ५२४ 'फकीरुल्ला'—डॉ० रघुबीरसिंह

(२) कच्छ मे रचित एक हिन्दी ग्रन्थ (नवम्बर १९५९ पृष्ठ ७०८)

(३) महीपति बुआ—'भक्त विजय'—लेख डॉ० विनयमोहन शर्मा (जून १९५६, पृष्ठ ३४५)

(४) गोविन्दस्वामी और तानसेन—श्री चन्द्रशेखर पंत (जून १९५६ पृष्ठ ३१२)

(५) मध्यप्रदेश का हिन्दी साहित्य—प्रयागदत्त शुक्ल (दिसम्बर १९५७, पृष्ठ ७००)

(६) ग्वालियर का व्याकरण—डॉ० शिवगोपाल मिश्र (अगस्त १९५६, पृष्ठ ५०६)

(७) कल्याणमल और उनका अनगरंग (जुलाई १९५५, पृष्ठ ३६२) लेख—भा० रा० भालेराव

(८) जान—कनकावती (अक्टूबर १९५६, पृष्ठ ६६९)

(९) हिन्दी के आदि कवि गोस्वामी विष्णुदास—लेख हरिहरनिवास द्विवेदी (दिसम्बर १९५७) पृष्ठ ७१३

(१०) चतुर्भुजदास कृत मधुमालती—हरिहरनिवास द्विवेदी (फरवरी १९५५, पृष्ठ १५७)

(११) मधुमालती का प्राचीन संस्करण—अगरचन्द नाहटा (जून १९५६, पृष्ठ २८७)

(१२) भक्त कवि माधव—डॉ० शिवगोपाल मिश्र (जून १९५६, पृष्ठ ३२६)

(१३) लखनसेन पद्मावती रास—अगरचंद नाहटा (१९५८ ई० पृष्ठ १२२)

(१४) फकीरुल्ला सैफखाँ—डॉ० रघुवीरसिंह (दिसम्बर १९५४, पृष्ठ ५२४)

(१५) ग्वालियर के कवि नाभादासजी—डॉ० विनयमोहन शर्मा, जून १९५६, पृष्ठ ३४५

(१६)　ग्वालियर और हिन्दी कविता–श्री राहुल सांकृत्यायन (अगस्त १६५५, पृष्ठ १६७–१६६

(१६-अ) ग्वालियर और दखिनी हिन्दी, सितम्बर ५६, पृ० ५६०

(१७)　हिन्दवी के तीन प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० शिवगोपाल मिश्र, (अक्टूबर १६५६, पृष्ठ ६६८)

२　मध्यप्रदेश संदेश, ग्वालियर

(१)　छिताई वार्त्ता–श्री अगरचंद नाहटा (१६ अप्रैल १६५८ ई)

(२)　छिताई चरित–लेख० श्री हरिहरनिवास द्विवेदी (१० मई १६५८ ई०)

(३)　पतिव्रता पातुर प्रवीणराय–श्री लोकनाथ सिलाकारी (५ दिसम्बर १६६४, पृष्ठ १०)

(४)　लोकनाथ द्विवेदी द्वारा लेख में विष्णुदास की रामायणी कथा पर शोध की सूचना (२४ सितम्बर १६६६ पृष्ठ, ४)

(५)　ग्वालियर के तोमरवंशी राजाओं का साहित्य एवं कला प्रेम– डॉ० राजाराम जैन (१८ मार्च १६६७, पृष्ठ ५, ६)

(६)　गोपाचल का गौरव, राजा डूगरसिंह तोमर–डॉ० राजाराम जैन (८ अक्टूबर १६६६, पृष्ठ ८।२६)

(७)　१८ मार्च १६६७, पृष्ठ ६

(८)　नरवरगढ और नरवरपति राजा आसकरन—सुखदेव दुबे (२५ फरवरी सन् १६६७ ई०, पृष्ठ ८।१६)

(६)　मध्यभारत सन्देश, ३ मार्च १६५६ (ग्वालियर), ३१ दिसम्बर ५५ (ब्रह्मगुलाल पर लेख, श्री नाहटा)

३.　हिंदुस्तानी ' पत्रिका, प्रयाग

(१)　मसन के गुरु शेख मुहम्मद गौस–डॉ० श्याम मनोहर पांडेय (जुलाई–सितम्बर १६५६, पृष्ठ ६०–६३)

(२)　कविवर जान और उनका कायम रासो–नाहटा (वर्ष १५, अंक २)

(३)　कविवर जान का सबसे बडा ग्रन्थ-बुद्धिसागर–अगरचन्द नाहटा (वर्ष १६, अंक १)

(४)　कविवर जान रचित बलिफसा की पैंडी–अगरचन्द नाहटा (वर्ष १६, अंक ४)

४　नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी.

(१)　श्रुति साहित्य की काव्योन्मुखता (वर्ष ५५, अंक ४, सम्वत् २००७)

(२) मानिक कवि की वेताल पच्चीसी के कुछ अंश प्रकाशित (वर्ष ४४, भाग २, अंक ४)
(३) छिताई वार्ता की ऐतिहासिकता–श्री वटेकृष्ण (सं० २००३ माघ, पृ० १३७, १४७, वैशाख पृष्ठ ११४–१२१)
(४) वीरगाथा काल का जैन साहित्य–नाहटा (सं० २००२, पृष्ठ ६)
(५) वर्ष ६४, अंक १, पृष्ठ ६४

५ सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग

(१) संगीत सम्राट तानसेन, (चैत्र वैसाख सं० २००३, पृष्ठ ४०, सं० २००१ ज्येष्ठ–आषाढ़)

६ 'कल्पना'–हैदराबाद

(१) वर्ष ६, अंक ४ अप्रैल पृष्ठ ४७–५४
(२) दतिया की यात्रा–डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (अगस्त १९५१, पृष्ठ २१)
(३) चतुर्भुजदास की मधुमालती और उसका रचनाकाल–डॉ० माताप्रसाद गुप्त (सितम्बर १९५४, पृष्ठ १६)

७ 'विश्व भारती'–शान्ति निकेतन, बंगाल

(१) वज्रयानी सिद्ध कान्हपा की रचनाओं की सूची–द्विजराम यादव (खण्ड ७, अंक ३, पृष्ठ २८९–२९२)
(२) अमरत्व साधन–पं० गोपीनाथ कविराज (खण्ड ७, अंक १, अप्रैल–जून १९६६, पृष्ठ २०–२१)
(३) नाथ सम्प्रदाय–परशुराम चतुर्वेदी (खण्ड ७, अंक २, (१९६६ ई०) पृष्ठ १०६, ११२–१३)
(४) महाराणा कुम्भा संगीतराज–डॉ० कु० प्रेमलता शर्मा (खण्ड ७, अंक १, अप्रैल–जून १९६६, पृष्ठ ३७–४१)
(५) वसंत विलास और उसकी भाषा–(ग्रन्थ समीक्षा) समीक्षक–डॉ० रामसिंह तोमर (खण्ड ७, अंक ३, १९६६, पृष्ठ २९९–३०२) लेखक–डॉ० माताप्रसाद गुप्त
(६) प्रवीणराय पातुर और उसका काव्य–पुरुषोत्तम शर्मा (खण्ड ८, अंक १, सवत् २०२४, (पृष्ठ ५६–६५) तथा खंड ८, अंक ३, पृ० २९३-३०० लखन सेन पदमावती–दामो कवि)

(७) प्रवीणराय पातुर का रचना काल (ऐतिहासिक विश्लेषण)—राधेश्याम द्विवेदी, (खंड ११, अंक १, अप्रेल-जून १९७०)

८ धर्मयुग, बम्बई

(१) मीरा सामान्या नारी—गजानन वर्मा (२७ सितम्बर १९६४)

९ राजस्थान 'भारती'

(१) कविवर जान और उनके ग्रन्थ—नाहटा (वर्ष १, अंक १)
(२) खण्ड १, अंक, पृष्ठ ४१

(१०) 'हिन्दी अनुशीलन'—धीरेन्द्र वर्मा, (विशेषांक वर्ष १३, अंक१ , २ १९६० ई०)

(११) भारतीय विद्या (बंबई) (भाग १७, अंक ४, पृष्ठ १३०-४६) (१९५९ ई०)

(१२) 'त्रिपथगा'-लक्ष्मणसेन पद्मावती रास—लेखक श्री उदयशंकर शास्त्री (अंक १०, जुलाई, १९५६, पृष्ठ ५३-५८)

(१३) 'नवनीत' बम्बई

तानसेन (अप्रैल १९५६, पृष्ठ ३९–४७)

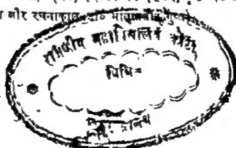
(१४-अ) 'संगीत' विलयल अंक संगीत कला अमर कलाकार तानसेन, पृष्ठ ६०

(ब) तानसेन सम्बन्धी उपाधि पर आचार्य बृहस्पति का लेख (फरवरी १९५६, संगीत)

(स) हरिदास अंक, पृष्ठ ३०

(१५) कादम्बिनी, फरवरी १९६६, दिल्ली

(१६) 'त्रैमासिक आलोचना," (अंक, १६ नवम्बर १९५५, पृष्ठ ६७-७३, छिताई वार्ता रचयिता और रचनाकाल—डा० माताप्रसाद गुप्त)



* * *

लेखक की अन्य कृतियाँ

डॉ० राधेश्याम द्विवेदी,
(जन्म काल २६ फरवरी १९२१ ई०)

१. कल्याणी कैकेयी (प्रबन्ध काव्य) मौलिक
२ रावी के तट पर (खण्ड काव्य)
३. युग प्रवर्तक गान्धी „
४ गुनगुन (स्फुट रचनाएँ)
५ अपने गाँव (निबन्ध)
६. शान्ति सुधा „ (१९४३ ई०)
७. दिव्या मा (रेखा चित्र)
८ नव दुर्गा „
९. अभियान गीत (चीन आक्रमण के समय)
१० विशाल भारत के अमूल्य रत्न (प्रका० स्वरूप ब्रदर्स, इन्दौर)
११. सहकारिता और जिला शिवपुरी–प्रका० जिला सहकारी संघ, शिवपुरी–म० प्र०
१२. ताशकन्द का यात्री (लालबहादुर शास्त्री) (काव्य) प्रकाशनाधीन,
१३ अशिक्षा का अभिशाप, एकांकी „
१४. (विषमता नाटक) „
१५. छलकन गीत „
१६ प्रकाशित कहानियाँ „

दो घड़ी का मेल, नमस्कारम् जहालत का नशा, मजबूरी का फंदा, मनचला हाकिम, अविश्वास, गरीबो का पेट, झोपड़ी की छवि, स्फुट लेख, रचनाएँ, एवं अनेक सन्दर्भ मे उल्लेख, प्रमुख साहित्यकार कोशों ।